ॐ

सर्वज्ञ वीतरागाय नमः

गुरु कहान : दृष्टि महान

(भाग-५)

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
द्रव्यदृष्टि प्रधान आध्यात्मिक प्रवचन

: गुजराती संकलन :
जीतुभाई नागरदास मोदी
प्रशम जीतुभाई मोदी
सोनगढ़

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान मोक्षार्थी परिवार
सोनगढ़, जिला-भावनगर (गुजरात)
मोबा. 09722833143

प्रथम आवृत्ति : प्रति 1000
(विक्रम संवत् 2072, वीर संवत् 2542, ईस्वी सन् 2015)

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
2. **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.) फोन : 09997996346, 2410010/11
3. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
4. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
5. **चिन्तन जीतुभाई मोदी,** क्रमबद्ध निवास, 45 कहान नगर सोसाइटी, सोनगढ़ - 364250 (सौराष्ट्र)
   मोबा : 09662524460
6. **पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन**
   द्वारा मुकेश आयरन स्टोर, गुरु कहान मार्केट, बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)
   मोबा : 09461768086
7. **श्री प्रदीप मानोरिया,** मिल रोड, अशोकनगर, (म.प्र.), मोबा : 09425132060
8. **श्री दिगम्बर जैन कुन्दकुन्द परमागम ट्रस्ट,**
   पंच बालयति जिनालय, एरोड्रम रोड, साधनानगर, इन्दौर (म.प्र.)
9. **श्री अश्विनभाई ए. शाह,**
   बी-21, रुस्तमजी आदर्श हेरीटेज ऑफ मार्वे रोड,
   आदर्श काम्पलेक्स विहार, मलाड (वेस्ट) मुम्बई-64 , मोबा : 09820124378

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक :

अर्पण

जो वर्तमान युग में क्रमबद्धपर्याय का शंखनाद करनेवाले के रूप में जैन जगत् में प्रसिद्ध हैं; जो जैन जगत् में समयसार के प्रखर प्रचारक के रूप में मशहूर हैं; जो द्रव्यदृष्टि प्रधान अध्यात्मयुग के सर्जनहार हैं; जिन्होंने शास्त्रों के शब्दों में छिपे हुए आचार्यों के गूढ़ भावों को खोलने की अद्‌भुत शक्ति द्वारा भव्य जीवों पर वचनातीत परम उपकार किया है; जिनकी शीतल छत्रछाया में जीवन व्यतीत करने का परम सौभाग्य हमारे पिताश्री को प्राप्त हुआ था, उन असीम करुणासागर, पुरुषार्थप्रेरणामूर्ति धर्मपिता पूज्य गुरुदेवश्री को, उनके ही द्रव्यदृष्टि प्रधान आध्यात्मिक प्रवचनों के अमूल्य खजाने में से चुने हुए 25 प्रवचनों के संकलनरूप यह **'गुरु कहान : दृष्टि महान'** भाग-5 अर्पण करते हुए हम जीवन की धन्यता अनुभव कर रहे हैं।

– संकलनकार

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृतने पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

प्रकाशकीय

तीर्थंकरदेव का जन्म जगत के कल्याण के लिये होता है, इसी प्रकार अनन्त-अनन्त उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का जन्म, इस निकृष्ट काल में यहाँ जन्मे हुए और भविष्य में भी यहाँ जन्म लेनेवाले अल्प संसारी जीवों को भाग्यशाली बनाने के लिये तथा उन्हें संसार-समुद्र से पार उतारने के लिये हुआ था। अन्तिम सैंकड़ों वर्षों का जैन इतिहास कहता है कि भव्य जीवों के तारणहार ऐसे महान सन्त यदि कोई हुए हों तो उनमें कृपासिन्धु पूज्य गुरुदेवश्री ही प्रधान पुरुष हैं। उन्होंने इस भौतिक युग को अध्यात्मयुग में परिवर्तित करके पंचम काल के अन्त तक टिका रहे - ऐसा अध्यात्मयुग सृजित किया है।

ऐसे अध्यात्मयुगसृष्टा, अध्यात्म क्रान्तिवीर पूज्य गुरुदेवश्री की 45-45 वर्ष प्रवाहित अध्यात्म गंगा का अमृतपान करनेवाले महान भाग्यशाली भव्य मुमुक्षुओं को तो उनके द्वारा प्ररूपित तत्त्वज्ञान के अभ्यास द्वारा आज भी पूज्य गुरुदेवश्री साक्षात्रूप से अनुभव में आ रहे हैं, परन्तु उनके दर्शन-श्रवण और सत्संग का जिन्हें साक्षात् लाभ प्राप्त नहीं हुआ, ऐसे भव्य जीवों को, इन महापुरुष ने जो द्रव्यदृष्टि प्रधान दिव्यदेशना का प्रपात बहाया, उसका साक्षात्वत् लाभ मिले, वह इस **गुरु कहान : दृष्टि महान** के प्रकाशन का हेतु है।

यह जीव अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक तक जा आया, अनन्त बार नग्न दिगम्बर द्रव्यलिंग धारण किया, अनन्त बार समवसरण में जा आया, तथापि कोरा रह गया, उसका मुख्य कारण यदि कोई हो तो वह एक ही है कि द्रव्यदृष्टि प्रधान देशना को इस जीव ने कभी ग्रहण नहीं किया—ऐसा पूज्य गुरुदेवश्री करुणा से बारम्बार कहते थे और इसीलिए उस द्रव्यदृष्टि प्रधान देशना का उन्होंने जीवनपर्यन्त प्रपात बहाया है। पूज्य बहिनश्री भी कहती थीं कि 'मानो कोई बड़े आचार्य उपदेश देते हों, वैसे दृष्टि के विषय का अपूर्व स्पष्टीकरण होता था' ....'दृष्टि का विषय आवे, तब उछल जाते थे।' यद्यपि उनकी सर्वांगी उपदेश गंगा में न्यूनाधिक योग्यतावाले सर्व जीवों को आत्म-लाभ हो, ऐसा निश्चय-व्यवहार का सम्पूर्ण उपदेश बोध बहा है। मुमुक्षु की पात्रता कैसी हो, अशुभ से बचने को शुभ में जुड़ान कैसा हो, इत्यादि उपदेश देने पर भी कहीं किसी को मुख्यता न हो जाये तथा उसमें जोर दिये बिना उस व्यवहारमार्ग प्रकाशन के साथ मुख्यरूप से तो द्रव्यदृष्टि मार्ग प्रकाशक निश्चय की ही मूसलाधार वर्षा की है। जिससे भद्र जीव अनादि के संस्कारवश मन्दकषाय आदि व्यवहारमार्ग में न अटककर, निश्चयमोक्षमार्ग को यथार्थ समझकर उसका ही ग्रहण करके यह भव सफल करने के लिये स्वानुभूति का सत्पुरुषार्थ अपनायें।

पूज्य गुरुदेवश्री ने अध्यात्मयुग का सृजन किया ही है परन्तु बहुत स्पष्ट कहें तो वस्तुतः वे

द्रव्यदृष्टि प्रधान अध्यात्मयुग के सर्जक हैं क्योंकि जिस द्रव्यदृष्टि प्रधान निश्चय के बोध से जीव निश्चयाभास के डर से भयभीत होते थे, उसके बदले आपश्री के प्रताप से भव्यजीव दिन-रात उस निश्चय का घोलन, चिन्तन श्रवण करने में ही जीवन की धन्यता अनुभव करते हैं।

द्रव्यदृष्टि प्रधान अध्यात्मयुग के सर्जक पूज्य गुरुदेवश्री की उपदेश अमृत वाणी को श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट के तत्कालीन प्रमुख श्री नवनीतभाई झवेरी की दीर्घदृष्टि से टेप में संगृहित करके चिरकालपर्यन्त सुरक्षित बनायी तथा लगभग 9000 घण्टे की इस गुरुवाणी को स्वर्गीय श्री शान्तिलाल रतिलाल शाह परिवार ने अद्यतन टेक्नोलॉजी द्वारा मात्र 16 डीवीडी में तथा तीन वीडी (Blueray Disk) में (जनवरी 2010 तक में) प्रसिद्ध करके मुमुक्षु जगत पर परम उपकार किया है, जिस कारण भावी के भव्य जीव भी आत्महित के मार्ग में सरलरूप से प्रयाण कर सकेंगे। ऐसे होने पर भी, पंचम काल के प्रभाववश कितने ही तत्त्व के अभ्यासियों द्वारा द्रव्यदृष्टि प्रधान तत्त्वज्ञान के पुरुषार्थ में भय प्रकाशन करते देखकर पूज्य गुरुदेवश्री के 9000 टेप प्रवचनों में से द्रव्यदृष्टि प्रधान विशेष पुरुषार्थ प्रेरणादायक प्रवचन चुन-चुनकर **गुरु कहान : दृष्टि महान** रूप से सीडी प्रवचन मुमुक्षु समाज को उपलब्ध कराने की हमें भावना जागृत होने से हमने भाग 1 से 11 तक प्रसिद्ध किया, जिसका श्रवणपान करते हुए गुरु-भक्तों का ध्यान गया कि सीडी प्रवचन का श्रवण करते समय हाथ में अक्षरश: गुरुवाणी की पुस्तक हो तो प्रवचन का भाव विशेषरूप से समझना सरल बने। इसलिए गुरु भक्तों की भावना को साकार करने का निर्णय किया और हिन्दी भाषी समाज भी इन प्रवचनों का लाभ ले, इस भावना से एक मुमुक्षु परिवार द्वारा इस प्रकल्प की पाँचवीं पुस्तक प्रकाशित हो रही है। मुमुक्षु परिवार की अनिच्छा के कारण उनका नाम प्रसिद्ध नहीं किया जा रहा है। विदित हो कि हिन्दी में प्रकाशित इस प्रकल्प के भाग 1 और 2 में गुजराती 'गुरु कहान : दृष्टि महान' भाग 1 से 3 तक समाहित कर लिये गये हैं।

इस पुस्तक प्रकाशन के दो मुख्य प्रयोजन हैं - (1) जिन्हें करुणासागर गुरुदेवश्री के प्रत्यक्ष दर्शन-श्रवण का लाभ नहीं मिला, ऐसे भव्य जीवों को गुरुदेवश्री के द्रव्यदृष्टि प्रधान अन्त:करण समझने का सौभाग्य प्राप्त हो तथा (2) पंचम काल के प्रभाव में आकर प्रमाण के लोभ में अटककर द्रव्यदृष्टि के मार्ग में नि:शंकरूप से प्रयाण करने में हिचकिचाहट न हो, इस प्रकार पूज्य गुरुदेवश्री की भव्य जीवों को संसार-समुद्र से उभर लेने की करुणा सफलता को प्राप्त हो।

अन्त में, पूज्य गुरुदेवश्री 91 वर्ष की उम्र में भी जिस द्रव्यदृष्टि की प्ररूपणा करते हुए अन्दर से उछल पड़ते थे उस द्रव्यदृष्टि प्रधान उपदेश को **गुरु कहान : दृष्टि महान** के माध्यम से शीघ्र ग्रहण करके भावी अनन्त काल गुरु के सान्निध्य को प्राप्त करे - ऐसी भावना के साथ....

संकलनकार / अनुवादक

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्म युगस्त्रष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(सम्पूर्ण जीवनदर्शन, संक्षिप्त में)

ऐवा ए कलिकालमां जगतनां कंई पुण्य बाकी हतां,
जिज्ञासु हृदयो हतां तलसतां सद्वस्तुने भेटवा;
ऐवा कंईक प्रभावथी गगनथी ओ क्हान! तुं ऊतरे,
अंधारे डूबतां अखंड सत्ने तुं प्राणवंतुं करे।

वर्तमान चौबीसी के प्रथम तीर्थंकरदेव के पूर्व के भोगभूमि के एक भव में, सम्यक्त्वप्राप्ति की इनकी काललब्धि पकने पर आकाश में से दो-दो मुनिराज उतरते हैं। अन्तिम तीर्थंकरदेव के पूर्व के सिंह के भव में, सम्यक्त्वप्राप्ति की उनकी काललब्धि पकने पर, आकाश में से दो-दो मुनिराज घोर जंगल में उतरते हैं। उपादान तैयार होने पर मानो कि निमित्त को स्वयं उपस्थित होना पड़ता है-इस न्याय से, लाखों भव्य जीवों की तत्त्वजिज्ञासा-तृप्ति का काल पकने पर, सीमन्धर सभा में देशना का श्रवण-पान करके स्वर्ग जाने को सक्षम ऐसे राजकुमार का जीव, मानो कि भवीजन भाग्यवश अपना मार्ग बदलकर गगन में से यहाँ भरतभूमि में उतरा!

भगवान श्री महावीरस्वामी द्वारा समुपदिष्ठ तथा आचार्य शिरोमणि श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव तथा श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव आदि निर्ग्रन्थ दिगम्बर सन्तों द्वारा शास्त्र में सुरक्षित वीतरागमार्ग जब रूढ़िगत साम्प्रदायिकता की देहाश्रित बाह्यक्रिया और अध्यात्म तत्त्वज्ञान शून्य भक्तिमार्ग के अन्धकार में डूब रहा था, ऐसे इस कलिकाल में वीतरागमार्ग के अखण्ड सत् को प्रवर्तन करने के लिये भारतदेश के गुजरात राज्य में भावनगर जिला के उमराला गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा के गर्भ से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज दिनांक 21-04-1890, रविवार को प्रातः सबेरे तेजस्वी कहान सूर्य का उदय हुआ।

सात वर्ष की उम्र में पाठशाला में लौकिक शिक्षा ग्रहण करना शुरु किया। प्रत्येक वस्तु के हार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि प्रतिभा, मधुर भाषीपना, शान्तस्वभाव, गम्भीर मुखमुद्रा तथा स्वयं करने का स्वभाव होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों में तथा विद्यार्थियों में प्रिय हो गये। विद्यालय में तथा जैन पाठशाला के अभ्यास में प्रायः प्रथम नम्बर आता था परन्तु विद्यालय के लौकिक अभ्यास से उन्हें सन्तोष नहीं हुआ और गहरे-गहरे ऐसा लगता था कि मैं जिसकी शोध में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में मातुश्री के अवसान से पिताजी के साथ पालेज जाना हुआ। चार वर्ष पश्चात् पिताजी का स्वर्गवास होने पर सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यापार में संलग्न हुए।

व्यापार की प्रवृत्ति के समय भी वे किंचित् भी अप्रमाणिकता चला नहीं लेते थे। सत्यनिष्ठ, नीतिमत्ता, निखालिसता, और निर्दोषता से उनका व्यवहारिक जीवन सुगन्धित था; इसके साथ ही

उनका आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध की ओर ही था। दुकान में भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते। वैरागीचित्तवाले कहान कुँवर रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते, तब उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते, जिसके फलस्वरूप सत्रह वर्ष की उम्र में उज्ज्वल भविष्य की सूचना करता बारह लाईन का काव्य — 'शिवरमणी रमनार तुं, तुं ही देवनो देव' की रचना की थी।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि के आहार-पानी तथा अथाणा (अचार) का त्याग किया था। सत्य की शोध के लिये दीक्षा लेने के भाव से बाईस वर्ष की युवावय से दुकान का परित्याग किया और गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार किया था। पश्चात् चौबीस वर्ष की उम्र में (विक्रम संवत् 1970) जन्मनगरी उमराला में लगभग 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय के वैरागी साधु हीराजी महाराज के समीप दीक्षा अंगीकार की थी। दीक्षा के समय हाथी पर बैठने जाते हुए धोती फटने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक गुरुवर को शंका हो जाती है कि कुछ गलत हो रहा है।

दीक्षा लेने के पश्चात् सत्य के शोधक इस महात्मा ने स्थानकवासी तथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में ही पूरा किया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चाएँ चलीं—कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र तो प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व के संस्कार के बल से उन्होंने दृढ़तापूर्वक सिंह-गर्जना की कि 'जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म और पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुलटे पुरुषार्थ से नाश करता है।'

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन उद्धार का और लाखों मुमुक्षुओं के महान् पुण्योदय सूचक एक मंगलकारी पवित्र प्रसंग बना :

बत्तीस वर्ष की उम्र में विधि की किसी धन्य पल में दामनगर में दामोदर सेठ द्वारा श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित समयसार नामक महान परमागम, गुरुदेवश्री के कर-कमल में आया और उसका अध्ययन तथा चिन्तवन करते-करते पूर्व के संस्कार के बल से अन्तर में आनन्द और उल्लास उमड़ने से इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‌गार निकले — 'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।' इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी हुई परिणति ने निज घर देखा अर्थात् आपश्री को वैशाख कृष्ण आठ के दिन सम्यग्दर्शन हुआ।

विक्रम संवत् 1982 के चातुर्मास से पूर्व राजकोट में श्री दामोदरभाई लाखाणी ने मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री को प्रदान किया। जिसे पढ़ने से स्वयं के हृदय की अनेक बातों का समर्थन इस ग्रन्थ में से प्राप्त हो जाने से वे उसके वाँचन में इतने ओतप्रोत हो जाते थे कि उस समय उन्हें खाना-पीना और सोना भी नहीं रुचता था। तत्पश्चात् अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेश कुछ ऐसी स्थिति उन्हें असह्य हो गयी; इसलिए अन्तर में बहुत मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय छोड़ने का निर्णय किया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थल की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में 1991 के फाल्गुन कृष्ण पंचमी के दिन निवास किया और महावीर

जन्मकल्याणक के दिन (विक्रम संवत् 1991, चैत्र शुक्ल तेरह) दोपहर सवा बजे भगवान पार्श्वनाथ के फोटो के समक्ष सम्प्रदाय के चिह्न मुँहपत्ती का त्याग किया और घोषित किया कि — 'अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं, मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।' सिंह समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने, पैंतालीस वर्ष की उम्र में अन्तर में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

'स्टार ऑफ इण्डिया' में सवा तीन वर्ष दौरान जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान अत्यन्त छोटा पड़ने लगा; इसलिए भक्तों ने इन परम प्रतापी सत्पुरुष के लिये निवास और प्रवचन का मकान 'श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने विक्रम संवत् 1994 के वैशाख कृष्ण आठ के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह 'स्वाध्यायमन्दिर' जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीर शासन की प्रभावना का केन्द्र बना रहा।

यहाँ दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे-बड़े लगभग 183 ग्रन्थों का गहराई से अभ्यास किया। उनमें से 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये; जिसमें समयसार पर तो 19 बार अध्यात्म वर्षा की थी। प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय संग्रह, अष्टपाहुड, परमात्मप्रकाश, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी अनेक बार प्रवचन किये।

विक्रम संवत् 1981 में गडढ़ा में पन्द्रह वर्ष की उम्र में पूज्य शान्ताबेन को पूज्य गुरुदेवश्री के प्रथम दर्शन और प्रवचन श्रवण का लाभ प्राप्त हुआ। विक्रम संवत् 1985 में वढ़वाण में पन्द्रह वर्ष की उम्र में पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन को पूज्य गुरुदेवश्री के प्रथम दर्शन और प्रवचन श्रवण का लाभ प्राप्त हुआ। विक्रम संवत् 1986 में वींछिया में पूज्य गुरुदेवश्री के दर्शन और प्रवचन श्रवण के लिये दोनों बहिनों को जाना होने पर वहाँ प्रथम बार दोनों बहिनों का परिचय हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री ने परिवर्तन करने के पश्चात् सोनगढ़ में दोनों बहिनों ने साथ में रहना शुरु करके जीवनपर्यन्त साथ रहकर पूज्य गुरुदेवश्री की देशना द्वारा अपनी-अपनी आत्मसाधना करते रहकर शासन की अत्यन्त भक्तिपूर्वक सेवा की थी। गुरुशासन-प्रभावना में दोनों बहिनों का उल्लेखनीय विशेष योगदान रहा था।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 के फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन श्री नानालालभाई इत्यादि जसाणी भाईयों के योगदान द्वारा नवनिर्मित श्री दिगम्बर जिन मन्दिर में कहानगुरु के मंगल हस्त से श्री सीमन्धरादि भगवन्तों की पंचकल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर जिन मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही देखने को मिलते थे। ऐसे क्षेत्र में गुरुदेवश्री की पावन प्रेरणा से प्रथम जिन मन्दिर निर्मित हुआ। प्रतिदिन दोपहर प्रवचन के पश्चात् जिन मन्दिर में आधे घण्टे भक्ति में जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे। बहुत बार आपश्री अति भाववाही भक्तिपान कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धिपूर्वक का था।

विक्रम संवत् 1997 में दिगम्बर जैन समाज के तत्कालीन प्रमुख दिगम्बर जैनाचार्य श्री

शान्तिसागरजी महाराज, श्री शत्रुंजय सिद्धक्षेत्र की यात्रा करके सोनगढ़ पधारे; पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन सुनकर तथा तत्त्वचर्चा करके इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने गुरुदेवश्री को लक्ष्य करके कहा कि — 'तीर्थंकर अकेले मोक्ष नहीं जाते; यहाँ कुछ ऐसा योग है-ऐसा हमें लगता है।'—अर्थात् पूज्य गुरुदेवश्री भविष्य में तीर्थंकर होंगे—ऐसा दिगम्बर जैन समाज के प्रमुख आचार्य को लगा था।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों-मुनिवरों तथा आत्मानुभवी पण्डितवर्यों के ग्रन्थों, पण्डित श्री हिम्मतभाई जे. शाह के गुजराती में अनुवादित श्री समयसारादि परमागम और पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर प्रवचनों की पुस्तकें प्रकाशित करने का कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943) से शुरु हुआ। उस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहरा रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने हम सब पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश देश-विदेश के समस्त मुमुक्षुओं को नियमित प्राप्त होता रहे, इस हेतु से सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के मगसर (दिसम्बर 1943) महीने से 'आत्मधर्म' नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट के स्थापक आध्यप्रमुख मुरब्बी श्री रामजीभाई माणेकचन्द दोशी के सम्पादन तले प्रारम्भ हुआ। आज भी आत्मधर्म गुजराती तथा हिन्दी भाषा में नियमितरूप से प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्ध करता हुआ 'श्री सद्गुरु प्रवचन प्रसाद' सितम्बर 1950 से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभूतिविभूषित इन चैतन्य विहारी महापुरुष की मंगल वाणी पढ़कर तथा सुनकर हजारों स्थानकवासी, श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैन धर्म के अनुयायी हुए। अरे... मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का सिंचन हो इस हेतु से सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वी सन् 1941) के मई महीने से गर्मी का बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षणवर्ग शुरु हुआ। बड़ों के लिये प्रौढ़ शिक्षणवर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने में प्रारम्भ किया गया था।

पूज्य गुरुदेवश्री की देशना का सामर्थ्य प्रसिद्ध करता एक प्रसंग ईस्वी सन् 1946 में बना। अजमेर निवासी श्री निहालचन्द्रभाई सोगानी सोनगढ़ आये और प्रथम बार ही पूज्य गुरुदेवश्री के दर्शन का लाभ सम्प्राप्त हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री का एक ही प्रवचन सुनकर रात भर आत्म मन्थन करते-करते प्रात: काल अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव प्राप्त करके जैन जगत को प्रतीति करायी कि यदि तुम्हारा पुरुषार्थ और गुरु के प्रति अर्पणता गाढ़ हो तो इन महापुरुष की देशना इतनी प्रखर है कि इनका एक ही प्रवचन-श्रवण भव्यजीवों के भवान्त का प्रबल निमित्त बनने की सामर्थ्य रखता है।

विक्रम संवत् 2003 में निर्मित भगवान श्री कुन्दकुन्द प्रवचनमण्डप के शिलान्यास प्रसंग पर इन्दौर के सर सेठ हुकमचन्दजी, पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति अत्यन्त अहोभाव से बोले थे कि 'आपके पास मोक्ष जाने का सीधा रास्ता है।'

विक्रम संवत् 2003 में पूज्य गुरुदेवश्री की मंगल छत्रछाया में 'भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद' का तीसरा अधिवेशन पण्डित श्री कैलाशचन्द्रजी (बनारस) की अध्यक्षता में आयोजित किया गया था, जिसमें दिगम्बर जैन समाज के सुप्रसिद्ध बत्तीस विद्वानों ने लाभ लिया था। पूज्य गुरुदेवश्री की देशना से प्रभावित होकर उन्होंने सर्व सम्मति से एक विशाल प्रस्ताव पारित किया था जिसमें स्पष्टरूप से उल्लेख किया गया कि '....भगवान कुन्दकुन्द की वाणी समझकर महाराजश्री ने मात्र स्वयं को ही पहचान है—ऐसा नहीं परन्तु हजारों-लाखों मनुष्यों को एक जीवन उद्धार के सत्यमार्ग पर चलने का उपाय दर्शा दिया है.....'

दिगम्बर जैन समाज के मूर्धन्य पण्डितश्री कैलाशचन्द्रजी ने अपनी पत्रिका के सम्पादकीय लेख में पूज्य गुरुदेवश्री की विशेषता दर्शाते हुए लिखा कि यदि कानजीस्वामी इस युग में न हुए होते तो हमारे लिये समयसार ग्रन्थ मात्र दर्शनीय रह जाता अर्थात् पूज्य गुरुदेवश्री के कारण समयसार जैसे ग्रन्थ का स्वयं को अभ्यास करने का सुयोग प्राप्त हुआ था। फिर से उसी पत्रिका के सम्पादकीय लेख में पूज्य गुरुदेवश्री का दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा कि कानजीस्वामी निमित्त को नहीं मानते, ऐसा नहीं है लेकिन वे निमित्त से कुछ नहीं होता है - ऐसा मानते हैं। इस प्रकार मूल दिगम्बर सम्प्रदाय में भी समयसार स्वाध्याय युग सृजक पूज्य गुरुदेवश्री की प्रतिभा प्रसिद्धि को प्राप्त हुई थी।

लाडनूँ निवासी श्री रतनलाल गंगवाल के पिताश्री बच्छराजजी, पूज्य गुरुदेवश्री की महिमा सुनकर सोनगढ़ आये; अत्यन्त प्रभावित होकर उन्होंने पूज्य बहिनश्री बेन की छत्रछाया में बालब्रह्मचारी बहिनों के आवास के लिये 'श्री गोगीदेवी दिगम्बर जैन श्राविका ब्रह्मचर्याश्रम' का विक्रम संवत् 2008 में निर्माण किया।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित श्री समयसारादि पाँचों परमागम संगमरमर में उत्कीर्ण करके 'श्री महावीर कुन्दकुन्द परमागममन्दिर' का उद्घाटन विक्रम संवत् 2030 में सोनगढ़ में छब्बीस हजार भक्तों की उपस्थिति में श्री साहू शान्तिप्रसादजी के हस्त से हुआ था।

ट्रस्टी श्री नेमिचन्दजी पाटनी (आगरा) के सफल संचालन में श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त विक्रम संवत् 2013 (ईस्वी सन् 1957) तथा विक्रम संवत् 2023 (ईस्वी सन् 1967) में — इस तरह दो बार समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मंगल विहार हुआ था। इसी प्रकार विक्रम संवत् 2015 (ईस्वी सन् 1959) और विक्रम संवत् 2020 (ईस्वी सन् 1964) में — इस तरह दो बार दक्षिण और मध्य भारत में मंगल विहार हुआ था। इस मंगल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासु जीवों ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये और आपश्री की भवान्तकारी अमृतमयी वाणी सुनकर अनेक भव्यजीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। फलस्वरूप भारत भर में महती धर्म प्रभावना हुई और सोनगढ़ के इन सन्त के प्रति लोगों में श्रद्धाभक्ति का उत्साह जागृत हो उठा। यात्रा के दौरान अनेक स्थानों से लगभग 80 अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये।

पौने छह महीने की 800 मुमुक्षु यात्रियों के साथ निकली हुई विक्रम संवत् 2013 की श्री सम्मेदशिखरजी की प्रथम यात्रा के समय ईसरी आश्रम में दिगम्बर जैन समाज के अनेक प्रसिद्ध

विद्वानों की उपस्थिति में क्षुल्लक श्री गणेशप्रसादजी वर्णीजी के साथ पूज्य गुरुदेवश्री की वात्सल्यता भरी बातचीत हुई; तब वर्णीजी ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि 'स्वामीजी की प्रसन्न मुद्रा मुझे बहुत पसन्द आयी और मुझे ऐसा लगा कि इस आत्मा के द्वारा समाज का कल्याण होगा।' तत्पश्चात् मधुवन (शिखरजी) में अनेक दिगम्बर मुनियों, विद्वानों, वर्णीजी सहित अनेक त्यागियों और पाँच हजार से अधिक श्रोतागण के समक्ष पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन श्रवण से प्रभावित होकर सैकड़ों पण्डितों के विद्यापति पण्डित बंशीधरजी (इन्दौर) ने हिम्मतपूर्वक स्पष्ट प्रसिद्ध किया कि '.....आपकी वाणी में तीर्थंकरों का और कुन्दकुन्दस्वामी का ही हृदय है।' भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद के अध्यक्ष पण्डित फूलचन्दजी सिद्धान्त शास्त्री, पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन-सत्समागम से इतने अधिक प्रभावित हुए कि वे अपनी रूढ़िगत मान्यता छोड़कर पूज्य गुरुदेवश्री के अनुयायी बन गये।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले तथा कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों का रहस्योद्घाटन करनेवाले इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को श्री नवनीतभाई झबेरी की दीर्घ दृष्टि के कारण श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट द्वारा ईस्वी सन् 1959 से नवम्बर 1980 तक टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षितरूप से उपलब्ध हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की मंगल उपस्थिति में ही भारत भर में-विशेषरूप से हिन्दी समाज में तथा नैरोबी, लन्दन, स्वीटजरलैण्ड, हांगकांग, अमेरिका, केनाड़ा आदि विदेशों में अगणित संख्या में टेप रील तथा कैसेटों से ट्रस्ट के कैसेट विभाग द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों का मुमुक्षुओं ने लाभ प्राप्त किया था। हाल में सी.डी. युग शुरु होने पर स्वर्गीय शान्तिलाल रतिलाल शाह के परिवार द्वारा यह मंगलवाणी देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है, यह ऐसा प्रसिद्ध करती है कि भरतक्षेत्र के भव्य जीवों को पंचम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

दशलक्षण पर्यूषण पर्व के दौरान भारतभर में अनेक स्थलों से पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्ररूपित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिये प्रवचनकार भेजे जाते हैं। पर्यूषण में सर्व प्रथम बाहर गाँव-राजधानी दिल्ली में-वाँचन करने के लिये सोनगढ़ से खीमचन्दभाई सेठ गये थे। वे तथा श्री लालचन्दभाई मोदी (राजकोट) और श्री जुगलकिशोरजी 'युगल' (कोटा), पूज्य गुरुदेवश्री की सूक्ष्म तत्त्व प्ररूपणा का प्रचार करनेवाले अग्रेसर वक्ताओं में थे / हैं। प्रवचनकारों को भेजने की इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में जागृति आयी थी और आज भी देश-विदेश में पर्यूषण पर्व में सैंकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतराग वाणी का डंका बजाते हैं। डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के निर्देशन में नये-नये विद्वान तैयार करने के लिये श्री पूरणचन्दजी गोदिका द्वारा आचार्यकल्प पण्डित श्री टोडरमलजी की स्मृतिरूप से जयपुर में श्री टोडरमल स्मारक भवन का ईस्वी सन् 1967 में निर्माण हुआ, जिसका उद्घाटन पूज्य गुरुदेवश्री की मंगल उपस्थिति में आपश्री के आशीर्वाद से हुआ था। नये प्रवचनकार विद्वानों को प्रवचन पद्धति के लिये प्रशिक्षित करने के लिये प्रतिवर्ष प्रशिक्षण वर्ग जयपुर से प्रारम्भ

किया गया था। उत्तर गुजरात तथा हिन्दी प्रान्त में पूज्य गुरुदेवश्री ने प्ररूपित तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार में पण्डित श्री बाबूभाई फतेपुरवाले का विशेष योगदान रहा था।

भगवान श्री महावीरस्वामी के पश्चात् इस युग में जब बौद्ध सम्प्रदाय का बहुत प्रभाव था, तब समर्थ आचार्यश्री अकलंकदेव ने तत्कालीन प्रमुख बौद्ध आचार्य के साथ वाद-विवाद करके उनकी पराजय करने से जैन समाज में जय-जयकार हुआ था; इसी प्रकार अक्टूबर 1963 में खानियां (जयपुर) में दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के प्रखर पण्डितों और कानजीस्वामी के अनुयायीरूप से प्रसिद्ध पण्डित श्री फूलचन्दजी सिद्धान्त शास्त्री के बीच कितने ही दिनों तक लिखित प्रश्नोत्तर द्वारा तत्त्वचर्चा होने पर, पण्डित श्री फूलचन्दजी द्वारा उन पण्डितों की रूढ़िगत मान्यताओं का शास्त्रों के आधार द्वारा पराजय होने से पूज्य गुरुदेवश्री ने अत्यन्त भावविभोर होकर जैनदर्शन के सत्यमार्ग की विजय सम्बन्धी पण्डित फूलचन्दजी के लिये अत्यन्त प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा था कि — पण्डित फूलचन्दजी ने बहुत काम किया है, बहुत मेहनत की है। शास्त्र से आधार देकर बराबर सच्ची श्रद्धा को टिका रखा है। ऐसा यह एक पण्डित निकला! शास्त्र के पण्डितरूप से पढ़कर स्व-आश्रय और पर-आश्रय इस बोल को टिका रखा; बहुत जोरदार बात है। हजारों बोल ओहो...हो...! बहुत ज्ञान है। अभी चलता यह पन्थ-विपन्थ, उसमें यह बात बाहर रखना! बहुत हिम्मत की है। इस ऐतिहासिक प्रसंग में पूज्य गुरुदेवश्री की अत्यन्त भावविभोर प्रसन्न मुखमुद्रा देखकर भक्त रोमांचित हो गये थे।

जन्म-मरण से रहित होने के सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्य विहारी पुरुष के मंगलकारी जन्मोत्सव मनाने की शुरुआत 59 वें वर्ष से हुई। 75 वीं हीरक जयन्ती के प्रसंग पर समस्त भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित 800 पृष्ठ का एक सजिल्द अभिनन्दन ग्रन्थ इन भावी तीर्थाधिनाथ को भारत सरकार के तत्कालीन मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में मुम्बई में अर्पण हुआ था। योगानुयोग थोड़े ही दिनों में वे भारत के प्रधानमन्त्री बने थे।

विक्रम संवत् 2037 के कार्तिक कृष्ण सात, दिनांक 28-11-1980, शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष देहादि का लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तर्ध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज ज्ञायक में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने भरतक्षेत्र में से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। जैसे नव पल्लवित वटवृक्ष शुरुआत में स्वयं अपनी विशालता को समृद्ध करता हुआ विशालकाय बन जाने के बाद, उसमें से अनेक वटवृक्षों का नवसृजन करता है, इसी प्रकार सोनगढ़ के इन सन्त ने शुरुआत में स्वयंभूरूप से अध्यात्मयुग का नवसृजन किया और उनकी विशाल प्रभावना छाया में देश-विदेश में—जयपुर, देवलाली, अलीगढ़, दिल्ली, गाँधीनगर, सोनागिर, बांसवाड़ा, इन्दौर, द्रोणागिर, नागपुर, गजपंथा, कोटा इत्यादि तथा नैरोबी, लन्दन, अमेरिका इत्यादि क्षेत्रों में-स्थापित संस्थाओं द्वारा आपश्री ने प्ररूपित तत्त्वज्ञान के प्रचार द्वारा आपश्री द्वारा नवसृजित अध्यात्मयुग को युग के अन्त तक टिका रखने का भी आपके पुण्य प्रताप से बना है। इस प्रकार आपश्री वीतरागी शासन को प्राणवन्त करते गये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग के एक महान और असाधारण व्यक्ति थे। उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से बहुत दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से आत्मसात भी किया।

श्री वीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् इन धारावाही 45 वर्षों का समय (वीर संवत् 2061 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980।) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्ण काल था। जो कोई मुमुक्षु अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी जाते थे, उन्हें तो वहाँ चतुर्थकाल का ही अनुभव होता था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वी सन् 1980 दौरान पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के निर्देशन में तथा पूज्य शान्ताबेन के भक्ति उल्लासपूर्ण संचालन में सौराष्ट्र-गुजरात उपरान्त भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में-इस प्रकार कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मंगल प्रतिष्ठा इन धर्मयुगस्रष्टा सत्पुरुष के करकमल द्वारा हुई थी।

आपश्री की अध्यात्मदेशना के प्रभाव से श्री सीमन्धरस्वामी दिगम्बर जिनमन्दिर, श्री समवसरण मन्दिर, श्री मानस्तम्भजी, श्री महावीर कुन्दकुन्द परमागममन्दिर, श्री पंचमेरु-नन्दिश्वर जिनालय जैसे जिनायतनों के निर्माण से आज स्वर्णपुरी जैनजगत में आत्मसाधना का तीर्थधाम बन गया है और निकट भविष्य में 41 फीट की भगवान श्री बाहुबली के खड्गासन जिनबिम्ब की तथा जम्बूद्वीप के अनेक जिनबिम्बों की स्थापना होने पर पूज्य गुरुदेवश्री की साधनाभूमि स्वर्णपुरी आकर्षक अजायबीरूप से विश्व के नक्शे में स्थान प्राप्त करेगी।

इन विदेहदशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्जवल था, उतना बाह्य जीवन भी पवित्र था। पवित्रता और पुण्य का सहजयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही देखने को मिलता है। उनकी अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत सम्भाषण, करुण और सुकोमल हृदय उनके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव थे। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तन और स्वाध्याय, यही उनका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति वे हमेशा सतर्क और सावधान थे। वे जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित, मात्र अपनी ही साधना में तत्पर रहे। भावलिंगी मुनियों के वे परम उपासक थे।

स्वयं चतुर्थ गुणस्थानवर्ती साधक होने पर भी उनका जीवन-व्यवहार और परिणाम की स्थिति अत्यन्त उच्चकोटि की थी। तीर्थंकर का द्रव्य होने से जगत के जीव आत्मकल्याण को प्राप्त करें-ऐसी करुणा वर्तती होने से 91 वें वर्ष में भी गाँव-गाँव में विहार करके भव्यजीवों की तत्त्व जिज्ञासा शान्त करते थे, तथापि वे इतने निस्पृही थे कि उन्होंने कभी भी किसी को भी जिनमन्दिर बनाओ या स्वाध्यायमन्दिर बनाओ, ऐसा कहना तो दूर रहा, संकेत तक नहीं किया था।

जीवों के आत्मकल्याण की करुणा होने पर भी इतने निर्ममत्वी थे कि कभी किसी को भी पूछा नहीं था कि तुम रोज स्वाध्याय करते हो न?

कोई व्यक्ति जीवनपर्यन्त तत्त्वज्ञान न समझने से पूज्य गुरुदेवश्री का विरोध करता हो और उस

व्यक्ति को अपने अज्ञान के लिये पश्चाताप होने पर पूज्य गुरुदेवश्री से क्षमा याचना करता हो, तब पूज्य गुरुदेवश्री को शर्म... शर्म... अनुभव में आती थी और कहते थे कि भूल जाओ... भूल जाओ... भगवान ने भी अपने भूतकाल में भूल करने में कुछ बाकी नहीं रखा था। तुम भगवान हो–ऐसा हम देखते हैं और तुम भगवानरूप से देखो–ऐसी तो निर्मानता थी।

तत्त्वविरोध के कारण दैनिक पत्र में और पत्रिका में पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति अनुचित लेख छपें तो भक्त उनका विरोध करनेवाले हों तो आपश्री कहते है कि भाई! हमारा कोई विरोधी नहीं है। कोई हमारा विरोध नहीं करता, हम किसी को विरोधी नहीं देखते, हम तो सबको भगवानरूप से देखते हैं। चाहे जैसा लेख लिखकर विरोध करनेवाला भी यदि प्रवचन सुनने आता हो तो उसे सभा में आगे बैठने बुलाते और प्रवचन में वात्सल्यभाव से उसे सम्बोधित करते। पूरे जीवन दौरान किसी भी व्यक्ति ने कैसा भी विरोध किया हो, वह भी यदि एक बार पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्यक्ष दर्शन–सत्समागम में आता तो वह जीवन भर उनका अनुयायी बन जाता। क्षमावाणी के दिन प्रवचन सभा में प्रसिद्धरूप से कहते कि किसी जीव को हमारे द्वारा पर्यायदृष्टि से देख लिया गया हो तो हम क्षमा चाहते हैं। सब जीव भगवान हैं – ऐसी तो उनकी करुणामय क्षमा भावना थी।

जीवन में निस्परिग्रही तो ऐसे कि पैंतालीस–पैंतालीस वर्षों तक स्वाध्यायमन्दिर के एक ही कमरे में रहे कि जहाँ जिनवाणी–स्वाध्याय के लिये एक बैठक, सोने के लिये एक गद्देवाली बैंच और त्यागी को योग्य मात्र चार जोड़ी कपड़े! और स्वाध्याय के लिये सैकड़ों शास्त्रों से भरी हुई अलमारियाँ!!

देश और दुनिया में क्या हो रहा है, यह जानने का कौतुहल नहीं होने से कभी भी न्यूज पेपर तक पढ़ा नहीं था।

रसना के अलोलुपी–नि:स्वादी तो इतने कि जीवनभर कभी भी दो–तीन सब्जी के अतिरिक्त न तो कोई सब्जी चखी थी, मूँग की दाल के सिवाय न तो कोई दाल या कढ़ी चखी थी, न तो कोई चटनी, मिर्च चखी थी, न तो कोई मिठाई या फरसाण अथवा मुखवास चखा था। मानो कि कोई त्यागी–व्रती हो, वैसा उनका जीवन था।

करुणाशीलता का सागर होने पर भी, तत्त्व में इतने निर्भीक और सत्यमार्ग प्रवक्ता थे कि किसी भी लौकिक महानुभाव का उन पर प्रभाव नहीं पड़ता था। एक प्रतिष्ठित श्रेष्ठी तथा एक त्यागी व्रती द्वारा उद्दिष्ठ भोजन सम्बन्धी कुछ स्वयं कहने सम्बन्धी पूज्य गुरुदेवश्री को संकेत किया जाने पर आपश्री ने बहुत स्पष्टरूप से कहा कि अपने लिये बनाया हुआ आहार—उद्दिष्ट भोजन—प्राण जाये तो भी मुनिराज नहीं लेते। देशकाल के नाम से सर्वज्ञ कथित शुद्ध आम्नाय का उल्लंघन कैसे किया जाये? विक्रम संवत् 1994 में स्वाध्यायमन्दिर के उद्घाटन प्रसंग पर भावनगर के महाराजा श्री कृष्णकुमारसिंहजी (देश के प्रथम राज्यपाल–मद्रास के) सोनगढ़ आये; उन्हें आपश्री ने प्रवचन में कहा कि थोड़ा माँगे वह छोटा भिखारी, बड़ा माँगे वह बड़ा भिखारी–वर्ष में पाँच हजार चाहिए हो, वह छोटा भिखारी और पाँच लाख चाहिए हो, वह बड़ा भिखारी! श्रीमद् राजचन्द्रजी को अपने धर्मगुरु माननेवाले राष्ट्रपिता गाँधीजी

विक्रम संवत् 1995 में राजकोट में प्रवचन में आये। पूज्य गुरुदेवश्री ने अपनी तत्त्व की मस्ती में कहा कि मैं दूसरे की सेवा कर सकता हूँ - ऐसा माननेवाला मूढ़ है। यह बात गाँधीजी को इतनी अधिक स्पर्श कर गयी कि कितने ही वर्षों के बाद उन्होंने किसी से पूछा कि मुझे मूढ़ कहनेवाले महाराज अभी कहाँ विचरते हैं ?

गुण प्रशंसक तो इतने कि किसी ने भी शासन सम्बन्धी प्रशंसनीय कार्य किया हो - चाहे वह अपना शिष्य भले हो तो भी उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते थे।

- ऐसी अनेक उच्चकोटि की परिणति और अध्यात्म तत्त्वज्ञान से भरपूर उपदेश के सुसंगम के कारण प्रथम परिचय में ही श्रोता उनके प्रति भावविभोर बनकर उनके अनुयायी बन जाते थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन अनुभूति विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से, सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा, युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से समझाया था। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान का स्वपरप्रकाशकपना इत्यादि समस्त आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से बाहर आये थे। 'सैंकड़ों शास्त्रों के हमारे मन्थन का यह सार अन्दर से आया है।' — इस 'क्रमबद्धपर्याय' के शंखनाद द्वारा आपश्री ने जैन जगत को आन्दोलित किया। जैसे श्री समयसार का स्मरण करे तो कानजीस्वामी का स्मरण हुए बिना नहीं रहता; इसी प्रकार क्रमबद्धपर्याय शब्द कान में पड़े तो कानजीस्वामी का स्मरण हुए बिना रहना असम्भव है। आज देश-विदेश में लाखों जीव मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं, यह आपश्री का ही परम प्रताप है।

करुणासागर, पुरुषार्थप्रेरणामूर्ति, सम्यग्ज्ञानविभूषित इन महात्मा की महिमा का वर्णन शब्दातीत है; मात्र अहोभाव से अनुभवगम्य है।

'तू परमात्मा है-ऐसा निर्णय कर! तू परमात्मा है-ऐसा निर्णय कर!' — ऐसा महामन्त्र मुमुक्षुओं को देकर, भक्तों को भगवान बनने की प्रेरणा करनेवाले इन महापुरुष ने प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पन्थ जगत् में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थंकर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासनस्तम्भ श्री कहान गुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!

भवभीरु भव्यात्मा के भव का अभाव करनेवाले सत्पुरुष का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!

हे ज्ञान पोषक सुमेघ तुझे नमूँ मैं
इस दास के जीवनशिल्पी तुझे नमूँ मैं॥

- जीतूभाई नागरदास मोदी, सोनगढ़

अनुक्रमणिका

क्र.	शास्त्र	गाथा/श्लोक	तारीख	प्रवचन नं.	पृष्ठ
१.	श्री नियमसार	३८	३०-०१-१९७८	५२	१
२.	श्री नियमसार	३८	०१-०२-१९७८	५३	१३
३	श्री समयसार कलश टीका	२१५	०२-११-१९६५	२०७	२३
४	श्री समयसार	०६	----	४	३८
५	श्री समयसार	०६	२८-०४-१९६६	५	५२
६	श्री प्रवचनसार	४९	२४-०२-१९७९	४९	६६
७	श्री नियमसार	१५९, १६५-१६६ २८० - २८२	०१-१२-१९७१	१९१	८१
८	श्री नियमसार	१६७-१६८ २८२-२८३	०३-१३-१९७१	१९२	९६
९	श्री प्रवचनसार	१३९-१४० २८२-२८३	२८-०६-१९७५	१७८	१११
१०	श्री समयसार कलश टीका	२०७	१३-०२-१९७८	२३१	१२६
११	श्री समयसार कलश टीका	२०८	१४-०२-१९७८	२३२	१४१
१२	श्री समयसार कलश टीका	२५८	२२-१२-१९६५	२५७	१५६
१३	श्री समयसार कलश टीका	२१६	२४-०२-१९७८	२४०	१७३
१४	श्री समयसार	४९	२१-०९-१९६१	७४	१८८
१५	श्री प्रवचनसार	१७२	२०-१२-१९७७	५६	२०३
१६	श्री समयसार	७९	२९-०५-१९६९	१५१	२१७
१७	श्री समयसार	१७-१८	----	२५	२३२
१८	श्री समयसार	४९	१५-०५-१९८०	४७	२४६
१९	श्री प्रवचनसार	११२	०२-०७-१९७९	१२२	२६०
२०	श्री नियमसार	२६-२७, ३९-४०	३१-०३-१९७१	२९	२७३
२१	श्री अष्टपाहुड़, भावपाहुड़	७८-७९	२५-१०-१९७०	१२३	२८७
२२	श्री अष्टपाहुड़, भावपाहुड़	८८-८९	३०-१०-१९७०	१२७	३०२
२३	श्री समयसार	८७-७९	१५-०६-१९६९	१६५	३१६
२४	श्री समयसार	९२	१९-०६-१९६९	१६८	३३२
२५	श्री समयसार	१००	०२-०७-१९६९	१८१	३४५

ॐ

श्री परमात्मने नमः

गुरु कहान : दृष्टि महान

अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के द्रव्यदृष्टिप्रधान आध्यात्मिक प्रवचन

(भाग ५)

१

श्री नियमसार, गाथा - ३८, प्रवचन - ५२
दिनांक - ३०-०१-१९७८

नियमसार, अधिकार तीसरा। जीव, अजीव (ये) दो अधिकार आ गये हैं। शुद्धभाव अधिकार। यह शुद्धभाव अर्थात्? जो पुण्य और पाप के अशुद्धभाव, उनसे रहित जो शुद्धभाव / पर्याय, वह नहीं। यह शुद्धभाव त्रिकाल की बात है। शुभ और अशुभभाव जो अशुद्ध है, उस अपेक्षा से आत्मा की सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय, वह शुद्ध है, परन्तु वह शुद्ध यह भाव नहीं है; वह यह शुद्धभाव अधिकार नहीं है। यह शुद्धभाव अधिकार तो त्रिकाली द्रव्यस्वभाव को कहते हैं। समझ में आया? वह शुद्धभाव, वह पर्याय है। सम्यग्दर्शन निश्चय, हों! व्यवहार तो अशुद्ध में गया। निश्चयसम्यग्दर्शन... आत्मा का ध्रुवस्वरूप त्रिकाली, उसे यहाँ शुद्धभाव कहते हैं। उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो निर्मलपर्याय—मोक्ष का मार्ग (प्रगट हुआ), वह शुद्धपर्याय यहाँ नहीं (लेना)। यहाँ तो वह शुद्धपर्याय भी हेय है—आश्रय करनेयोग्य नहीं है—ऐसा कहना है।

निमित्त तो हेय है, निमित्त की ओर का शुभ-अशुभभाव भी हेय है, परन्तु पर्याय में जो द्रव्य के आश्रय से शुद्ध मोक्ष का मार्ग उत्पन्न होता है—उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव। उदयभाव तो अशुद्ध में गया। अब उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव, जो '**सम्यग्दर्शनज्ञान**-

चारित्राणि मोक्षमार्गः' उस निर्मलपर्याय को भी यहाँ हेय में डालते हैं। वह अधिकार नहीं। यहाँ तो शुद्धभाव का अधिकार, त्रिकाली वस्तु है, यह शुद्धभाव अधिकार।

जीवादिबहित्तच्चं हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा।
कम्मोपाधिसमुब्भवगुणपज्जाएहिं वदिरित्तो।।३८।।

नीचे हरिगीत

हैं हेय सब बहितत्त्व ये जीवादि, आत्मा ग्राह्य है।
अरु कर्म से उत्पन्न गुणपर्याय से वह बाह्य है॥३८॥

टीकाः—यह हेय और उपादेयतत्त्व के स्वरूप का कथन है। छोड़नेयोग्य क्या है? आश्रय करनेयोग्य क्या है? और उपादेय—आश्रय करनेयोग्य कौन है? उसका यहाँ कथन है। है? सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण वास्तव में उपादेय नहीं है।** इसकी व्याख्या। **जीवादि सात तत्त्वों...** वह जीव कौन? पर्याय। व्यवहार जीव। पुण्य-पाप का भाव तो उदयभाव में अशुद्ध है, वह बहिर्तत्त्व है, परन्तु अन्दर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, शुद्ध आनन्द का स्वाद आया, वह पर्याय भी जीव की बहिर्तत्त्व है। वह जीवरूप पर्याय बहिर्तत्त्व है। त्रिकाली आत्मा अन्तःतत्त्व है। आहाहा! समझ में आया?

जीवादि सात तत्त्वों का समूह... यहाँ जीव की पर्याय जीव में लेना। पर्याय फिर उदय की हो या उपशम की या क्षायिक की या क्षयोपशम की हो, वह बहिर्तत्त्व में जाती है। आहाहा! वह **जीवादि सात तत्त्वों...** संवर, निर्जरा, मोक्ष, ये भी बहिर्तत्त्व में जाते हैं। आहाहा! क्योंकि इनका आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आश्रय करनेयोग्य तो त्रिकाली भाव है। जिससे मोक्षमार्ग उत्पन्न हो, ऐसा त्रिकाली भाव, वह एक उपादेय है। आहाहा! समझ में आया? पाँच भाव हैं न, पाँच भाव? उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक (और) पारिणामिकभाव; तो वह पारिणामिकभावरूप जो त्रिकाली ध्रुव, उसके सिवाय... सिवाय को (हिन्दी में) क्या कहा जाता है? अलावा। हिन्दी बहुत नहीं आती है। उसके सिवाय उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक आदि जो चार भाव हैं, वे जीवादि बहिर्तत्त्व में जाते हैं। आहाहा! यशपालजी! सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा!

तेरा रूप तो भगवान है न, नाथ! आहाहा! परमात्मस्वरूप है। 'घट-घट अन्तर जिन बसे, घट-घट अन्तर जैन, मत मदिरा के पान सों मतवाला समझे न।' यह लाईन समयसार

नाटक में है। 'घट-घट अन्तर जिन बसे...' आत्मा त्रिकाली जिनस्वरूपी ही है। आहाहा! वीतरागी अकषायमूर्ति प्रभु है। यह परमपारिणामिकभाव कहो, ज्ञायकभाव कहो, ध्रुवभाव कहो, सामान्यभाव कहो, एकरूपभाव कहो - उसे यहाँ शुद्धभाव कहा जाता है। उससे ये जीवादि बाह्यतत्त्व हेय, भिन्न है। आहाहा! निमित्त तो हेय है ही, क्योंकि वह परद्रव्य है। परद्रव्य तो कभी अपने को स्पर्श नहीं करता और अपनी पर्याय परद्रव्य को कभी स्पर्श नहीं करती। परन्तु उसे जो स्पर्शती है, वह पर्याय, पर्याय में। रागादिभाव, विकार, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, वह अशुद्धभाव में जाता है। वह भी बहिर्तत्त्व है और स्वभाव के आश्रय से भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु! 'घट-घट अन्तर जिन बसे अरु घट-घट अन्तर जैन...' अन्तर में जो स्वरूप पूर्ण है, उसका अनुभव हुआ, उसके आश्रय से वीतरागी पर्याय उत्पन्न हुई, वह जैनपना। परन्तु वह जैनपना भी पर्याय है। उसे यहाँ जीवादि तत्त्वों में हेय कहा गया है। आहाहा! समझ में आया?

जीवादि... अर्थात् उसकी पर्याय—उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक या उदय, वह जीव पर्याय। अजीव—शरीरादि, कर्मादि; पुण्य-पाप-आस्रव-बन्ध—राग में रुकना और संवर, निर्जरा, मोक्ष। इन सब जीवादि तत्त्वों में यहाँ पुण्य-पाप को भिन्न नहीं किया, परन्तु आस्रव में डाला है। इसलिए **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण...** आहाहा! वह तो परद्रव्य है; स्वद्रव्य नहीं। आहाहा! यह कथनी तो देखो! वीतरागी सन्त के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं नहीं है। यह अन्तर की बात है। समझ में आया? यहाँ तो अभी व्यवहाररत्नत्रय सम्यग्दर्शन बिना, आत्मा अनुभव बिना के व्रत और तप साधन हैं और उनसे साध्य निश्चय होता है। शास्त्र में आता है, भिन्न साध्य-साधन। वह तो समझाने की चीज़ कही। निमित्त का ज्ञान कराया कि वहाँ कौन सा भाव था। अरे प्रभु!

यहाँ तो कहते हैं कि क्षायिक समकित हो और केवलज्ञान हो, मोक्षतत्त्व की पर्याय क्षायिकभाव से जो हो, वह भी जीवादि तत्त्व परद्रव्य में जाती है। आहाहा! समझ में आया? **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण...** आहाहा! अन्दर बहुत जगह आता है। १०५ पृष्ठ में है, १९९ में है। चार-पाँच जगह है। वे तो परद्रव्य है। आहाहा! क्योंकि जिसमें से नयी पर्याय उत्पन्न न हो, जैसे परद्रव्य में से अपनी वीतरागी निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होती; वैसे ही पर्याय में से निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होती, तो उस पर्याय को यहाँ परद्रव्य कहा गया है। क्या कहा?

फिर से, जैसे अपने द्रव्य के अतिरिक्त परद्रव्य से अपनी कोई निर्मल पर्याय उत्पन्न

नहीं होती, क्योंकि परद्रव्य भिन्न है। इसी प्रकार अपनी निर्मल पर्याय में से नयी निर्मल पर्याय उसमें से उत्पन्न नहीं होती और उसके आश्रय से उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? मोक्षमार्ग की पर्याय जो है, निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय, निर्विकल्प वीतरागी पर्याय और उसका उपेय। यह तो उपाय। उपेय-मोक्ष, वह भी पर्याय है। वह भी क्षायिकभाव की (पर्याय है)। पंचम पारिणामिकभाव द्रव्य की क्षायिकभाव की पर्याय है, तो उस पर्याय को भी यहाँ परद्रव्य कहा है।

श्रोता - ऐसा सूक्ष्म समझना...

पूज्य गुरुदेवश्री - हाँ, इसके बिना तत्त्व पकड़ में नहीं आयेगा। भगवान! तू अन्दर में कैसा है? वह तो आनन्द का दल है, अतीन्द्रिय आनन्द का दल है। आहाहा! सवेरे नहीं कहा? शक्करकन्द की बात कही थी न? सवेरे कहा था? आज नहीं, कल कहा था। यह शक्करकन्द होता है न? हमारे शक्करिया कहते हैं। ऊपर की जो लाल छाल है, उसके अतिरिक्त देखो तो शक्करकन्द है। शक्करकन्द अर्थात् शाकर की मिठास का पिण्ड है। लाल छाल होती है न? यह वैष्णव शिवरात्रि में बहुत खाते हैं। है तो कन्दमूल, उसमें अनन्त जीव हैं परन्तु यहाँ कहते हैं कि लाल छाल.. छाल कहते हैं? ऊपर की छाल, उसे न देखो तो पूरा दल है, वह तो शाकर का कन्द है, शाकर की मिठास का पिण्ड है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा... आहाहा! पुण्य और पाप, दया और दान के विकल्प हैं, वह तो ऊपर की छाल है, छिलका है। उस छाल के नीचे देखो तो जैसे शाकर का पिण्ड है; वैसे यह अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु आत्मा है। आहाहा! यह अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है, वह स्वद्रव्य है। इसके अतिरिक्त दूसरी कोई भी पर्याय हो, क्षायिकभाव की पर्याय हो; चौथे-पाँचवें-छठवें गुणस्थान में क्षायिक समकित हो, उसे तो यहाँ बहिर्तत्त्व में डाला है, क्योंकि उसका आश्रय करने से लाभ नहीं होता। वह है तो लाभरूप, परन्तु उसका आश्रय करने से, वह पर्याय है; इसलिए विकल्प उत्पन्न होता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **जीवादि सात तत्त्वों का समूह...** पर्याय का समूह, हों! पर्याय का समूह यह। पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष—यह पर्याय का समूह **परद्रव्य होने के कारण...** आहाहा! वीतराग-सर्वज्ञ परमात्मा की दिव्यध्वनि में यह बात आयी। इन्द्र और गणधरों के समक्ष में (यह बात आयी है)। सभा में तो इन्द्र एकावतारी बैठे हैं। शकेन्द्र एकावतारी-एकभव में मोक्ष जानेवाले हैं। सौधर्म एकभवतारी है। अन्तिम भव में मनुष्य होकर

मोक्ष में जाएगा। उसकी पत्नी इन्द्राणी भी एकभवातारी है। सभा में वे थे और गणधर-सन्त थे। उस सभा में भगवान की वाणी में यह आया है। आहाहा!

प्रभु! तू कौन है? तू पर्याय जितना है? आहा! तू राग जितना है? आहाहा! और पर्याय को तो व्यवहार आत्मा कहा जाता है। आहाहा! जो (समयसार) ११वीं गाथा में कहा - **ववहारो अभूदत्थो।** पर्यायमात्र अभूतार्थ कही, झूठी कही। झूठी की अपेक्षा क्या?—कि मुख्य ध्रुव की दृष्टि कराने को मुख्य को निश्चय कहा और पर्याय है तो सही, परन्तु गौण करके, व्यवहार करके 'नहीं है'—ऐसा कहा है। वह नहीं है - ऐसा एकदम नहीं है। गौण करके, व्यवहार करके अभूतार्थ कहा है। ११वीं गाथा। आहाहा! यह बात यहाँ ली है कि जितनी पर्याय है व्यवहार अभूतार्थ वह सब परद्रव्य है। आहाहा!

होने के कारण... कारण दिया। क्यों उपादेय नहीं? पाठ में तो हेय है, पाठ में हेय है - **'बहित्च्वं हेयं।'** परन्तु अर्थ ऐसा किया कि **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण वास्तव में उपादेय नहीं है।** ऐसा लिया। पाठ में हेय है। समझ में आया? परन्तु हेय है, यह इसका हेतु बताना था कि वह उपादेय नहीं है, वह आश्रय करनेयोग्य नहीं है; इस कारण से हेय का अर्थ 'उपादेय नहीं है'—ऐसा कहा है। आहाहा! समझ में आया? **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण...** यहाँ तो क्षायिक निर्मल पर्याय को भी परद्रव्य कहा। आहाहा! क्योंकि यह शुद्धभाव अधिकार है न यह? त्रिकाली शुद्ध का पिण्ड जो प्रभु है, वह स्वद्रव्य है। इस अपेक्षा से पर्यायमात्र को बहिर्तत्त्व कहकर परद्रव्य कहा है। आहाहा! ऐसा है, प्रभु! अरे रे! इसमें किसके साथ चर्चा करना, बात करना?

लोग यह समझते नहीं और फिर माने कि हमारा एकान्त है। करो बापू! तुम भी भगवान हो, अन्दर तो भगवान हो, भाई! अन्दर तो भगवानस्वरूप हो। यह तो पर्याय में तेरी भूल है और वह भी एक समय की भूल है। एक सेकेण्ड का असंख्यातवाँ भाग, उसमें एक समय की भूल। भगवान त्रिकाली तो निर्भूल भगवानस्वरूप है। यह शुद्धभाव (कहा वह)। आहाहा!

श्रोता - भूल का टाईम थोड़ा, परन्तु जोर कितना!

पूज्य गुरुदेवश्री - जोर, वह तो एक समय ही रहती है। संसार की पर्याय एक समय ही रहती है। दूसरे समय में दूसरी, भले ऐसी ही ऐसी (हो), परन्तु दूसरी (होती है)। अरे! केवलज्ञान भी एक समय में जो उत्पन्न होता है, वह दूसरे समय में वह नहीं होता। वैसा, परन्तु वह नहीं। आहाहा! इस कारण पर्याय को बहिर्तत्त्व कहा है। समझ में आया? सूक्ष्म पड़े, प्रभु!

परन्तु क्या करे ? मार्ग तो जो है, वह है। समझ में न आवे, इसलिए न चले, इससे कहीं मार्ग दूसरा हो जाता है ? यह तो अनन्त केवलियों, अनन्त तीर्थंकर (कहते हैं)। त्रिकाल में त्रिकाल को जाननेवाले का कभी विरह नहीं होता। क्या कहा ? तीनों काल त्रिकाल है। तो त्रिकाल वस्तु ज्ञेय है न ? तो त्रिकाल में त्रिकाल को जाननेवाले का कभी विरह नहीं होता। अनादि से सर्वज्ञ हैं, अनादि से त्रिकाल है। समझ में आया ? त्रिकाल में त्रिकाल को जाननेवाले का कभी भी विरह नहीं होता। आहाहा ! सर्वज्ञ प्रगट, हों ! आहाहा !

यहाँ यह सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी है। चाहे तो वर्तमान भगवान हो, चाहे तो भूत (काल) के भगवान हो, चाहे तो भविष्य के (हों)। यह यहाँ कहा था न ! अभी एक विवाद हो गया था, भाई ! एक 'जयसागर' साधु है न ? यहाँ अपने 'णमो लोए सव्व अरिहंताणं' कहा न ? इसमें उन्होंने भूल निकाली है कि यह णमो लोए सव्व अरिहंताणं कैसे कहा ? पाठ में तो णमो अरिहंताणं है। यह समाचार पत्र में आया था। जैनसन्देश में या कहीं आया था।

श्रोता - णमो सव्व साहूणं...

पूज्य गुरुदेवश्री - अरे ! णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं—ऐसा धवल में पाठ है। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। हम बोलते हैं तो अन्त में बोलते हैं, चार में नहीं बोलते। अन्त में बोलते हैं कि णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं। यह अन्त दीपक है। चवरेजी ! अन्त दीपक अर्थात् अन्त में कहा, परन्तु पाँचों में लागू पड़ता है। णमो लोए सव्व... परन्तु इन सबको लोए होवे न, तो मानो सब साधु आ जाते हैं ? जैन के अतिरिक्त अन्य साधु भी आ जाते हैं - ऐसा नहीं है। और अन्य में तो कोई मार्ग ही नहीं है न ! प्रभु ! क्या कहें ?

श्राता - .....

पूज्य गुरुदेवश्री - सम्यग्दर्शन नहीं होता। गृहीत मिथ्यादर्शन में है। क्या कहें ? लोगों को दुःख लगता है। भाई ! श्वेताम्बर पन्थ भी गृहीत मिथ्यादृष्टि है। जैनधर्म के हजारों बोल बदल डाले। पण्डितजी ! यह 'मोक्षमार्गप्रकाशक' के पाँचवें अध्याय में है न ? अन्यमत में डाला है। दुःख लगे, इसलिए नहीं, यह तो सत्य है, प्रभु ! तू आत्मा है, प्रभु ! तुझे दुःख लगे नहीं, परन्तु वस्तु की स्थिति ऐसी है। आहाहा ! पाँचवाँ अध्याय है न ? मोक्षमार्ग अधिकार, अन्यमत अधिकार। उसमें वेदान्त, वैशेषिक, सांख्य, इस्लाम, स्थानकवासी, श्वेताम्बर सबको अन्यमत में डाला है। आहाहा ! यह तो वस्तुस्थिति है। दिगम्बर धर्म कोई सम्प्रदाय नहीं है। वस्तु का स्वरूप जो अनादि है, पर्याय और द्रव्य, निमित्त और उपादान... आहाहा ! जैसा वस्तु का स्वरूप

है, ऐसा जाना है और वैसा वाणी में आया है। सन्तों ने अनुभव करके इस प्रकार से रचना की है। आहाहा! समझ में आया?

कितने ही लोग ऐसा कहते हैं कि देखो! ऐसा कहकर फिर श्वेताम्बर में सबको ले जायेंगे। और ऐसा कहते हैं। अर र! प्रभु! तू क्या करता है? भाई! अरे! भगवान! तू क्या करता है? भाई! हमने तो श्वेताम्बर को सबको जाना है। यह सब बनाकर और फिर वस्त्र सहित है न? परन्तु भाई! हम मुनि कहाँ है? समझ में आया? फिर सबको श्वेताम्बर बना देंगे। भगवान! ऐसा तर्क नहीं होता, भाई! आहाहा! यह तो वस्तु का स्वरूप है, प्रभु!

(समयसार) ७२ गाथा में है। पण्डितजी! समयसार की ७२ गाथा है न, कर्ता-कर्म की? उसमें तो ऐसा लिया है कि पुण्य और पापभाव अशुचि हैं। ऐसा कहकर टीकाकार भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने, भगवान आत्मा निर्मल है - ऐसा लिया है। टीका में भगवान कहा है। सबको भगवान कहा है। तीन बोल लिये हैं - अशुचि, जड़ और दुःख। ७२ गाथा में है। यह नियमसार है। समयसार में है।

पुण्य और पाप, व्यवहाररत्नत्रय भी अशुचि-मैल है, तो उसके सामने ऐसे प्रभु भगवान आत्मा, ऐसा संस्कृत टीका में कहा है। भगवान आत्मा त्रिकाल, हों! निर्मलानन्द प्रभु है। यह शुद्धभाव है। दूसरा बोल ऐसा लिया कि पुण्य और पाप का भाव... प्रभु! वह जड़ है। क्यों?— कि चैतन्य का, आनन्द के अंश का उस राग में अभाव है। आहाहा! प्रभु! एक बार सुन तो सही! राग चाहे तो व्यवहाररत्नत्रय का, महाव्रत का हो परन्तु वह राग जड़ है। क्यों?—कि भगवान आत्मा चैतन्य विज्ञानघन है, ऐसा लिया है। दूसरा बोल लिया है। वहाँ भी भगवान कहा है। और (राग) जड़ क्यों?—भगवान ज्ञान और आनन्दस्वरूप प्रभु है, तो उसका अंश राग में नहीं है। सूर्य की किरण में सूर्य का प्रकाश आता है, तो आत्मा की किरण में निर्मलता होनी चाहिए। यह मलिनता है, वह जीव नहीं है; वह अजीव है-जड़ है। भगवान आत्मा... टीका में तीन बार भगवान... भगवान लिया है। आहाहा! वह तो विज्ञानघन है न, प्रभु! वह तो चैतन्य है और व्यवहार तो अचेतन-जड़ है।

तीसरा बोल। यह पुण्य-पाप का भाव, दया-दान-व्रतादि का भाव, वह दुःखरूप है। समझ में आया? समयसार की ७२वीं गाथा देख लेना। ७२ में है। फिर ७४ गाथा में बहुत विस्तार है। यह तो टीका में भगवान... इसलिए बात की। भगवान आत्मा... आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य तो ऐसा कहकर बुलाते हैं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि भगवान जो त्रिकाली स्वद्रव्य है, उसके अतिरिक्त **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण....** कारण दिया। **परद्रव्य होने के कारण....** जीवादि तत्त्व-पर्याय, हों! यह पर्याय की बात है। **सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण वास्तव में...** यथार्थ में, वास्तव में **उपादेय नहीं है।** आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय उपादेय नहीं है। केवलज्ञान है, उसकी तो यह बात नहीं है। यह तो साधक, जिसे नय है, उसकी बात है। तो नय तो श्रुतज्ञानी को होते हैं। निश्चय और व्यवहार तो श्रुतज्ञान का भाग है। श्रुतप्रमाण है, वह अवयवी है और नय—निश्चय और व्यवहार उसके अवयव हैं। यहाँ केवली की बात नहीं है, केवली तो पूर्ण हो गये, परन्तु निश्चयवाले को केवलज्ञान की पर्याय भी... आहाहा! बहिर्तत्त्व है, क्योंकि उसका लक्ष्य नहीं करना है। आहाहा! समझ में आया? इसलिए उपादेय नहीं है।

परद्रव्य होने के कारण वास्तव में उपादेय नहीं है। 'जीवादिसप्ततत्त्वजातं परद्रव्यत्वान्न ह्युपादेयम्।' यह संस्कृत है। आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं। मुनिराज, भावलिंगी सन्त। मुनि के भावलिंग के लक्षण क्या? तीव्र आनन्द का स्वसंवेदन जिसकी मोहर-छाप है, वह भावलिंग मुनि का है। द्रव्यलिंग हो, पंच महाव्रत के विकल्प हो, नग्नपना होता है तो ऐसा ही होता है, दूसरा नहीं होता। परन्तु यह वस्तुस्थिति नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो भावलिंग को भी... परमात्मप्रकाश में कहा है, भावलिंग है, वह आत्मा नहीं। त्रिकाली की बात लेनी है न?

श्रोता - .....

पूज्य गुरुदेवश्री - हाँ, यह आता है न! परमात्मप्रकाश है। सब देखा है। एक बार नहीं, अनेक बार देखा है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **परद्रव्य होने के कारण...** ऐसा कारण दिया। **वास्तव में उपादेय नहीं है।** आहाहा! अभी तो यहाँ व्यवहार, राग की क्रिया को सम्यग्दर्शन बिना उपादेय बनाना है। प्रभु! यह विरुद्ध है। तेरी वीतरागता उसमें उत्पन्न नहीं होगी। आहाहा! तू वीतरागस्वरूप ही है। वीतरागस्वरूप है, तो उसमें से वीतरागता उत्पन्न होगी। समझ में आया? जिनस्वरूप ही है, तो जिनस्वरूप परिणति में पर्याय प्रगट होगी। कोई चीज़ बाहर से नहीं आती। परन्तु यहाँ वहाँ तक कहा कि जिनस्वरूप जो त्रिकाल है, उसका अनुभव हुआ, वह भी पर्याय है और उसका आश्रय करनेयोग्य नहीं है, इस कारण उपादेय नहीं है। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है, भगवान! भाषा कोई संस्कृत, व्याकरण और कठिन नहीं है। चार पुस्तक

पढ़ा हो तो ख्याल में आ जाए। इसमें कोई व्याकरण और संस्कृत की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! अन्तर के संस्कार की आवश्यकता है। एक बात।

अब कहते हैं, **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि है,...** स्वयं मुनि है न? स्वयं मुनि है तो मुनि से बात ली है। मुनि कैसे होते हैं? अथवा मुनि कहते हैं कि हम कैसे हैं?—कि **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि है,... शिखामणि= शिखर के ऊपर का रत्न; चूड़ामणि; कलगी का रत्न।** वैराग्य, पर से उदास... उदास... उदास... जिसका उदासीन—उत्+आसन। उत्-आसन। उदासीन। दृष्टि ध्रुव में पड़ी है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि भी पर से उदास है, परन्तु अभी तीन कषाय का भाव है, परन्तु मुनि को तो तीन कषाय का अभाव है, संज्वलन का एक (कषाय) है, परन्तु उससे भी उदास है। यह सहज स्वाभाविक वैराग्य किसे होता है?—कि जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो, उसे वैराग्य होता है। ऐसे स्त्री, पुत्र, परिवार छोड़ दिया, इसलिए वैराग्य है, वह वैराग्य नहीं। पुण्य-पाप के अधिकार में तो ऐसा कहा है कि वैराग्य उसे कहते हैं कि जो पुण्य और पाप से विरक्त हो, और स्वभाव में रक्त हो। यह अस्ति और विरक्त हो, वह नास्ति, उसे वैराग्य कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है।

सहज वैराग्यरूपी महल... उसका शिखर। शिखर के ऊपर का रत्न, चूड़ामणि। ऐसे **परद्रव्य से जो पराङ्मुख है,...** इस ओर है। मुनिराज तो परद्रव्य से पराङ्मुख है। आहाहा! पहले परद्रव्य कहा न? **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण वास्तव में उपादेय नहीं है।** तो नास्ति से कहते हैं। अस्ति से तो कहा। उस **परद्रव्य से जो पराङ्मुख है,...** आहाहा! स्वद्रव्य में पर्याय के प्रकार-भेद पड़े, वे परद्रव्य होने के कारण उपादेय नहीं है। इसलिए परद्रव्य से पराङ्मुख है। धर्मात्मा सन्त सम्यग्दृष्टि है परन्तु वे निचली श्रेणी की अनुभूति है। यह (मुनि को) उत्कृष्ट अनुभूति है। समझ में आया? चौथे गुणस्थान में अनुभूति है, आनन्द का अंश है, परन्तु अभी जो दशा पंचम की होनी चाहिए, वह नहीं है और मुनि की होनी चाहिए, वह नहीं है। इसलिए उग्र वैरागी तो उन्हें गिनने में आया है। समझ में आया?

सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि... नीचे है। **शिखर के ऊपर का रत्न; चूड़ामणि; कलगी का रत्न।** कलगी होती है न, उसका रत्न। वे **परद्रव्य से जो पराङ्मुख है,...** आहाहा! पहले तो सात तत्त्वों को परद्रव्य कहा। गजब बात करते हैं। आहाहा! मुनिराज तो उन्हें कहते हैं... अरे! सम्यग्दृष्टि भी उसे कहते हैं... आहाहा! **परद्रव्य से**

पराङ्मुख है,... स्वद्रव्य से सन्मुख है और परद्रव्य से पराङ्मुख है। आहाहा! इतनी शर्तें हैं। इतनी शर्तों से सम्यग्दर्शन और मुनिपना होता है। आहाहा! समझ में आया?

सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि है, परद्रव्य से जो पराङ्मुख है,... आहाहा! उस संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय को यहाँ परद्रव्य कहकर, परद्रव्य से पराङ्मुख है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! सेठ! माणेकचन्दजी सेठ! पूछा था, पहले आये थे। मैंने पण्डितजी को पूछा था। पहले यहाँ आ गये थे। नाम याद नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! मुनिराज अथवा सम्यग्दृष्टि जीव परद्रव्य से पराङ्मुख है। आहाहा! यह शुद्धभाव अधिकार है न? शुद्धभाव जो त्रिकाल ध्रुव, उसका लक्ष्य कभी भी उसमें से छूटता नहीं। आहाहा! चाहे तो शुभराग हो, अशुभराग हो परन्तु ध्रुव के ध्यान के ध्येय से उसका लक्ष्य कभी छूटता नहीं। आहाहा! इस कारण यहाँ कहते हैं कि मुनि को विशेष वैराग्य, महावैराग्य है। आहाहा!

मुनिराज तो अन्तर प्रचुर आनन्द के वेदन में लवलीन स्थित हैं, अतीन्द्रिय आनन्द में। इसलिए परद्रव्य से तो पराङ्मुख है। आहाहा! यह ४९ (वीं गाथा) बोल आ गये न, भाई! अपने, ४९ गाथा। समयसार (की गाथा के छह) उनके छह बोल अव्यक्त के हैं, तो उसमें एक बोल में ऐसा कहा कि व्यक्त-अव्यक्त को... व्यक्त अर्थात् पर्याय और अव्यक्त अर्थात् द्रव्य, इनका एकसाथ ज्ञान होने पर भी व्यक्त को स्पर्श नहीं करता, इस कारण उसे अव्यक्त कहा जाता है। यह पाँचवाँ बोल है। छह बोल के व्याख्यान अभी चल गये हैं। अव्यक्त के छह बोल हैं। सात व्याख्यान हो गये। एक-एक का... एक सौ एक व्याख्यान बहुत सूक्ष्म हो गये हैं। पूरे सैंतालीस नय, सैंतालीस शक्ति, अलिंगग्रहण के बीस बोल, छह अव्यक्त (के बोल) और दस बोल श्रीमद् के। दस बोल कल पूरे हो गये। एक सौ एक व्याख्यानों की एकसाथ पुस्तक होगी। उसमें यह थोड़ा जीतूभाई (संकलनकार) ने यह माँगा कि थोड़ी ३८वीं गाथा वाँचो। कल हमने निश्चित किया।

परद्रव्य से जो पराङ्मुख है, पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित... आहाहा! समयसार की ३१वीं गाथा में आया न? **जो इंदिये जिणित्ता**—इसकी व्याख्या क्या? संस्कृत टीका में ऐसा लिया है। **जो इंदिये जिणित्ता।** ३१ गाथा। यह द्रव्येन्द्रिय जड़, भावेन्द्रिय—एक-एक विषय को जाननेवाली और भगवान की वाणी तथा स्त्री, कुटुम्ब और भगवान, वे इन्द्रिय हैं। तीनों को इन्द्रिय कहा है। संस्कृत टीका में अमृतचन्द्राचार्य ने तीनों को इन्द्रिय कहा है। अनीन्द्रिय भगवान आत्मा... आहाहा! जड़ इन्द्रिय, भाव इन्द्रिय—यह भी इन्द्रिय, एक-एक खण्ड-

अंश विषय को जानती है और इन्द्रिय का विषय है, उसे भी वहाँ इन्द्रिय कहा है। '**जो इंदिये जिणित्ता' जो इन्द्रिय को जीतकर...** अर्थात् तीनों—द्रव्येन्द्रियाँ, भावेन्द्रियाँ और इन्द्रिय के विषय, उन्हें जीतकर अर्थात् लक्ष्य छोड़कर, तीनों का लक्ष्य छोड़कर... आहाहा! **अधिक आत्मा को जानता है... 'जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।'** मूल पाठ यह है। **इन्द्रियों को जीतकर ज्ञानस्वभाव...** भगवान त्रिकाल चैतन्य ब्रह्म प्रभु! '**णाणसहावाधियं मुणदि आदं।**' आत्मा को उनसे भिन्न जानता है। आहाहा! उसे जितेन्द्रिय कहा जाता है। इन इन्द्रियों से विषय सेवन नहीं किया और शरीर से ब्रह्मचर्य पालन किया, वह इन्द्रियों को जीता नहीं। समझ में आया?

शरीर से ब्रह्मचर्य तो अनन्त बार पालन किया है। छहढाला में आता है न? 'मुनिवर धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पे (निज) आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' छहढाला में आता है। 'मुनिव्रत धार...' नग्न मुनि, दिगम्बर मुनि, पंच महाव्रत धारक, अट्ठाईस मूलगुण पालनेवाला... 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पे (निज) आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' इसका अर्थ क्या हुआ?—कि वह महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण के भाव हैं, वे दुःख है, विकल्प है, राग है, दुःख है। आत्मज्ञान बिना सुख नहीं प्राप्त किया। आहाहा! समझ में आया?

'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो...' और लिंगपाहुड़ में तो ऐसा कहा है कि ऐसा द्रव्यलिंग धारण करके कोई क्षेत्र बाकी नहीं होगा कि इसने अनन्त जन्म-मरण नहीं किये हों। द्रव्यलिंग धारण करने पर भी...! क्योंकि वह कोई चीज़ नहीं है। पंच महाव्रत के परिणाम—महाव्रत के विकल्प। अन्तर सम्यग्दर्शन, स्वद्रव्य के अनुभव बिना आनन्द नहीं आता और स्वद्रव्य के अनुभव बिना सब परद्रव्य है। पंच महाव्रत आदि तो दुःखरूप है। आहाहा! यहाँ मोक्षमार्ग हेय कहा, वह दुःखरूप बात नहीं है; वह तो आश्रय करनेयोग्य नहीं है, इसलिए कहा है। और पुण्य-पाप का भाव तो दुःखरूप है। महाव्रत के परिणाम आस्रव है। तत्त्वार्थसूत्र के छठवें अध्याय में (कहा है), आस्रव है, वह दुःख है। आहाहा! ऐसी बात है। लोगों को कठिन लगे और फिर आलोचना करे। यह करे, उन्हें नहीं जँचे, इसलिए करते हैं। इसमें कुछ नहीं। तू तो भगवान है न, प्रभु! हमें कहीं तेरे प्रति वैर-विरोध नहीं है। भगवान है। सत्वेषु मैत्री... परमात्मा। आत्मा तो साधर्मी है। आत्मा के स्वभावरूप से प्रत्येक जीव साधर्मी है। आहाहा! पर्याय में भूल है, वह तो एक समय की है। उसे निकाल डाल देगा! किसी के प्रति वैर-विरोध करना नहीं।

यहाँ यह कहते हैं, मुनि तो सहज पर से पराङ्मुख है। आहाहा! **पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित...** पाँच इन्द्रियों की ओर उन्हें लक्ष्य ही नहीं है। **देहमात्र जिसे परिग्रह है,...** मुनि को एक शरीर नहीं छूटता। इसके अतिरिक्त दूसरी कोई चीज़ नहीं होती। सच्चे सन्त भावलिंगी, उन्हें वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं होता; और वस्त्र का टुकड़ा रखकर मुनि है—ऐसा माने-मनावे 'निगोदं गच्छइं।' सूत्रपाहुड़ की १६वीं गाथा। निगोदं गच्छई मुनि। आहाहा! यह क्या अधिक कहा है? ककड़ी के चोर को फाँसी, ऐसा कहा है? ऐसा नहीं है। उसकी नवरत्न में भूल है। वस्त्र का टुकड़ा रहे तो उतना अजीव का संयोग रहा; वह संयोग मुनि को होता ही नहीं, तो अजीवतत्त्व की भूल (हुई) और वस्त्र-ग्रहण का विकल्प है, वह मुनि की योग्यता में होता ही नहीं, तो वह विकल्प के आस्रव की भूल है तथा ऐसा विकल्प होवे, तो (मुनि को तो) संवर विशेष होता है, तो विकल्पवाले को संवर मुनिपने की योग्यता नहीं है तो संवर की भूल है। इस प्रकार नव ही तत्त्वों की भूल इसमें से निकलती है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, मुनि तो एक... है? **देहमात्र जिसे परिग्रह है,...** आहाहा! **जो परम जिनयोगीश्वर हैं,...** परम जिनयोगीश्वर—इतने शब्द प्रयोग किये हैं। आहाहा! मुनि परमजिन-पर्याय में, हों! परम जिनयोगीश्वर। परम जिनस्वरूप भगवान में परमयोग जोड़ दिया है। बहुत उग्र द्रव्य का आश्रय ध्रुव का—शुद्धभाव का लिया है। **परम जिनयोगीश्वर हैं, स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है**—आहाहा! स्वद्रव्य जो परमपारिणामिकभाव, ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव, सामान्यभाव, एकरूपभाव को तीक्ष्ण बुद्धि से पकड़ा है। अन्दर में पकड़ लिया है और बहुत स्थिरता हुई है।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२

श्री नियमसार, गाथा - ३८, प्रवचन - ५३
दिनांक - ०१-०२-१९७८

ऐसा अमूर्त अतीन्द्रिय स्वभाववाला... आहाहा! भगवान आत्मा त्रिकाली, जो सम्यग्दर्शन का विषय है, कि जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, वह तो अतीन्द्रिय स्वभाववाला है। आहाहा! **अमूर्त अतीन्द्रिय स्वभाववाला, अतीन्द्रिय स्वभाववाला,...** अब इसका विशेष अर्थ करते हैं। शुद्ध है... शुद्ध है... पवित्र पिण्ड है। **सहज-परम-पारिणामिकभाव...** जिसे (समयसार की) छठवीं गाथा में ज्ञायक कहा; ग्यारहवीं गाथा में जिसे भूतार्थ कहा, उसे यहाँ परमपारिणामिकभाव कहा। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

परमपारिणामिकभाव अर्थात् जिसके चार भाव में उदय में तो कर्म का निमित्त आता है और तीन भावों में निमित्त के अभाव की अपेक्षा आती है ; इसलिए वे अपेक्षित भाव हुए। यह निरपेक्ष भाव त्रिकाल, उसे परमपारिणामिकभाव कहते हैं। समझ में आया? यह परमपारिणामिकभाव स्वाभाविक शुद्ध परमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है। आहाहा! जिसका परमपारिणामिक सहज स्वभाव अनादि-अनन्त शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव है, अस्तिरूप है, मौजूदगी चीज़ ऐसी है। पर्यायबुद्धि छोड़कर... क्यों?

पंचास्तिकाय में १७२ गाथा में लिया है कि चारों अनुयोगों का सार क्या? भाई! चरणानुयोग में ऐसा कहा और द्रव्यानुयोग में ऐसा कहा और कथानुयोग में ऐसा कहा। चारों अनुयोगों का तात्पर्य तो वीतरागता है। पंचास्तिकाय की १७२ गाथा। वीतरागता तात्पर्य है, तो वीतरागता किस प्रकार उत्पन्न होगी? तात्पर्य तो वीतरागता कहा। पंचास्तिकाय १७२ गाथा की टीका। समझ में आया? भाई! वीतरागता तात्पर्य। अब अपने यहाँ मिलान करना है न? आहाहा! चारों अनुयोगों का सार-तात्पर्य। वहाँ पाठ ऐसा है कि सूत्र अर्थात् प्रत्येक गाथा-तात्पर्य तो कहा, परन्तु सब शास्त्रों का तात्पर्य वीतरागता है। जैनदर्शन के सभी शास्त्रों का तात्पर्य वीतरागता है। वीतरागता तो पर्याय हुई; तो वीतरागता की पर्याय किस प्रकार उत्पन्न होगी? आहाहा! वह बात यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन, वह भी वीतरागी पर्याय है। त्रिकाली परमस्वभावभाव को ध्येय बनाकर,

ध्यान में ध्येय बनाकर; ध्येय किया, उसे ही उपादेय कहा। उसे उपादेय करके जो पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हुए, वह वीतरागी पर्याय है। इन चारों अनुयोगों का सार वीतरागी पर्याय है और वीतरागी पर्याय उत्पन्न होना, वह परमपारिणामिकभाव के आश्रय से उत्पन्न होती है। आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं। टीका तो गजब की टीका है। आहाहा! ऐसी टीका तो कहीं (है नहीं)। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि ने बनायी है। पाठ में है, उसे स्पष्ट किया है। जैसे गाय और भैंस के आँचल में होता है न? आँचल में दूध होता है न? तो अन्दर है, उसे निकालते हैं। ऐसे करके नहीं निकालते? यहाँ तो सब देखकर एक-एक बात निश्चित की है। भैंस और गाय को दुहते हैं न? तो ऐसे नहीं दुहते? यह और यह। यह खड्डा पड़ता है न? खड्डे को क्या कहते हैं? दूध ऐसे निकलता है। इसी प्रकार शास्त्र के शब्द में भाव भरे हैं, उन्हें पद्मप्रभमलधारिदेव ने तर्क करके टीका द्वारा खोल दिया है। उसमें भाव है, उन्हें बाहर निकाला है। समझ में आया? पाठ में है न?

'**जीवादिबहित्त्वं हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा।**' पाठ में है, उसका स्पष्टीकरण किया है। '**उवादेयमप्पणो अप्पा।**' यह '**अप्पणो अप्पा**' यह परमपारिणामिकभाव या कारणपरमात्मा, कारणजीव, ध्रुवजीव, नित्य जीव, अतीन्द्रियस्वभाववाला, सुसहज स्वभाववाला जीव, उसे यहाँ कारणपरमात्मा कहते हैं। आहाहा! जिसका स्वभाव है, देखो! **ऐसा कारणपरमात्मा,...** आहाहा! वीतरागता के सार में भी यह आया। चारों अनुयोगों का सार द्रव्य का आश्रय लेना है। आहाहा!

पूर्ण ब्रह्म प्रभु! '**पूर्णमिदं**' अन्यमति में '**पूर्णमिदं**' तो कहते हैं, परन्तु उन्हें पर्याय-वर्याय की खबर नहीं है। वे तो एकान्त (कहते हैं)। यहाँ तो '**पूर्णमिदं**' निर्णय करनेवाली पर्याय तो है। पर्याय है; पर्याय नहीं है -ऐसा नहीं है। (समयसार) ११वीं गाथा में तो ऐसा कहा है कि पर्याय अभूतार्थ है। व्यवहार अभूतार्थ है। व्यवहार अर्थात् वहाँ पर्याय है। पर्याय अभूतार्थ-झूठी है। वह तो झूठी क्यों कहा? अपना मुख्य प्रयोजन ध्रुव का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन हो, इस प्रयोजन की सिद्धि ध्रुव को मुख्य करके, निश्चय करके आश्रय करे तो प्रयोजन सिद्ध होता है। इस कारण मुख्य को निश्चय करके उपादेय कहा और पर्याय को गौण करके, व्यवहार करके हेय कहा। हेय कहा अथवा असत्यार्थ कहा। आहाहा! गजब बात है! दिगम्बर सन्तों के एक-एक शब्द में अनन्त आगम भरे हैं। श्रीमद् राजचन्द्र कहते हैं, ज्ञानी के वाक्य में और शब्द में—एक शब्द में अनन्त आगम-अनन्त आगम (भरे हैं)—ऐसा पाठ है। आहाहा! परन्तु यह तो सम्यग्दर्शन बिना इस बात का खिलना नहीं सकते। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं कि **ऐसा कारणपरमात्मा, वह वास्तव में 'आत्मा' है।** भाषा देखो!

पर्याय, वह आत्मा है, इसका निषेध किया। आहाहा! आया? क्या कहा?—कि जो **अनादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाला शुद्ध-सहज-परम-पारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है—ऐसा कारणपरमात्मा, वह वास्तव में 'आत्मा' है।** पर्याय को आत्मा (नहीं कहा)। निर्णय करनेवाली पर्याय को आत्मा नहीं कहा, क्योंकि निर्णय करती है, वह पर्याय है और मुख्य को निश्चय करके उसे (पर्याय को) अभूतार्थ कहा है। निर्णय पर्याय करती है।

दूसरे प्रकार से कहें तो नित्य का निर्णय अनित्य करता है। आहाहा! नित्य का निर्णय नित्य / ध्रुव कैसे करे? समझ में आया? यह नित्य का निर्णय अनित्य करता है। अनित्य कहो या पर्याय कहो। परन्तु पर्याय का विषय क्या आया? कारणपरमात्मा। आहाहा! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान-आत्मज्ञान का विषय वह **वास्तव में 'आत्मा' है।** उसे ही आत्मा कहा। **वास्तव में 'आत्मा' है।** पर्याय को व्यवहार कहकर अनात्मा कहा है। क्योंकि पर्याय को अभूतार्थ कहकर, असत्यार्थ कहकर, वह अनात्मा है - ऐसा कहा। व्यवहारनय का विषय, हों! और वस्तु जो त्रिकाल है, वही वास्तव में आत्मा है। परन्तु वह वास्तव में आत्मा है, इसका निर्णय सम्यग्दर्शन की पर्याय करती है और ज्ञान करता है, वह सम्यग्ज्ञान। उस ज्ञान में कारणपरमात्मा नहीं आता, उस श्रद्धा की पर्याय में कारणपरमात्मा नहीं आता, परन्तु कारणपरमात्मा का जितना सामर्थ्य है, उतना ज्ञान में और प्रतीति में आ जाता है। समझ में आया? आहाहा! इनकी शैली ञ्चया गंभीर! आहाहा!

दूसरी एक बात। प्रत्येक वस्तु क्रमबद्ध है। जिस समय पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, वह उत्पन्न होगी? समझ में आया? वहाँ पुरुषार्थ कहाँ रहा? यह प्रश्न हमारे (संवत्) १९७२ के वर्ष में उठा था। ६० वर्ष पहले। क्रमबद्ध तो है। सर्वविशुद्ध अधिकार में पहली गाथा।.. जिस समय में जो पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, उस समय में ही वह उत्पन्न होगी—ऐसा अनादि-अनन्त पर्याय का क्रमबद्ध (स्वभाव) है। आयतसमुदाय - ऐसा कहा है। प्रवचनसार ९२-९३ गाथा है। आयतसमुदाय—ऐसे एक के बाद एक.. एक के बाद एक... एक के बाद एक... जैसे हार में मोती होते हैं, मोती, वे एक के बाद एक होते हैं, आड़े-टेढ़े नहीं होते। इसी प्रकार भगवान आत्मा ध्रुव, कारणपरमात्मा, उसकी पर्याय तो क्रमसर एक के बाद एक, एक के बाद एक जो होनेवाली है, वही होगी। आहाहा! परन्तु इस क्रमबद्ध का तात्पर्य क्या? तात्पर्य वीतरागता है। और वीतरागता किस प्रकार उत्पन्न होती है? वह अन्दर आ गया। क्रमबद्ध में भी द्रव्य का आश्रय लेना। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म है, भगवान! बात तो बहुत गम्भीर है। आहाहा!

प्रवचनसार की १०१ गाथा में तो ऐसा कहा, उत्पाद के आश्रय उत्पाद है; व्यय के

आश्रय व्यय है; ध्रुव के आश्रय ध्रुव है। पर के आश्रय तो नहीं। क्रमबद्ध है, परन्तु जो उत्पाद के काल में उत्पाद होता है, उस उत्पाद में व्यय की अपेक्षा नहीं है; व्यय में उत्पाद की अपेक्षा नहीं है; ध्रुव में उत्पाद की अपेक्षा नहीं है। उत्पाद, उत्पाद के आश्रय है। सत् है न? तीनों सत् है न? समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात है। मस्तिष्क में इतनी सब आते-आते कठिन पड़ जाये। समझ में आया?

सैंतालीस शक्ति गुण है न? उसमें एक 'उत्पाद-व्यय-ध्रुव' नाम की शक्ति है। समयसार की ४७ शक्तियों में उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं, ऐसा एक आत्मा में गुण है। जैसे ज्ञानगुण है, आनन्दगुण है, शान्तिगुण है। शान्ति अर्थात् वीतरागता; ऐसा एक उत्पाद-व्यय-ध्रुव नाम का गुण है। उस गुण के कारण नयी पर्याय क्रमसर में आनेवाली आती है, पूर्व की पर्याय का व्यय है, ध्रुव है; परन्तु तीनों में से किसी एक की अपेक्षा नहीं है। तीनों सत् हैं, इसलिए अहेतुक हैं; इसलिए किसी की अपेक्षा नहीं है। ऐसा प्रवचनसार की १०१ वीं गाथा में कहा है। आहाहा! गजब बात है! अब लोगों को कहाँ इतना सब समझ में आये?

अब, इसमें दूसरी प्रवचनसार की १०२ गाथा। वहाँ ऐसा कहा कि उसका जन्मक्षण है। यह तो तत्त्वार्थसूत्र में आता है न '**उत्पादव्यय-ध्रुवयुक्तं सत्**', '**सत् द्रव्य लक्षणम्**' आता है न? तो यहाँ तो उत्पाद-व्यय-ध्रुव नाम का गुण अन्दर में है। उस गुण के कारण समय-समय में जो पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, वह उत्पन्न होगी; तो क्रमबद्ध भी हो गया और निमित्त से होता नहीं - ऐसा भी हो गया। निमित्त होता है, निमित्त चीज़ है।

यह तो अभी कैलाशचन्दजी ने जैनसंदेश में दो प्रश्न (बातें) स्वीकार किये हैं। क्रमबद्ध है और निमित्त है अवश्य। सोनगढ़वाले निमित्त मानते हैं, परन्तु निमित्त से पर मैं होता है - ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! ये दो बातें स्वीकार की हैं। जैनसंदेश में सात-आठ महीने पहले आया था। उसकी भी चर्चा वर्णीजी के साथ हुई थी। मिथ्यात्व जो होता है... पंचास्तिकाय की ६२वीं गाथा। उस दिन चर्चा हुई थी। २१ वर्ष हुए। पंचास्तिकाय की ६२वीं गाथा। उसमें ऐसा कहा है कि विकार जो होता है, वह अपने षट्कारक से होता है, उसे पर कारक की अपेक्षा नहीं है। सेठजी! बराबर समझ में आता है? आहाहा! क्या कहा?

क्रमबद्ध में जो पर्याय स्वयं से उत्पन्न होती है, उसमें उत्पाद की कोई अपेक्षा नहीं। विकार की (पर्याय), हों! विकार जो होता है मिथ्यात्व का, राग का, द्वेष का, वह एक समय की पर्याय में षट्कारक से होता है, उसे द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं, उसे निमित्त की अपेक्षा नहीं। निमित्त हो, परन्तु उसकी अपेक्षा से, उसके कारण से—कारक से यहाँ विकार उत्पन्न

होता है, ऐसा नहीं। ६२वीं गाथा। बहुत चर्चा हुई थी। इन्दौरवाले बंशीधरजी थे, परन्तु उन लोगों को नहीं जँची। यह तो अभिन्न की बात है। परन्तु अभिन्न का अर्थ क्या? अपनी की पर्याय अपने से होती है, इसका नाम अभिन्न। पर से नहीं। आहाहा!

यहाँ तो विकारी पर्याय हो या अविकारी पर्याय हो, वह अपनी अपेक्षा से उत्पन्न होती है। एक बात। उसे द्रव्य-गुण और दूसरे कारक की अपेक्षा नहीं है। दूसरी बात। तीसरी (बात), यह जो पर्याय उत्पन्न होती है, वह षट्कारक से उत्पन्न होती है। षट्कारक की शक्ति ध्रुव में है। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण—ये छह गुण हैं। सब में गुण है। परमाणु में भी है तथा छहों द्रव्यों में है। कर्ता नाम का गुण, कर्म-कार्य, करण-साधन, सम्प्रदान-रखना, अपादान-उससे, अधिकरण-आधार। समझ में आया? यहाँ उसके आधार से यह है - ऐसा नहीं है। इस परमाणु में षट्कारक की शक्ति पड़ी है। आहाहा! तो परमाणु में तो शक्ति ध्रुव है, परन्तु जो पर्याय यहाँ रही है, वह पर्याय अपने षट्कारक से उत्पन्न होकर रही है। आहाहा! यह तो कौन माने? पागल ही कहे न?

एक बार नहीं कहा था कि पैर चलते हैं, वे जमीन को स्पर्श नहीं करते। आत्मा से पैर चलते ही नहीं। अरे! प्रभु! समझ में आया? क्योंकि परमाणु एक है, उसमें अनन्त गुण है। उसमें कर्ता, कर्म, करण-साधन आदि छह कारक पड़े हैं, वे तो ध्रुव हैं, परन्तु एक समय की पर्याय में षट्कारक हैं। छहों द्रव्यों में। आहाहा! यह बात वीतराग के अतिरिक्त और अन्तर्दृष्टि के अतिरिक्त यह बात अन्दर बैठे, ऐसी नहीं है, बापू! सर्वज्ञ परमात्मा के अतिरिक्त यह बात किसी ने की नहीं, कहीं है नहीं; और सर्वज्ञस्वभाव अपना है, इसलिए सर्वज्ञ पर्याय उत्पन्न हुई है, तो सर्वज्ञस्वभाव, जिसे अन्तर्दृष्टि में उपादेय कहा; उस कारणपरमात्मा को उपादेय कहो या सर्वज्ञस्वभाव उपादेय कहो। आहाहा! समझ में आया? यह पर्याय, छहों द्रव्य की एक समय की पर्याय। कर्ता भी पर्याय, पर्याय का कार्य पर्याय, पर्याय का अपादान पर्याय, पर्याय का सम्प्रदाय पर्याय, स्वयं की और स्वयं रही, पर्याय का अपादान, पर्याय से पर्याय हुई, पर्याय के आधार से पर्याय रही। आहाहा! गजब बात है! दुनिया तो पागल कहे। यह जैनधर्म, वह कैसा? भगवान! बापू! जैनधर्म नहीं, वस्तु की स्थिति ऐसी है। समझ में आया?

प्रत्येक द्रव्य का द्रव्य-गुण तो ध्रुव है, परन्तु उसकी एक समय की पर्याय में षट्कारक का परिणमन स्वतन्त्र (होता है)। क्योंकि पर्याय भी सत् है। इस अधिकार में कहा है कि द्रव्य सत्, गुण सत्, पर्याय सत्, तीनों अहेतु हैं, उन्हें हेतु नहीं है। आहाहा! बाद में अपेक्षा से बात करो, वह निमित्त से है। भाई! इष्टोपदेश की ३५वीं गाथा में दृष्टान्त दिया है न, इष्टोपदेश, प्रिय

उपदेश, सत्य उपदेश उसे कहते हैं कि प्रत्येक पदार्थ की पर्याय धर्मास्तिकायवत् है, ३५वीं गाथा में ऐसा कहा है। प्रत्येक पदार्थ की पर्याय... धर्मास्तिकायवत् क्यों कहा? कि अपनी गति (गमन) के परिणाम स्वयं से करता है तो धर्मास्ति निमित्त है, बस! परन्तु निमित्त से यहाँ गति करता है—ऐसा नहीं है। समझ में आया? और उस ३५वीं गाथा में कहा है - सब इसमें ले लेना। धर्मास्तिकायवत्। पवन से ध्वजा हिलती है, ध्वजा। तो कहते हैं कि पवन ने ध्वजा को स्पर्श भी नहीं किया है।

यहाँ तो पर्याय को सिद्ध करना है न? वह सम्यग्दर्शन पर्याय, इसका आश्रय त्रिकाली भगवान, परन्तु वह पर्याय क्रमबद्ध में उसका आश्रय ले तो उत्पन्न होती है और वह पर्याय उत्पन्न होने में कर्म के अभाव की अपेक्षा नहीं है, पूर्व पर्याय की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? द्रव्य-गुण का लक्ष्य करती है; इसलिए आश्रय कहा; परन्तु लक्ष्य करती है, वह पर्याय द्रव्य के कारण से नहीं। वह पर्याय अपनी सत्ता के स्वभाव के कारण से स्व के ऊपर लक्ष्य करती है। आहाहा! यह पर्याय का सामर्थ्य है। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? तो वहाँ षट्कारक से विकार उत्पन्न होता है, इसका निषेध किया है और यहाँ तो यह सब कहते हैं। हम तो यह बात (संवत्) १९७१ के वर्ष से करते हैं। १९७१ के वर्ष में व्याख्यान में पहली बार बात रखी थी। 'लाठी', खलबलाहट हो गयी। अरे! कर्म बिना विकार होता है? कर्म बिना विकार होता है? कहा, कर्म के बिना विकार होता है। विकार का षट्कारक परिणमन स्व से है। षट्कारण परिणमन, उस दिन इतना सब नहीं था। यह तो १९७१ के वर्ष की बात है। कितने वर्ष हुए? ६३ वर्ष पहले लाठी में चातुर्मास था, वहाँ ऐसा कहा था। विकार होता है... आहाहा! पर की अपेक्षा बिना विकार होता है। समझ में आया? खलबलाहट! कर्म से विकार नहीं होता। समझ में आया?

दो बातें कहीं थी। उस समय स्पष्टीकरण किया था। गुरु बैठे थे, गुरु सुनते थे। यह क्या कहते हैं? यह क्या कहते हैं? सुनते थे। बहुत भद्रिक थे, शान्त थे। पाँच-पाँच हजार लोगों में व्याख्यान देते थे, परन्तु नजर ऊँची न करे, ऐसे पक्के ब्रह्मचारी थे। दृष्टि तो थी ही कहाँ! यह वस्तु नहीं थी। परन्तु ऐसे शान्त थे। हम यह बात कहते थे, वे सामने बैठकर सुनते थे। यह क्या कहते हैं? कर्म बिना विकार होता है? कर्म परद्रव्य है। विकार अपनी पर्याय में स्वतन्त्र है। समझ में आया? ऐसा जब निर्णय हो, तब उसकी पर्याय द्रव्य पर आश्रय करती है, क्योंकि विकार मेरे कारण से, मुझसे हुआ है, तो विकार है, वह तो दुःख है। आहाहा! समझ में आया?

तो जहाँ उससे दृष्टि पलटती है, तब कारणपरमात्मा का आश्रय लेकर सम्यक् दृष्टि

पलटती है। आहाहा! पूरा सार आ गया। वीतरागता का तात्पर्य भी आ गया, क्रमबद्ध भी आ गया, निमित्त से नहीं होता - यह भी आ गया। निमित्त है। प्रत्येक पर्याय को उचित निमित्त होता ही है। उचित, हों! उचित अर्थ क्यों कहा? - कि उचित—उसके योग्य हो, ऐसा निमित्त, परन्तु निमित्त से होता नहीं। आहाहा! कौन माने यह?

ध्वजा हिलती है, ध्वजा। ध्वजा कहते हैं न? वह पवन से नहीं हिलती, ऐसा कहते हैं।ध्वजा के परमाणु की पर्याय उस समय में अपने षट्कारक के परिणमन से ऐसी होती है। पवन को स्पर्श नहीं करती। परन्तु निमित्त कहा जाता है। निमित्त को स्पर्श भी नहीं किया और स्वयं से परिणमन करती है। भगवान! ऐसा भगवान आत्मा! अपनी पर्याय में पर की कोई अपेक्षा नहीं। विकार की या अविकार की। इस अविकारी पर्याय में पर की अपेक्षा नहीं। सर्व भगवान कारणपरमात्मा नित्यानन्द प्रभु, वह मुझे उपादेय है। वह मुझे उपादेय है - ऐसा भेद भी वहाँ नहीं है। परन्तु कथन क्या करना?

सम्यग्दर्शन में... यह कहा न? **वास्तव में 'आत्मा' है।** आहाहा! यह आत्मा ऐसा। नित्य, वह आत्मा। **अति-आसन्न भव्यजीवों को...** आहाहा! जिसके अति निकट संसार आया, अल्प काल में मुक्ति होकर केवलज्ञान होगा ही होगा। ऐसे **अति-आसन्न भव्यजीवों को ऐसे निजपरमात्मा के अतिरिक्त...** ऐसा निज परमात्मा। ध्रुव जो अतीन्द्रिय स्वभाव से सहित त्रिकाली प्रभु! ऐसा निज परमात्मा। पर परमात्मा नहीं। **निजपरमात्मा के अतिरिक्त (अन्य) कुछ उपादेय नहीं है।** आहाहा! है? आहाहा! वह एक ही उपादेय है। आहाहा! वहाँ तो ऐसी विकृतदशा नहीं। समझ में आया?

(संवत्) १९८५ के वर्ष में सम्प्रदाय में चर्चा हुई थी। हम सम्प्रदाय में भले थे, परन्तु हमारी कोई सम्प्रदाय की दृष्टि नहीं थी, तो १९८५ के वर्ष में बहुत सभा थी। हमारी तो बहुत प्रतिष्ठा थी न? पन्द्रह सौ-पन्द्रह सौ लोग तो व्याख्यान में (आते थे)। उपाश्रय में लोग समाते नहीं, गली में (खड़े रहते)। पहले से प्रतिष्ठा थी, हम तो ब्रह्मचर्य थे। भले हमारा जन्म उमराला में (हुआ), परन्तु हमारी दुकान पालेज में है न? तो पालेज में हमारी प्रसिद्धि बहुत थी। पैसे थोड़े थे, परन्तु लोग 'पालेज' वाला कहते थे। उसमें 'पालेज' वाले कानजीभाई दीक्षा लेते हैं। आहाहा!

(संवत्) १९८५ के वर्ष में व्याख्यान में थोड़ा कहा। सेठिया बैठे थे। पचास-पचास हजार की आमदनीवाले। कहा, जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह भाव धर्म नहीं है। पण्डितजी! भाव शुभ है न? उदयभाव है। सत्य और सरल सीधी भाषा में कहें तो अधर्म है।

यह तो १९८५ की बात है। कितने वर्ष हुए? १५+४+३०=४९। बड़ी सभा थी। सेठिया बैठे थे। उपाश्रय बड़ा (था), (लोग) समाते नहीं थे। बाहर गलियाँ भरी हुई थी। पहले से हमारी प्रसिद्धि बड़ी थी न! दीक्षा लेते समय। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव उदयभाव, विकार है; धर्म नहीं। धर्म से बन्ध नहीं होता; जिससे बन्ध हो, वह धर्म नहीं है। बराबर है? सेठजी! यह तो सत्य है, प्रभु! आहाहा! यह तो अन्दर से बात आयी थी।

एक दूसरी बात की थी। पंच महाव्रत, वह आस्रव है। ४९ वर्ष पहले, सभा में पन्द्रह सौ लोग। पंच महाव्रत, वह आस्रव है - राग है, बन्ध का कारण है। वह संवर-निर्जरा नहीं है। खलबलाहट हो गया था। प्रभु! मार्ग तो यह है, भाई! आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो यह कहा, देखो! कि ऐसा भाव। यह आत्मा... वास्तव में... वास्तव में शब्द पड़ा है न? **कारणपरमात्मा, वह वास्तव में 'आत्मा' है।** आहाहा! यह तो एक-एक शब्द की कीमत है। समझ में आया? **अति-आसन्न भव्यजीवों को...** आहाहा! **ऐसे निजपरमात्मा के अतिरिक्त...** परमात्मा से भिन्न पर्याय या राग या निमित्त कोई उपादेय नहीं है। आहाहा!

श्रोता - इसमें अपवास करना पड़े न?

पूज्य गुरुदेवश्री - कौन करे अपवास? उपवास की व्याख्या सूक्ष्म है। उप अर्थात् आत्मा आनन्दस्वरूप के समीप में बसना, वह उपवास है। व्याख्या दूसरी है, भाई! यह जो अपवास करते हैं, वह तो अप-वास है। राग की ममता करे, वह तो बुरा वास है। आहाहा! ऐसा मार्ग, प्रभु! कठिन तो पड़ता है। क्या हो? षोड्शकारणभावना भी बन्ध का कारण, उसे आस्रव कहना और अधर्म कहना। आहाहा! होता है, ज्ञानी को आता है, जब तक वीतरागता न हो, तब तक अनुभवदृष्टि होने पर भी, वीतरागता और यह कारणपरमात्मा उपादेय होने पर भी, पूर्ण वीतरागता न हो, वहाँ ऐसा शुभभाव आता है, परन्तु है हेय। यहाँ कहा न? **कुछ उपादेय नहीं है।** आहाहा!

श्रोता - कारणपरमात्मा पर्याय को कर देता है?

पूज्य गुरुदेवश्री - नहीं... नहीं... नहीं। यह तो पहले कहा न? पर्याय स्वयं ही परमात्मा के आदर, उपादेय में कर्ता है। पर्याय में षट्कारक पड़े हैं। यह द्रव्य है, वह कोई पर्याय (देता नहीं)। प्रभु! बहुत सूक्ष्म...! क्या हो? मार्ग तो यह है। अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली, वर्तमान त्रिलोकनाथ महाविदेह में विराजते हैं, वे भी यही कहते हैं। इन्द्र की सभा और गणधरों की सभा के बीच यह कहते हैं। भाई! यह मार्ग ऐसा कोई सूक्ष्म है। आहाहा!

भाई ने पूछा कि पर्याय को द्रव्य ने कर दिया या नहीं? ऐसा कहते हैं। क्या कहा?

भाषा समझे ? जो सम्यग्दर्शन पर्याय हुई, तो द्रव्य ने मदद करके द्रव्य से पर्याय कर्ता हुई या नहीं ? - नहीं। पर्याय में-परिणमन में षट्कारक हैं। द्रव्य में षट्कारक है, वे तो ध्रुवरूप हैं। कारणपरमात्मा—वास्तविक आत्मा जो कहा, उसमें षट्कारक गुण पड़े हैं। जैसे ज्ञान, दर्शन, आनन्द (आदि) ४७ शक्तियों का वर्णन किया न ? ऐसी अनन्त शक्तियाँ हैं। उसमें षट्कारक शक्ति पड़ी है, परन्तु वह तो ध्रुव है। वह पलटती नहीं है। आहाहा! पहले कहा न ? उत्पाद के आश्रय से उत्पाद होता है। यह तो प्रवचनसार की १०१ गाथा में पहले कहा। आहाहा! भाषा तो व्यवहार समझ में आवे ऐसी आती है, इसलिए आती है कि द्रव्य का आश्रय किया तो पर्याय हुई; परन्तु इसका अर्थ ऐसा है, प्रभु! आश्रय किसने किया ? - पर्याय ने। पर्याय की ताकत से आश्रय किया या द्रव्य की ताकत से आश्रय किया ?

श्रोता - द्रव्य का सहारा बिल्कुल नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री - ऐसी बातें हैं, प्रभु! आहाहा! क्या कहा ?

यहाँ कहा कि वह वास्तव में उपादेय है।—यह कहा न ? आहाहा! आहा! परमात्मा, वही आत्मा और वही उपादेय है। आहाहा! परन्तु जिसने पर्याय में उपादेय किया... आहाहा! वह पर्याय कहीं द्रव्य ने नहीं दी। द्रव्य तो त्रिकाल है। द्रव्य दे, तो द्रव्य त्रिकाल है तो क्यों नहीं देता ? समझ में आया ?

श्रोता - पर्याय तो द्रव्य की शरण में गयी, तो द्रव्य कृपा नहीं करता ?

पूज्य गुरुदेवश्री - यह शरण लेने का अर्थ क्या ? यह कहते हैं न, ऐसे लक्ष्य करती है, वह पर्याय की ताकत से लक्ष्य करती है; द्रव्य की ताकत से नहीं। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा!

एक बात ख्याल में आयी थी। चली गयी। कुछ दूसरी अन्दर से आयी थी। हाँ, याद आया। योगीन्द्रदेव, भाई! योगसार। योगसार है न ? उसमें लिया है कि पर्याय का दाता आत्मा नहीं है; ऐसा पाठ है। 'अमितगति आचार्य'। अमितगति आचार्य का दोहा है। यहाँ तो सब शास्त्र चले हैं न; और सब व्याख्यान भी हुए हैं। पर्याय का दाता आत्मा नहीं। ऐई! नवलचन्दभाई! यहाँ तो ४३ वर्ष हुए। अनेक प्रकार की बहुत बातें चली हैं। उसमें पाठ है। पर्याय की दाता आत्मा नहीं है। निमित्त से तो नहीं होती, परन्तु आत्मा दाता नहीं है। यह तो कोई बात है। क्योंकि पर्याय सत् है और सत् है, उसे किसी का हेतु नहीं है, किसी की अपेक्षा नहीं है, इसका नाम सत् कहा जाता है। सम्यग्दर्शन की पर्याय वास्तव में आत्मा का अवलम्बन करती है, वह अपने सामर्थ्य से करती है। द्रव्य का सामर्थ्य है भले, परन्तु उस पर्याय के सामर्थ्य में

द्रव्य के सामर्थ्य की श्रद्धा आ जाती है। द्रव्य में जितना सामर्थ्य है, उतना पर्याय में ज्ञान आ जाता है। समझ में आया? परन्तु इस पर्याय के सामर्थ्य से पर्याय ने स्व का आश्रय लिया है। आहाहा! यह तो बहुत सूक्ष्म बात है। यह गाथा ही ऐसी है।

श्रोता - जो कोई आश्रय न दे, उसका आश्रय...

पूज्य गुरुदेवश्री - आश्रय का अर्थ क्या? यह तो भाई अपने 'न्यालचन्दभाई' हो गये न, वे आश्रय में जरा बहुत विचार करते थे। 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' 'सोगानी'जी। उन्हें यहाँ सम्यग्दर्शन हुआ था, यहाँ अनुभव हुआ था। आये थे। बाबा और योगी की तथा जैनशास्त्र का बहुत परिचय था, फिर यहाँ आये। इतना कहा, प्रभु! यह राग का कण उत्पन्न होता है, उससे प्रभु भिन्न है। यहाँ आये। बहुत वाँचन था, बहुत पैसेवाले थे, लाखोंपति। कलकत्ता (में रहते थे)। लड़के आते हैं। यहाँ अपने भोजनशाला (समिति) है न? वहाँ गये। विचार की धुन चढ़ गयी। धुन चढ़ते... चढ़ते... चढ़ते... शाम से सवेरे तक। भेद करते... करते... करते... सवेरा होने से पहले अनुभव-सम्यग्दर्शन हो गया। बहुत शक्ति थी, बहुत ताकत थी।

सम्यग्दर्शन में कोई विद्वता की आवश्यकता नहीं है। गृहस्थाश्रम में भी होता है। नारकी में भी होता है न? सातवें नरक में मिथ्यात्व लेकर जाता है और मिथ्यात्व लेकर निकलता है। बीच में समकित (किसी जीव को) होता है। आहाहा! सातवें नरक में समकित लेकर नहीं जाते। मिथ्यात्व लेकर जाते हैं और निकलते हैं, तब समकित नहीं रहता, तो भी अन्दर में समकित उत्पन्न हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? इतने प्रतिकूल संयोग, उसे छूटता नहीं। आहाहा! अपनी पर्याय में अपना परमात्मा—आत्मा का आश्रय उपादेय करके लिया, उस पर्याय में कोई पर की अपेक्षा नहीं। समझ में आया? और सम्यग्दृष्टि को... है?

ऐसे निजपरमात्मा के अतिरिक्त (अन्य)... है न? अतिरिक्त। व्यवहार का नहीं, पर्याय का नहीं, राग का नहीं, निमित्त का नहीं। आहाहा! **अतिरिक्त (अन्य) कुछ उपादेय नहीं है।** है? कठिन लगे, प्रभु! सत्य तो यह है, भाई! मार्ग तो यह है, प्रभु! यह कोई महंत होने की (बात) नहीं है, बापू! दुनिया में दिखाव करना कि हम विद्वान हैं, हम त्यागी हैं। वास्तविक त्याग तो मिथ्यात्व का त्याग, वह त्याग है। यह (कारणपरमात्मा) उपादेय होता है तो मिथ्यात्व का त्याग होता है। दूसरे प्रकार से कहें तो मिथ्यात्व का व्यय होता है, समकित की उत्पत्ति होती है। उस उत्पत्ति में आत्मा उपादेय है। समझ में आया? जरा सूक्ष्म बात है। यहाँ तक आ गया। अब इसका कलश कहेंगे। नीचे कलश है न?

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

३ **श्री समयसार कलश टीका, कलश - २१५, प्रवचन - २०७**
दिनांक - ०२-११-१९६५

यह सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार, कलश टीका का २१५ श्लोक। वैसे (इस अधिकार का) २३। देखो! दृष्टान्त दिया न? अग्नि का-अग्नि का। भावार्थ से फिर से लेते हैं। इसके साथ मेल है उतना। भावार्थ है न बीच में?

भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार अग्नि का दाहक स्वभाव है,... अग्नि का दूसरे को जलाने का स्वभाव है। **समस्त दाह्य वस्तु को जलाती है।** जलनेयोग्य जितने पदार्थ है, उन्हें अग्नि जलाती है। **जलाती हुई अग्नि अपने शुद्धस्वरूप है।** अग्नि दूसरों को जलाती हुई अग्नि, अग्नि के शुद्ध स्वरूप रही है। अग्नि कोई पररूप हुई नहीं। कहो, बराबर होगा यह? अग्नि, कोयले को जलाते हुए अग्नि, अग्निरूप रही है; कोयलेरूप-पररूप हुई नहीं। लकड़ी को जलाते हुए, पत्रों को जलाते हुए अग्नि तो अग्निरूप से शुद्ध रही है; उसका-अग्नि का दूसरा रूप हुआ नहीं है।

अग्नि का ऐसा ही स्वभाव है। अग्नि का ऐसा ही स्वभाव है। **उसी प्रकार जीव ज्ञानस्वरूप है,...** जीव ज्ञानस्वरूप है। **समस्त ज्ञेय को जानता है।** सब जाननेयोग्य पदार्थ को आत्मा जानता है। **जानता हुआ अपने स्वरूप है...** शरीर, कर्म, राग आदि को जानने पर भी आत्मा ज्ञानस्वरूप रहा है। ज्ञानस्वरूप रहकर दूसरे को जानता है। ऐसा आत्मा का ज्ञान सहजस्वभाव है। कहो, समझ में आया? **जानता हुआ अपने स्वरूप है - ऐसा वस्तु का स्वभाव है।** पर को जानने से ज्ञान पररूप हुआ नहीं। यह ज्ञान का स्वभाव स्व-पर प्रकाशक अपने में रहकर पर को जानना, यह कहना भी व्यवहार है, परन्तु पर का और स्व का ज्ञान, वह अपनी अस्ति में अपने से परिणम रहा है। ऐसा आत्मा का स्वभाव है।

ज्ञेय के जानपना से जीव का अशुद्धपना मानता है, सो मत मानो,... परवस्तु को जानने से ज्ञान में मलिनता हो गयी, ऐसा न जानो, ऐसा है नहीं। समझ में आया? ज्ञान स्व को जानते हुए पर को जाने, इससे ज्ञान में अशुद्धता आयी या ज्ञान दुःखरूप हो गया - ऐसा नहीं है। समझ में आया? क्योंकि आत्मा में आनन्दस्वभाव है। जैसे ज्ञान स्वभाव है, वैसे आत्मा

में आनन्दस्वभाव है, तो आनन्द के साथ रहा हुआ ज्ञान पर को जानने पर दु:खरूप ज्ञान होता है – ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

श्रोता : आनन्दस्वरूप में रहकर ही जानता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द में और ज्ञान में रहकर ही जानता है, बस ऐसा। बात यह है। अपना आनन्द आत्मा में है। वह आनन्दमय है, ऐसे ज्ञानमय है। ऐसे आत्मा को पर को जानने से आत्मा की दशा में ज्ञान में मलिनपना अर्थात् दु:खरूप हो जाता है – ऐसा नहीं है। समझ में आया?

आत्मा वस्तु है, उसे कब आत्मा माना कहलाये? – कि मेरा आत्मा स्व और पर को जानने के सामर्थ्यवाला है और मैं आनन्दस्वरूप हूँ। मैं आनन्दरूप हूँ। मेरा आनन्द पर में है और पर से है, यह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। समझ में आया? यहाँ तो ज्ञान से बात ली है कि ऐसे पर प्रकाशता है, वहाँ दु:खरूप हो जाता है? कहाँ से हो? यह ज्ञान स्व द्रव्य को जानते, आनन्द को जानते, ज्ञान स्व-पर के प्रकाशक से परिणमता, वह परिणमते उसमें मलिन या दु:खरूप नहीं होता। यह ज्ञान पर को जानते हुए भी स्व को साथ में जाने, इससे ज्ञान-आनन्दरूप परिणमते, आनन्दरूप परिणमते शुद्धरूप ज्ञान रहता है। पोपटभाई! आहाहा!

क्योंकि ज्ञान, आनन्दस्वरूप है। यह ज्ञान अर्थात् कि आत्मा। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। उसे आत्मा माना कब कहलाये? – कि मेरा आनन्द मुझमें और मेरा ज्ञान स्व-पर को जानना, वह मुझमें (है)। स्व-पर को जानना, वह ज्ञान मेरा मुझमें है, ऐसा जब माना, तब आनन्द भी मुझमें, ऐसा आनन्द के साथ परिणमन होता स्व-पर का जानना, वह दु:खरूप नहीं हुआ। परन्तु वह तो आनन्दरूप हुआ, अर्थात् शुद्धरूप हुआ। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा?

जानता हुआ अपने स्वरूप है – ऐसा वस्तु का स्वभाव है। भगवान आत्मा – अपना स्वभाव ज्ञान है। उस ज्ञान को ज्ञान जानने पर और वह ज्ञान पर को जानने पर, देखो! यह वस्तु, अलौकिक की बात है यह। आहाहा! सर्वविशुद्धज्ञान है न? सर्वविशुद्धज्ञान। अभी, हों! इसकी मान्यता में अन्तर है। यह इसने अन्तर किया है।

सम्यग्दर्शन में... सम्यग्दर्शन में अर्थात् आत्मा में आनन्द और ज्ञान स्व-परप्रकाशक, ऐसी प्रतीति के भान में जिसने मति को आत्मा में स्थापित की है – ऐसा अन्त में आयेगा। अर्थात् कि यह आत्मा आनन्द है और यह आत्मा स्व और पर को अपने में रहकर जानने में

मलिन नहीं होता, परन्तु आनन्दरूप होता है। आहाहा! समझ में आया? जगत को बात बहुत सूक्ष्म पड़ती है। वास्तविक क्या है? यह चैतन्य स्वयं आनन्द और ज्ञान की मूर्ति है। इसमें आनन्द और ज्ञान में स्व-पर का जानना हुआ, यह तो ज्ञान का ऐसा स्वरूप ही है और ऐसा स्वरूप, वह वस्तु का स्वरूप है। इससे ज्ञान में पर का जानना, उसके साथ आनन्द का होना होता है। उसमें अशुद्धता का दु:खरूप होना, यह स्व-पर के जानने में नहीं होता। समझ में आया? आहाहा!

आत्मा को माना कब कहलाये? - कि आत्मा स्व-पर को जानने के ज्ञानस्वभाववाला और आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दवाला है, इसलिए सम्यग्दर्शन में मेरा आनन्द पर में है - यह बात नहीं रहती। समझ में आया? और मेरा ज्ञान पर को जानने पर दु:खरूप होता है, ऐसा नहीं रहता। आहाहा! रतिभाई! समझ में आया इसमें? भारी परन्तु इसे...

भगवान आत्मा... आत्मा अर्थात् अभी ज्ञान प्रधान। सर्वविशुद्ध है न? इसलिए अकेला ज्ञानपुंज, बस, हो गया! ज्ञान का पुंज। कलई अर्थात् सफेदी का पुंज। अफीम अर्थात् कड़वाहट का पुंज; शाकर अर्थात् मिठास का पुंज। इसी प्रकार आत्मा अर्थात् चैतन्य ज्ञान का पुंज। अब इस ज्ञान में आनन्द शामिल है। यह ज्ञान पर को जानने पर उसका मलिनपना हो जाता है - ऐसा नहीं है। यह स्व और पर को जानना, यह उसका स्वत: स्वभाव है। इसलिए स्व को और पर को जानने के काल में वह अशुद्ध नहीं है, परन्तु आनन्दरूप होता है, अर्थात् शुद्धस्वभावरूप होता है। आहाहा! सुरेन्द्रभाई! समझ में आया इसमें?

पर को जानते हुए पर मेरे, राग मेरा, शरीर मेरा, कर्म मेरा - ऐसे पर को जानते हुए मेरा मानता है; वह जानना मेरा - ऐसा नहीं परन्तु वह परवस्तु मेरी माने, वह तो मिथ्यात्वभाव और दु:खरूप है। वह अशुद्ध हुआ। समझ में आया?

आत्मा वस्तु है, उसमें ज्ञान और आनन्द है; अर्थात् कि उसका ज्ञान पर को जानना, वह तो स्व का स्वरूप है; और पर को जानने में अपने आनन्द का - शुद्धता का स्वरूप उसे प्रगट होता है। तदुपरान्त हो जाए कि यह पर को जानते हुए यह राग मेरा... राग का ज्ञान है, वह तो मेरा, परन्तु राग मेरा, शरीर मेरा, कर्म मेरा, जो अन्तर में वह चीज नहीं। समझ में आया? जो जिसमें नहीं, उसमें उसे माने तो वह ज्ञान अशुद्ध और दु:खरूप हुआ। पोपटभाई! समझ में आया इसमें? आहाहा!

आत्मा चैतन्यमूर्ति वस्तु पदार्थ महान आनन्दघन, उसके साथ रहा हुआ ज्ञान... यहाँ तो

ज्ञानप्रधान से कथन है। उस ज्ञान में इसका भास हो गया न इसका? इस राग का, इस विकल्प का, इस शरीर का, इस दुर्गन्ध का, इसका और इसका भास हुआ, वह तो भासना, यह तो उसका स्वरूप है। वह भासना उसमें निकाल डालो तो स्व-पर प्रकाशक ज्ञान नहीं रहता, अर्थात् ज्ञान नहीं रहता, अर्थात् आत्मा नहीं रहता। अर्थात् आत्मा नहीं रहता, अर्थात् एक भी गुण नहीं रहता। आहाहा! समझ में आया? स्व-पर प्रकाशक स्वभाव है। उसमें से परप्रकाशकपना (होना), वह अपना स्वरूप है। यदि उसे निकाल डालो तो गुण नहीं रहता। उसके साथ गुण नहीं रहने पर, वे अनन्त गुण साथ में है, उनका भी अभाव हो जाता है। अभाव होकर अकेला आत्मा नहीं रहता। आहाहा! समझ में आया?

जानता हुआ अपने स्वरूप है... जानता हुआ अपने स्वरूप है, स्व-रूप है, पर को जानते हुए... यहाँ तो पर को जानने की प्रधानता है, हों! स्व को जानना तो उसमें है ही। पर को जानते हुए **अपने स्वरूप है - ऐसा वस्तु का स्वभाव है। ज्ञेय के जानपना से जीव का अशुद्धपना मानता है सो मत मानो,...** परवस्तु ज्ञात हो गयी, इसलिए मैं दुःखरूप हो गया और अशुद्ध हो गया - ऐसा मत जान, ऐसा मत मान। ज्ञान का स्वभाव स्व-परप्रकाशक, वह आनन्दरूप शुद्ध होता है - ऐसा जान। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया? न्यालभाई! यह ... है।

भाई! तेरा स्वरूप ही ऐसा है। क्या करना? कह अब। स्व और पर को जानना, इतना यह आत्मा वापस। इतने आत्मा में से पर का जानना, वह अशुद्ध जाने तो वह वस्तु निकल जाती है। ज्ञान स्व-पर (प्रकाशक) नहीं रहता। इसलिए अकेले पर के ऊपर एकाकार होने पर दुःखरूप दशा उत्पन्न होती है। समझ में आया?

मूल वास्तविक तत्त्व क्या है? और तत्त्व-ज्ञ उसका ज्ञान। उसका ज्ञानस्वभाव। अग्नि का स्वभाव पर को जलाते हुए वह अग्नि, अग्निरूप रही है? या अग्नि पररूप हुई है? इसी प्रकार ज्ञान पर को जानते ज्ञान-स्वरूप से—वस्तुस्वरूप से स्वरूप में है या वह पररूप हुआ है? स्वरूप में ही है। तो स्वरूप में है तो ज्ञान, आनन्दरूप ही है। अशुद्ध है नहीं, शुद्धरूप ही है। समझ में आया? **सो मत मानो, जीव शुद्ध है।** जीव आनन्दरूप और ज्ञान के स्व-पर प्रकाशकरूप है। आहाहा!

श्रोता : स्व-परप्रकाशक एक समय में है तो एक समय....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय में। एक समय में। स्व को प्रकाशित करे और फिर पर को प्रकाशित करे - ऐसा नहीं। समझ में आया?

ज्ञेय के जानपना से जीव का अशुद्धपना मानता है सो मत मानो, जीव शुद्ध है। और समाधान करते हैं। अधिक समाधान करते हैं। **कारण कि 'किमपि द्रव्यान्तरं एकद्रव्यगतं न चकास्ति'** देखो! अब भाषा। यह तो अध्यात्म बात, अन्तर की बात है न? अपूर्व बात है, इसलिए इसे जरा एकाग्र होना चाहिए, तो पकड़ में आवे, ऐसी बात है। यह कोई ऐसे के ऐसे चलते... चलते... चलते... वे बड़ी भेड़ होती है न? चले और अड़चन आवे तो खबर पड़े। परन्तु बारीक कंथवा होवे तो? आड़ा आवे नहीं, इसलिए कुछ नहीं। जीवांत कुछ नहीं था... जीवांत कुछ नहीं थी... परन्तु कहाँ से जीवांत नहीं थी? सूक्ष्म देखे बिना? जूते पहिनकर चला जाए और चींटियों के बड़े.... कुचलते हों। नीचे कुछ जीवांत नहीं थी। परन्तु किस प्रकार तूने देखी नहीं थी? पैर को बकरा या कचरा कुछ अड़चन किया नहीं। समझ में आया?

इसी प्रकार यह चीज़ क्या है, इसकी खबर बिना कहीं हमें भूल नहीं है, हमें कुछ भूल नहीं है। परन्तु भूल नहीं भान बिना? तेरा तत्त्व ही ऐसा भगवान आत्मा तीनों काल ऐसा है, हों! उसकी मान्यता में अन्तर पड़ा है। वस्तु का स्वभाव हो, वह तीनों काल होगा या एक काल में होगा और दूसरे काल में नहीं होगा, ऐसा होता है?

कहते हैं, क्या कहते हैं? देखो! **'किमपि द्रव्यान्तरं एकद्रव्यगतं न चकास्ति' (किमपि द्रव्यान्तरं)** द्रव्यान्तर अर्थात् इस जीवद्रव्य से अन्य द्रव्य। भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप चैतन्य, उससे अन्य द्रव्य। अन्य अर्थात् **कोई ज्ञेयरूप पुद्गल...** देखो! यह शरीर, कर्म, विष्ठा, सोना, लकड़िया, लोहा, मकान, धूल, पैसा और इज्जत - ये सब पुद्गल। समझ में आया? यह द्रव्य, पुद्गलद्रव्य। यह द्रव्यान्तर है। इस द्रव्य से अन्य द्रव्य है। पुद्गलद्रव्य, इस जीवद्रव्य से अन्य द्रव्य है। कर्म, शरीर, इज्जत-कीर्ति, पैसा, मकान, पुस्तक-किताब आदि- इत्यादि। इस द्रव्य से, इस वस्तु से अन्य द्रव्य है, अन्य द्रव्य है, भिन्न वस्तु है, ज्ञेय है। यह ज्ञानद्रव्य है, तब वे ज्ञेयद्रव्य हैं। ऐसा अभी सिद्ध करना है।

कोई ज्ञेयरूप पुद्गल... पुद्गल अर्थात् सब परमाणु आदि, हों! समझ में आया? **पुद्गलद्रव्य अथवा धर्म, अधर्म, आकाश कालद्रव्य शुद्ध जीव वस्तु में एक द्रव्यरूप से परिणमते हैं - ऐसा शोभता नहीं...** क्या कहते हैं? यह भगवान आत्मा ज्ञानरूप द्रव्य, इसमें पुद्गलद्रव्यरूप। **'एकद्रव्यगतं न चकास्ति'** एक द्रव्य अर्थात् शुद्ध द्रव्य। शुद्ध द्रव्य अर्थात्? अपनी शुद्ध जीववस्तु। ऐसे इस एक द्रव्यरूप से यह पुद्गल जीवद्रव्य के ज्ञानद्रव्यरूप से...

जीव ज्ञानद्रव्यरूप है और पुद्गल ज्ञेयद्रव्यरूप है। इस ज्ञेयद्रव्यरूप ज्ञानद्रव्यरूप में एकपने पाता है – ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया? है या नहीं? पुस्तकें तो कितनी रखी है इससे? अभी कोने में अन्दर रखी है।

एक ओर जाननहार ज्ञायकद्रव्य। वह द्रव्य स्व। द्रव्यान्तर, वह पुद्गल पहला लिया। ऐसे दोनों लेना। **पुद्गल द्रव्य अथवा धर्म, अधर्म, आकाश काल द्रव्य शुद्ध जीव वस्तु में... 'एकद्रव्य'। एकद्रव्य** अर्थात् शुद्ध जीववस्तु। शुद्ध जीव ज्ञानवस्तु, शुद्ध जीव ज्ञानपदार्थ भगवान आत्मा, उसमें '**गतं**'। '**गतं**' अर्थात् एकद्रव्यरूप से परिणमना। आत्मज्ञान में दूसरा द्रव्य पुद्गल '**गतं**' अर्थात् एकद्रव्यरूप होना, ऐसा कभी शोभता नहीं अर्थात् होता नहीं। समझ में आया?

ज्ञान चैतन्यद्रव्य में, उससे अन्य द्रव्य यह पुद्गल। धर्म, अधर्मा, आकाश, काल तो अरूपी को एक ओर रखो। यह पुद्गलद्रव्य। यह रागादि सब, हों! पुण्य-पाप के विकल्प, दया-दान का राग, यह सब पुद्गलादि चीजें, वे '**एकद्रव्य**' अर्थात् शुद्ध जीववस्तु, ज्ञानमय वस्तु, सर्वविशुद्धज्ञानमय वस्तु। '**एकद्रव्य**' उसके अन्दर '**गतं**'। '**गतं**' यह राग, पुण्य, विकल्प, यह आत्मा के ज्ञान में ज्ञायक में एकरूप परिणमे – ऐसा कभी नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया इसमें? **एक द्रव्यरूप से परिणमता है ऐसा... 'न चकास्ति'** न मानो अर्थात् **नहीं शोभता है ऐसा।** ऐसा है नहीं। ऐसा शोभता नहीं अर्थात् ऐसा है नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया?

दर्पण, दर्पणरूप में है। यह सामने लकड़ी, लोहारूप एकद्रव्य इस द्रव्य के अन्दर '**गतं**' घुस गये? एकरूप हुए हैं? अन्दर ज्ञात होते हैं। सामने लकड़ी, लोहा, कोयला होवे तो ऐसे अन्दर ज्ञात हो या नहीं? तो यह क्या है? वह परद्रव्य है? परद्रव्य इसमें '**एकद्रव्यगतं**' आ गया है? एक स्वद्रव्य में परद्रव्य घुस गया है? वह तो दर्पण है।

इसी प्रकार यह एकद्रव्य ज्ञायक चैतन्य-दर्पण, उससे पुद्गल राग, द्वेष, शरीर, वाणी मन यह '**एकद्रव्यगतं**' हो गया है? इस द्रव्य में आ गये हैं? उन सम्बन्धी का ज्ञान, वह तो अपना ज्ञान है। उन सम्बन्धी का ज्ञान ही अपना है। वह चीज़ कहाँ यहाँ आ गयी है? समझ में आया? **एक द्रव्यरूप से परिणमता है ऐसा... 'न चकास्ति'** ऐसा नहीं हो सकता। नहीं हो सकता, इसका अर्थ कहा कि **नहीं शोभता है।** भाई! कितना सूक्ष्म पड़ता है? दर्पण का दृष्टान्त देकर कहा न?

दर्पण ऐसा है। तीन हाथ का चौड़ा इतना हो। वह दर्पण एक द्रव्य। उसमें दूसरे द्रव्य यहाँ आ जाए और उसरूप हो - ऐसा नहीं होता। अर्थात् ऐसे शोभा नहीं पाता, अर्थात् ऐसा नहीं होता। इसी प्रकार यह चैतन्य दर्पण भगवान ज्ञानमूर्ति आत्मा है। इसमें शरीर, वाणी, मन, राग-द्वेष, पुण्य-पाप, विकल्प, राग का यहाँ ज्ञान (हो), वह उनका ज्ञान नहीं है। वह तो अपना स्व-परप्रकाशक ज्ञान है। ऐसा स्व-परप्रकाशक जो एक द्रव्य, स्व-परप्रकाशक ज्ञान ऐसा जो एक द्रव्य; जैसे दर्पण वैसे, अथवा ऐसा एक द्रव्य; उसमें राग-द्वेष आदि एकरूप हो और यहाँ परिणम जाए, ऐसा तीन काल-तीन लोक में नहीं होता अर्थात् शोभता नहीं। समझ में आया? कहो, समझ में आया या नहीं? वजुभाई! स्पष्ट बात है। रसवाले हैं, रुचिवाले हैं।

यह वस्तु ही ऐसी है। सब अब सिरपच्ची करके मर गया। यह मशीन हुई, यह अमुक हुआ, यह अमुक हुआ, मैंने किया। तूने क्या किया? तुझमें तो स्व-परप्रकाशक स्वभाववाला चैतन्य है। उस चैतन्य में-अन्दर में परद्रव्य आ गये? क्या हुआ तुझसे? आहाहा! क्या होगा इसमें? गुलाबचन्दभाई! चतुर होवे तो यह सब व्यापार के भाव इसमें आ जाते होंगे या नहीं?

श्रोता : उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धमाल की होगी या नहीं? कलकत्ता। सब व्यापार करने में नहीं की होगी? तो वहाँ क्या किया होगा?

कहते हैं, भगवान! जहाँ-जहाँ तू था, जहाँ-जहाँ तू था, वहाँ-वहाँ स्व-परप्रकाशक चैतन्यद्रव्यरूप तू था। चैतन्यप्रकाशक स्व-परप्रकाशक सत्व के सत्वरूप था। वहाँ-वहाँ जो परपदार्थ रागादि उस काल में हुए, वह वस्तु क्या यहाँ स्व-परप्रकाशक अस्ति ऐसा अपना द्रव्य, उसमें रागादि यहाँ हो गये? यहाँ ज्ञान स्व-परप्रकाशक में आ गये? ज्ञान उनका आया नहीं, ज्ञान तो अपना स्व-परप्रकश का स्वद्रव्यपना है। समझ में आया?

श्रोता : उनमें कहाँ ज्ञान....

पूज्य गुरुदेवश्री : उनमें कहाँ? यह तो समझाना है, उनके सम्बन्धी; उनके सम्बन्धी कब था? वह तो आत्मा सम्बन्धी का ज्ञान है। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? ऐई... आशीष! यह दूसरे प्रकार का कालेज है। कालेज में सब गप्प ही गप्प मारी है। कमाने के लिये, ममता के लिये एकत्रित होकर वहाँ हैरान हो जाते हैं। समझ में आया इसमें? आहाहा! यह पढ़े तो इसे लोकालोक का ज्ञान हुए बिना न रहे। यह वापस लोकालोक के लिये पढ़ना न पड़े, हों! वह तो यह ज्ञान। स्व-परप्रकाशक का अस्तित्व, वह स्वद्रव्य, वह स्वद्रव्य। ऐसे

यह स्ववस्तु। उसमें परवस्तु ज्ञात हुई, ऐसा नहीं। वह तो अपना स्वरूप ही ज्ञात हुआ है। स्व-परप्रकाशक अपना ज्ञानस्वरूप है, वह ज्ञात हुआ है, वह ज्ञात हुआ है। वह चीज़ ज्ञात होने से वह चीज़ यहाँ ज्ञान में आ गयी है (-ऐसा नहीं है)। लाओ न्याय से। न्याय से (निश्चित) करोगे या नहीं?

दर्पण में यहाँ काला कोयला, विष्टा, बिच्छु बाहर पड़ा हो, लो! सर्प ऐसे फण फैलाकर बैठा हो। वह तो दर्पण का स्वरूप है। दर्पण के स्वरूप में अस्तित्व दर्पण अपने द्रव्य में है। समझ में आया? वह सर्प और बिच्छु उसमें अन्दर आ गया है? तब तो दो बिच्छु जीव हो जाए। एक यहाँ बिच्छु जीव और एक वहाँ।

इसी प्रकार यह चैतन्य वस्तु, भगवान आत्मा स्वद्रव्य। ऐसा कहा न? यहाँ क्या कहा? '**एकद्रव्यगतं**' यह शब्द पड़ा है। कोई भी '**द्रव्यान्तरं एकद्रव्यगतं न चकास्ति**' इस एक शब्द में पूरा सिद्धान्त भर दिया है। कोई भी '**द्रव्यान्तरं**' यह द्रव्य जो ज्ञायक चैतन्यस्वरूप, स्व-पर स्वरूप - स्व-परप्रकाशस्वरूप ऐसा स्वद्रव्य, उसमें '**किमपि एकद्रव्यगतं**' एक शुद्ध जीवद्रव्य जो है, वह शुद्ध ज्ञायक जीवद्रव्य है, ऐसा '**गतं न चकास्ति**' ऐसा कभी अन्दर आता नहीं। नहीं आता अर्थात् कि दूसरा यहाँ आवे तो शोभा हो। परन्तु उस सम्बन्धी का यहाँ अपना स्व-परज्ञान है, उसमें ही उसकी शोभा और स्वद्रव्य है। आहाहा! गजब बात, भाई! यह भूल वापस डाले किसके सिर? - कर्म के सिर। आहाहा!

श्रीमद् ने कहा है कि ऐ! तू तेरा शत्रु। भारी आश्चर्य की बात। कर्म-बर्म शत्रु कोई नहीं। तू तेरा शत्रु, कोई आश्चर्य की बात। और हे जीव! तू भूला... तू भूला। अन्तर में आनन्द है; बाहर में खोजने से कहीं नहीं मिलेगा। इसका अर्थ कि तेरा ज्ञान स्व-परप्रकाशक अन्दर खोजने से मिलेगा। वह पर के - ज्ञेय के कारण मिले - ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! धर्म के नाम से कितने ही ऐसा मानते हैं कि बस, परद्रव्य अपने को कुछ नुकसान करता नहीं, इसलिए परद्रव्य को भोगो। परन्तु भोगे कौन? समझ तो सही! इसलिए बात पहले आ गयी है। शंख के अधिकार में। भोगे कौन? परद्रव्य का ज्ञान, वह तो तेरा ज्ञान है; उसका नहीं। ऐसा स्वद्रव्य, स्ववस्तु - जो कि स्व-परप्रकाशक ज्ञान का पुंज स्वद्रव्य है। उसमें राग, दया, दान, विकल्प और परवस्तु, इस '**एकद्रव्यगतं**' यह एक द्रव्य जो शुद्ध वस्तु, उसमें '**गतं**' दूसरा द्रव्य आ जाए - ऐसा होता है नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि जीव समस्त ज्ञेय को जानता है,... कितना सूक्ष्म पड़ता है

इसमें ? - परम सत्य ! बापू भी अब प्रसन्न हो गये हैं। भूराभाई एकबार कहते थे। भूराभाई कहते थे। भाई ! बापू ! तेरी चीज़ ही यह है। अब तुझे क्या करना है, यह कह। आहाहा ! प्रभु ! तू ऐसा है, भाई ! तेरी प्रभुता की बातें क्या करना ? ऐसा कहते हैं। तेरी प्रभुता अर्थात् स्व-पर को जानने की सामर्थ्यवाली तेरी प्रभुता, वह तेरा तत्त्व। समझ में आया ? आहाहा !

भगवान आत्मा स्व-पर को प्रकाशित करना, ऐसा स्वतत्त्व अपने सामर्थ्य की प्रभुतावाला तत्त्व है। उसमें दूसरा यह एक द्रव्य में राग, पुण्य के विकल्प और शरीर - कर्म आ कहाँ गये ? - कि जिससे तुझे ऐसा लगा कि अरे ! यह ज्ञात हुआ ! अरे ! यह ज्ञात हुआ है परन्तु वह ज्ञात नहीं हुआ है। वह तो तेरा स्व-परप्रकाशक ज्ञान ज्ञात हुआ है। समझ में आया ? वास्तव में तो ज्ञान स्व-परप्रकाशक है, ऐसा स्वद्रव्य, ऐसा स्वद्रव्य ज्ञात होता है कि स्व-परप्रकाशक मैं हूँ - ऐसा स्वद्रव्य ज्ञात होता है। उसके बदले कहे कि वह द्रव्य ज्ञात हुआ और अशुद्ध हो गया। तूने व्यर्थ की भ्रान्ति खड़ी की है। आहाहा !

यह तो भगवान आत्मा... आहाहा ! तीन लोक के नाथ चैतन्य सर्वज्ञ प्रभु ! उनकी वाणी - ऐसा निमित्त से कहा जाता है, निमित्त है इसलिए। बाकी सर्वज्ञ, सर्वज्ञ है; वाणी, वाणी से उसके कारण से निकलती है। आहाहा ! समझ में आया ? कहते हैं कि वाणी निकलना और वाणी का जानना... लोकालोक का जानना। जानना है तो वहाँ ज्ञान मलिन हुआ ? वह तो ज्ञान के स्व-परप्रकाशक के स्व-अस्तित्त्व के स्व भाव का जो द्रव्य था, उस रीति परिणम गया है। समझ में आया ? आहाहा !

यह सर्वज्ञ स्वभाव ! देखो ! यहाँ तो और सर्वज्ञ मस्तिष्क में कैसे आया ? सब जानते हैं - ऐसा आया न ? सब जानते हैं ? इसलिए और यह आया। भाई ! तू अभी सर्व को जाननेवाला है, ले ! ठीक। आहाहा ! क्या कहा ? भगवान याद आये, परन्तु यह भगवान ऐसा है - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! भगवान ! तू ऐसा है कि स्व को-पर को प्रकाशित करे आनन्दसहित, ऐसा तू है। यह तेरा स्वद्रव्य, यह तेरा स्वतत्त्व, यह तेरा आत्मा ! अब उसमें यह परवस्तु यहाँ आ गयी, ऐसा जो मानना, वह कहते हैं कि परन्तु कैसे आवे ? तीन काल में राग ज्ञानरूप होवे कैसे ? तीन काल में शरीर, कर्म, वाणी, वे आत्मा के ज्ञानरूप, आत्मा रूप हो कैसे ? समझ में आया ? आहाहा !

श्रोता : इसका भरोसा तो धर्मी ही करा सकता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्वयं ही करे, ऐसा भरोसेवाला है। ऐसी इसमें ताकत है। इसकी

ताकत का स्वभाव ही इतना है, ऐसा कहते हैं। स्व-पर को जानना - ऐसा निर्णय करके, निश्चय करके और अनुभव करे, यही इसकी ताकत है, ऐसी ताकत ही इसकी है। विपरीत करना, मानना - यह इसकी ताकत में - स्वभाव में है नहीं। यह तो इसकी पर्याय में भ्रम उत्पन्न करता है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या कहा?

ऐसा भगवान आत्मा स्व-पर को जाननेवाला सत्व, वही मैं हूँ, ऐसा भरोसा करनेवाला स्वभाव ही इसका अपना है। पर को जानना, वह पर का जानना नहीं है। वह पर का ज्ञात होता है, वह तो अपना स्व-पर ज्ञान स्वयं अपने को जानता है। उसमें तुझे ऐसा लगता है कि यह रागादि हुए; परन्तु कहाँ हुआ है? ज्ञानस्वरूप भगवान रागरूप, शरीररूप दिखायी दे, वह चीज़ें **द्रव्यांतरं** ज्ञानरूपी द्रव्य, ज्ञानरूपी चैतन्य उसमें एक द्रव्य अर्थात् शुद्ध वस्तुय उसमें अन्य द्रव्य किसी प्रकार नहीं आये। समझ में आया? उसमें नहीं आये, ऐसी मान्यता का अनुभव होना - ऐसा तेरा स्वभाव है। आहाहा! कहो, वजुभाई! आहाहा!

श्रोता : ज्ञान, ज्ञान को ही जानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे ही जानता है। किसे जानता है वह? आहाहा! समझ में आया?

सभी जीव ज्ञानस्वरूप हैं। इसलिए यहाँ जीव नहीं लेना। यहाँ शुद्धजीव का शुद्ध द्रव्यस्वभाव। यहाँ सब ऐसा लेना है। अकेला जीव। अकेला जीव लो तो दूसरे... परन्तु यहाँ तो जीव का शुद्ध ज्ञान अधिक स्वरूप है। अर्थात् सब जीव में यह दूसरे ही ज्ञात होते हैं, यह उनका जानना उसका नहीं। उसका स्व-परप्रकाशक शुद्ध चैतन्यद्रव्य का स्वभाव निगोद से लेकर सिद्ध तक है। आहाहा! मान्यता में भ्रम पड़ गया है, वह तो खड़ी की हुई कल्पना, पर्याय के अंश में; वह द्रव्य-गुण में नहीं है। समझ में आया? आहाहा! गजब! इसमें भी कहीं वाद-विवाद को अवकाश ही कहाँ है? यह इससे हुआ... इससे हुआ... अब हुआ है कहाँ? हुआ है तुझसे, ले। कर्म का उघाड़ हुआ तो क्षयोपशम हुआ, यह बात तो वहाँ रह गयी।

यहाँ तो स्व-परप्रकाशक स्वभाव, स्वभावरूप से है, उसरूप जहाँ अन्दर है, ऐसा जाना और माना, सुखरूप है। पर का जानना हुआ, इसलिए पर इसमें आ गया, ऐसा नहीं है। इसका पूरा अकेला-अकेला तत्त्व रह गया। इसलिए यह स्व-पर जानने की अपेक्षा से स्वतत्त्व है और परतत्त्व, इसकी अपेक्षा से परतत्त्व है ही नहीं। क्या कहा? मैं ही अकेला स्व-परप्रकाशक स्वतत्त्व हूँ। इसकी अपेक्षा से परवस्तु है ही नहीं। अब परवस्तु है, वह यहाँ आयी नहीं। यहाँ तो अकेला स्व-परप्रकाशक का ज्ञान ही रह गया, सर्वज्ञस्वभाव ही अकेला (रह गया)। वह

स्व है। पर, पररूप हो। वह पररूप, मुझरूप वह नहीं है। पररूप हो तो पर मुझरूप कभी होता नहीं। समझ में आया इसमें? इसमें तो कोई ऐसी बहुत कठिन - सूक्ष्म बात नहीं है, परन्तु अब इसने कभी, यह तत्त्व क्या है? - इसने विचार ही किया नहीं और ऐसे का ऐसा अन्ध दौड़ चला गया है ऐसे का ऐसा।

श्रोता : बहुत महिमावाली बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु महिमावाले की महिमा ऐसी होती है न! महिमावाला ही पदार्थ है, महिमास्वरूप ऐसा ही वह है। ओहो! जिसे चैतन्य चमत्कार कहा, लो! चमत्कार। आहाहा! यह क्या कहते हैं? चित्चमत्कार। ओहो! भगवान आत्मा स्व और पर को जाने ऐसा चित्चमत्कार। चमत्कार अर्थात्? काल थोड़ा, वस्तु अनन्त, जानना अपने में, पर को स्पर्श किये बिना, ऐसा चैतन्य चमत्कार, वह भगवान आत्मा है। समझ में आया? परन्तु वापस वह एक समय में, हों! उपयोग भले असंख्य समय हो, परन्तु एक समय में जानना सबको, रहना अपने में। सबको जानना कहना, वह उपचार; सबको जानने सम्बन्धी का ज्ञान अपना, अपने में; उसमें रहकर स्व को और पर को पूरा जाने। ऐसी चमत्कार चीज़ होवे तो वह चैतन्य ही है। ऐसी दूसरी कोई चीज़ नहीं हो सकती। आहाहा! उसे यह पुण्य के, दया, दान के विकल्प सम्बन्धी का ज्ञान नहीं। उसकी किसकी महिमा रहे? आहाहा! समझ में आया?

इसकी महिमा वाणी द्वारा कितनी आवे, कहते हैं। क्योंकि वाणी का यह जाननेवाला ज्ञान का स्वरूप स्वयं के कारण से वह जानता है। वाणी को करता नहीं और वाणी को वास्तव में जानता भी नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा भगवान ज्ञानमूर्ति चैतन्य चमत्कार। चमत्कार दूसरा कौनसा चमत्कार? इसके अपने अस्ति में रहकर, पर के सन्मुख देखे बिना अनन्तपना जो जगत का है... रागादि निकट में एक क्षेत्र में, एक काल में हुए। एक क्षेत्र में और एक काल में (हुए) रागादि। समझ में आया? वैसे ही एक क्षेत्र में एक काल में शरीरादि दूसरे रजकण; उन्हें भगवान आत्मा स्व-पर प्रकाशक का सत्व, ऐसा तत्त्व, स्वयं अपने को जानता है, उसमें पर का जानपना आया, ऐसा कहना व्यवहार है, तो पर इसमें आ गया है - यह है ही कहाँ? समझ में आया? भाई! सर्वविशुद्ध चैतन्यमूर्ति ऐसा यहाँ वर्णन करते हैं।

श्रोता : अपने को ही जानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने को ही जानता है। दूसरे को किसे जाने? क्योंकि उस प्रकार की ज्ञान की पर्याय उस काल में वैसी हुई तो उसे जानता है। दूसरे काल में दूसरी हुई तो उसे जानता है। समझ में आया? आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि जीव समस्त ज्ञेय को जानता है,... देखो! यह सर्वज्ञ स्वयं आया। यह... अभी। **जीव समस्त ज्ञेय को जानता है,...** भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु, वह समस्त ज्ञेयों को जानता है, ऐसा कहना वह ठीक। **ज्ञान ज्ञानरूप है,...** जानते हुए भी ज्ञान, ज्ञानरूप रहा हुआ है। जीव ज्ञानरूप रहकर जानता है, पररूप होकर नहीं जानता और पररूप का ज्ञान नहीं, अपना स्व-परप्रकाशक ज्ञानरूप है। **ज्ञेयवस्तु ज्ञेयरूप है;...** जितने राग-द्वेषादि, पुण्य-पाप, शरीरादि सब जाननेयोग्य, वह पररूप है।

कोई द्रव्य अपने द्रव्यत्व को छोड़कर... कोई द्रव्य, कोई वस्तु अपने द्रव्यपने को छोड़कर **अन्य द्रव्यरूप तो नहीं हुआ ऐसा अनुभव जिसको है सो कहते हैं।** देखो! पहला शब्द अब आया। सब कहकर, यह सिद्ध करना है न! '**शुद्धद्रव्यनिरूपणार्पितमतेस्तत्त्वं समुत्पश्यतो**' आहाहा! यह तो भागवत कथा है। पोपटभाई! यह भगवान आत्मा की भागवत कथा। यह भागवत भगवान वीतरागस्वरूप है। वीतरागस्वरूप अर्थात् पर और स्व को जानने का स्वरूप ही वीतरागस्वरूप है। ऐसा भगवान... कहते हैं **कोई द्रव्य अपने द्रव्यत्व को छोड़कर अन्य द्रव्यरूप तो नहीं हुआ, ऐसा अनुभव जिसको है...** ऐसा ज्ञान किसे होता है? ऐसा भान किसे होता है—अब यह सिद्ध करते हैं। आहाहा! समझ में आया? '**शुद्धद्रव्य-निरूपणार्पितमतेः**' यह शब्द आया। ओहोहो! '**शुद्धद्रव्य**' **समस्त विकल्प से रहित शुद्ध चेतनामात्र जीववस्तु...** देखो! क्या कहा? यह 'सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार' है न?

भगवान आत्मा अभी **समस्त विकल्प से रहित...** राग से रहित शुद्ध चैतन्यमात्र। राग तो ज्ञेय में गया, परवस्तु। भगवान आत्मा समस्त राग (रहित) वस्तु चैतन्यमूर्ति वस्तु चैतन्यमूर्ति वर्तमान में समस्त विकल्परहित; पुण्य-पाप के सम्बन्धी का ज्ञान, वह तो स्व का हुआ। परन्तु यह वस्तु है, वह तो राग और विकल्परहित है। समझ में आया?

अरे! मेंढ़क समझ जाते हैं। न समझे क्या? आत्मा है या नहीं? उसे ऐसा नहीं मानना कि मैं लायक नहीं हूँ। लायक नहीं, वह आत्मा के सामर्थ्य की प्रतीति नहीं करता। समझ में आया? मैं लायक नहीं - ऐसा करके किसी में सोपता है, परन्तु मैं स्वयं सर्वज्ञ होने के लायक हूँ। सर्वज्ञ की प्रतीति करने के योग्य मेरा स्वभाव है, तो सर्वज्ञ होने का स्वभाव पर्याय में होता है। वह तो मेरा त्रिकाल स्वभाव है।

श्रोता : ..... वाणी तो ... लगती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब आत्मा.. यहाँ तो सब आत्मा की बात है। ना करें, वे उनके घर रहे। वे आत्मा नहीं। आहाहा!

कहते हैं, भगवान आत्मा शुद्धद्रव्य समस्त राग से रहित, यह तो नास्ति से बात की। परन्तु शुद्धद्रव्य का अस्ति क्या? पाठ में तो '**शुद्धद्रव्य**' शब्द पड़ा है। परन्तु समझाया उसे। समस्त रागादिरहित। अभी, हों! यह वस्तु। **शुद्ध चेतनामात्र जीववस्तु...** अकेली ज्ञायकमात्र वस्तु। शुद्ध आनन्द चेतनामात्र वस्तु। **(निरुपण)** अर्थात् कि उसमें दृष्टि जोड़ दे। कथन किया, ऐसा नहीं। **(निरुपण)** तो शब्द है। परन्तु शब्द नहीं, उन्होंने कहा हुआ वाच्य, वस्तु का स्वरूप, उसमें जहाँ प्रत्यक्ष अन्दर दृष्टि की, प्रत्यक्ष अनुभव में (आया)। प्रत्यक्ष अनुभव अर्थात् राग की अपेक्षा नहीं, पर की (अपेक्षा) नहीं।

स्व-परप्रकाशकस्वरूप चैतन्य पदार्थ, ऐसी शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तु, अर्थात् रागादिरहित वस्तु में प्रत्यक्ष दृष्टि की है, उसे **(निरुपण)** शब्द किया। उस वस्तु को दृष्टि में ली है। अर्थात् राग की अपेक्षा छोड़कर, स्वरूप चैतन्यमूर्ति ऐसा है, वैसा प्रत्यक्ष जिसे ज्ञान का वेदन है, उसने शुद्धद्रव्य में मति स्थापित की है। उसे ऐसा ज्ञान होता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो वापस यह काल लिया। आहाहा! शुद्ध चेतनामात्र भगवान आत्मा, उसे '**निरुपण**' अर्थात् प्रत्यक्ष अनुभव, वह '**निरुपण**' यह तो यहाँ कथन किया। निरूपण शब्द में विवाद करते हैं, भाई! कथन दो प्रकार से चलता है, सुन न! यह कथन स्वभाव के लिये कथन है। अकेला भगवान ज्ञानस्वरूप चिदानन्द प्रभु, जिसके स्वभाव के चित्चमत्कार सामर्थ्य की अनन्ता, अचिन्त्यता, अमापता - ऐसा भगवान आत्मा, ऐसा अन्तर में प्रत्यक्ष अनुभव, यह दृष्टि करके प्रत्यक्ष वेदन किया है। ऐसे प्रत्यक्ष अनुभव में... प्रत्यक्ष शब्द से (आशय) रागरहित, मन की अपेक्षा बिना। स्वभावस्वरूप है, वैसे उसे अनुभव में लिया है।

'**अर्पितमतेः**' ऐसे अनुभव में **स्थापित किया है बुद्धि का सर्वस्व जिसने...** अर्थात् कि मति का सर्वस्व वहाँ स्थापित किया है। कहीं ऐसे राग में अटकना, ऐसा नहीं। ज्ञान की तो वर्तमान पर्याय, सब इस ओर जो पूर्णानन्दस्वरूप स्व-परप्रकाशक है, ऐसे स्वतत्त्व में जिसने मति को सर्वस्व स्थापित किया है। अब कुछ इस ओर से उस ओर में रही नहीं। आहाहा! समझ में आया? शुद्धद्रव्य प्रत्यक्षपने में '**अर्पितमतेः**' मति को वहाँ जोड़ दिया है, स्थापित है। '**अर्पितमतेः**' मति स्थापित है, अर्पित की है, मति को वहाँ अर्पित कर दी है। मति को वहाँ अर्पित की है। कहाँ? शुद्ध चैतन्यवस्तु है वहाँ। मति को स्थापित की है, अर्पित की है, लगाई है, सर्वस्व मति का जुड़ान वहाँ हो गया है। समझ में आया?

बुद्धि का सर्वस्व जिसने ऐसे जीव के। ऐसे जीव को स्वप्रकाशक में अकेला आत्मा

पर से रहित, पर को जानने पर मैला होता है – ऐसा नहीं भासित होता। आहाहा! परन्तु पर से रहित स्व-पर को जाननेवाला सामर्थ्यवाला तत्त्व, मति को (वहाँ) स्थापित की है। इससे स्व-परप्रकाशक के प्रकाश के साथ आनन्द का प्रत्यक्ष अनुभव-वेदन वर्तता है। आहाहा! समझ में आया? वह निकाला न? पर को जानने से अशुद्ध हो गया? – कि नहीं। स्व-पर को जानने के स्वभाव में दृष्टि को स्थापित की, वहाँ आनन्दवाला ज्ञान हो गया। समझ में आया? यह अभी सम्यग्दर्शन की बात चलती है, हों! बड़ी-बड़ी बातों में लगे। यह तो... अरे! भगवान! बापू! छोटूभाई! बहुत-से कहते हैं न? यह नीचे कहेंगे, देखो! नीचे। **ऐसा स्वभाव सम्यग्दृष्टि जीव जानता है।** समझ में आया?

बुद्धि का सर्वस्व जिसने ऐसे जीव के। और कैसे जीव के? 'तत्त्वं समुत्पश्यतः' 'तत्त्वं समुत्पश्यतः' सत्तामात्र शुद्ध जीववस्तु... सत्ता—होनेवाली शुद्ध जीववस्तु। देखो! यह नीचे की बात चलती है सम्यग्दर्शन में। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा स्व-परप्रकाश चैतन्य की मूर्ति, ऐसी शुद्ध चैतन्यसत्व का तत्त्व, ऐसे तत्त्व को **सत्तामात्र शुद्ध जीववस्तु...** उसका '**समुत्पश्यतः**' दो व्याख्या '**तत्त्वं समुत्पश्यतः**' तत्त्व अर्थात् क्या? – कि होनेवाली (अस्तिरूप) अकेली शुद्धवस्तु, वह तत्त्व। '**समुत्पश्यतः**' अर्थात् क्या? सम्यक् प्रकार से '**समुत्पश्यतः**' सम्यक् प्रकार से अर्थात् **प्रत्यक्ष आस्वादता है।** देखो! साथ ही आनन्द आया। वह कहता था ऐ... पर को जानता हूँ... समझ में आया? यह स्व-पर को जानने का अस्तित्व तत्त्व ही ऐसा है। उस प्रकाशमय मूर्ति में मति को स्थापित करने पर '**तत्त्वं**' तत्त्व अर्थात् शुद्ध चैतन्यद्रव्य वस्तु जो है। '**समुत्पश्यतः**' देखा? '**समुत्पश्यतः**' सम्यक् प्रकार से अधिकरूप अनुभव करता है। उसे ही स्वयं को राग से भिन्न, विकल्प से भिन्न **सत्तामात्र शुद्ध जीववस्तु को...** '**सम्**' सम्यक् प्रकार से तत्त्व को '**उत्**' प्रयत्न से '**पश्यतः**' अर्थात् प्रत्यक्ष देखता है। यह आनन्दस्वरूप है – ऐसा प्रत्यक्ष आस्वाद आता है। उसे यह खबर पड़ती है – ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अर्थ भी कैसे किये हैं, देखो न! तत्त्व को देखे। तत्त्व भी '**तत्त्वं समुत्पश्यतः**' तीन शब्द पड़े हैं। '**तत्त्वं समुत्पश्यतः**' आहाहा! '**उत्**' – उग्ररूप से अपने सम्यक् प्रकार से तत्त्व को देखता है। देखता है अर्थात् तत्त्व को अनुभव करता है। कहो, समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है... लो! इसका भावार्थ। **जीव समस्त ज्ञेय को जानता है...** भगवान आत्मा तो सबको जानता है, बस! समझ में आया? जानता है। **समस्त ज्ञेय को जानता है, समस्त ज्ञेय से भिन्न है...** समस्त ज्ञेय को जानता है, परन्तु समस्त ज्ञेय से भिन्न है।

इन दो का वापस योगफल किया। आहाहा! टीका भी भारी आयी न! बाहर समय पर आ गयी, हों! यह पुस्तक समय पर बाहर आयी। आहाहा!

जीव भगवान आत्मा समस्त वस्तु को-ज्ञेय को जानता है। जानने पर भी **समस्त ज्ञेय से भिन्न है...** रागादि से भी भगवान ज्ञानस्वरूप आत्मा भिन्न है। **ऐसा स्वभाव सम्यग्दृष्टि जीव जानता है।** समझ में आया? आहाहा! एक-एक कलश भी पूरा सर्वज्ञपद। सर्व जानता है - ऐसा कहा न? अर्थात् सर्वज्ञपद ही हुआ। वह तो सर्व को जानता है। वह ज्ञान भले परोक्ष हो, परन्तु आनन्द के स्वाद से ज्ञान के साथ प्रत्यक्ष है। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है.... कि पूरे श्लोक का भाव अर्थ, तात्पर्य अर्थ ऐसा है कि भगवान चैतन्य ज्योति प्रभु! अब फिर साथ में दृष्टान्त देंगे। २१६ श्लोक में। लोगों को ख्याल दिलाने (के लिए)। **जीव समस्त ज्ञेय को जानता है, समस्त ज्ञेय से भिन्न है...** भगवान आत्मा क्षण में सब जानने पर भी सबसे भिन्न है। **ऐसा स्वभाव...** किसका? जीव का। **ऐसा स्वभाव सम्यग्दृष्टि जीव जानता है।** सम्यग्दृष्टि जीव ऐसे स्वभाव को जानता है, मानता है और अनुभव करता है। देखो! निकला वापस? उनमें सबमें आया न कि परद्रव्य को जाने... परद्रव्य को जाने... तो परद्रव्य आया। परन्तु रागादि? समझ में आया? यह सब आ गया। समस्त विकल्प से रहित सब आ गया। यह सब... सब... सब... यह तो वही बात है इसमें। और रागादि क्या? परद्रव्य अर्थात्? परद्रव्य, यह रागादि सब पर। भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु, ऐसी शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तु। परद्रव्य को जानने पर भी जानने के अस्तित्व में परद्रव्य से भिन्नपना रहा है। यह जानने में वह आया, ऐसा नहीं, जानना अलग रह गया है। जानने से परवस्तु अलग रह गयी है। जानना स्व-परप्रकाश का अपने में रह गया है। **ऐसा स्वभाव सम्यग्दृष्टि जीव जानता है।** अज्ञानी को उसका पता नहीं लगता। यह श्लोक पूरा हुआ।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

४ **श्री समयसार, गाथा - ६, प्रवचन - ४**

यह समयसार की छठवीं गाथा चलती है। शिष्य का प्रश्न था, महाराज! आपके गुरु के उपदेश से शुद्धात्मतत्त्व का जो उपदेश प्राप्त हुआ, उसके द्वारा आत्मा के शुद्धात्मतत्त्व का वैभव, अन्तर में से आत्मा के आनन्द का वैभव प्रगट हुआ। ऐसा आत्मा आपने जाना। उसे आप शुद्ध कहते हो। वह शुद्ध आत्मा कौन है? और कैसे प्राप्त होता है? जिसके आत्मा में यह एक ही धगश जगी है। यह आत्मा, वह शुद्ध कौन है? जिसे शास्त्रकार अथवा सर्वज्ञ की वाणी में शुद्धात्मा... शुद्धात्मा... शुद्धात्मा... यह कहते हैं, वह है किस प्रकार? ऐसी जिसे अन्तर में धगश (जगी है)। दूसरी लालसा, दूसरी इच्छाओं की इच्छा नहीं है। दूसरी इच्छाओं की इच्छा नहीं। जिसे दूसरे भाव की अन्तर में इच्छा नहीं है। जिसे यह आत्मा शुद्ध-पवित्र क्या है? ऐसी जिसे जानने की अनन्त काल में जो जिज्ञासा हुई नहीं, ऐसी जिज्ञासा हुई है, वह पूछता है। उसे यह उत्तर दिया जाता है। समझ में आया? यहाँ तक आया यह।

अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ 'शुद्ध' कहलाता है। क्या कहा? भगवान आत्मा अनन्त आनन्द आदि, ज्ञान आदि शुद्ध गुण का भण्डार-सागर चैतन्य रत्नाकर प्रभु आत्मा है। उस चैतन्य के रत्न के समुद्र में जैसे अनन्त रत्न पड़े हैं। वैसे भगवान आत्मा में अनन्त रत्न पड़े हैं। वह अनन्त चैतन्य-रत्नाकर किस प्रकार शुद्ध कहलाता है?— कि भाई! यह ज्ञायकभाव है, वह पुण्य-पाप के, शुभ-अशुभ के भावरूप तीन काल में कभी हुआ नहीं। ऐसे त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव को परद्रव्य के लक्ष्य के प्रेम से, आसक्ति से, दृष्टि को उठाकर, भगवान आत्मा के पवित्र स्वरूप की ओर जिसकी दृष्टि और ज्ञान का झुकाव, जिसमें आत्मा के स्वभाव सन्मुख हुआ है। होते-होते जो आत्मा परद्रव्य से भिन्न पड़कर स्वभाव के भान द्वारा जिसका सेवन हुआ है। ज्ञान-दर्शन-आनन्द की पर्याय द्वारा आत्मा अन्तर में एकत्व हुआ है, तब उस शुद्धपने की दशा का-अवस्था का भान हुआ, उसमें यह आत्मा शुद्ध ज्ञायक है, ऐसा ज्ञात हुआ। आहाहा! समझ में आया?

जो अनादि रागादि विकल्प की मिठास में पड़ा है, और चैतन्य ज्ञायकस्वभाव ढँक

गया था। अनादि रागादि विकल्प के प्रेम में आत्मा फँसा हुआ, भगवान अपने चैतन्य के तेज और आनन्द की शुद्धता को जान नहीं सकता था। वह जब भगवान आत्मा अपने स्वभाव की सन्मुखता की, विकार और विकल्प आदि व्यवहार तथा निमित्त से विमुखता होकर, शुद्ध चैतन्यस्वभाव के सन्मुख होकर, आत्मा शुद्ध भगवान ज्ञायक है—ऐसा अन्तर में सेवन किये जाने पर उसके भान में ऐसा आया कि अरे! यह आत्मा तो त्रिकाल शुद्ध है। तब उसे 'शुद्ध है' - ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में पर-सन्मुख के झुकाव के सेवन को छोड़कर, भगवान अपने निजस्वरूप के भान में अन्दर आया, निजघर को देखने आया; परघर में व्यभिचार अनादि से करता है, शुभ-अशुभराग के व्यभिचार में रुककर भगवान आत्मा के पूर्ण शुद्धस्वरूप को आड़ मारी थी, वह अपने शुद्धस्वरूप सन्मुख की मिठास के झुकाव से और विकार के—पुण्य-पाप की मिठास से छेदन से, भगवान आत्मा में अन्तर्मुख होने पर वह आत्मा आविर्भावपने को-प्रगटता को प्राप्त होता है। अर्थात् कि श्रद्धा और सम्यग्ज्ञान में 'यह आत्मा शुद्ध है' - ऐसा शक्तिरूप से जो था, उसे पर्याय में प्रगटरूप से जहाँ ज्ञात हुआ, तब वह आत्मा प्रगट हुआ—आविर्भाव-प्रसिद्ध हुआ, यह आत्मख्याति हुई। उसे आत्मा का अनुभव हुआ, उसे आत्मा शुद्ध है - ऐसा जानने में आया। गजब व्याख्या, भाई! समझ में आया?

यह धार्मिक की पहली क्रिया। आहाहा! उसकी रीति और विधि भी ख्याल में न हो, वह रीति और विधि का योग और प्रयोग और आजमाईश कैसे करे? समझ में आया? उसकी विधि का प्रयोग क्या है? उसकी जहाँ खबर नहीं, उसका योग और जुड़ान कहाँ करना और कहाँ से छूटना, इसकी खबर नहीं होती, उस आत्मा को आजमाना कि यह वह कौन है? उसे आजमाने के झुकाव में उसका वीर्य ढलता नहीं। समझ में आया? यहाँ तक आया।

अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ... उसी समय उसे '**शुद्ध**' **कहलाता है।** आहाहा! समझ में आया? यहाँ विशेषता तो यह है कि जो पुण्य और पाप के भाव का सेवन था, वह अनात्मा का सेवन था। समझ में आाय? भगवान अनाकुल आनन्द का नाथ, उसे छोड़कर विकार के विकल्प की मिठास में, सेवन में, भेंट में मिलाप में पड़ा था, वह संसारदशा, मिथ्यात्वदशा, परिभ्रमण की दशा थी। उसे भगवान आत्मा ऐसा पहले गुरुगम से जाना है। समझ में आया? यह चिदानन्द ज्ञायकज्योति ज्ञायकज्योतिस्वरूप सम्पत्ति से भरपूर पदार्थ, वह अरूपी होने पर भी उसकी अनन्त स्वरूप सम्पत्ति से भरपूर वह भगवान पदार्थ परमात्मा है। ऐसे योग को पहले विकल्प द्वारा ज्ञान और ख्याल हुआ था। उस ख्याल

को अन्तर में झुकाने पर, यह आत्मा, उसकी ओर की शक्ति का जो सत्व भरा है, उस ओर की एकाग्रता होने पर वह व्यक्तपनेरूप जो प्रगट दशा हुई—शुद्धता, वीतरागता, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रदशा—उस दशा में ज्ञात हुआ कि यह आत्मा शुद्ध है। इसके बिना किसी प्रकार आत्मा शुद्ध है, यह ज्ञात होने को और जानने को दूसरे प्रकार से योग्य नहीं है। समझ में आया?

अब उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है, यह बात अब गाथा के चौथे पद में है '**णादो जो सो दु सो चेव**' इतने शब्द है। भगवान आत्मा '**णादो**' ज्ञायक, वह ज्ञायक ही है। यह इसके चौथे पद का शब्दार्थ है। सूक्ष्म बात है, भाई! यह साधारण बात नहीं है। इसने अनन्त काल में आत्मा गम्य किया नहीं, इसलिए यह बात महँगी लगती है। कितने ही कोई-कोई कहता था कि हमें यहाँ सुननेवालों को, इसे सुनते-सुनते सहज झोंका आ जाता है। परन्तु बीच में कोई एकाध दृष्टान्त आ जाए और श्लोक का, देशी की ढब आ जाए तो और जागृत हो जाएँ। ***भाई! यह देशी और दृष्टान्त वस्तु को सिद्ध करने के लिए होते हैं। समझ में आया? परन्तु वस्तु की सिद्धि जिस प्रकार होती हो, उसे झोंका आवे, इसका अर्थ कि उसे इसकी दरकार नहीं है। उसे इसका गम्य होना चाहिए।*** स्वयं को ऐसा कहा कि हमारे परिणाम हमें दुर्लभ है। और विकारी परिणाम सुनना और समझना सुलभ है। समझ में आया? तो कहते हैं, भगवान! एक तू ही जानने और देखनेवाला तत्त्व और उसे जाना न जाए, देखा न जाए, कहते तुझे लज्जा नहीं आती?

यह 'अनुभवप्रकाश' है यह। अनुभवप्रकाश है। अनुभवप्रकाश। समझ में आया? भगवान! तू जानने-देखनेवाला तू, तुझे, तेरा। ऐसा जानने-देखनेवाला भगवान अनादि सनातन सत्यस्वरूप, उसे ऐसा कहना कि अरे! मैं मुझे ज्ञात नहीं होता। जानने-देखनेवाला स्वयं और मैं ज्ञात नहीं होता, भगवान! (ऐसा) बोलते हुए लज्जा नहीं आती? ऐसा कहते हुए तुझे लज्जा नहीं आती? उसके चैतन्य की तेज की शक्ति को संभालने के लिये जो प्रयत्न चाहिए, उस प्रयत्न की कचाश के कारण ज्ञात नहीं होता। समझ में आया? इसलिए यहाँ लिया है न कि भिन्नरूप से सेवन किये जाने पर शुद्ध कहलाता है। तेरा प्रयत्न—प्र—यत्न। प्र—विशेषपने और प्रयत्नपना अन्तर स्वरूप-सन्मुख ढलने पर वह ज्ञात ज्ञात हुए बिना, शुद्ध दिखे बिना, शुद्ध अनुभव में आये बिना रहता नहीं। समझ में आया? उसे जानने के लिए जितना कारण है, उतना दे नहीं; और ज्ञात नहीं होता - ऐसा कहना, इसकी इसे अन्तर शर्म है। समझ में आया? ***उसे जानने के लिये जितना कारण और प्रयत्न देना चाहिए, उतना कारण और प्रयत्न न सेवे और हमें ज्ञात नहीं होता - ऐसा कहना, यह लज्जा का वचन है।***

शास्त्रकार कहते हैं कि भाई! तुझे क्यों इतनी अधिक निर्लेपता हो गयी? समझ में आया? संसार चतुर का चातुरी आत्मा को जानने में वफम... पोपटभाई! संसार की चतुर का चातुरी, बात करे तो मानो देव का पुत्र उतरा। बैठे हों, पाँच-दस-बीस में इसका ऐसा हो और इसका ऐसा हो और इसका ऐसा हो। अलक-मलक की उतारे ऊपर से, विकथा और कुकथा। भगवान की वार्ता तुझे नहीं बैठती! और यह दुनिया की पर की कुथली में तुझे प्रेम में कितना काल जाए तो भी झोंका (निद्रा) आवे नहीं। नाटक में रात्रि में दो बज जाए तो उसमें चला जाए। यह भगवान, यह भी नाटक है न यह? यह समयसार नाटक है, भाई! समझ में आया?

भगवान आत्मा एक समय में ज्ञायकरूप प्रसिद्ध है, कहते हैं। अब वह ज्ञायकपने प्रसिद्ध है, इससे उसे ज्ञेय की अशुद्धता लागू पड़ती है या नहीं? यह बात यहाँ चलती है। चौथे पद की व्याख्या जरा सूक्ष्म है। देखो! क्या कहते हैं? **और जैसे दाह्य...** लकड़ी अथवा... यह तो पहले उपोद्घात बाँधा। जरा सूक्ष्म बात है, इसलिए इसे ध्यान रखने के लिए। भाई! तू तुझे न ज्ञात हो, ऐसा कैसे कहा जाए, भाई! जाननेवाला जानने से काम करे, जाननेवाला जानने से काम करे और वह जाननेवाला मैं ज्ञात नहीं होऊँ, भाई! तेरे प्रयत्न की कचाश और विपरीतता है। समझ में आया?

जिसे जानने से अनन्त आनन्द आवे.. आहाहा! जिसे ज्ञेय बनाने से अनन्त संसार के क्लेश का नाश हो, ऐसे भगवान को जानने के लिये जितना प्रयत्न चाहिए, उतना प्रयत्न न करे और ऐसा कहे कि मुझे आत्मा ज्ञात नहीं होता। भाई! ऐसा नहीं बोला जाता। समझ में आया? पाँच लाख का रत्न हो, वह पाँच निंबोली में लेने जाए तो ऐसे नहीं मिलता। समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप सत् सत् अनन्त गुण का साहेब यह आत्मा है। आहाहा! सहजात्मस्वरूप, भगवान अनन्त-अनन्त गुण का स्वस्वामिसम्बन्धवाला तत्त्व है, यह। आहाहा! ऐसे तत्त्व के कहते हैं कि ज्ञायकपना जो प्रसिद्धरूप से ज्ञान में आया और शुद्ध कहलाया, अब वह ज्ञायक है - ऐसा कहने पर ज्ञेय को जानता है - ऐसी अन्दर में ध्वनि उठती है। ज्ञायक.. ज्ञायक.. इसमें तो ऐसी ध्वनि उठी कि जानता है पर को, ऐसी ध्वनि उठी। जाननेवाला जानता है। जानता है, इसका अर्थ ऐसा आया कि कुछ पर को जानता है, इतनी पराधीनता तुझे इसमें आयी या नहीं? समझ में आया?

कहते हैं **(जलनेयोग्य)...** लकड़ी आदि अथवा... या धातु कि जो अग्नि में शीघ्र जल

जाती होगी, ऐसी कोई होगी। समझ में आया ? उसके **आकार होने से अग्नि को दहन कहते हैं...** अग्नि को अग्नि कहा जाता है। परवस्तु को जलाने के आकार से स्वयं हुई है, वह अग्नि का रूप है; वह लकड़ी का या जली चीज़ का वह रूप नहीं है। परन्तु कहा ऐसा जाता है कि इसे जलाती है, दहन है, यह छूना दहन है, दूसरे को जलाती है, ऐसा कहा जाता है, तथापि पर को जलाने के आकाररूप स्वयं हुई है, पर के आकाररूप हुई नहीं। समझ में आया ? यहाँ तो ज्ञेय को सिद्ध करते हैं और ज्ञेय के आकार ज्ञान का परिणमन स्व में होता है, यह भी सिद्ध करते हैं। उसे जानने पर आत्मा ज्ञात हुआ है, दूसरी बात ज्ञात नहीं हुई – ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया ? जरा यह तो मुद्दे की रकम की बात है। समझ में आया ? अकेले मक्खन की बात है। उसे मक्खन के पिण्ड से जैसे मिठास होने लगे, वैसी यह बात है। इसलिए शब्द जरा इसे कठिन पड़ते हों, परन्तु इसके भाव तो बहुत सरल हैं। समझ में आया ?

कहते हैं, इस दाह्यकृत अग्नि की भाँति दूसरी चीज़ को जलाने के काल में, दूसरी चीज़ जली, उसके आकार अग्नि हुई, इसलिए ऐसा कहा कि यह अग्नि दहन है, परन्तु अग्नि स्वयं के ही आकार हुई है, पर के आकार हुई नहीं। अग्नि अपने रूप में रहकर, अग्नि अपने रूप में रहकर अग्निरूप ही हुई है, पर जलाने के आकार अग्नि नहीं हुई। समझ में आया ? **तथापि उसके दाह्यकृत अशुद्धता नहीं होती...** इसलिए जलनेयोग्य पदार्थ के कारण यहाँ आकार ऐसा हुआ, परन्तु इससे पर के कारण यह दशा हुई है, ऐसी अशुद्धता अग्नि को लागू नहीं पड़ती। आहाहा!

उसी प्रकार... अब सिद्धान्त। **ज्ञेयाकार होने से उस 'भाव'...** वह भाव, भगवान ज्ञायकभाव, ज्ञायक भगवान, जाननस्वरूप, ज्ञेयाकार होने से। ये रागादि भाव है न ? ये सब ज्ञेय हैं। अन्दर रागादि विकल्प उठे न, वह ज्ञेय है। व्यवहार, दया, दान, भक्ति, पूजा आदि का विकल्प जो उठे, वह ज्ञेय है। ध्यान रखना। उस आकार होने से, उस समय ज्ञान में, जैसा राग था, उसरूप ज्ञान परिणमित हुआ है। उसरूप अर्थात् ? जैसा राग है, उस सम्बन्धी का-प्रकार का यहाँ ज्ञान आत्मा के ज्ञेयाकाररूप ज्ञान की दशा स्वयं से हुई है।

इस चौथे बोल में सद्भूत उपचारनय का विषय है, भाई! चार नय हैं। थोड़ी सूक्ष्म बात है। नय के चार प्रकार अध्यात्म में व्यवहार के हैं। एक सद्भूत उपचार, एक सद्भूत अनुपचार, असद्भूत अनुपचार और असद्भूत उपचार। सूक्ष्म बात है। हम शक्तिप्रमाण थोड़ा-थोड़ा स्पष्ट करते हैं। यहाँ चौथे पद में एक नय का निषेध करना है। भगवान आत्मा ऐसे राग जो होता है, उसे जानने पर भी उस रागरूप ज्ञान हुआ नहीं है। वह ज्ञान तो अपनी

पर्याय की उस काल की योग्यतारूप परिणमित ज्ञान ज्ञेयाकार से कहना, ऐसा व्यवहार है। वास्तव में तो ज्ञान, ज्ञानाकार परिणम रहा है। समझ में आया?

वह राग है, इसलिए ज्ञान ऐसा हुआ है, ऐसे ज्ञान की पर्याय को इतनी पराधीनता भी लागू नहीं पड़ती। जिस प्रकार का राग दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प उठता है, उसी प्रकार का ज्ञान स्व आकार से ज्ञान अपनेरूप परिणमता है, इसलिए उसे ज्ञेयाकार से परिणमित, इससे ज्ञेय की अशुद्धताकृत ज्ञान हुआ, ऐसा उसे लागू नहीं पड़ता। आहाहा! समझ में आया? अरे! यह बात सुनते हुए भी मिठास आवे, ऐसा है, भाई! अरे! परन्तु इसने कभी परमात्मा की बात सुनी नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यह कहा नहीं था? परसों कहा था न? आनन्दघनजी का नहीं कहा था? ऐई! प्रभु! अवसर मिला, हों! अब। ऐ साहेब अब तू चकना नहीं। बालिया मारा बालम तारा चैतन्य के तत्त्व को अब मत चूकना, भाई! बहुत चूका, प्रभु! बहुत काल गया, हों! समझ में आया? बालम मारा ऐ साहेब! तू तेरी चीज़ को अब मत चूकना। तेरे ज्ञान में ये चीजें... यहाँ तो भाई! वह व्यवहार आवे, उस सम्बन्धी का ज्ञान हुआ। परन्तु व्यवहार था, इसलिए ज्ञान हुआ – ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? उस समय ज्ञायक की परिणति का आकार ही उस प्रकार से स्वतः; राग, व्यवहार और विकल्प के कारण नहीं; स्वतः उस ज्ञान में परिणमन का ज्ञायक का भाव ही ऐसा, स्व आकार परिणमित है। उसे ज्ञेयकृत की अशुद्धता उस समय लागू नहीं पड़ती। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि **ज्ञेयाकार होने से उस 'भाव'...** वह कौन? ज्ञायकभाव। **ज्ञायकता प्रसिद्ध है...** जानत है... जानता है... जानता है, जाननहार जानता है – ऐसा प्रसिद्ध है, **तथापि उसके ज्ञेयकृत...** जानता है,... जानता है... भगवान आत्मा जानता है। जानता है अर्थात् कि मानो इस ज्ञेयरूप ज्ञेय को जानता है? ऐसा नहीं है। यह ज्ञेयकृत अशुद्धता उसे नहीं है। जो रागादि विकल्प उठे, उस प्रकार ज्ञान अपने आकाररूप परिणमने के स्वकाल में उस प्रकार से ज्ञायक परिणम रहा है। आहाहा! व्यवहार को सिद्ध करते हैं, उसका वापस ज्ञान परिणमन करके उसका निषेध करते हैं कि उसके कारण से यह ज्ञान नहीं है। समझ में आया?

कहते हैं **ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है; क्योंकि...** अब उसका कारण देते हैं, भाई! ज्ञेयाकार होने से उसे **अशुद्धता नहीं है; क्योंकि...** अब यहाँ कारण सिद्ध करते हैं। भगवान चैतन्य ज्योति ज्ञायक की मूर्ति प्रभु! अनन्त गुण का साहेब प्रभु है, यह उसे ज्ञायकपना प्रसिद्ध

है। ज्ञायक, ज्ञायक है – ऐसा प्रसिद्ध है। तथापि उसकी ध्वनि में ऐसा आया कि मानो यह पर को जानते, पर के कारण जानता हो, ऐसी एक पराधीनता जैसी आवाज उठे। 'जाननहार है' – ऐसा कहने पर। समझ में आया? परन्तु भगवान! यह तेरा ज्ञान उस समय जैसे रागादि के विकल्प (आवे), उसरूप परिणमने पर भी उनके कारण परिणमा है – ऐसा नहीं है।

भगवान आत्मा ज्ञायकमूर्ति चैतन्य, अपने ज्ञान की वर्तमान अवस्थारूप परिणमता, कारण कि **ज्ञेयाकार अवस्था में...** अब जरा सूक्ष्म बात में शब्द आते हैं। उस **ज्ञेयाकार अवस्था में...** अवस्था अपनी, भाई! आहाहा! कहते हैं कि उसे अशुद्धता क्यों नहीं है? ज्ञेयकृत राग हे, और वैसा राग का यहाँ ज्ञान हुआ। दया, दान के भाव आये तो वैसा ही यहाँ ज्ञान हुआ। ज्ञान हुआ, हों! दया, दान के भाव के कारण से ज्ञान नहीं। आहाहा! यह व्यवहार का ज्ञान हुआ; वह ज्ञान उसके (-व्यवहार के) कारण हुआ नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म सन्धि है, भाई! समझ में आया? यह आया था न, भाई! सन्धि-विसन्धि हुई नहीं। इष्टोपदेश में आया था। एक श्लोक में आया था। भिन्न हैं, वे एक हुए नहीं। व्यर्थ में तूने माना है। दो के बीच भिन्नता है। राग और राग का ज्ञान, दो के बीच अत्यन्त भिन्नता है। समझ में आया?

भगवान आत्मा अकेली चैतन्यशक्ति के नूरवाला प्रभु! जब पर का लक्ष्य छोड़कर स्व के लक्ष्य से चैतन्य का सेवन हुआ, अर्थात् ज्ञायकरूप आत्मा पर्याय में प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ और ऐसा कहने में आया कि वह जाननेवाला है। तो जाननेवाला है तो कुछ ज्ञात होती है, ऐसी चीज़ के कारण जाननेवाला है, ऐसी ध्वनि / आवाज उठती है। परन्तु उस ज्ञेयकृत ज्ञात होनेयोग्य चीज़ के कारण वहाँ ज्ञान स्वतः परिणमा है, वह पर के कारण परिणमा है – ऐसी अशुद्धता उसे लागू नहीं पड़ती। समझ में आया? आहाहा!

क्या कहते हैं? **क्योंकि ज्ञेयाकार अवस्था में...** अवस्था किसकी? अपनी। रागादि विकल्प है, उन्हें जाननेरूप ज्ञान परिणमा है। उस **अवस्था में जो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ...** ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ है, वह ज्ञेयरूप होकर ज्ञात नहीं हुआ। अन्दर ज्ञायकरूप ज्ञात हुआ। आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात है, भाई! इसका मार्ग ऐसा.. और अलग है कि इसके मार्ग को इसने कभी प्राप्त नहीं किया, इसलिए इसे महँगा लेता है। परन्तु इसकी चीज़ सहज चीज़ है, वह उसे महँगी कैसे हो?

भगवान सहजात्मस्वरूप, सहजात्मस्वरूप ऐसा भगवान ज्ञान की ज्योति पर की चीज़ के काल में, स्वयं अपने काल में पर की चीज़ के कारण बिना स्वतः अपना परिणमन हुआ,

उस समय ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ, वह तो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ है। मैं ज्ञायक हूँ – ऐसा ज्ञात हुआ है। मैं राग हूँ – ऐसा ज्ञात नहीं हुआ। आहाहा! परन्तु बहुत सूक्ष्म, भाई! बिहारीलालजी! अरे! यह बात। वकील के कानून निकालने हों तो... रस का कस कहते हैं न जरा? यह तो रस के कस का भी रस का कस... था।

भाई! यह तेरी पूरी महिमावाली चैतन्यमूडी पूँजी, भगवान! पड़ी है न! यह इसके भान-काल में इसे जानते हुए, इसे जानते हुए जाने, उसके आकार परिणमा, ऐसा बोला जाता है, परन्तु ऐसा है नहीं। भगवान अपने ज्ञायकस्वरूप रूप, उसकी अस्ति काल में राग और विकल्प की, दया, दान के व्यवहार की, हों! आहाहा! इससे यहाँ कहते हैं कि निश्चय को तो लाभ नहीं, परन्तु राग है, इसलिए ज्ञान को उसके कारण लाभ है – ऐसा नहीं। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया इसमें?

भगवान आत्मा चैतन्य के नूर से भरपूर प्रभु! यह राग विकल्प व्यवहार बीच में आता अवश्य है। पूर्ण वीतराग हो, तब तक ऐसे विकल्प-शुभभाव हों, परन्तु कहते हैं कि शुभभाव है, इसलिए निश्चय प्राप्त होता है, यह तो निकाल दिया। उसके लक्ष्य को बदला और ऐसे लक्ष्य किया, तब प्राप्त हुआ। वह तो पहले निकाल दिया। अब रागसम्बन्धी का ज्ञान हुआ, उसे भी अब यहाँ तो निकाल देते हैं। ऐ.. नवरंगभाई! गजब मार्ग, भाई यह तो! अरे, बापू! तेरा मार्ग तो बड़ा ही होगा न, भाई!

'देखो एक अपूर्व खेला, आप बाजी और आप बाजीगर, आप गुरु-आप चेला। देखो! यह अपूर्व खेला।' भगवान जाननहार स्वयं और ज्ञात होनेयोग्य भी स्वयं। समझ में आया? देखो! 'देख एक अपूर्व खेला...' भगवान आत्मा उस राग को जानता है – ऐसा नहीं, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। आहाहा! **ज्ञेयाकार अवस्था में...** प्रभु! कोईक कहे, **ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ...** रागरूप से ज्ञात हुआ, व्यवहाररूप से ज्ञात हुआ – ऐसा नहीं।

श्रोता : राग के कारण ज्ञात हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा भी नहीं है, वह ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ है। समझ में आया? इस ज्ञेयाकार अवस्था में भगवान ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ है; जाननहार जाननहार रूप से ज्ञात हुआ है, जाननहाररूप से ज्ञात हुआ है, ज्ञात होनेयोग्यरूप से ज्ञात हुआ है। राग ज्ञात होनेयोग्यरूप से ज्ञात हुआ है – ऐसा नहीं। गजब बात...!

वह **ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ...** भाषा क्या है? – कि उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता क्यों नहीं

है ? उसका कारण यहाँ देते हैं। कारण देते हैं। कारण अर्थात् ? कि जो भगवान आत्मा अपनी शक्ति के सेवन में जहाँ आया, और शक्ति की व्यक्त दशा सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ, उसके द्वारा शुद्ध है – ऐसा भान हुआ; अब उसका परिणमन राग और भिन्न-भिन्न प्रकार के विकल्प उठें, उस प्रकार वह ज्ञान स्वत: स्व को जानता हुआ पर को जाननेरूप स्वत: परिणमन की योग्यता से परिणमता है। उस समय राग को ज्ञान जानता नहीं; ज्ञायक, ज्ञायक को जानता है। समझ में आया ? आहाहा ! भाई ! यह तो चैतन्य के खेल हैं। उसे खेल कभी उसने खेले नहीं। समझ में आया ? यह ज्ञानी की कसरत में व्यायाम लेने कभी आया नहीं। यह व्यायाम-कसरत करते हैं न ? देखो न दौड़ धाम... हम जहाँ उतरते हैं, वहाँ पीछे बहुत हैं वे। शाम को लड़के बहुत आते हैं।

कहते हैं कि भाई ! इस सम्यग्ज्ञान की कसरत में – व्यायाम में तू कभी आया नहीं। यह व्यायाम कैसे हो और अन्दर में चैतन्य की कसरत कैसे हो ? भगवान आत्मा अपने ज्ञान की श्रद्धा द्वारा जहाँ चैतन्य को पकड़ा है, अब कहते हैं कि वह ज्ञायक ही ज्ञात होते नयी-नयी अवस्थारूप परिणमता है। ज्ञायकरूप से ज्ञात होता परिणमता है। पर को जनाता, पर को जानता परिणमता नहीं। बहुत भारी सूक्ष्म, भाई ! समझ में आया ?

ज्ञेयाकार अवस्था में जो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ वह स्वरूपप्रकाशन की (स्वरूप को जानने की) अवस्था में भी... ज्ञायक ही है, ज्ञायक ही है। पर को जानने के समय भी ज्ञायक ही है और स्व को जानने के काल में भी वह ज्ञायक ही है। उसमें ज्ञायक के दो भाग पड़ गये हैं – ऐसा नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? **स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में भी...** कहा, फिर ज्ञायकपने, ज्ञेयपने परिणमा है, तो भी वह ज्ञायकरूप रहकर परिणमा है। समझ में आया ? और उसे ज्ञायकरूप से ऐसे देखने पर वह स्वयं ज्ञायकरूप ही है। स्व को... काल तो स्व का है। ज्ञायकरूप से ज्ञात होता है और स्व के काल में ज्ञायकरूप ही ज्ञात होता है।

दीपक की भाँति... दीपक की भाँति। दृष्टान्त देते हैं। अब जरा ध्यान रखना, हों ! **कर्ताकर्म का अनन्यत्व होने से...** क्या कहते हैं ? **स्वरूपप्रकाशन की (स्वरूप को जानने की) अवस्था में भी...** ... यह अन्तिम शब्द है वह। वह ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप से जो ज्ञात हुआ, अरे ! ऊँची आमदनी की जगत की बात होवे तो कितना ध्यान रखकर, नींद उड़ाकर सुनता है। समझ में आया ? धूल की बात मिले और पाँच हजार की आमदनी हो। धूल है। तुझे ममता के पोटले बाँधना है। होली सुलगने की बात सुननी होवे तो इसे प्रेम आता है, रात्रि में दो बजे तक (भी प्रेम से सुनता है)।

भाई! इस चीज़ में जिसमें आँख मिचती नहीं और जिसमें आँख खुले, ऐसी बात... आहाहा! इस चैतन्य के खेल में खेलता भगवान आत्मा, यहाँ जागृत की बात है न अब? ... बाद की बात है न, भाई यह? आहाहा! कहते हैं कि यह जानना... जानना.. ऐसा प्रसिद्ध होने से, मानो कि पर को जानना, ऐसा प्रसिद्धपना पाता होगा? - कि नहीं। वह पर को जानने के काल में भी स्वयं अपने को ही जानता है। समझ में आया? कहो, विट्ठलभाई! और मूलजीभाई याद आ गये अन्दर में। अन्तिम है न थोड़ा...

आत्मा है, भाई! ध्यान रखना, इस शरीर का रोग आत्मा में ज्ञात होता है। उस रोग और काया का जाननेवाला आत्मा है। उन्हें जाननेवाला है। उन्हें जाननेवाला है? अन्तिम शब्द कौनसा? रवजीभाई कहते थे। यह बात... पर को जाने? - या आत्मा, आत्मा को जाने? वीर्यवान व्यक्ति थे न! बहुत घोंटा हुआ है न! ...भाई! 'काया का धर्म जीवपद में जणाय छे।' अर्थात् काया में रोग है, ऐसा जीव जाने? शरीर में रोग है - ऐसा जाने? - या उस रोग के काल में ज्ञान, ज्ञानरूप परिणमा, उसे ज्ञान जाने? ऐई! ....भाई! मूलजीभाई वीर्यवाले थे, हों! बड़खमदार थे... अलग प्रकार के थे। कैसा रोग? यह क्या कहलाता है तुम्हारे? हार्टफेल। आत्मा उसका जाननेवाला है। वह रोग जड़ की चीज़ है। उसका जाननेवाला है? उस सम्बन्धी ज्ञान अपना अपनेरूप हुआ, उसका वह तो जाननेवाला है। समझ में आया? आहाहा! उसने बहुत सुना था न, भाई! एकबार अव्यक्तरूप से भी इसके ज्ञान में यह बात रुचि से होना चाहिए।

भगवान आत्मा ज्ञेयाकार दशा में भी ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ। इसमें पुनरुक्ति दोष नहीं लगता, हों! रंक को गुड़ की डली मिले तो वह गुड़ की डली झट नहीं निगलता, ऐसे मुँह में फिराता है। एकदम तोड़कर खा जाए तो देरी लगे नहीं। इसी प्रकार आत्मा के आनन्द का अनुभव, उसे अधिक देर लगे, उसमें उसे अधिक आनन्द आवे। कहते हैं, भगवान आत्मा, चैतन्य का तेज जैसा स्वरूप है, वैसा आत्मा के भान में प्रकाशित हुआ। अब भान-काल में राग को जानता हुआ ज्ञान रागरूप नहीं परिणमता, वह ज्ञानरूप परिणमता हुआ ज्ञायकरूप ज्ञात हुआ है; रागरूप है - ऐसा वह ज्ञात नहीं हुआ है। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा कठिन पड़े, परन्तु यह संग्रहयोग्य है। समझ में आया? बनिये को भी यदि चार रुपये मण मिलता हो और यहाँ आठ रुपये उपजते हों तो थोड़ा माल संग्रह कर रखता है। जितने रुपये हों, उतने निकालकर संग्रह कर रखता है। लाख, दो लाख, पाँच लाख... यह बात संग्रहयोग्य है, भाई! तेरे घर की बात तुझे जगाये, ऐसी यह बात है।

पर की पराधीनता इसे नहीं है, ऐसा कहते हैं। राग को जानने का ज्ञान परिणमा, वह राग के कारण नहीं, वह राग के कारण, ज्ञेय के कारण नहीं और ज्ञेय को जानता है – ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? अरे! इस स्थिति की इसे खबर नहीं और इसे अन्दर में धर्म हो? समझ में आया?

कहते हैं कि यह भगवान आत्मा... ऐसा नहीं समझना कि हम शरीर से छोटे हैं, इसलिए बालक हैं या हमारा स्त्री का शरीर है, इसलिए... आत्मा बालक-स्त्री-पुरुष है ही नहीं। बाहर की हड्डियों के आकार भगवान आत्मा को छूते नहीं, स्पर्श नहीं करते। यहाँ तो अन्दर का राग ज्ञान को स्पर्श नहीं करता, ऐसा कहना है। समझ में आया? शरीर के आकार ऐसे धूल और सुन्दर, इन्द्रियाँ और मिट्टी-धूल का पुतला था। भगवान चैतन्य अरूपी चीज़ में उनका स्पर्श नहीं है। वे तो बाहर के बाहर लटके और फिरा करते हैं।

भगवन आत्मा चैतन्य के भान से जहाँ अन्दर शुद्ध हूँ, ऐसा पर्याय में अवस्था में भान हुआ, उस अवस्था में भिन्न-भिन्न राग के काल में ज्ञान भी तत्प्रमाण परिणमने लगा, इसलिए उसे राग के कारण यहाँ पराधीनता है और राग को जानता है – ऐसा नहीं है। भगवान स्वतन्त्ररूप से उस काल में ज्ञानरूप उस प्रकार के परिणमन में स्वयं ज्ञायकरूप से ज्ञात होता है। जाननेवाले को जानता हूँ, पर को नहीं। समझ में आया? अध्यात्म के चार नय में एक नय का इसमें निषेध करते हैं। सद्भूत उपचारनय का। उसे जानता है, ऐसा प्रमाणज्ञान कहना, वह भी सद्भूत उपचार व्यवहारनय है। वह तो स्वयं अपने को जानता है। समझ में आया? आहाहा!

क्योंकि ज्ञेयाकार अवस्था में जो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ... ज्ञात कैसे हुआ? ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ। आहाहा! उसकी दशा में यह राग का आकार कहाँ घुस जाता है? यह दया, दान, भक्ति, व्रत का विकल्प उठे, वह ज्ञान की दशा में कहाँ स्पर्शता है? भाई! यह चैतन्य के तेज से परिणमता गोला, अपने भाव से स्वयं रागादि जैसे भाव हों, उस प्रकार से परिणमता होने पर भी उसे पर के कारण से परिणमन है, और पर को जानता है – ऐसा उसे लागू नहीं पड़ता। आहाहा! समझ में आया?

वह किसकी भाँति? **दीपक की भाँति...** ज्ञायक ही है – ऐसा लेना, भाई! **स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में भी, दीपक की भाँति...** ज्ञायक ही है। अर्थात् इस दृष्टान्त को सिद्ध करके ज्ञायक को सिद्ध करते हैं। कि **दीपक की भाँति, कर्ताकर्म का अनन्यत्व होने से...**

अर्थात् ? **ज्ञायक ही है-स्वयं जाननेवाला है इसलिए स्वयं कर्ता...** देखो ! जाननेवाला यह स्वयं और स्वयं जाननेवाला **कर्ता और अपने को जाना...** ज्ञायक को ही यह **स्वयं ही कर्म है।** यह ज्ञायक, वह कर्म, हों ! ज्ञायक जाननेवाला, वह कर्ता स्वयं और स्वयं। ज्ञात हुआ ज्ञायक, वह कर्म। ज्ञात हुआ वह कर्म। राग ज्ञात नहीं हुआ। दीपक की भाँति ज्ञायक ही है। अर्थात् इस दृष्टान्त को सिद्ध करके ज्ञायक को सिद्ध करते हैं।

दीपक की भाँति, कर्ताकर्म का अनन्यत्व होने से... अर्थात् ? - कि ज्ञायक है, इसलिए स्वयं जाननेवाला, इसलिए स्वयं कर्ता। देखो ! जाननेवाला वह स्वयं और स्वयं जाननेवाला, वह कर्ता और अपने को अर्थात् ज्ञायक को जाना, वह स्वयं कर्म। यह ज्ञायक, वह कर्म, हों ! ज्ञायक जाननेवाला, जाननेवाला, वह कर्ता स्वयं का स्वयं। ज्ञात हुआ ज्ञायक, वह कर्म, ज्ञात हुआ वह कर्म। राग ज्ञात नहीं हुआ आहाहा ! ऐसा ज्ञायक। इसका ज्ञायक आत्मा पर्याय के निर्मलरूप परिणमता कर्ता ज्ञायक को जानता है। सूक्ष्म है न, बापू ! यह तो मार्ग दूसरा है न। इसलिए इसे जरा धीरज तो रखनी पड़ेगी। इसमें कितनी धीरज चाहिए। जिसमें विकल्प को अवकाश नहीं। दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प उठें, ऐसा जिसमें अन्दर में अवकाश नहीं। वह इसे जानना, ऐसा इसमें अवकाश नहीं। आहाहा ! चन्दुभाई !

भगवान चैतन्य के तेज से भगवान विराजमान स्वयं अपने धाम में अन्दर आया। जाना कि मैं शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द हूँ। उस समय की उसकी दशायें जो होती हैं, उस दशा को मानो ज्ञेय से हुई हों, ऐसा तो नहीं परन्तु ज्ञेय को जानती है - ऐसा नहीं। ज्ञायकरूप से ज्ञात होता है। भगवान आत्मा ज्ञान की पर्यायरूप कर्ता होकर ज्ञायक को जानता है। भगवान आत्मा ज्ञायक की पर्याय के परिणमनरूप होकर, वह कर्ता और ज्ञायक को जानता है। वह वस्तु, वह कर्म हुआ।

कर्ता और कर्म के छह बोल हैं न ? कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण - छह विभक्ति है। उनमें यहाँ दो लागू किये हैं कि कर्ता भगवान आत्मा अपने ज्ञान शुद्ध परिणमन की पर्यायवाला कर्ता। ज्ञेय नहीं, राग नहीं, भाई ! आहाहा ! भगवान चैतन्यस्वरूप ज्ञान से परिणमता यह आत्मा स्वयं कर्ता। ज्ञायक - ऐसे ज्ञात हुआ। यह ज्ञात हुआ है, वह इसका कर्म। सूक्ष्म बहुत है, भाई ! समझ में आया ? परन्तु बापू ! तेरी बात सूक्ष्म होगी न ? तू कहीं इन्द्रियग्राह्य है ? यह इन्द्रियाँ तो जड़-मिट्टी है। इनसे आत्मा ग्राह्य है ? ये निमित्त होवें तो यह धूल-पर (को) जानने में निमित्त हो, परन्तु कहीं स्व को जानने में ये काम आवे ? ये तो मिट्टी-धूल है।

यह अतीन्द्रिय भगवान आत्मा अपनी अतीन्द्रिय पर्याय से प्रगट हो, ऐसा प्रभु! यह अतीन्द्रिय ज्ञानरूप परिणमता, स्वयं ही कर्ता और अपना ज्ञायकपना, वह इसका काम अर्थात् कर्म। समझ में आया? अब कर्ता-कर्म और कुछ सुना नहीं हो। ऐसे तो आता है विद्यालय में... व्याकरण में आता है कि देवदत्त कर्ता और वह आम काटे, वह कर्म। उसकी क्रिया होती है, वह ऐसी। अमुक ऐसा बहुत-बहुत आता है। परन्तु वह आम.. बाड़ी में... आधार देते हैं न? कर्ता, कर्म, करण-साधन इसके लिये अथवा इस द्वारा आम काटा, आम कटा, वह काम हुआ। काटने की क्रिया हुई, कर्ता देवदत्त हुआ, उसने करण अर्थात् हथोड़ी अथवा छुरी द्वारा, वह करण हुआ, बाड़ी में काटा, आधार हुआ। वहाँ भिन्न-भिन्न कहते हैं न? छह कारक आत्मा में अभिन्न है। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान आत्मा ने अपने ज्ञायकस्वभाव के परिणमन से कर्ता होकर स्वयं अपने आधार में स्वयं अपने ज्ञायकरूप स्वयं जानता है। समझ में आया? स्वयं जाननेवाला, इसलिए स्वयं कर्ता, उसका वह जाननेवाला, इसलिए कर्ता और अपने को जाना, ज्ञायक को, हों! आहाहा! स्वरूप ज्ञायक भगवान को जाना। उसे जाना, वह कर्म। यह जाना, वह कर्म कहलाता है। समझ में आया? जिसके द्वारा ज्ञात हुआ, वह कर्ता हुआ। यह ज्ञात हुआ वह कर्म हुआ। ज्ञायक स्वयं ज्ञान की पर्याय अवस्था से परिणमता कर्ता, ज्ञायक को जाना। आहाहा! समझ में आया? यह भगवान की स्वतन्त्रता की लहर की लोरियाँ ऐसी हैं। समझ में आया इसमें? रतिभाई! इसकी बात तो अद्भुत न होवे तो किसकी होगी? जो जगत की कीमत करनेवाला, उसकी कीमत की क्या बात!

भगवान आत्मा स्वयं ज्ञायक है और स्वयं ही कर्ता तथा जाननेवाला स्वयं। **जैसे दीपक...** ध्यान रखना। दीपक **घटपटादि को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक है...** घट-पट को प्रकाशित करने के काल में भी दीपक तो दीपक ही है, कहीं घटपटरूप हुआ नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा पुण्य-पाप, दया, दान विकल्प के जानने के काल में जाननेवाला ही रहा है, वह रागरूप हुआ नहीं। दीपक कहीं घट-पट को प्रकाशित करने के काल में दीपक घट-पटरूप हुआ नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा जाननहार... जाननहार... जाननहार, वह राग-द्वेष, पुण्य-पाप और दया, दान के विकल्प को जानने के काल में भी ज्ञायक ही रहा है। घट-पट को प्रकाशित करने के काल में भी दीपक, दीपकरूप ही रहा है। समझ में आया? ऐसी धर्म कथा होगी? यह! तुमने धर्मकथा सुनी हो तो कुछ ऐसी हो.. ऐसी हो.. वह सब यह तेरी बादशाही की बातें हैं, बापू! उस चैतन्य बादशाह की यह बात और

उसकी कथा माँडी है। यह भागवत कथा है। आहाहा! नियमसार में आता है न? भागवत शास्त्र है, भगवान का शास्त्र है, यह। आत्म भगवान, ऐसा भागवत, उसका यह शास्त्र है।

कहते हैं, वह दीपक स्वयं अपनी ज्योति... अब विशिष्टता यहाँ है, भाई! **जैसे दीपक घटपटादि को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक है, और अपने को-अपनी ज्योतिरूप शिखा को...** दीपक स्वयं को अपनी ज्योतिरूप शिखा को **प्रकाशित करने की अवस्था में...** ज्योतिरूप शिखा को प्रकाशित करे, स्वयं अपने को प्रकाशित करने की अवस्था में (भी) दीपक ही है। समझ में आया? दीपक का दृष्टान्त इसलिए देते हैं कि जरा इसे सिद्धान्त समझने में सरल पड़े। वहाँ से उठाकर अन्दर में ले जाने के लिए दृष्टान्त दिया जाता है। दृष्टान्त, दृष्टान्त के लिये नहीं होता।

कहते हैं, भगवान! यह दीपक है, वह घट-पट ऐसे हैं, ऐसा बतलाता है, तो भी प्रकाश के प्रकाश स्वरूप से हटकर कहीं घटपटरूप हुआ नहीं। दीपक तो दीपकरूप रहकर ही दीपक को प्रकाति करता है। इसी प्रकार चैतन्य ज्योति भगवान आत्मा (का) सम्यक् भान हुआ, इसलिए राग-द्वेष को प्रकाशित करते हुए कोई राग-द्वेषरूप हुआ नहीं; वह तो ज्ञायकरूप रहकर राग-द्वेष को प्रकाशित करता है। समझ में आया? वह **ज्योतिरूप शिखा को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक है,...** हों! वापस ऐसा कहा। स्वयं को प्रकाशित करने के काल में भी दीपक ही है। घटपटादि अवस्था में भी दीपक है और अपनेरूप दीपक ही है। राग-द्वेष को जानते समय (भी) आत्मा ज्ञायक है, अपने को जानते समय भी ज्ञायक है। समझ में आया? इस दीपक की भाँति... दीपक ही स्वयं कर्म हुआ। आहाहा!

दीपक ने स्वयं को ज्योति द्वारा दीपक को प्रकाशित किया है। दीपक कर्म हुआ। दीपक पदार्थ पूरा कर्म हुआ। वस्तु पूरी कर्म हुई। वह अन्य कोई नहीं। दीपक अन्यरूप हुआ नहीं। इसी प्रकार ज्ञायक का समझना। ऐसे भगवान चैतन्य ज्योति ऐसे जहाँ अन्तर में स्वभाव की दृष्टि पड़ी, तब राग को प्रकाशित करने के काल में भी ज्ञायक, ज्ञायकरूप से प्रकाशित करता है और अपने को प्रकाशित करने के काल में भी ज्ञायक को ज्ञायकरूप रहकर जानता है। पररूप होकर पर को जानता है या स्वपने में परपना नहीं है; इसलिए स्वपने को जाननेरूप स्वपने रहता है - ऐसा नहीं; पर को जानने के काल में भी स्वपने रहकर ही जानता है। स्व को जानता है। स्व को जानने के समय स्वपने रहकर स्व को ही जानता है। ऐसा इसका स्वरूप प्रसिद्ध अन्दर में होता है। यह इसे धर्मदशा और सम्यग्दर्शन कहते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

५

श्री समयसार, गाथा - ६, प्रवचन - ५
दिनांक - २८-०४-१९६६

यह समयसार। वार्ता पूरी हो, फिर होवे न! यह समयसार छठवीं गाथा है। इसमें शिष्य ने प्रश्न किया है। यह आत्मा, उसे जानना चाहिए, वह आत्मा शुद्ध है। शुद्ध है, इसलिए जानना चाहिए और यह जानने से ही आत्मा को कल्याण का कारण होगा। कोई कहे - आत्मा शुद्ध कैसा है ? कि जिसे जानने से सब ज्ञात हो और जिसे जानने से आत्महित हो। उस आत्मा को ज्ञायक कहा। पहले बहुत व्याख्या हो गयी है। यह और चौथा बोल थोड़ा सार आया, इसलिए फिर से लेते हैं।

आत्मा एक समय में आदि-अन्त रहित, स्पष्ट अन्तर में प्रगटरूप चैतन्यज्योति सूर्य आनन्दकन्द है। वह आत्मा... पहले कहा गया है कि शुभ-अशुभभाव जो होते हैं, जिनसे नये पुण्य और पाप बँधते हैं, ऐसे शुभ-अशुभभावरूप यह ज्ञायक चैतन्य वस्तु हुई नहीं। समझ में आया ? वस्तु जो है चिद्घन ज्ञायकमूर्ति, वह ज्ञानस्वभाव भगवान आत्मा; इन शुभाशुभराग, ये भाव—इनरूप चैतन्य द्रव्य वस्तु हुई नहीं। हुई नहीं, इसलिए उसे प्रमत्त और अप्रमत्त, ऐसे भेद लागू नहीं पड़ते। समझ में आया ?

जो पूर्ण भगवान अन्तर्दृष्टि, सम्यग्दृष्टि का विषय। 'एक देखिये जानिये रमि रहिये इक ठोर, समल-विमल न विचारिये।' वह प्रमत्त है या अप्रमत्त है या निर्मल होगा, यह जिसके भेद में-पर्याय में है, वह वस्तु में नहीं। वस्तु जो ज्ञानघन चैतन्य ज्योति आनन्दकन्द मूर्ति (है), वह तो शुभ-अशुभ विकल्प और कर्म को बाँधनेवाला जो भाव, उस बाँधनेवाले भावरूप परिणमित नहीं हुआ, इसलिए वह त्रिकाल अबन्धस्वरूप ही है। समझ में आया ? उस ज्ञायक को इस कारण से प्रमत्त-अप्रमत्त के भेद; शुद्ध ज्ञान-आनन्दस्वरूप अन्तर दृष्टि करनेयोग्य जो पदार्थ है, उसमें वह लागू नहीं पड़ता।

अब उसमें एक ध्वनि उठी कि ज्ञायक है न... जानन है न... जानन है न..! वह ज्ञायक-जानक है तो ऐसा प्रसिद्ध अर्थ उठा कि वह कुछ पर को जानता है। तो पर को जानता है, इतनी तो उसमें परपने की अपेक्षा आयी, तो उस ज्ञायकपने को इतनी पराधीनता, अशुद्धता,

इतनी तो पर-अपेक्षा उसमें आयी या नहीं ? जरा सूक्ष्म बात है। परन्तु सूक्ष्म तो सूक्ष्म ही होगा न ? भगवान आत्मा एक समय मैं चैतन्य ज्ञायकस्वरूप, उसे ऐसा हो कि जानक है, जानक है वह। ऐसा कहने पर मानो ज्ञेय-ज्ञात होनेयोग्य चीज़ को जानता है, इतनी अपेक्षा उसे आयी या नहीं ? उसे इतनी अशुद्धता लागू पड़ी या नहीं ? कि नहीं। क्यों ? दृष्टान्त (देते हैं)।

दाह्य के आकार होने से... यह तो दाह्य चाहे जो जलने के योग्य। फिर कोई नाम का कुछ (काम नहीं)। दाह्य अर्थात् जलनेयोग्य जो चीज़ है, उसके **आकार होने से अग्नि को दहन कहते हैं...** मानो कि जलनेयोग्य को जलाती हो। मानो कि दहन अग्नि जलनेयोग्य को जलाती हो और उसरूप होती हो, ऐसी दहन शब्द में मानो ध्वनि उठती हो, तथापि कहते हैं कि **उसके दाह्यकृत अशुद्धता नहीं होती,...** जलनेयोग्य चीज़ की अपेक्षा से वह अग्नि परिणमित है - ऐसा नहीं है। जलनेयोग्य वस्तु के आकार परिणमी है - ऐसा नहीं है। वह तो - अग्नि तो अग्नि के आकार ही (रही है)। आहाहा! वर्तमान दशा की बात करते हैं, हों! आहाहा!

ज्ञायकपना, एक वस्तु का त्रिकालपना, वह वस्तु तो ज्ञायक ही है, कहते हैं। परन्तु उसमें ज्ञेय पर्याय में-अवस्था में ज्ञात होनेयोग्य वस्तु को जाननेरूप परिणमा न ? इसलिए उस अवस्थारूप हुआ न ? - कहते हैं, नहीं। जाननेयोग्य वस्तु का जो स्वरूप, उसका जो अपना ज्ञान, वह अपने ज्ञायकरूप स्वयं परिणमा है। परिणमा है अर्थात् कि हुआ है। ज्ञायक अपनी सत्ता में उस ज्ञायकरूप परिणमकर हुआ है। वह ज्ञेय, जैसे दाह्य / जलनेयोग्य के आकार अग्नि होने पर भी अग्नि तो अपने ही आकार हुई है, पर के आकार हुई नहीं। पर्याय स्वयं से स्वतंत्र परिणमी है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? वह तो भाई यह देरी से आवे और देरी से बैठे, यह तो सब ऐसा चलता है। समझ में आया इसमें ?

वस्तु चैतन्य ज्योति मानो कि पर को जानने से पर का जानना इसमें आया, ऐसा जानना आया न ? - कहते हैं, नहीं। वह तो स्वयं ही जाननेरूप हुआ, इसलिए स्वयं अपने को ही जानता है। समझ में आया ? ये रागादिभाव, व्यवहार विकल्प हों, उनरूप यहाँ ज्ञान परिणमा है—ऐसा नहीं है। ज्ञान अपनी स्वसत्ता में - अपने अस्तित्व में - स्वयं ज्ञेयाकार का जो स्वरूप, ऐसे ज्ञानाकाररूप आत्मा स्वयं, स्वयं से हुआ है, ज्ञेय के कारण हुआ नहीं। भारी सूक्ष्म बात, भाई!

यहाँ तो अन्तर्मुख देखने से वह ज्ञान रागरूप मानो ज्ञेयपने ज्ञेयनिष्ठ होकर परिणमा हो,

ऐसा ज्ञायक की ध्वनि में ऐसा आता है, परन्तु ऐसा नहीं है। ज्ञायक तो त्रिकाल रहा। परन्तु वर्तमान में जो रागादि को जानने के काल में मानो कि राग को जानता हो, ऐसे जानता है, ऐसा मानो कि ध्वनि में आया हो, तथापि वह ज्ञान, स्वयं अपनेरूप परिणमकर स्वयं अपने को जानता है। समझ में आया? परन्तु सूक्ष्म बहुत, भाई! साधारण लोगों को तो यह... परन्तु बापू! जिसे हित करना है, वह कहीं अन्तर की चीज़ को देखे बिना और उसकी स्वतन्त्रता की मर्यादा अन्तर दृष्टि में आये बिना उसका हित हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

भगवान चैतन्यस्वरूप अनादि सनातन शाश्वत् ज्ञायक प्रभु! कहते हैं कि वह तो ज्ञायक तो ज्ञायक ही है, परन्तु यह जानने के काल में ऐसा कुछ होता है न? भाई! कहते हैं, ज्ञेयाकार होने से वह भाव अर्थात् ज्ञायकभाव, उसे ज्ञायकपना प्रसिद्ध ध्वनि में ऐसा आता है, तो भी उसके जानने के भावरूप परिणमा है, ऐसा नहीं है। **उसके ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है...** ज्ञात होनेयोग्य वस्तु के कारण से हुआ है – ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अन्तर्मुख देखने पर वह ज्ञायक, ज्ञायकरूप है और वर्तमान रागादि अथवा ज्ञेय दूसरा पदार्थ जो हो, उस प्रकार से मानो ज्ञान परिणमित हुआ हो, अवस्था में हुआ हो, परन्तु वह पर के कारण हुआ नहीं है। उस प्रकार के ज्ञान का आकार अर्थात् विशेषपना अपनी अस्ति में, मौजूदगी में, हयाति में स्वयं के कारण स्वयं ज्ञान ज्ञेय के जाननेरूप हुआ, वह अपनेरूप हुआ है; ज्ञेयरूप हुआ नहीं। समझ में आया?

क्योंकि ज्ञेयाकार अवस्था में... अर्थात् अवस्था ज्ञेय-आकार कही, वह तो व्यवहार कहा। रागादि ज्ञेय के आकार अर्थात् कि वह तो निमित्त से कथन किया, परन्तु ज्ञेयाकार की अवस्था अपने में अपने कारण से हुई। आहाहा! ज्ञायकरूप से जो ज्ञात हुआ। ज्ञान चैतन्य भगवान पर का ज्ञान करने के काल में स्वयं ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ है, वह ज्ञेयरूप से ज्ञात नहीं हुआ है। यह तो अन्तिम में अन्तिम मक्खन की बात है। अकेला तत्त्व चैतन्य भगवान नितरता, ज्ञायकभावरूप से तो विराजमान है, परन्तु वर्तमान पर्यायरूप परिणमन उस ज्ञायक के लक्ष्य से हुआ है। वह जाननेवाला स्वयं क्रिया का कर्ता है। कौन सी (क्रिया का)? – जानने की अवस्था का। राग, वह कर्ता है और यहाँ हुआ है, ऐसा नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा ज्ञान की... स्वस्वरूप तो त्रिकाल, परन्तु वर्तमान ज्ञान की दशा की अवस्था-अवस्था कार्यरूप हो, उसरूप ज्ञायक स्वयं हुआ है और उस जानने की क्रिया का कर्ता स्वयं अपने कारण से है। वे रागादि हैं, दया, दान, व्रतादि के विकल्प हैं; वे हैं, इसलिए यहाँ ज्ञान का होना हुआ है; वे अस्ति हैं, इसलिए ज्ञान का होना अस्तिरूप से है – ऐसा नहीं

है। गजब बात, भाई! समझ में आया? वह ज्ञायक, **ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ...** ऐसा कहा। वह ज्ञेय राग, पुण्य और व्यवहार विकल्प, उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान स्वयं के कारण से (हुआ है)। भगवान आत्मा स्वयं उसरूप ज्ञान अपनी दशारूप हुआ, वह ज्ञायकरूप ज्ञात हुआ; वह ज्ञेयरूप ज्ञात नहीं हुआ। व्यवहारपने से या व्यवहार को जानता नहीं। समझ में आया? व्यवहार रागादि से जानता नहीं और राग को जानता नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान ज्ञायक चैतन्यमूर्ति को राग की मन्दता के विकल्प यह जो दुनिया उसे व्यवहार कहती है। दुनिया क्या, लोग उसे व्यवहार कहते हैं। वह राग उस आत्मा की ज्ञायकपने की दृष्टि कराने में बिल्कुल मददगार नहीं है। समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप भगवान अनन्त गुणों का साहेब, वह स्वयं ही अपने स्वभाव से जहाँ अपना भान करता है, वहाँ कहते हैं कि वह राग है, उससे तो यहाँ शुद्धता होती नहीं, यह तो ज्ञायक के आश्रय से शुद्धता प्रगट हुई है। त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल... ध्रुव की अन्तर में रुचि और परिणमन होने से वह शुद्धता तो त्रिकाल ज्ञायक के कारण से हुई है। आनन्द का अनुभव, अतीन्द्रिय आनन्द की दशा का वेदन, वह कहीं राग की मन्दता थी तो वह वेदन हुआ, ऐसा नहीं। समझ में आया? यह तो ज्ञायक त्रिकाल चैतन्य ज्योति अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्द का सागर भगवान है, नित्यानन्द प्रभु है। उस नित्यानन्द स्वभाव पर एकाकार होने से उस आनन्द का अनुभव उस द्रव्य के कारण से, वस्तु के कारण से उसका अनुभव है। आनन्द का अनुभव अथवा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अर्थात् कि आनन्द है, उन तीनों दशारूप आनन्द है। आहाहा! समझ में आया? और जो रागादि आकुलता बाकी रही, उस आकुलता से आनन्द का वेदन नहीं हुआ, परन्तु वह आकुलता है, इसलिए उसका ज्ञान, उसके कारण से हुआ है - ऐसा भी नहीं है। आहाहा! ज्ञान हो, वेदन तो जो चैतन्य ज्ञायक त्रिकाल स्वरूप अन्तर की दृष्टि होने से जो अतीन्द्रिय आनन्द में से आनन्द का अंकुर फूटकर वेदन हुआ, उस आनन्द के वेदन में राग की मन्दता या निमित्त बिल्कुल कारण नहीं है। समझ में आया?

भगवान आत्मा ऐसी ज्ञायक ज्योति ज्ञायकमूर्ति की दृष्टि करने से वह ज्ञायक तो ऐसा का ऐसा है। ऐसा भान होने पर उसकी दशा में शान्ति और अनाकुल आनन्द का वेदन (हुआ), उसमें प्रतीति, ज्ञान और रमणता (हुए), वह सब मोक्ष का मार्ग उस द्रव्य के - अन्तर के आश्रय से हुआ है। राग की मन्दता की अपेक्षा रखकर नहीं हुआ। परन्तु उस ज्ञान में ऐसा ज्ञात हुआ कि यह बराबर जिस प्रकार का राग—दया का, दान का, व्रत का, भक्ति का जिस प्रकार का राग—उस प्रकार का ही ज्ञान में झलकना अर्थात् ज्ञान का परिणमना... समझ

में आया ? उस ज्ञान का जिस आकार परिणमना उस ज्ञेय के आकार कहा, अर्थात् जो ज्ञेय है, उसकी जो विशेषता है, जो उसकी विशेषता है, उस प्रकार का ज्ञान यहाँ स्वयं के कारण से परिणमा है। उसमें राग की मन्दता की भी जानने की अन्तर दशा में बिल्कुल मदद नहीं है, उसकी सहायता नहीं है। समझ में आया ? इसमें ज्ञान में, वह है, इसलिए हुआ – ऐसा नहीं है। वह तो स्वयं ही उस काल में ज्ञायक भगवान अपने ज्ञायक की जो आकृति की वर्तमान दशा की योग्यतारूप परिणमन होता है, उसमें वह निमित्त कहलाता है। निमित्त अर्थात् पृथक्; उसके कारण यहाँ परिणमन है – ऐसा नहीं है। ऐसा अन्दर में भान होना, उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहते हैं। समझ में आया ?

भाई ! यह मार्ग लोगों को ऐसा कठिन पड़ता है कि लोग कहें; दूसरा रास्ता ले लो। दूसरे रास्ते से जाया जाता है। परन्तु इस रास्ते के बिना कहीं दूसरा रास्ता नहीं है। तीन काल-तीन लोक में नहीं है। दुनिया भले उसे माने और मनावे। समझ में आया ? सम्प्रदाय के गुरु और सम्प्रदाय को माननेवाले, उसे दूसरे प्रकार से चाहे जिस प्रकार मनावे कि ऐसे होगा... ऐसे होगा... ऐसे होगा.. सब थोथा बात है। समझ में आया ?

सत्य भगवान प्रभु चैतन्यमूर्ति, अनन्त गुण का सत् साहेब, वह तो उसके स्वाधीनपने ही ज्ञात हो और प्रगटे, ऐसा वह है। ऐसे भगवान आत्मा को किसी की अपेक्षा—राग की, निमित्त की, देव-गुरु-शास्त्र की भी जिसे अपेक्षा नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा निर्वाणनाथ परमात्मा स्वयं, हों ! दूसरा कोई नहीं यहाँ। आहाहा ! कहते हैं कि उसे वह अशुद्धता नहीं है। क्यों ? – कि ज्ञेयाकार अवस्था में भी ज्ञायक ही रहा है और स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में भी ज्ञायक ही है। ज्ञायक ही है – यहाँ जोर है। वह तो बीच में दृष्टान्त देना है। किसकी भाँति ? – कि **दीपक की भाँति...** ज्ञायक ही है – ऐसा लेना। बीच में तो दृष्टान्त सिद्ध करना है।

दीपक की भाँति, कर्ताकर्म का अनन्यत्व होने से... कर्ता और कर्म एक होने से; कर्ता और कर्म भिन्न नहीं होने से। अर्थात् क्या ? – कि आत्मा ही स्वयं अपने ज्ञान की दशारूप परिणमता, दशा में आनन्दरूप से, ज्ञानरूप से होता हुआ, वह स्वयं ही ज्ञायकरूप होकर स्वतन्त्ररूप से स्वयं ज्ञायक ही है, उसमें जरा भी पर की अपेक्षा नहीं है। कहते हैं कि वह **कर्ताकर्म का अनन्यत्व...** है। अनन्य अर्थात् ? एक है। एक अर्थात् जाननेवाला ज्ञात हुआ, वह कर्म है। जाननेवाला जानता है, वह कर्ता है। यह सब एक ही है। कर्ता और कर्म दोनों भिनन नहीं है। गजब भाई ! समझ में आया इसमें ?

बात ऐसी है कि इस अन्तर के अन्तर्मुख की दृष्टि होने पर, उसके ज्ञायकपने का भान

होने पर, उस ज्ञान की दशा का होना, वह अत्यन्त निरपेक्ष; विकल्प और पर की अपेक्षा बिना भगवान अपने स्वकाल में उस ज्ञान की अवस्थारूप होता है। अर्थात् जाननेवाला भी स्वयं और ज्ञात भी हुआ स्वयं। ज्ञात हुआ, वह ज्ञायक और उस जानने की क्रिया का करनेवाला भी वह ज्ञायक। राग कर्ता और वह जानने का कार्य हुआ, वह कर्म, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

इसमें बहुत ध्यान रखे बिना पकड़ में आवे, ऐसा नहीं है। एक व्यक्ति कहता है कि भाई! मुझे यह बहुत सूक्ष्म पड़ता है। नींद आ जाती है। भाई! इसमें नींद उड़ जाए, ऐसा है। इसमें कहाँ नींद आवे? समझ में आया? इस बात का जो रूप और स्वरूप है, वह इसके ख्याल में न आवे तो ख्याल में आये बिना यह किस ओर प्रयोग करना और किस ओर जाना तथा कहाँ से हटना—यह अस्ति-नास्ति किस प्रकार करेगा? समझ में आया? आहाहा! यह तो अभी सम्यग्दर्शन होने की बात है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन।

भगवान आत्मा ज्ञायकपने की प्रसिद्धि (हुई), दृष्टि में स्वज्ञेय को पकड़कर जो ज्ञान प्रसिद्ध हुआ, आनन्दरूप से प्रसिद्ध हुआ, उसे ज्ञान प्रगट हुआ, वह कहते हैं कि ज्ञान में विशेषरूप रागादिभाव, उसरूप उसका - ज्ञान का परिणमना, ऐसा भिन्न-भिन्न भासित होता है न? ज्ञायक में तो एकरूप है, परन्तु इस ज्ञान में भिन्न-भिन्न अवस्था भिन्न-भिन्न प्रकार की है। जिस-जिस प्रकार के ज्ञेय, उस-उस प्रकार का यहाँ ज्ञान का परिणमना होता है अर्थात् कि ज्ञान का उस प्रकार का परिणमना उस ज्ञेय के कारण से नहीं है। समझ में आया? वह भगवान आत्मा चैतन्य ज्योत स्वयं ही अपनी उस अवस्था के काल में, उस आकृतिरूप ज्ञायक स्वयं होकर, जानने की क्रिया का कर्ता होकर, ज्ञात होने योग्य क्रिया को कर्ता बनाकर और ज्ञात होनेयोग्य क्रिया का कर्ता होता है - ऐसा नहीं है। ज्ञात होनेयोग्य वस्तु को कर्ता बनाकर, ज्ञात होनेयोग्य वस्तु का कार्य करे - ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

बापू! यह बात तो परमात्मा को प्रगट करने की है। वह स्वयं साक्षात् परमात्मा साहेब है। आहाहा! परन्तु इसे ऐसा रंक जैसा लगे न। उसे ऐसा है, हम पराधीन हैं। यहाँ तो कहते हैं, त्रिकाल ज्ञायकज्योति, वह दृष्टि का विषय, उसे तो पकड़ा, परन्तु अब यहाँ वर्तमान में ज्ञान में विविधता आयी, तो ज्ञेयों की विविधता के कारण से ज्ञान में विविधता की दशा होने लगी, ऐसा नहीं है। ज्ञायक तो एकरूप है। दृष्टि में, अनुभव में, प्रतीति में ज्ञायक ऐसा है - ऐसा लिया, परन्तु उसकी दशा की विविधता में ज्ञान के प्रकार होने लगे, ज्ञान एकरूप नहीं रहता, समय-समय भिन्न-भिन्न ज्ञेयाकार जैसा ज्ञेय है, उसरूप, परन्तु स्वयं के कारण से उसरूप परिणमता है। समझ में आया?

यह चीज़ ऐसी है कि सुन रखने जैसी है। ऐ... नवरंगभाई! आहाहा! इसे पुनरुक्ति लागू नहीं पड़ती। इसकी दशा बारम्बार आनन्दरूप अनन्त काल हुआ करे। आहाहा! भाई! यह सम्प्रदाय की बात नहीं है। यह वस्तु की स्थिति की मर्यादा ऐसी है, वस्तु की मर्यादा ही ऐसी है। ऐसी है, जैसी उसे जानना और अनुभव करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। यह किसी की सम्प्रदाय या यह हमारी बात है और यह तुम्हारी बात है – ऐसा नहीं। ...लालजी! हमारा यह धर्म है अैर तुम्हारा यह धर्म है, ऐसा नहीं, भगवान! यह वस्तु ही ऐसी है। समझ में आया?

यह आत्मा स्वयं जाननेवाला, इसलिए स्वयं कर्ता। देखो! अर्थ में तो इन्होंने लिखा है न कि मैं यह जाननेवाला हूँ, वह मैं हूँ। इस जाननहार क्रिया का कर्ता स्वयं है, ऐसा इसके भावार्थ में पण्डित जयचन्दजी ने डाला है। १५वें पृष्ठ पर इस ओर है। इसका अर्थ (यह कि) यह ज्ञायक परिणमन करनेवाला है न? यहाँ वापस परिणमन सिद्ध करके स्वतन्त्र सिद्ध करते हैं। मात्र कूटसथ नहीं है। यदि कूटस्थ होवे तो विकार का अभाव होकर, निर्विकल्प आनन्द का अनुभव इस दशा में न आवे। परन्तु नित्य परिणामी वस्तु है। उस नित्य को जहाँ ज्ञान में लिया, तब अब परिणमन में ज्ञान का परिणमन होना तो होता है। जानने की अवस्था भिन्न-भिन्न प्रकार से वहाँ होती है। आहाहा!

(समयसार-गाथा) १२वीं में लिया है न, उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान है। उसका अर्थ ही यह है। वह तो यह व्यवहार है, वह जाना हुआ प्रयोजनवान है, इतनी बात करनी है। यहाँ तो जाननेवाला जिसरूप परिणम जाता है। भगवान आत्मा चैतन्य का पिण्ड... चैतन्य का पिण्ड... जिसकी गाँठ में अकेला मस्कती रत्न भरे हो... अनुभवप्रकाश में एक दृष्टान्त आता है। जिसकी गांठडी में मस्कती ऊँचे रत्न भरे हों, ऐसे आत्मा अर्थात् ज्ञान, दर्शन, आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता, परमेश्वरता, विभुता, स्वसंवेदनता आदि अनन्त चैतन्यरत्न की गाँठड़ी आत्मा है। उस गाँठड़ी का एकरूप है यहाँ तो। अभेद में अन्दर यह सब है, परन्तु ज्ञायकरूप से देखने पर अभेद में भेद नहीं दिखते; तथापि उसमें भेद नहीं है – ऐसा नहीं है। अर्थात् क्या कहा?

भगवान आत्मा ऐसे चैतन्य ज्योति अर्थात् एक ही चैतन्यगुण है – ऐसा नहीं। चैतन्य अर्थात् ज्ञान, उसकी प्रतीति, उसका आनन्द, उसकी स्वच्छता, उसकी परमेश्वरता, उसकी विभुता, उसके कर्ता, कर्म, करण आदि अनन्त शक्तियों का चैतन्य रत्नाकर समुद्र है। आहाहा! इतने शरीर में इतना कहाँ होगा? भाई! वह स्वाभाविक, स्वयंसिद्ध, अकृत, अकृत्रिम वस्तु है। भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब पदार्थ, कहते हैं कि वह अनन्त गुण के रत्नस्वरूप

भगवान, एकरूप को जानने पर पर्याय में तो अनेकरूपता होती है। आहाहा! उस ज्ञान की अनेकरूपता होती है, वह क्या है? वह कहीं पराधीनता है? वह पर की अपेक्षा रखकर होती है? – कि जिस प्रकार के दया के भाव आये तो वैसा ही यहाँ ज्ञान हो, हिंसा का भाव आवे तो वैसा ज्ञान हो, सत्य बोलने का विकल्प आया, शरीर से ब्रह्मचर्य पालने का विकल्प आया, वैसा ज्ञान हो, ज्ञान उस प्रकार का हो। तो मानो उस ज्ञान के परिणाम में मानो ज्ञान ज्ञेयनिष्ठ हो, अर्थात् कि मानो उसके आधार से हो, अर्थात् कि जैसा है, वैसा यहाँ ज्ञान हो, अर्थात् कुछ उसकी (ज्ञेय की) सहायता हो? – कि उसमें कोई सहायता नहीं है। समझ में आया? आहाहा! सब बात तो जगत ने अनन्त बार सुनी है, परन्तु आत्मा की वास्तविक बात इसने सुनी नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, अहो! **स्वयं जाननेवाला है इसलिए स्वयं कर्ता...** ऐसा कहकर क्या कहते हैं? जिस प्रकार के राग और निमित्त ख्याल में आवें, इसलिए वे निमित्त और राग कुछ इस ज्ञानदशा को रचते हैं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? समय-समय का भगवान ज्ञानरूप विविधरूप से परिणमित आकार से विशेषपने, विशेषपने, उसका कर्ता स्वयं ही है। भगवान ज्ञायक प्रभु स्वयं जानने की क्रिया का स्वयं कर्ता और भगवान आत्मा ज्ञायक स्वयं ज्ञात हुआ, वह स्वयं ही इस कर्ता का वह कर्म है। समझ में आया?

थोड़ा भी सत्य हो तो इसे उसमें से लाभ होगा। ग्यारह अंग की लम्बी और बड़ी-बड़ी बातें पढ़ गया, परन्तु मूल बात को पकड़े बिना इसे कुछ लाभ नहीं हुआ। ग्यारह अंग और नौ पूर्व, भंगभेद का पार नहीं होता, उसके भंगभेद का पार नहीं होता, परन्तु यह पहलू सीखे बिना (इसके जन्म-मरण का अन्त नहीं आयेगा)।

भगवान आत्मा ज्ञायकरूप त्रिकाल वस्तु, वह शुभ-अशुभभाव (रूप) हुई नहीं; इसलिए उसे प्रमत्त-अप्रमत्त के भेद, अभेद को स्पर्श नहीं करते, नहीं छूते। ऐसा ज्ञायक दृष्टि में आया। अरे! उसे उस काल में ज्ञान की पर्याय... यहाँ देखो, दृष्टि में अभेद हुआ। अब ज्ञान के परिणमन में भिन्न-भिन्नता होने लगी। क्योंकि जैसे प्रकार का व्यवहार, उसी प्रकार के ज्ञान का परिणमना अपने कारण से स्वतन्त्र होता है। आहाहा!

आठ-आठ वर्ष की बालिकायें सम्यग्दर्शन प्राप्त करती हैं। ऐसा नहीं समझना कि हम ऐसे साधारण हैं, हम भोले हैं, हमें खबर नहीं। तू भोला नहीं, प्रभु! तू भगवान है न, भाई! तुझे भगवान से कम कहना, वह तुझे गाली है। समझ में आया? यह चैतन्यनाथ पूर्णानन्द का नाथ, इसे कम कहना, दस करोड़ का आसामी हो, उसे भिखारी कहना, वह उचित है?

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में त्रिकाल चैतन्यनाथ पूर्णानन्द का नाथ स्वरूप भगवान है। वह भगवान दृष्टि में पूरा है। दृष्टि में पूर्ण का आदर है। दृष्टि में अपूर्ण का आदर नहीं है, परन्तु उसका वर्तमान भान होने पर भी वर्तमान ज्ञान की विविधतापने ज्ञान जाने कि ऐसे विकल्प और ऐसे निमित्तों के संग के अस्तित्व काल में, उस प्रकार का ज्ञान परिणमे इसलिए उस पर की अपेक्षावाला वह ज्ञान हुआ या नहीं ? इतना पराश्रय हुआ या नहीं ? – इतना पराश्रय उसमें है नहीं। समझ में आया ? ऐसा ज्ञायक भगवान आत्मा स्वरूप का भान होने से, उसके ज्ञान के परिणमन के आकार स्वयं ज्ञानाकार से ज्ञानाकार हुआ है। ज्ञेयाकार नहीं परन्तु जानन आकार ज्ञान हुआ है। आहाहा ! समझ में आया ?

अपने को जाना, इसलिए स्वयं कर्म। आहाहा ! और यह कर्म कैसा होगा ? एक तो जड़कर्म कहलाता है। वह कर्म और यह ? वह तो जड़ कर्म क्यों कहा कि उन परमाणुओं में कर्मरूप अवस्था हुई, वह कार्य अवस्था हुई। उस जड़ में, यह सुख-दुःख हो, उसमें निमित्त पड़े, ऐसी चीज़ को कर्म कहा। विकारी परिणाम जीव के शुभ और अशुभ होते हैं, वह भी एक भावकर्म कहा। वह कर्म अर्थात् कार्य; कर्म अर्थात् एक अस्तित्वदशा, वह यह कर्म नहीं। तथा उसकी जानने की वर्तमान दशा जो है, वह कर्म नहीं। आहाहा !

यह जड़ शरीर की अवस्था, वह भी उसका कर्म कहलाता है। कर्म अर्थात् कार्य। यह ऐसा होता है न ? यह इसका – जड़ का कार्य है, हों ! आत्मा के नहीं। यह वाणी की ध्वनि उठे, वह जड़ का कार्य है, आत्मा नहीं। आत्मा में रजकण की खान नहीं पड़ी कि ध्वनि उठे। यह वाणी-ध्वनि जड़ में से अद्धर से उठती है। आहाहा ! भगवान तो अनन्त शान्त गुण और अनाकुल आनन्दकन्द की खान है। वहाँ कहाँ रजकण पड़े थे कि (ध्वनि उठे) समझ में आया ? इस ध्वनि के रजकण की पर्याय को भी कर्म-कार्य कहा जाता है। वह यहाँ नहीं। जड़ की अवस्था को कार्य-कर्म कहा जाता है, वह नहीं। शुभाशुभभावपरिणाम को कर्म कहा जाता है, वह नहीं। भगवान आत्मा के ज्ञायकपने होने पर उसकी निर्मलदशारूपी काम होता है, काम होता है। वह कर्म यहाँ नहीं। वह अभी यहाँ नहीं। समझ में आया ? भगवान आत्मा ने जानने का कार्य किया, उसमें ज्ञात हुआ, यह ज्ञात हुआ वह भगवान ज्ञात हुआ। – यह चैतन्य खान महान, यह ज्ञात हुआ, वह कर्म कहा जाता है। आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं **(जैसे दीपक घटपटादि को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक है...)** क्या कहते हैं ? दीपक घट और पट को प्रकाशने के काल में प्रकाशनेयोग्य पदार्थरूप हुआ नहीं, वह तो दीपकरूप रहकर प्रकाशित करता है। दीपक, दीपक के प्रकाश के स्थान

में, काल में, भाव में, अस्ति में रहकर पर को प्रकाशित करता है। पर के अस्तित्व के कारण दीपक प्रकाशित करता है - ऐसा नहीं है। समझ में आया? यहाँ भगवान आत्मा को उपमा देनी है, परन्तु दीपक घट-पटादि प्रकाशित करने की दशा में, प्रकाशित करने की दशा में भी वह दीपक तो दीपक ही है। कहीं घट-पटादि प्रकाशित करने के काल में घट-पट होकर प्रकाशित करता है (-ऐसा नहीं है)। दीपकरूप रहकर, होकर प्रकाशित करता है। समझ में आया? **(और अपने को- अपनी ज्योतिरूप शिखा को...)** दीपक की ज्योति.. ज्योति.. ज्योति... ज्योतिरूप शिखा, आहाहा! उसे **(प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक ही है, अन्य कुछ नहीं;...)** दीपक छोड़कर कहीं (पररूप नहीं हुआ है)। पर को प्रकाशित करने के काल में भी दीपक, दीपकरूप रहा है, अपने को प्रकाशित करने के काल में भी दीपक, दीपक होकर रहा है।

(उसी प्रकार ज्ञायक का समझना चाहिए।) अर्थात्? उसके साथ कह दिया न? भगवान चैतन्यदीपक चैतन्यसूर्य भगवान प्रकाश की मूर्ति। इन सब प्रकाश को भी प्रकाशित करनेवाला यह भगवान आत्मा है। यह प्रकाश है - ऐसा किसने निर्णय किया? यह स्वयं। भगवान चैतन्य स्वयं प्रकाशक है, ऐसा निर्णय करता है। इस प्रकाशक का प्रकाशपना जिसने निश्चित किया, वह निश्चित करनेवाली पर्याय स्वयं से हुई है, प्रकाश के कारण नहीं - बाहर के प्रकाश के कारण नहीं। कहो, समझ में आया?

किसी ने पूछा था न? तीन वर्ष पहले। जामनगर का एक लड़का था न? सात वर्ष का। महाराज! आप आत्मा... आत्मा करते हो, परन्तु आँख बन्द करते हैं तो अन्धेरा दिखता है। सात वर्ष का लड़का था। जामनगर में अभी है न? आया है या नहीं? समझ में आया? आत्मा (को) जानना, आत्मा (को) पहिचानना, आत्मा (को) जाने बिना सब शून्य। कहता है, आँख बन्द करते हैं तो अन्धेरा दिखता है। सात वर्ष का लड़का पूछता है, भाई! भगवान! इस अन्धेरे में अन्धेरा दिखता है या अन्धेरे को जाननेवाले किसी प्रकाश में अन्धेरा दिखता है? यह अन्धेरा है - यह अन्धेरे के अस्तित्व में अस्तित्व के कारण अन्धेरा दिखता है। जो देखता है, वह अन्धकारमय नहीं है। इस चैतन्यसूर्य में यह अन्धेरा दिखता है। अन्धेरे के अस्तित्व की अन्धेरे को खबर नहीं है। इस चैतन्य के नूर भगवान अस्तित्व की मर्यादा में चैतन्य के प्रकाश में अन्धकार ज्ञात होता है। तू ऐसे देखता है, परन्तु ऐसे देख।

जगत की किसी भी चीज़ के काल में... वह यह कहते हैं, भाई! किसी भी चीज़ के काल में... दृष्टांत दिया है, यह 'सम्यग्ज्ञान दीपिका' में। जहाँ-जहाँ समुद्र है, वहाँ यदि उसके

किनारे कुँआ खोदे तो मीठा पानी निकलता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा यह राग, यह ज्ञेय, यह शरीर, यह वाणी, यह.. यह.. यह.. उसे उस काल में यह.. यह.. उसे न देखकर उस काल में उसे जाननेवाला यह देख तो वहाँ मीठा पानी निकलेगा। समझ में आया? पूरा चैतन्य समुद्र जहाँ-जहाँ देखने पर यह राग.. यह स्त्री.. वह यह.. यह समुद्र, यह मीठा, यह खारा, बापू! उसे तू ऐसे जानने जाता है, उस काल में जाननेवाले की दशा, उस जाननेवाले की दशा ही वह देखती है। ऐसा न देखकर, ऐसा जाननेवाला वह स्वयं है, वह कर्ता वह अपने कारण से अपना कारण है। समझ में आया?

यहाँ तो वह आया न? उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है। जहाँ-जहाँ उस-उस नजर में ज्ञानरूप परिणमता है, वहाँ-वहाँ वह देखता है कि यह.. यह.. ऐसा नहीं। यह उसे जाननेवाला ज्ञान अपनेरूप परिणमा, उसे वहाँ देख। मन-वचन-काया के कर्तव्य और उसके फल, उस-उस क्षण में उन्हें जाननेवाला ज्ञान, ज्ञानरूप परिणमकर जानता है। समझ में आया? आहाहा!

तन-मन-धन-वचन-काया आदि सभी दशा में काम जो होता है, उस काल में भगवान ज्ञान अपने ज्ञायकपने की दृष्टिवाला, उसे ऐसे देखे तो ज्ञान का कार्य स्वयं ही करनेवाला और स्वयं ही उसका कर्ता है। यह तीसरा कर्ता होकर यह ज्ञान उस काल में होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

भाई! यह खारे समुद्र का दृष्टान्त दिया है। समुद्र खारा, परन्तु वहाँ साथ में यदि खोदे तो पानी कुएँ में मीठा निकले। इसी प्रकार ये जगत की चीज़ें, ज्ञेय, यह शरीर, यह राग, यह मक्खन, यह धूल, यह पैसा... उस-उस काल में, उस-उस काल में उन देखनेवाले की चीज़ों को तू देखता है, परन्तु देखनेवाला यह... यह है, यह है - ऐसा जो देखता है, उस चीज़ को देखता ज्ञान स्वयं से परिणम रहा है। ज्ञान स्वयं से उस प्रकार हो रहा है। पर को देखता नहीं, अपने को देखता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

(उसी प्रकार ज्ञायक का समझना चाहिए।) कहते हैं। दीपक घड़े और मकान के प्रकाशित करने के काल में दीपक, दीपकरूप रहकर प्रकाशित करता है और अपना प्रकाश भी दीपक, दीपकरूप रहकर प्रकाशित करता है। इसी प्रकार भगवान चैतन्यसूर्य परवस्तु के ज्ञान-काल में भी अपने ज्ञानरूप ही परिणमकर अपने को प्रकाशित करता है और स्वयं यह ज्ञायक है, ऐसा भी जानने में मैं स्वयं अपनेरूप परिणमता, स्वयं अपने को जानता हुआ परिणमता है। जिसका काम ज्ञायकपना, वह उसका कर्म हुआ है। आहाहा! सूक्ष्म है, भाई!

परन्तु क्या हो ? वहाँ दूसरी कोई रीति नहीं होती। जो इसकी रीति हो, वह आवे न ? जो रीति न हो, उसे कहीं दूसरी रीति करने जाए।... समझ में आया ?

हलुआ का दृष्टान्त बहुत बार नहीं देते ? हलुआ जिस विधि से हो, उस विधि से होगा। आटा पहले घी में सेंके और फिर गुड़ का पानी डाला जाता है। परन्तु कोई ऐसी चतुर की पुत्री निकली कि लाओ, गुड़ का पानी बाद में डालने की अपेक्षा पहले गुड़ के पानी में आटा सेंक लें, फिर घी डालेंगे। - यह विधि नहीं है। यह हलुआ नहीं होगा। यह तो पोटिश होगी। पोटिश फोडे पर बाँधने के लिये। पोटिश भी ठीक से नहीं होगी। पोटिश करे, तब महिलायें कहें, थोड़ा बहुत घी डालना। थोड़ा-बहुत अर्थात् ? घी बिलकुल न पड़े, ऐसा भी नहीं और अधिक रहे - ऐसा भी नहीं। इस आटा को सेंककर गुड़ और शक्कर के पानी से आटा सेंककर घी डालकर हलुआ करना है। हम हलुआ बनाने बैठे। मूढ़ ! हलुआ नहीं होगा। तेरे तीनों जाऐंगे - आटा जाएगा, घी जाएगा, और गुड़ भी जाएगा।

इसी प्रकार भगवान आत्मा को जानने की जो विधि और प्रकार है, उससे दूसरे प्रकार से करने जाए तो ज्ञात नहीं होगा। यह भटकने का मिलेगा। आहाहा ! समझ में आया इसमें ? - कि परन्तु मुझे महँगा पड़ेगा भाईसाहेब ! यह पाँच रुपये का सेर ऐसा कुछ कहते हैं न ? अपने को कुछ खबर नहीं। अभी बहुत महँगा घी है - ऐसा कहते हैं न ? पाँच रुपये सेर। आहाहा ! एक रुपये का मिलता था। आहाहा ! उसके बदले, भाई ! घी बचाना है हमारे। इसलिए पहले गुड़ के पानी में सेंको। इसी प्रकार आत्मा की यह विधि इसे कठिन पड़े और दूसरी विधि करने जाए, भगवान हाथ नहीं आयेगा। समझ में आया ? इसे सम्यग्दर्शन में उसका प्रतीतपना आयेगा नहीं। आहाहा !

कहते हैं, दुनिया की साधारण बात तो कहनेवाले बहुत हैं। भगवान परमेश्वर की बात समझने के लिये लायक कहनेवाले बहुत कम होते हैं। उसमें तो पाँच-पाँच हजार, दस-दस हजार मनुष्य। आहाहा ! क्या आहाहा ? क्या आहा ? चींटी का... बहुत होता है। इससे कहीं मनुष्यों की गिनती में गिना जाए ? बापू ! यह बात ही कोई अलग प्रकार की है। समझ में आया ?

श्रोता : परमेश्वरी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परमेश्वरी बात है, परमेश्वरी बात है। इसमें तीन काल में अन्तर नहीं।

भगवान चिदानन्द परमेश्वर कहते हैं कि परन्तु पकड़ा तो ज्ञायक को, परन्तु यह जानने

में विविध प्रकार का होता है, उसका क्या समझना ? इतनी तो पर की अपेक्षा की आधीनता कुछ ज्ञात हुई या नहीं ? अरे ! सुन रे सुन ! भगवान स्वलक्ष्य से ज्ञान के उस प्रकार से, ज्ञान के आकार से परिणमना, वह स्वयं ही कर्ता और स्वयं ही अपना काम करता है; पर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। पूर्व के आग्रह पकड़े होते हैं न ? वे आग्रह ऐसे अवरोधक हैं न ! शास्त्र पढ़ते हुए भी अवरोधक हों, बोलते भी अवरोधक हो और मनाते अवरोधक तथा मानते भी अवरोधक। उसमें से हटना इसे ऐसे हाय.. हाय.. पसीना आ जाए। मरणतुल्य लगे। सत्य थोड़ा बाहर आने पर जगत को मरणतुल्य लगे।

बापू ! तू परमात्मा है, प्रभु ! तेरी परमात्मा को पकड़ने की यह विधि है और उसके जानने के स्वतन्त्र प्रकार तेरे कारण से है। कोई परमेश्वर सर्वज्ञ आत्मा को तिरा दे, ऐसा तू नहीं है। क्या कहा ? सर्वज्ञ तुझे तारें ऐसे वे नहीं और तू उनसे तिरे, ऐसा तू नहीं। भाई ! तू तो तुझसे तिरे और पार पड़े, ऐसा तू स्वयं ही है। आहाहा !

भगवान आत्मा... कहते हैं, उसे ज्योतिरूप अवस्था में वह दीपक; वैसे भगवान अपने जानने की दशा के काल में वह शुद्ध आत्मा और पर को जानने के काल में, ऐसा कहा गया कि उसे जानता है, उस समय भी स्वयं अपने में रहकर ही जानता है। उसमें स्वयं फिटकर दो कभी हुआ नहीं। इसने माना है, हुआ नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो कल बोल आया था। और लालभाई कहे - भाई ! कल फिर से लेना। कल तो अपने इसका विस्तार किया था, नहीं ? नवरंगभाई !

श्रोता : आज तो कुछ अधिक आया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक प्रकार से कहीं आयेगा ? भाषावर्गणा भिन्न-भिन्न होती है न ? पर्याय भी अन्दर भिन्न-भिन्न होती है। वाणी भिन्न-भिन्न है। वाणी का आत्मा कहाँ कर्ता है ? यह वाणी कैसे निकलना, यह कहीं आत्मा के आधार से नहीं है। आहाहा ! चैतन्यबिम्ब में वाणी कैसी ? कि वाणी ऐसी बोलूँ और ऐसा हो, ऐसा उसमें कहाँ है ? समझ में आया ? आहाहा !

ऐसा आत्मा ! ऐसी स्वतन्त्रता इसे बैठती नहीं। किसी प्रकार से मुझे रंक कहे, कम करके बुलावे, पराधीन करके मेरा स्वरूप कोई बतावे (तो) इस प्रकार से प्रसन्न होता है। गजब भाई यह तो ! है ? कि तुझे राग से लाभ होगा, हम तुझे लाभ कर देंगे ला, हमारे सामने देख, हम तुझे लाभ देंगे। धूल में भी नहीं होगा, सुन न ! जिसके सामने देखना है, उसके सामने देखते ऐसा देखने से कहाँ लाभ मिले ऐसा है वहाँ ? समझ में आया ?

चैतन्य भगवान आत्मा मात्र स्वभाव का पिण्ड चैतन्य ध्रुव अरूपी आनन्दघन परमात्मा का ज्ञायकपना तो ऐसा का ऐसा है, परन्तु यह जानने की पर्याय भिन्न-भिन्न हो, परन्तु वह स्वयं के कारण से होती है। इस चौथे बोल में ऐसा सिद्ध करना है, लो! समझ में आया? क्योंकि शुद्धि भी बढ़ती जाती है। ज्ञायक को पकड़ने पर, एकरूप वस्तु को दृष्टि में लेने पर, ऐसे के ऐसे स्थिर होने पर ऐसे के ऐसे टिकने पर शुद्धि की वृद्धि होती जाती है। शुद्धि की जितनी वृद्धि हो, वैसा ही ज्ञान जानता है। अब अपनी बात वापस आयी। समझ में आया? शुद्धि बढ़ती है, वैसा ही ज्ञान जानता है और जो सामने है, वैसा ही जानता है; परन्तु वह ज्ञान स्वयं उस प्रकार से स्वतन्त्ररूप से परिणमने के योग्य है। आहाहा! भाई! क्या कहा, समझ में आया?

और अन्दर से यह आया। शुद्धि बढ़ी, इसलिए ज्ञान परिणमा है -ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? शुद्धि तो, ज्ञान की पर्याय है, (उसका) ज्ञेय है। शुद्धि तो ज्ञानपर्याय का ज्ञेय है। वह ज्ञान का परिणमन शुद्धि के आकार हुआ, इसलिए उसके कारण से ज्ञान परिणमा - ऐसा नहीं है। यहाँ ज्ञायक प्रसिद्ध करना है न? ज्ञायक, ज्ञायक। जानना प्रसिद्ध होता है, वह स्वतन्त्र अपने कारण से होता है। ऐसी वर्तमान दशा और ज्ञायक का मिलान होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान और धर्म की शुरुआत है। उसे अल्प काल में कैवल्य और परमात्मा हुए बिना रहनेवाला नहीं है। यह दूज जिसे उगे, उसकी पूर्णिमा हुए बिना रहे नहीं। इस तरह ऐसे बोधिबीज का अन्तरभान हो, उसे केवलज्ञान, परमात्मदशा हुए बिना रहे नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

६

श्री प्रवचनसार, गाथा - ४९, प्रवचन - ४९
दिनांक - २४-०२-१९७९

श्री प्रवचनसार, ४९वीं गाथा। टीका फिर से। तीन लाईन हो गयी है। **प्रथम तो आत्मा...** आहाहा! **वास्तव में स्वयं ज्ञानमय होने से...** स्वयं ज्ञानमय होने से। ज्ञानवाला - ऐसा भी नहीं। वह स्वयं ज्ञानस्वरूप ही भगवान है। आहाहा! **ज्ञानमय होने से ज्ञातृत्व के कारण...** आत्मा का स्वभाव ज्ञाता है। **ज्ञान ही है;... ज्ञातृत्व के कारण...** भगवान आत्मा... सूक्ष्म बात है, भाई! अभी तो यह बात सब वह हो गयी है न! इसमें देह में प्रभु, ज्ञानस्वरूपी ज्ञानस्वभावी होने से वह आत्मा ज्ञाता है। आहाहा! इसलिए **ज्ञातृत्व के कारण ज्ञान ही है; और ज्ञान प्रत्येक आत्मा में वर्तता हुआ...** ज्ञान तो प्रत्येक आत्मा में है। **प्रतिभासमय महासामान्य है।** ज्ञान। सबमें है, (इस) अपेक्षा से।

अब **प्रतिभासमय महासामान्य है।** प्रतिभासमय, जो ज्ञान है, वह प्रतिभासमय अनन्त विशेषों में व्यापनेवाला है। आहाहा! शक्ति के स्वरूप में ऐसा लिया है। ४७ शक्तियाँ हैं न? जहाँ अनन्त गुण अक्रम है और उन गुणों की परिणति निर्मल क्रम है। वहाँ राग को नहीं लिया है, क्योंकि वह इसका स्वरूप नहीं है। आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु, ऐसा आनन्दस्वरूपी, ऐसे अनन्त गुणस्वरूपी। ज्ञात तो प्रधानरूप से मुख्य स्व-पर को जानने की ताकतवाला (है), इसलिए ज्ञान को लिया है। बाकी ज्ञान के अतिरिक्त अनन्त गुणस्वरूप सामान्य स्वभाव, अनन्त गुण हैं। उनकी जो विशेष दशा, यहाँ तो यह ऐसा क्यों लिया? - कि एक आत्मा कितना है? आहाहा! एक आत्मा कितना है? - कि इतना है वह कि वह ज्ञानमय है, इसलिए ज्ञाता है; इसलिए उस ज्ञाता की पर्याय के विशेष में जगत के तीन काल-तीन लोक के द्रव्य-गुण-पर्याय निमित्तरूप है और वह पर्याय उसरूप परिणमति है, ऐसा उसका स्वरूप है। ओहोहो! यह एक-एक आत्मा की बात चलती है। यहाँ तो आज और...

श्रोता : चींटी का भी आत्मा ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : चींटी का क्या, एक निगोद के इतने भाग में... यहाँ कणी है न? यहाँ अंगुल के असंख्य भाग में निगोद के जीव हैं। उसमें असंख्य तो औदारिकशरीर है। एक शरीर

में असंख्य भाग में औदारिकशरीर यहाँ असंख्य है। एक शरीर में अनन्त जीव हैं। आहाहा! एक-एक जीव अनन्त गुण की शक्ति से भरपूर है। अब, यहाँ तो पर्याय में पूर्ण है - ऐसा बताना है। जैसा इसका ज्ञान पूर्णस्वरूप है, वैसा ही इसकी पर्याय में-विशेष में (पूर्ण बतलाना है)। आहाहा!

एक ओर ज्ञान की एक ही पर्याय लो तथा दूसरी ओर पूरा आत्मा और गुण और लोकालोक लो तो एक ही पर्याय में सब आ जाता है। क्या कहा, समझ में आया? सूक्ष्म है, हसुभाई! 'चूडगर' को सूक्ष्म लगे ऐसा है, परन्तु अब घर में थोड़ी-बहुत बात करना। यह तो अभी चलता नहीं, बापू! सत्य बात ऐसी है। आहाहा!

भगवान आत्मा अन्दर जो यह है, उसका ज्ञानस्वभाव है, वैसे वास्तव में... सुखगुण है न, भाई? सुखगुण है। वहाँ ४७ (शक्तियों) में दर्शन और चारित्र अलग नहीं लिया। यह दर्शन-समकित और चारित्र को सुख में इकट्ठा डालकर तीन गुण का वह वर्णन है। मुझे यहाँ दूसरा कहना है कि आत्मा ज्ञानस्वभाव है। वह ज्ञान वीतरागस्वभाव से है। वह आनन्दस्वभाव से है, वह वीतरागस्वभाव से है, क्योंकि आत्मा में एक चारित्र नाम का वीतरागी गुण, अकषायस्वभाव का गुण है। आहाहा! वह अकषायस्वभाव अर्थात् वीतरागस्वभाव, इन अनन्त गुणों में उसका रूप है। आहाहा! धीमे से सुनना। यह तो अगमगम्य की बातें हैं, प्रभु! यह तो दुनिया में कहीं (चलती नहीं) आहाहा!

भगवान ज्ञानस्वभाव है अर्थात् कि वीतरागस्वभाव है। आहाहा! उसका दर्शनस्वभाव है, वह वीतरागस्वभाव है। क्योंकि उसमें वीतरागस्वरूप उसका गुण है और उस गुण का अनन्त गुणों में रूप है। इसलिए जितने अनन्त गुण हैं, उन सबमें वीतरागपने का रूप है। आहाहा! यह स्पष्टीकरण कल का चलता है कि यह सब लम्बा किसलिए किया? परन्तु आत्मा कितना है, उसे बताते हैं। ऐसे आत्मा को जानना। पण्डितजी! आहाहा! जिसमें ऐसा स्वभाव है कि वीतरागस्वरूप उसमें है। आहाहा!

यह छह कारक अन्दर अनन्त भरे हैं। कर्ता-कर्म-करण... यह कर्तापने की शक्ति भी अनन्त है। इस कर्ता की शक्ति में भी वीतराग का रूप है। कर्मशक्ति। कर्म अर्थात् कार्य होने की, उस कार्यशक्ति में भी वीतराग का रूप है। आहाहा! कर्ता, कर्म, करण। करण नाम का गुण साधन है, उसमें भी वीतराग का रूप है। आहाहा!

जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म;
इसी वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।

आहाहा! भगवान आत्मा कान में पड़ने दो धीरे-धीरे। आहाहा! ये सब षटकारक जो है कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण - ये वीतरागस्वरूप है, इनमें वीतरागीरूप है। इसलिए इन षट् गुणों का जो परिणमन होता है, विकृत, वह विकृत है, वह इनका स्वरूप नहीं है। इसलिए भाव नाम का एक गुण लिया है कि जिस भाव नाम के गुण के कारण जो.. क्योंकि विकार हो, ऐसा कोई गुण नहीं है। इसलिए षट्कारक के विकाररूप परिणमन होता है, उससे रहित भाव नाम का गुण है। ४७ (शक्तियों) में। आहाहा!

इस षट्कारक की पर्याय में जो दया, दान, व्रत, काम, क्रोध आदि विकृतरूप होता है, उससे रहित ऐसा इसका भाव नाम का गुण है कि जिस भाव नाम के गुण के कारण निर्मल पर्याय का ही वहाँ क्रम होता है। मलिनता है, वह तो मात्र उसके ज्ञान में ज्ञेय में जाती है, इसलिए वास्तव में उसे गिना ही नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा इन षट्कारक के विकृतरूप परिणमे, उससे रहित उसका गुण है अर्थात् वीतरागस्वभाव है, एक बात।

षट्कारक जो गुण है, उस षट्कारकरूप परिणमना, ऐसा भी क्रिया नाम का एक गुण है। यह क्रिया। समझ में आया? आहाहा! यह क्रिया नाम का गुण है, उसकी पर्याय जो है, वह वीतरागी पर्याय है। आहाहा! इससे अनन्त गुण का रूप वीतराग है और उनकी एक समय की अनन्त पर्यायें, उनमें एक समय की ज्ञान की पर्याय जो यहाँ विशेष ली कि जिस एक समय के ज्ञान में... आहाहा! द्रव्य-गुण तो उसमें ज्ञात होते हैं, परन्तु लोकालोक अनन्त केवली और लोकालोग जाने। एक ही पर्याय का अस्तित्व इतना बड़ा है। समझ में आया?

एक ओर एक समय की ज्ञान की पर्याय और एक ओर अपना त्रिकाली द्रव्य, त्रिकाली गुण और वह पर्याय और त्रिकाली यह एक ही समय की पर्याय, यह सब अस्तित्व है। भाई! यह आत्मा क्या है? कितना है? इसकी खबर नहीं। आहाहा! यह वीतरागभावरूप, ज्ञानरूप परिणमते, यह वीतरागभावरूप परिणमता है। समझ में आया? उस पर्याय में, एक समय की पर्याय में द्रव्य-गुण अपने, स्वयं और सब, इतनी ताकत इसकी एक पर्याय में है।

इतनी ही दूसरी श्रद्धा की पर्याय में इतनी ताकत है कि जो एक समय की पर्याय जिन द्रव्य-गुण को जाने, उसे प्रतीति करने की ताकत अनन्त है। पर्याय की बात, हों! सूक्ष्म बात है। वहाँ पैसा-बैसा में कुछ नहीं है, 'थाणा'-बाणा में। आहाहा!

दूसरी बात, कि एक समय की पर्याय इतनी बड़ी, इतनी ही बड़ी एक श्रद्धा की पर्याय

है, इतनी हो बड़ी एक आनन्द की पर्याय है, इतनी ही बड़ी। क्योंकि इतने बड़े में आनन्द है। इतनी ही बड़ी एक स्वरूपाचरणचारित्र की पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी एक-एक पर्याय की इतनी ताकत कि मानो पूरा लोकालोक और द्रव्य-गुण अपनी एक पर्याय में पूरा अस्तित्व है। आहाहा! ऐसी श्रद्धा की एक पर्याय में श्रद्धा सम्बन्धी का पूर्ण अस्तित्व है। ऐसी जो एक समय की पर्याय है। केवलज्ञानी की श्रद्धा को परमावगाढ़ समकित कहा है, उसका अर्थ यह है। आहाहा!

वह श्रद्धागुण सामान्य त्रिकाल, परन्तु उसकी जो पर्याय है, वह ज्ञायक और ज्ञेय, दोनों को जानने का जो स्वरूप है, वैसी इन दो की प्रतीति है। ज्ञायक की और ज्ञेय की। जो अनन्त ज्ञेय, जिसे एक समय की ज्ञान की विशेष पर्याय में निमित्त है। निमित्त है अर्थात् है, वस्तु तो यहाँ है। आहाहा! ऐसे एक समय की वीतरागी पर्याय जो है, चारित्र की पर्याय एक समय की। पूर्ण-पूर्ण प्रभु! यह तो क्या कहें? आहाहा! जिसकी एक ही पर्याय में पूरा लोकालोक जाने, वह स्वयं ही है, बस! ऐसी दूसरी पर्याय में मानो पूरा लोकालोक स्वयं ही है। ऐसे आनन्द की एक समय की पर्याय में वीतरागता इतनी भरी है कि जो पूर्णरूप है जिसका। वीतरागता का पूर्ण रूप है। ऐसे अनन्त गुण में वीतरागता का रूप है और एक समय की पर्याय में जो अनन्त पर्यायें हैं, उनमें प्रत्येक पर्याय में वीतरागपने का रूप है। आहाहा!

श्रोता : वीतराग का रूप?

पूज्य गुरुदेवश्री : रूप है। आहाहा! बात सूक्ष्म पड़ेगी, बापू! यह तो अलग प्रकार की बात है। सर्व को जाने, वह आत्मा को जाने, और आत्मा को जाने, वह सर्व का जाने, ऐसा कैसे कहते हैं? आहाहा! बापू! यह तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ-जिनेश्वरदेव आत्मा का वर्णन करते हैं। आहाहा! भाई! प्रभु! तू कितना है? कहाँ है? कितना है? आहाहा! प्रभु! तेरी एक समय की ज्ञान की पर्याय में लोकालोक ज्ञात हो जाए, वह लोकालोक है; इसलिए नहीं। आहाहा! उसमें द्रव्य-गुण है, इसलिए पर्याय की ताकत ही इतनी है।

श्रोता : ....ज्ञान की पर्याय की बात...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें यह सब है। उसमें तो बहुत है, परन्तु रात्रि में एक बार पोण घण्टे कहा गया था, अब तो वह वापस आवे तब है न। एक बार रात्रि में पोण घण्टे, चार-पाँच दिन पहले। रामजीभाई नहीं थे। पोण घण्टे मात्र वीतराग.. वीतराग.. वीतराग.. वीतराग चला था। खबर है? लोगों ने नया सुना। आहाहा!

अनन्त-अनन्त गुण है, वे वीतरागस्वरूप हैं और उनकी एक समय की पर्याय भी वीतरागस्वरूप है। आहाहा! उसका अकार्यकारण नाम का गुण है, वह वीतरागस्वरूप है कि वह राग का कारण नहीं होता और राग का कार्य नहीं करता। आहाहा! भगवान आत्मा में एक अकार्यकारण नाम का सामान्य त्रिकाल गुण है। उसकी पर्याय में अकार्य-कारणपना परिणमते.. आहाहा! वह विकार का कारण न हो और विकार का कार्य उत्पन्न न करे, ऐसा उस वीतरागी पर्याय का स्वभाव है। समझ में आये उतना समझो, बापू! यह तो समुद्र है। आत्मा अर्थात् अनन्त गुण का समुद्र, बापू! उसमें अनन्त चैतन्य के रत्न भरे हैं। आहाहा!

यह वीतराग.. वीतराग.. वीतराग.. षट्कारकरूप परिणमता है, परन्तु उस वीतरागी पर्यायरूप। भाव में षट्कारकरूप परिणमता है, उस विकारपने से रहित वीतरागीरूप। क्रियावतीशक्ति में भी परिणमता है, वह वीतरागीपर्यायरूप। भावशक्ति भी परिणमता है... आहाहा! उस विकार से रहित वीतरागरूप परिणमता है। आहाहा!

भाव नाम का एक पृथक् गुण है। यह भाव षट्कारकरूप से विकृत परिणमें, उससे अभावस्वरूपी भाव। और भगवान आत्मा में एक भावगुण ऐसा है कि उसकी वर्तमान में अनन्त गुणों की पर्यायें अन्दर उत्पन्न हो, ऐसा भाव नाम का गुण है। उसे उत्पन्न करे तो हो, ऐसा नहीं। आहाहा! भाव, अभाव, भाव-अभाव... है न? छह। उनमें पहला भाव। भगवान आत्मा में एक वीतरागी भावगुण है। आहाहा! क्योंकि भावगुण में भी वीतरागस्वरूप है। वह वीतरागी भाव, उसकी पर्याय में वीतरागीपर्याय होती ही है। जिसने ज्ञायकभाव की दृष्टि की, उसे उसकी पर्याय में वीतरागी भाव उत्पन्न होता ही है; उत्पन्न करूँ तो हो, (ऐसा नहीं)। वह अन्दर होती ही है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे अनन्त गुण की पर्याय वह वीतरागभाव से वैसी होती ही है, क्योंकि उस भाव का रूप अनन्त गुण में है। भाई! यह तो कल के उसमें से मस्तिष्क में (आया) कि इतना सब एक आत्मा में वह क्या? बापू! परन्तु आत्मा, वह कौन? भाई! तुझे क्या कहें? आहाहा! समझ में आया?

यह वीतरागी भाव नाम का गुण है, अनन्त गुणों में उसका रूप है। इसलिए उसकी पर्याय में भी एक भाव है, इसलिए भाव पर्यायरूप से उत्पन्न होता ही है। उत्पन्न करूँ - ऐसा वहाँ नहीं है। आहाहा! इस ज्ञायक पर दृष्टि पड़ने से सारे भगवान को पकड़ा... आहाहा! तो उसे भाव नाम की शक्ति से अनन्त गुण में उस भाव का रूप है; इसलिए अनन्त गुणों की पर्यायें वहाँ होती ही हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा वीतराग का पिण्ड प्रभु! उस

सुखशक्ति में चारित्रगुण है, वह चारित्रगुण कहो, या वीतरागभाव कहो। सुखशक्ति। आहाहा! दर्शनशक्ति, चारित्रशक्ति - ये सब गुण हैं। उसे यहाँ ४७ शक्तियों में सुखशक्ति में डाल दिया। आहाहा! परन्तु उस एक-एक शक्ति का विशेषपना; वह शक्ति है, वह तो गुणरूप, सत्वरूप, सत् ध्रुवरूप, परन्तु उसका जो विशेष.. यहाँ विशेष कहते हैं न? सामान्य ज्ञान है, उसकी विशेष पर्यायें जो हैं, आहाहा! उस विशेष पर्याय में इतनी ताकत है कि लोकालोक है तो उसमें निमित्त है और उसका जानना स्वयं से होता है, ऐसी ताकत है। चिमनभाई! यह ऐसा है।

एक बार तो बहुत चला था। अभी तो कुछ नहीं। यह तो आवे, तब आवे न! पोण घण्टे वीतराग.. वीतराग.. वीतराग.. आहाहा! उसका कर्तागुण वीतराग, उसका कार्यगुण वीतराग। कार्य जो होता है। पर्याय में जो निर्मल कार्य होता है, वह कार्य नाम का गुण है। यह कर्मगुण। कर्म कहो या कार्य कहो। यह कार्यगुण है, इसलिए पर्याय में कार्य होता ही है। कार्य करूँ तो (होता है), ऐसा नहीं; कार्य होता ही है। और उन अनन्त पर्यायों में वीतरागीरूप कार्य होता ही है, क्योंकि भावगुण है, वह इसमें वीतरागरूप है और अनन्त गुणों में वीतराग का रूप है। इसलिए भावगुण के कारण जो पर्याय अस्तिरूप होती हैं, वह सब वीतरागरूप होती है। वीतरागरूप होती ही है - ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! हसुभाई! इसमें कहीं हाथ ऐसा नहीं है। आहाहा! कहो, हसुभाई! हसुभाई बोटाद। पहिचानते हो? हसमुखभाई निवृत्ति लेकर बैठे हैं। सन्तोष करके। आहाहा!

जब एक समय की पर्याय ज्ञान, उसमें भी जिस पर्याय में चारित्रगुण प्रगट हुआ, उसका रूप भी ज्ञान की पर्याय में है और ज्ञान की पर्याय का रूप वीतरागी पर्याय में है। कितनी ही बात तो अन्दर आगे चलती नहीं। बहुत विचार किया। पहले तो सब मंथन.. जैसे कि आत्मा में एक ज्ञानगुण है और एक अस्तित्वगुण सत्ता होनापना एक गुण है। तो वह अस्तित्वगुण है, वह ज्ञानगुण में नहीं होता, तथापि उसका रूप होता है। अर्थात्? कि ज्ञानगुण 'है', पर्याय 'है', पर्याय 'है', वह अपने सत्ता-अस्तित्वगुण के कारण है। अस्तित्व दूसरा गुण है, उसके कारण नहीं। आहाहा! रमणभाई! अलग प्रकार है, बापू! आहाहा!

श्रोता : एक-एक गुण अहमिन्द्र हो गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : अहमिन्द्र ही है। वीतरागस्वरूप है। आहाहा! उसकी एक-एक पर्याय वीतरागस्वरूप है। यहाँ विशेष तो यह सिद्ध करना है न? आहाहा! स्वयं स्वयं स्वयंभू

तो उत्पन्न हुआ, परन्तु वह उत्पन्न हुआ कैसे ? – कि उसमें एक भाव नाम का गुण है, वीतराग नाम का गुण है, चारित्र नाम (का) अर्थात् वीतराग नाम का गुण है, उस गुण का रूप प्रत्येक गुण में है और उस गुण का रूप पर्याय में भी है। आहाहा! अनन्त पर्यायें जो एक समय में उत्पन्न हों, एक पर्याय की इतनी ताकत है कि जो लोकालोक और द्रव्य-गुण अपने (जान ले), एक पर्याय हों। भले द्रव्य-गुण और पर्याय यहाँ आवे नहीं, इस पर्याय में लोकालोक आवे नहीं। जानने की पर्याय में लोकालोक आवे नहीं, जानने की पर्याय में द्रव्य-गुण आवे नहीं, परन्तु द्रव्य-गुण का जितना सामर्थ्य है, वह सब पर्याय में आवे। आहाहा!

यह 'एक जाने, वह सर्व जाने', – ऐसा क्यों कहा ? – कि एक जाने, उसकी एक पर्याय जाने। आहाहा! पर्याय जाने, परन्तु पर्याय को जानने का हेतु, उसका लक्ष्य द्रव्य पर है, ज्ञायक पर आश्रय है। पर्याय को जानना, ऐसा कहा, परन्तु वापस उसका तात्पर्य वीतरागता है, चारों अनुयोग की स्थिति का। और वह वीतरागता उत्पन्न कैसे होती है ? – कि ज्ञायकभाव भगवान है, उसका आश्रय ले तो वीतरागता होती है। वह वीतरागीपर्याय होती है, वह स्वतन्त्र कर्ता होकर वीतरागी त्रिकाल जिनस्वरूप का आश्रय लेती है, लक्ष्य करती है। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी जो वीतरागी पर्याय, अनन्त गुण वीतराग और अनन्त गुणी पर्यायें। आहाहा!

एक समय में अनन्त पर्यायें हैं, एक नहीं; और अनन्त पर्यायों के परिणमन बिना का कोई द्रव्य नहीं हो सकता। समझ में आया ? और अनन्त गुणें की अनन्त पर्यायें जो हैं, उस एक-एक पर्याय में इतना पूर्णरूप उसका स्वरूप है, ऐसा-ऐसा पूर्ण अनन्त पर्याय का रूप एक-एक अनन्त में है। आहाहा! और ऐसी अनन्त पर्यायें जो हैं, उनका एकरूप गुण है। जैसे ज्ञान की ऐसी अनन्त पर्यायें, परन्तु उनका रूप ज्ञानगुण में है। उसकी शक्ति दर्शन में है। ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड जो गुण, ऐसी अनन्त पर्याय जो इतनी ताकतवाली, ऐसी-ऐसी जो सादि-अनन्त पर्याय... आहाहा! उनका पिण्ड एक गुण है और उन अनन्त गुणों का पिण्ड, वह द्रव्य है।

एक-एक द्रव्य स्व-रूप से है और पर रूप नहीं। अतद्भाव आया है, भाई! प्रवचनसार में। सर्वथा अन्य भाव जैसे पृथक् प्रदेशवाला है, ऐसा नहीं, परन्तु अतद्भाव है। द्रव्य में गुण नहीं, गुण में द्रव्य नहीं, गुण में पर्याय नहीं। आहाहा! ऐसा अतद्भाव स्वपने है, गुणपने नहीं। गुण एक-एक गुणपने है, अनन्त गुणपने नहीं। एक-एक पर्याय स्वपने है, अनन्त पर्यायपने नहीं। ऐसी दूसरी तीसरी ऐसे अनन्त। आहाहा! उसके अस्ति-नास्ति के भंग अनन्त उठते हैं।

सप्तभंगी। ४७ (नय) में आती है न? अनन्तधर्मत्वशक्ति। १५वीं, १५वीं है लगभग। जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शी, सर्वज्ञत्व, स्वच्छत्व, प्रकाश, असंकुचितविकासत्व, परिणम्यपरिणामकत्व, क्या कहा? अनन्त धर्म के बाद। परिणम्यपरिणामकत्व, त्यागोपादान, अगुरुलघुत्व, उत्पादव्ययध्रुवत्व, स्वधर्मव्यापकत्व, साधारण अनन्त धर्म। यह २७वीं आयी। आहाहा! अनन्तधर्मस्वरूप एक शक्ति है। उस एक शक्ति का एक-एक गुण में अनन्तधर्मपने का रूप है। समझ में आये, उतना समझना, भाई! यह तो... समझ में आया? आहाहा! वचनातीतनाथ को वचन में उसे कितना कहना?

श्रोता : ....स्वाहा हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वाहा हो जाता है। कहा है न! आहाहा! एक-एक पर्याय स्व-रूप में है और अन्यरूप से नहीं; ऐसी अनन्त सप्तभंगी एक पर्याय में उठती है। ऐसी अनन्त पर्याय में उठती है, ऐसे अनन्त गुण में उठती है। ऐसे एक पर्याय में अनन्त अविभागप्रतिच्छेद है। आहाहा! क्योंकि केवलज्ञान की एक समय की पर्याय अनन्त केवली और अनन्त जीव जाने, तो उसकी पर्याय का सामर्थ्य कितना हुआ? समझ में आया इसमें? एक समय की पर्याय अनन्त सिद्ध को जाने, तीन लोक को जाने तो एक पर्याय में उसके कितने अंश हुए? आहाहा! वह एक-एक अंश में स्व-रूप से है; और पर-रूप से नहीं, ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! भाई! यह बात तो अन्दर समझे बिना आत्मा इतना है, ऐसा इसे नहीं बैठेगा। आत्मा कितना है? आहाहा!

श्रोता : आपको बैठाना ही पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो हमारे चन्दुभाई ने जरा कल कहा था। एक जाने तो सर्व जाने, ऐसा सब लम्बा क्या? यह लम्बा नहीं है। इतना तू है, इतना उसे प्रसिद्ध करते हैं। और वह इतना है, उसे जान, तो उसमें सब जानने का आ गया है। और सब जानने का जान, तो वह सब जानने का उस पर्याय में आ गया, इसलिए वह.. है। चिमनभाई! ऐसा है, प्रभु! कौन जाने भगवान तो क्या करते होंगे अभी? उनकी दिव्यधवनि में तो... आहाहा!

श्रोता : यह दिव्यध्वनि खिरती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! भगवान की दिव्यध्वनि तो अलौकिक है। यह तो प्रवचनसार है न? प्र-वचनों, दिव्यवचन है। दिव्यध्वनि का वचन यह है। आहाहा! अकेला वीतरागभाव। पर्यायमात्र वीतरागभाव, गुणमात्र वीतरागभाव... आहाहा! पूरी वस्तु जिनस्वरूपी। जिन सो

ही है आत्मा। 'घट-घट अन्तर जिन बसे, घट-घट अन्तर जैन, मतमदिरा के पान सों मतवाला समझे न..।' आहाहा! 'घट-घट अन्तर जिन बसे...' यह जिनस्वरूप ही है, इसके अनन्त गुण जिनस्वरूप हैं, इसकी निर्मल अनन्त पर्यायें जिनस्वरूप है। आहाहा! अरे रे!

श्रोता : स्वयं ज्ञानमय का अर्थ चलता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्वयं ज्ञानमय विशेषता का अर्थ चलता है। विशेषों में व्यापनेवाला, इसका अर्थ चलता है। आहाहा! क्या कहें? प्रभु का विरह पड़ा और यह बात पीछे रह गयी और लोगों ने वादविवाद में चढ़ा दी। वस्तु की स्थिति है, मर्यादा जो है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि एक-एक पर्याय और एक-एक गुण वीतरागभाव से भरपूर, वह भी वापस अनन्त-अनन्त। आहाहा! एक पर्याय में जहाँ अनन्त केवली ज्ञात हुए, अनन्त केवली-सिद्ध हुए है। आहाहा! 'णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं।' शास्त्र में ऐसा शब्द आता है। संक्षिप्त शब्द अभी 'णमो अरिहंताणं' हो गया है और बाद में 'णमो लोए सव्व साहूणं', यह अन्तदीपक है। इसलिए वास्तव में तो 'णमो लोए सव्व अरिहंताणं।' परन्तु इसके उपरान्त धवल में णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आइरियाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं (लिखा है)। आहाहा!

भूत और भविष्य, तीर्थंकर या आचार्य, उपाध्याय हो गये... आहाहा! और मैं उन्हें नमन करता हूँ, इतनी मेरी पर्याय की ताकत है। आहाहा! सबको मेरे ज्ञान के ख्याल में लेकर... आहाहा! जैसे पर्यायविशेष है, वैसे इस ज्ञान के ख्याल में लेकर, तीन काल के अरिहन्तों, तीन काल के सिद्धों... इसलिए **वंदित्तु सव्व सिद्धे** कहा है न? आहाहा! (समयसार की) पहली ही गाथा। बापू! पार पड़े, ऐसा नहीं है, भाई! उसकी एक गाथा, उसका एक पद... आहाहा! श्रुतकेवली जाने और सर्वज्ञ भगवान जाने। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा एक ही...

(संवत्) १९८५ के वर्ष में एक बार कहा था। वीरजीभाई के साथ बात चलने पर (कहा था)। वीरजी वकील थे न? १९८५ के वर्ष हमारे नाराणभाई की दीक्षा हुई न? कहा, देखो! यह एक ही पर्याय है और वह बस है, क्योंकि लोकालोक का ज्ञान आवे तो एक समय की पर्याय, वही पूरा तत्त्व है, बस! तो ऐसी-ऐसी अनन्त पर्यायें और ऐसी-ऐसी अनन्त पर्यायों का एक गुण, ऐसे अनन्त गुणों का पिण्ड प्रभु! आहाहा! ऐसे निर्विकल्प स्वभाव से

सब हैं, जिसमें राग की गन्ध नहीं। दया, दान, व्रत का विकल्प है, उसके गुण में और पर्याय में गन्ध नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

महासामान्य प्रतिभासमय अनन्त विशेषों में व्याप्त होनेवाला है...

श्रोता : सामान्य की अपेक्षा विशेष की महिमा तो होनी चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : विशेष की अपेक्षा सामान्य की महिमा है, क्योंकि एक समय में इतना है, ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड गुण है, ऐसी अनन्त पर्याय का दूसरा गुण है; ऐसे अनन्त गुणों का द्रव्य है। उसकी क्या बात करना!! आहाहा! धन्य भाग्य हो, उसके कान में पड़े, ऐसी बात है। आहाहा! मस्तिष्क में जितना ख्याल में आता है, उतना सब (वाणी में) आ नहीं सकता। आहाहा! क्या चीज़ है यह! आहा!

प्रतिभासमय अनन्त विशेषों में व्याप्त होनेवाला है... एक समय की विशेष पर्याय, ज्ञान की एक समय की विशेष पर्याय। गुण सामान्य, परन्तु उसकी विशेष पर्याय। उन **अनन्त विशेषों में व्याप्त होनेवाला है...** आहाहा! जितने द्रव्य-गुण-पर्याय लोकालोक के हैं, उन सबको जानने में व्यापता है। है? लो, यहाँ तक आया था और वापस इसमें यह आया। लो, अभी तो घण्टा होने आयेगा। आधे घण्टे से ऊपर हुआ।

विशेषों के निमित्त... क्या कहते हैं? जो ज्ञान सामान्य है, उसकी जो पर्याय विशेष है, उस विशेष की पूर्णता का निमित्त क्या है? सर्व द्रव्यपर्यायें हैं। यह तो हाथ आवे, ऐसा नहीं मिलता। वे घर की बहियाँ होवें तो तुरन्त हाथ आवें। इसका यह है, यह अमुक इस जगह। इससे पाँच हजार लेना है। अरे, भाई! यह तो तेरा नामा है।

श्रोता : वह तो पृष्ठ फिरे और सोना झरे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोना झरे, इसका अर्थ यह कि कुछ न कुछ पृष्ठ में रह गया हो। किसी जगह सोना झरे, अर्थात् इससे इतने पैसे पैदा हो गये, ऐसा है। यह तो... आहाहा! एक-एक पर्याय फिर और अनन्त आनन्द झरे। ऐसा यहाँ है। उसमें सोना झरे, इसमें आनन्द झरे। आहाहा!

श्रोता : कितना आनन्द?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी अनन्तता। कहा नहीं! एक समय की ज्ञानपर्याय में विशेष में अनन्त निमित्त हैं। इतने सुख की एक समय की पर्याय में, उस ज्ञान का सुख, अस्तित्व का

सुख, वस्तुत्व का सुख, सब आये हैं परन्तु जरा अटका है कहाँ? कि सर्वदर्शी में अस्ति तो ठीक, परन्तु सर्वदर्शी का अस्तित्व में उसका रूप क्या? समझ में आया? यह अलौकिक बात है। सर्वदर्शी, सर्वज्ञशक्ति है, उसका प्रत्येक गुण में रूप है। अस्तित्वगुण में है। उसमें उसका रूप क्या? कोई अलौकिक बातें हैं यह तो, बापू!

आहाहा! विचार तो सब आ गये हैं न? यह कहीं नये नहीं हैं। आहाहा! यह वीतरागमार्ग है। इन वीतराग का कहा हुआ तत्त्व यह है। आहाहा! इतने आत्मा को एक को जाने, वह सबको इकट्ठा जानता ही है। वह सबको जाने इतना तो यह आत्मा है। सबको जाने इतना तो वह आत्मा है; इसलिए सर्व को जाने, वह आत्मा को जाने। और इसमें एक को जाने, वह सर्व को जाने। एक इतना ही वह आत्मा है कि जिसकी पर्याय में लोकालोक ज्ञात हो। अनन्त पर्यायों को जाने, वहाँ एक को जाने तो सर्व को जाने तो सर्व का ज्ञान उसमें आ जाता है। आहाहा! पण्डितजी! आहाहा!

एक जाने, वह सर्व को जाने। वह यह बोल है न? ४९ में। है न? उपोद्घात नहीं? **एक को न जाननेवाला सबको नहीं जानता...** क्योंकि एक को जो जाने तो एक इतना है, उसे नहीं जानता तो सर्व उसमें आ जाता है, उसे नहीं जानता। आहाहा! ऐसी बातें, बापू! यह तो लोग दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, धर्म हो गया। धूल में भी धर्म नहीं, सुन न! तेरा महानाथ अन्दर विराजता है। 'स्व-पर प्रकाशक शक्ति हमारी, तातें वचन भेद भ्रम भारी, ज्ञेयशक्ति द्विविधा प्रकाशी, निजरूप पररूपा (भासी)...' परन्तु पररूप ज्ञान की पर्याय में सर्व आ जाते हैं। यह कहा न यहाँ? आहाहा! है?

विशेषों के निमित्त सर्व द्रव्यपर्याय हैं। सर्व द्रव्यपर्याय अर्थात् सर्वसिद्ध और सर्व पर्यायें, निगोद के अनन्त जीव, उनके अनन्त गुण और उनकी अनन्त पर्यायें; उससे अनन्तगुणे पुद्गल और एक-एक परमाणु में इतने-इतने गुण, एक जीव के जितने गुण, उतने गुण एक परमाणु में भले जड़ और यह चैतन्य, और एक-एक परमाणु के अनन्त गुण, आकाश का अन्त नहीं, ऐसे जो अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... चलते जाओ तो फिर आकाश हो रहता है, ऐसा है? तो उसके प्रदेश से अनन्तगुणे तो एक परमाणु में गुण हैं। आहाहा! इससे अनन्तगुणे तो एक भगवान आत्मा में गुण हैं। आहाहा! ऐसा जो निमित्त, **विशेषों के निमित्त सर्व द्रव्यपर्याय हैं।** आहाहा! कहो, समझ में आया?

थोड़ा विचार करने का समय रहे, ऐसा है। विचार करे तो... यह कहीं ऐसा का ऐसा

वह प्रोफेसर हाँकता जाए, कॉलेज में एक घण्टे बोल जाए, इसलिए हो गया फिर। यह ऐसा नहीं है। यह तो उसे सुननेवाले को साथ में विचार में आवे, ऐसा अन्दर धीरे-धीरे (कहा जाता है)। आहाहा! अरेरे! यह किये बिना इसने कुछ किया नहीं।

ऐसा आत्मा भगवान पूर्णानन्द का नाथ, जिसकी एक समय की पर्याय में लोकालोक, उसका सामर्थ्य कितना, वह ज्ञान में आ जाए। ऐसी-ऐसी एक गुण की अनन्त पर्यायें। चिद्विलास में आता है कि एक गुण की अनन्त पर्यायें, एक गुण की अनन्त शक्ति और अनन्त पर्यायें। दो आते हैं - चिद्विलास में दो बोल आते हैं। क्या? एक गुण, उसकी अनन्त पर्याय और एक गुण की अनन्त शक्ति। ऐसा आता है, दो बोल आते हैं। चिद्विलास, दीपचन्दजी (कृत)। आहाहा! एक-एक गुण... आहाहा! अनन्त शक्ति। एक गुण में अनन्त शक्ति। पर्याय हों, वह अलग वस्तु। एक गुण की त्रिकाल पर्याय हो, वह अलग, परन्तु एक गुण में स्वयं अनन्त शक्ति है। आहाहा! अरे!

श्रोता : अनन्त गुण का रूप है...

पूज्य गुरुदेवश्री : एक-एक गुण की अनन्त शक्ति, ऐसे अनन्त गुण की शक्ति का पिण्ड, वह द्रव्य। आहाहा! भाई दीपचन्दजी ने दो बोल लिये हैं। दो-चार जगह लिये हैं। निश्चय अधिकार में। एक-एक गुण में अनन्त शक्ति और एक-एक गुण की अनन्त पर्याय, वह अलग। पर्याय है, इसलिए अनन्त शक्ति, ऐसा भी नहीं है। एक-एक गुण में अपनी अनन्त शक्ति है। स्वयं अनन्त शक्ति, अनन्त गुण का रूप जिसमें धारण है। आहाहा! ऐसी अनन्त शक्ति का एक गुण और ऐसी एक-एक गुण की त्रिकाली पर्याय। उसमें अपने को यहाँ सादि-अनन्त शुद्ध (पर्याय) लेनी है। समझ में आया?

'सादि अनन्त-अनन्त समाधि सुख में।' जो भूतकाल की पर्यायों से अनन्तगुनी पर्याय है। संख्या। भूतकाल है, उसका अन्त आया, वह अनादि-सान्त है और यहाँ केवलज्ञान हुआ, तब अनन्त काल रहेगा, सादि-अनन्त है। इसलिए भूतकाल की संख्या की अपेक्षा भविष्य की अनन्तगुनी संख्या है। आहाहा! ऐसे अनन्त गुण की संख्या को भी विशेष ज्ञान में वे सब निमित्त हैं तो विशेष जानता है। जानने का कार्य अपने उपादान से है। समझ में आया?

अब जो पुरुष सर्व द्रव्यपर्याय जिनके निमित्त हैं ऐसे अनन्त विशेषों में व्याप्त होनेवाले प्रतिभासमय महासामान्यरूप आत्मा का स्वानुभव प्रत्यक्ष नहीं करता,... आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, जिसके विशेषों में लोकालोक के द्रव्यपर्याय निमित्त है, ऐसी जो आत्मा की

पर्याय, ऐसा वह आत्मा... आहाहा! उसे **स्वानुभव प्रत्यक्ष नहीं करता,...** अनुभव में उसे प्रत्यक्ष मति-श्रुतज्ञान में नहीं करता। आहाहा! **वह (पुरुष) प्रतिभासमय महासामान्य के द्वारा व्याप्य (व्याप्य होनेयोग्य) जो प्रतिभासमय अनन्त विशेष हैं उनकी निमित्तभूत सर्व द्रव्यपर्यायों को कैसे प्रत्यक्ष कर सकेगा ?** जो ऐसा भगवान है उसे.. आहाहा!

(समयसार) ३२० गाथा में कहा है न? कैसा है प्रभु अन्दर? जो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय। यहाँ प्रत्यक्ष कहा न! यह प्रत्यक्ष हो, ऐसा ही उसका स्वभाव है। बारहवाँ गुण (शक्ति) है न? स्वसंवेदन प्रकाशगुण। बारहवाँ प्रकाशगुण। स्वसंवेदन प्रकाश। यह प्रत्यक्ष हो, ऐसा ही उसका स्वभाव है। आहाहा! ऐसा प्रत्यक्ष आत्मा जिसने प्रत्यक्ष अनुभव किया नहीं वह, **विशेष हैं उनकी निमित्तभूत सर्व द्रव्यपर्यायों को कैसे प्रत्यक्ष कर सकेगा ?** जिसकी पर्याय में इतनी ताकत है, ऐसे आत्मा को जिसने प्रत्यक्ष नहीं किया, वह दूसरे सबको किस प्रकार जान सकेगा? एक को न जाने, वह सबको न जाने; एक को जाने, वह सबको जाने। आहाहा! ऐसी बात कैसी होगी यह? वह तो भाई! भगवान की पूजा करना, दर्शन करना, सवेरे यह करना, घण्टा बजाना, जाप करना 'णमो अरिहंताणं...' अब इस सब बातें छोड़ न! ये सब क्रियाएँ तो जड़ की हैं। ये जड़ की क्रियाएँ और उस समय होता राग, उसकी ज्ञान की पर्याय की विशेषता में वे सब निमित्त हैं। समझ में आया? आहाहा! यह ज्ञान की पर्याय राग से हुई नहीं। ज्ञान की पर्याय, सामने भगवान को देखा, इसलिए उनसे इसे जानने की पर्याय हुई नहीं। आहाहा!

एक ही समय में षट्कारक के परिणमनरूप से परिणमति पर्याय निर्मल और उसी समय में दूसरा राग है, वह षट्कारकरूप परिणमति, वह ज्ञानधारा और रागधारा दोनों एक समय में वर्तती है। आहाहा! क्या कहते हैं यह? कुछ दरकार नहीं होती। बनिया जिस कुल में जन्मा वह... मजदूरी की, मजदूरी, हों! यह सब। हसुभाई! सब तुम्हारी मजदूरी होगी? बड़ी मजदूरी राग की।

श्रोता : मजदूरी कहो, वहाँ तक बाधा नहीं है, परन्तु फिर आप कहते हो कि वह पाप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाप, पूरे दिन पाप है। छह भाई इकट्ठे होकर बातें करे कि इसका ऐसा है, इसका वैसा है। अमुक-अमुक सब पाप है। बेचने का भाव पाप है। पैसे देने का भाव पाप है।

श्रोता : यह खाना-पीना वह?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह खाने-पीने का भाव होता है, वह पाप है। आहाहा!

श्रोता : उठना-बैठना... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब कौन उठे और बैठे। उसमें भाव होता है, वह पाप है। आहाहा! यहाँ तो वे पाप के परिणाम हैं, वे ज्ञानविशेष में निमित्त हैं। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, प्रभु! इसमें प्रभुत्व नाम का एक गुण है। आत्मा में ईश्वरता नाम का एक गुण है कि जिससे अनन्त गुण ईश्वररूप है। आहाहा! और उन अनन्त गुणों की पर्यायें... आहाहा! स्वाधीनरूप स्वतन्त्ररूप से शोभायमान है, अखण्डरूप से इसका प्रताप है। आहाहा! जिसके गुण में अखण्ड प्रताप स्वतन्त्र शोभा है, ऐसा ही अखण्ड प्रताप, स्वतन्त्र शोभा प्रत्येक गुण में है। आहाहा! और उसकी एक समय की पर्याय है, उसमें भी जिसका अखण्ड प्रताप है, ऐसी स्वतन्त्रता से शोभित वह पर्याय है, ऐसी अनन्त एक समय की पर्यायें हैं। उस पर्याय में यह सब ज्ञात होता है। कहते हैं कि यदि एक इतना आत्मा है, ऐसा नहीं जाना, उसने पर को भी नहीं जाना। आहाहा! समझ में आया?

हमें तो रुकना चाहिए, ऐसा कहते हैं। हमारे हसुभाई तो निवृत्ति लेकर बैठे हैं, देखो न! आहाहा! अरे! ऐसा कब मिले? बापू! आहाहा! और इस बात को धारणा में ले, वह कुछ वस्तु नहीं है। इसलिए यहाँ कहा, **कैसे प्रत्यक्ष कर सकेगा?** है इसमें? धारणा में ले। यह धारणा में बात ले, वह तो परज्ञेयनिष्ठ है, परज्ञेयनिष्ठ है। आहाहा!

श्रोता : स्व में निष्ठ नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वज्ञेय में निष्ठ नहीं। 'बहिन के वचनामृत' में आता है। आहाहा! शास्त्र का जानना हो, उसका जो धारणा का ज्ञान (हो), वह परालम्बी, परसत्तावलम्बी ज्ञान है। इसलिए उसमें निष्ठ है, रुक गया है, वह स्वज्ञान में निष्ठ नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा... आहाहा! भगवान क्यों कहते हैं? (समयसार में) ७२ (गाथा में) भगवानरूप से बुलाया है। आचार्यों ने, सन्तों ने, भगवान आत्मा। भग अर्थात् अनन्त आनन्द आदि की लक्ष्मी। भग का यह अर्थ होता है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द की लक्ष्मी। वान अर्थात् स्वरूप। वह ऐसे आनन्द आदि स्वरूपवान है। वान—उसका वह रूप है। लोग नहीं कहते कि यह काला वान है, सफेद वान है, लाल वान है, रूपवान है वान से। तो यह वान, वह क्या है? यह अनन्त गुण की लक्ष्मी का वान है। आहाहा! अरेरे! समझ में आया?

वह **अनन्त विशेष हैं, उनकी निमित्तभूत सर्व द्रव्यपर्यायों को कैसे प्रत्यक्ष कर सकेगा ? (नहीं कर सकेगा) इससे ऐसा फलित हुआ कि जो आत्मा को नहीं जानता वह सबको नहीं जानता।** इतना आत्मा है, उसे जो नहीं जानता, वह सर्व को नहीं जानता। ४८वीं गाथा में, सर्व को नहीं जानता, वह एक को नहीं जानता। यहाँ एक को नहीं जानता, वह सर्व को नहीं जानता। दूसरे प्रकार से कहें तो सर्व को जानता है, वह एक को जानता है और एक को जानता है, वह सर्व को जानता है। आहाहा!

अब इससे ऐसा निश्चित होता है कि सर्व के ज्ञान से आत्मा का ज्ञान... देखो ? ४८ गाथा का योगफल किया। **सर्व के ज्ञान से आत्मा का ज्ञान और आत्मा के ज्ञान से सर्व का ज्ञान (होता है);...** आहाहा! **और ऐसा होने से, आत्मा ज्ञानमयता के कारण स्वसंचेतक होने से, ज्ञाता और ज्ञेय का वस्तुरूप से अन्यत्व होने पर भी...** क्या कहते हैं अब ? कि जाननेवाला भगवान है और ज्ञेय अत्यन्त पर है, ऐसा होने पर भी ज्ञान की पर्याय को सब समा जाता है। उसका ज्ञान आता है, उसमें मानो समा गया हो। यह विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

७ **श्री नियमसार, गाथा - १५९, १६५, १६६, श्लोक - २८०, २८१, २८२**
प्रवचन - १९१ दिनांक - ०१-१२-१९७१

नियमसार। यह व्यवहारनय का सफलपना दर्शानेवाला कथन है। यद्यपि पहली गाथा में आ गया था, १५९, पहली गाथा। व्यवहारनय से पर को जानते हैं, निश्चय से स्व को जानते हैं, परन्तु अधिक स्पष्ट (करते हैं)। पहली गाथा शुरु की उसमें आया। १५९, १५९ न? शुरुआत की पहली।

जाणदि पस्सदि सव्वं ववहारणएण केवली भगवं।
केवल-णाणी जाणदि पस्सदि णियमेण अप्पाणं।।१५९।।

भाई! केवलज्ञान और केवलदर्शन का विषय है न? जरा सूक्ष्म-सूक्ष्म पड़े, ऐसा परन्तु सुनकर जरा विचारना तो पड़ेगा न? कहते हैं कि व्यवहारनय का सफलपना दर्शानेवाला कथन। व्यवहार कैसे कहा? किस अपेक्षा से कहा? वह कथन है इसमें। समस्त ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय हुआ होने से... केवली भगवान को प्राप्त होता सकल विमल केवलज्ञान। समस्त कर्म का क्षय होने से, ऐसा शब्द उठाया है। संक्षिप्त में कहना हो तो ऐसा ही कहे न! कर्म का क्षय होने से प्राप्त होता सकल विमल केवलज्ञान, पुद्गलादि मूर्त-अमूर्त, चेतन-अचेतन, परद्रव्य-गुण-पर्याय का प्रकाशक किस प्रकार है? पुद्गलादि मूर्त और अमूर्त। एक मूर्त और पाँच अमूर्त (द्रव्य), एक चेतन और पाँच अचेतन। छह द्रव्य है न? ऐसे परद्रव्य-गुण-पर्याय समूह का, परद्रव्य के गुण और पर्याय का समूह, प्रकाशक किस प्रकार हुआ? यह प्रश्न हो, उसका उत्तर इस प्रकार है।

'पराश्रितो व्यवहारः (व्यवहार पराश्रित हैं)' ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से,... व्यवहावरनय के बल से ऐसा है। व्यवहारनय के बल से ज्ञान परप्रकाशक है - ऐसा है। इसका स्पष्टीकरण आगे नीचे किया है। व्यवहारनय क्यों कहा? पर में तन्मय नहीं होता। पर को जानता नहीं, ऐसा नहीं। समझ में आया? उसमें तन्मय होकर नहीं जानता; इसलिए उसे व्यवहार कहा जाता है। स्पष्टीकरण आगे किया है। बड़ा पेरेग्राफ है। ३३६ पृष्ठ पर है।

व्यवहारनय के बल से ऐसा है (अर्थात् परप्रकाशक है).... क्या परप्रकाशक है?

केवलज्ञान। भगवान का केवलज्ञान व्यवहार से परप्रकाशक है। अर्थात् पर में तन्मय हुए बिना जानता है, इसलिए उसे व्यवहार से परप्रकाशक कहा जाता है। **इसलिए दर्शन भी वैसा ही...** जैसा ज्ञान है, वैसा दर्शन भी परप्रकाशक ही है। **और तीन लोक के प्रक्षोभ के हेतुभूत...** भगवान को ज्ञान होने पर तीन लोक में आनन्द की खलबलाहट हो जाती है। क्षणभर तो नारकी को भी साता (हो जाती है)। साता का आनन्द, हों! यहाँ अतीन्द्रिय आनन्द की बात नहीं है। समझ में आया?

लोक के **तीन लोक के प्रक्षोभ के हेतुभूत तीर्थंकर-परमदेव को...** तीन लोक के प्रक्षोभ के हेतुभूत कहा है न? निमित्त। **तीर्थंकर-परमदेव को कि जो सौ इन्द्रों की प्रत्यक्ष वन्दना के योग्य हैं...** सिद्ध हैं, वे तो परोक्ष वन्दना के योग्य है। यह तो अरिहन्त साक्षात् समवसरण में बिराजते हों, तो **सौ इन्द्रों की प्रत्यक्ष वन्दना के योग्य हैं और कार्यपरमात्मा हैं...** स्वयं कार्यपरमात्मा हैं। पूर्ण ज्ञान-दर्शन आदि पूर्ण दशा हो गयी, इसका नाम कार्यपरमात्मा। **उन्हें ज्ञान की भाँति ही (व्यवहारनय के बल से) परप्रकाशकपना है...** आत्मा को भी, ऐसा है। ज्ञान की परप्रकाशपना है, दर्शन को भी परप्रकाशपना है, और आत्मा को भी परप्रकाशपना है। **इसलिए व्यवहारनय के बल से उन भगवान का केवलदर्शन भी वैसा ही है।** यद्यपि पहले आ गया था। दर्शन सामान्य, पहले आ गया था न? इसलिए दर्शन भी वैसा ही है, इतना कहा था।

भगवान का केवलदर्शन भी वैसा ही है। पर को प्रकाशित करनेवाला। व्यवहारनय से। व्यवहार का अर्थ कि उसमें निमित्त की अपेक्षा आयी न? पर को जाने, इतनी अपेक्षा आयी न, पर को जाने, इतनी अपेक्षा आयी तो व्यवहार। **इसी प्रकार श्रुतबिन्दु में (श्लोक द्वारा) कहा है कि...** आचार्य ने इसमें बहुत गाथायें ली हैं। अभेद की सिद्ध करने को भेद को व्यवहार कहना है और अभेद को निश्चय कहना है। यह श्रुतबिन्दु में कहा -

जयति विजितदोषोऽमर्त्यमर्त्येन्द्रमौलि-
प्रविलसदुरुमालाभ्यर्चिताङ्घ्रिर्जिनेन्द्रः।
त्रिजग-दजगती यस्येदृशौ व्यश्नुवाते,
सममिव विषयेष्वन्योन्य-वृत्तिं निषेद्धुम्।।

भगवान **जिन्होंने दोषों को जीता है,...** सर्वज्ञ परमात्मा, तीर्थंकर देव और केवली आदि सब। **दोषों को जीता है, जिनके चरण देवेन्द्रों तथा नरेन्द्रों के मुकुटों में प्रकाशमान**

मूल्यवान मालाओं से पुजते हैं... भगवान के चरण पूज्य हैं **(अर्थात् जिनके चरणों में इन्द्र तथा चक्रवर्तियों के मणिमालायुक्त मुकुटवाले मस्तक अत्यन्त झुकते हैं)...** यह पुण्य वर्णन किया। दोष नाश हुए हैं, यह गुण वर्णन किये। भगवान ने दोषों को जीता है, यह गुण वर्णन किये और यह पुण्य वर्णन किया। पुण्य भी ऐसा। पवित्रता पूरी और पुण्य भी पूर्ण। तीर्थंकर दोनों में पूरे होते हैं।

और (लोकालोक के समस्त) पदार्थ एक-दूसरे में प्रवेश को प्राप्त न हों... अर्थात् कि भिन्न-भिन्न ज्ञात होते हैं। परमाणु, परमाणुरूप से; आत्मा, आत्मारूप से; धर्मास्ति, धर्मास्तिक रूप से; गुण, गुणरूप से; पर्याय, पर्यायरूप से। **एक-दूसरे में प्रवेश को प्राप्त न हों, इस प्रकार तीन लोक और अलोक जिनमें एक साथ ही व्याप्त हैं...** लो! तीन लोक और अलोक जिसमें एक ही साथ व्यापते हैं। **(अर्थात् जो जिनेन्द्र को युगपत् ज्ञात होते हैं), वे जिनेन्द्र जयवन्त हैं।** इस जगत में जिनेन्द्र बिराजते हैं। ज्ञान से पर को जाने, दर्शन से पर को देखे। आत्मा से भी स्व-पर को देखे। यह व्यवहार हो गया न? दो हुए इसलिए। ऐसा जिनेन्द्रपना जयवन्त वर्तता है। इसकी टीका मुनि स्वयं करते हैं।

व्यवहरण-नयेन ज्ञान-पुञ्जोऽयमात्मा ,
प्रकटतर-सुदृष्टिः सर्व-लोक-प्रदर्शी।
विदितसकलमूर्तामूर्ततत्त्वार्थसार्थः,
स भवति परमश्रीकामिनीकामरूपः ।।२८०।।

केवलज्ञान, केवलदर्शन में (अज्ञानियों की) गड़बड़ है, वह सब समझाते हैं। कितने ही तो, केवलज्ञान है ही नहीं - ऐसा कहते हैं। एक समय में, और सब जाने, ऐसा होता है? कोई कहे केवलज्ञान जाने और केवलदर्शन देखे, इसका अन्तर है, समयभेद है। यह पहली बार स्पष्टीकरण कर गये। कोई कहे, भाई! केवलज्ञान और केवलदर्शन... ज्ञान पर को प्रकाशित करता है और दर्शन स्व को। इतना भेद ही है, ऐसा माने। उसके सामने यह सब तर्क हैं। समझ में आया? आवे तब, सभी बात आवे न?

ज्ञानपुंज ऐसा यह आत्मा अत्यन्त स्पष्ट दर्शन होने पर (अर्थात् केवलदर्शन प्रगट होने पर) व्यवहारनय से सर्व लोक को देखता है... आत्मा के अतिरिक्त परचीज़ है न? इसलिए उसे देखता है - ऐसा कहना, वह व्यवहारनय है। क्योंकि उसे देखते हुए, उसके सुख-दुःख को वेदते नहीं हैं। अपने को देखते हुए तो अपने आनन्द को वेदते हुए अपने को देखते हैं और पर को देखते हुए पर के सुख-दुःख जानते-देखते नहीं, इससे उसे तन्मय हुए बिना देखते हैं,

इसलिए उसे व्यवहार कहने में आता है। नहीं जानता, इसलिए नहीं। व्यवहार से जानता है और वास्तव में नहीं जानता – ऐसा नहीं। समझ में आया? व्यवहार से जानता है, निश्चय से नहीं – ऐसा नहीं। व्यवहार से जानता है, इसका अर्थ कि उसमें तन्मय होकर नहीं जानते, परन्तु जानते हैं सब। समझ में आया? ऐसा आत्मा एक पर्याय में ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण, उसका सामर्थ्य इतना, ऐसे आत्मा को आत्मा कहा जाता है। समझ में आया?

आत्मा अत्यन्त स्पष्ट दर्शन होने पर (अर्थात् केवलदर्शन प्रगट होने पर) व्यवहारनय से सर्व लोक को देखता है तथा (साथ में वर्तते हुए केवलज्ञान के कारण)... अब ज्ञान डाला। **समस्त मूर्त-अमूर्त पदार्थसमूह को जानता है।** पहले में देखने की बात थी। **वह (केवलदर्शनज्ञानयुक्त) आत्मा...** अब आत्मा डाला। दर्शन पर को देखता है, ज्ञान पर को जानता है, ऐसे आत्मा भी **वह (केवलदर्शनज्ञानयुक्त) आत्मा परमश्रीरूपी कामिनी का (मुक्तिसुन्दरी का) वल्लभ होता है।** यह आत्मा मुक्तिरूपी परम आनन्द की दशा, उसे छोड़े नहीं, ऐसी दशा उसे प्रगट होती है। यह व्यवहार की बात की। अब निश्चय से। १६५ गाथा।

णाणं अप्पपयासं णिच्छयणयएण दंसणं तम्हा।
अप्पा अप्पपयासो णिच्छय-णयएण दंसणं तम्हा।।१६५।।

यह तो इस गाथा में डाला है सब। जरा वह खटका था १६५ में, जड़ जैसा है, ऐसी वह टीका डाली थी।

श्रोता : व्यवहारनय का कथन है, उसे मानते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं। वह तो बराबर है – ऐसा मानते हैं। गुणभेद भेद से कहा है... इस दर्शन-विशुद्धि से रहित मूर्ख है। पर को देखे और जाने तथा स्व को देखे और जाने नहीं, पर को देखे और जाने, यह ज्ञान पर को जाने, और दर्शन स्व को देखे? उसे पाठ में है इतना भले अर्थ विशेष किया। परन्तु इतना तो है न? पाठ देखो!

णाणं परप्पयासं दिट्ठी अप्पप्पयासया चेव।
अप्पा सपरपयासो होदि त्ति हि मण्णसे जदि हि।।१६१।।

ज्ञान पर को जाने, दर्शन स्व को देखे और आत्मा स्व-पर को प्रकाशित करे, ऐसा होवे तो वह **मण्णसे जदि** ऐसा यदि मानता हो तो... ऐसा कहकर झूठा सिद्ध किया है। वह तो यह टीका की इन्होंने। **इस प्रकार हे जड़मति प्राथमिक शिष्य! यदि तू दर्शनशुद्धि के अभाव के**

कारण मानता हो, तो वास्तव में तुझसे अन्य कोई पुरुष जड़ (मूर्ख) नहीं है। आचार्य उसे ऐसा कहते हैं और तू... पद्मप्रभमलधारिदेव मुनिरूप से ऐसे मूर्ख सिद्ध करते हैं! किस अपेक्षा से कहते हैं। भेद से ही मात्र तू मानता हो और अभेद न माने, तो तू मूर्ख है - ऐसा कहते हैं। मात्र व्यवहार से जो माना है, उसे ही माने। आत्मा निश्चय अभेद है। उसके ज्ञान से स्व-पर को जाने, दर्शन से स्व-पर को जाने और आत्मा भी स्व-पर को जाने, ऐसा उसका स्वरूप है। आहाहा!

णाणं अप्पपयासं णिच्छयणयएण दंसणं तम्हा।
अप्पा अप्पपयासो णिच्छय-णयएण दंसणं तम्हा।।१६५।।

नीचे हरिगीत-

है ज्ञान निश्चय निज-प्रकाशक इसलिए त्यों दर्श है।
है जीव निश्चय निज-प्रकाशक इसलिए त्यों दर्श है॥१६५॥

कुन्दकुन्दाचार्य जैसे तीसरे नम्बर पर आये। भगवन महावीर और पश्चात् गणधर और पश्चात् कुन्दकुन्दाचार्य। उन्हें इस बात का इतना स्पष्टीकरण करना पड़ा। मुनि महासन्त हैं। उनके सभी मार्गानुसारी जो यह मुनि आदि हुए हैं, वे इनके मार्गानुसारी कहलाते हैं। उन्होंने इतना स्पष्टीकरण करना पड़ा। गुणभेद के अकेले गुण को माने और अभेद को न माने तो अज्ञान है। तेरी दृष्टि मिथ्या है - ऐसा कहते हैं। व्यवहार ही अकेला माने और निश्चय न माने तो तू मूर्ख है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? १६५ की टीका।

यह, निश्चयनय से स्वरूप का लक्षण है। पहले में व्यवहारनय से आया था।

श्रोता : व्यवहारनय से सफलपना....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सफलपना अर्थात् इससे कहा कि यह पर को जानता है, इतनी अपेक्षा इसकी व्यवहार की है। जानने में पर की अपेक्षा आयी न? पर की अपेक्षा आयी, वह व्यवहार है; स्व की अपेक्षा आवे, इसका नाम निश्चय है।

यहाँ निश्चयनय से शुद्ध ज्ञान का लक्षण स्वप्रकाशकपना कहा है;... लो, निश्चय से तो शुद्धज्ञान स्व—अपने को ही प्रकाशित करता है। स्वयं अपने को ही जानता है। **उसी प्रकार सर्व आवरण से मुक्त शुद्ध दर्शन भी स्वप्रकाशक ही है।** ज्ञान जैसे स्वप्रकाशक है, वैसे दर्शन भी स्वप्रकाशक है। दर्शन अर्थात् समकित नहीं, दर्शनोपयोग। आहाहा! **आत्मा वास्तव में, उसने सर्व इन्द्रिय-व्यापार को छोड़ा होने से, स्वप्रकाशकस्वरूप लक्षण से लक्षित है;...**

तीसरे का डालना है न ? जैसे ज्ञान स्वप्रकाशक है, वैसे दर्शन स्वप्रकाशक है, वैसे आत्मा भी स्वप्रकाशक है।

सर्व इन्द्रिय-व्यापार को छोड़ा होने से,... ऐसा **स्वप्रकाशकस्वरूप लक्षण से लक्षित है;...** यह तो। **सर्व इन्द्रिय-व्यापार को छोड़ा होने से, स्वप्रकाशकस्वरूप लक्षण से लक्षित है; दर्शन भी, उसने बहिर्विषयपना छोड़ा होने से, स्वप्रकाशकत्वप्रधान ही है।** ऐसा लिया। कहो, समझ में आया ? दर्शन नाम की पर्याय, वह भी बहिर्विषयपना छोड़ा है। क्योंकि व्यवहार में बहिर्विषय आता है, निश्चय में तो परविषय नहीं आता। इसलिए जिसने बहिर्विषयपना-व्यवहारपना छोड़ा है, ऐसा कहते हैं। **स्वप्रकाशकत्वप्रधान ही है।** दर्शन भी स्व को प्रकाशे, ऐसी मुख्यता है। प्रधान ही है। उसमें ऐसा कहा, ज्ञानप्रधान है।

इस प्रकार स्वरूपप्रत्यक्ष-लक्षण से लक्षित... देखो ! अपना जो द्रव्य-गुण-पर्याय का पूरा स्वरूप है, ऐसे **स्वरूपप्रत्यक्ष-लक्षण से लक्षित...** अपने स्वरूप को प्रत्यक्ष लक्षण के लक्षणवाला यह आत्मा है। कहो, समझ में आया ? **अखण्ड-सहज-शुद्धज्ञानदर्शनमय होने के कारण,...** अखण्ड है। स्वाभाविक शुद्ध ज्ञान-दर्शनमय होने के कारण। स्वाभाविक ज्ञान और दर्शन आत्मा के साथ अभेद है। **निश्चय से...** वास्तव में **त्रिलोक-त्रिकालवर्ती...** तीन लोक में रहनेवाले और त्रिकालवर्ती, उसमें आकाश भी आ जाता है। **स्थावर-जंगमस्वरूप...** स्थिर और गति करनेवाले द्रव्यस्वरूप **समस्त द्रव्यगुणपर्यायरूप विषयों...** समस्त द्रव्य-गुण-पर्याय विषय **सम्बन्धी प्रकाश्य-प्रकाशकादि विकल्पों से...** रहित। प्रकाश्य और प्रकाशक, प्रकाशित करनेयोग्य और प्रकाश करनेवाला, ऐसा भी जिसमें भेद नहीं।

अति दूर वर्तता हुआ,... भेद से अति दूर वर्तता हुआ। प्रकाश करनेवाला है और यह प्रकाश दिखता है। प्रकाशित योग्य ज्ञात होता है और प्रकाश करनेवाला है - ऐसा भेद भी उसमें नहीं है। ऐसे भेद से प्रकाश्य और प्रकाशक, प्रकाशनयोग्य-जाननेयोग्य और जाननेवाला, ऐसे (भेद से) **विकल्पों से अति दूर वर्तता हुआ,...** सूक्ष्म अधिकार है, भाई ! यह नियमसार। ऐसी बात अन्यत्र कहीं नहीं आती। श्वेताम्बर में तो यह बात कहीं नहीं है। वह तो व्यवहार से ऐसा है और वैसा है। वह तो एक समय में जानते हैं और दूसरे समय में देखते हैं, बस जाओ।

यहाँ तो कहते हैं कि जाननेवाला और ज्ञात होनेयोग्य, ऐसा भी जिसमें भेद - प्रकार नहीं पड़ता। आहाहा ! कहो, समझ में आया ? अपने को ही प्रकाशित करता है और प्रकाशनेयोग्य भी स्वयं ही है, ऐसा भी जिसमें भेद नहीं है। आहाहा ! पर को जानता है और जाननेवाला स्वयं,

यह भी उसमें निश्चय से तो है नहीं। क्या कहा, समझ में आया? परप्रकाश्य—ज्ञात होनेयोग्य और ज्ञान, प्रकाशक, ऐसा तो उसमें नहीं। परन्तु स्वयं अपने में भेद कि प्रकाशनेयोग्य आत्मा और प्रकाश करनेवाला आत्मा - ऐसा भेद उसमें नहीं। समझ में आया?

स्वस्वरूपसंचेतन जिसका लक्षण है... लो! स्व-स्वरूप संचेतन। अपने स्वरूप का ही वेदन करे और जाने, ऐसा जिसका लक्षण है। **ऐसे प्रकाश द्वारा सर्वथा अन्तर्मुख होने के कारण,...** वह तो सर्वथा अन्तर्मुख है। **आत्मा निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यचमत्कारमूर्ति रहता है।** लो! आहाहा! भगवान आत्मा निरन्तर सदा अखण्ड अद्वैत चैतन्य चमत्कारमूर्ति, चैतन्य चमत्कारवाला, ऐसा नहीं। चैतन्य चमत्कारमूर्ति अभेद। बहुत सूक्ष्म बात, भाईसाहेब! थोड़ी-थोड़ी चलती है, भाई! यह कहीं बहुत... आचार्य ने ही स्वयं इतना कहा है। इसकी पूरी दशा प्राप्त होने पर पूरी दशा का स्वरूप क्या है? समझ में आया? और पूरा न जाने तो वह ज्ञान कैसा? तो पूरा जानने का प्रकार क्या? - कि पर को पूरा जानना, यह? स्व को पूरा जानना, यह? पर को पूरा जानना - ऐसा कहना, वह तो व्यवहार है। पर की अपेक्षा आयी इसलिए। निश्चय को पूरा जानना, यह तो इसका स्वरूप है, ऐसा कहते हैं।

स्वस्वरूपसंचेतन जिसका लक्षण है... यह तो। अपने पूर्ण आनन्द, ज्ञान, द्रव्य-गुण-पर्याय को पूर्ण रीति से प्रत्यक्ष स्व को जाने, यह तो उसका प्रत्यक्ष लक्षण-स्वभाव है। सर्वथा अन्तर्मुख है। वह तो अन्तर्मुख ही है। पर को जानता है, इसलिए बहिर्मुख हो गया है - ऐसा नहीं है, परन्तु पर को जानना, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। समझ में आया? एक तो धर्म का स्वरूप सूक्ष्म, और उसमें ज्ञान-दर्शन का फल जो मोक्षमार्ग है, वह सूक्ष्म। एक तो कहे, विकल्प से धर्म होता नहीं है। यहाँ कहे, भेद से आत्मा जानता नहीं है। वह अभेद ही निश्चय अन्तर्मुख से जानता है। कहो, समझ में आया? व्यवहार का विकल्प है, उससे धर्म नहीं होता। वैसे आत्मा भेद से अपने को और पर के जाने, ऐसा है नहीं। अन्तर्मुख से अभेद तत्त्व, वह जानता है। ऐसा निश्चय स्थिति सिद्ध की। समझ में आया?

निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यचमत्कारमूर्ति रहता है। लो, मूल आत्मा को वर्तमान में सब बदलकर सब क्रियाकाण्ड में फँस गया, जो कुछ धर्म का स्वरूप ही नहीं। यह स्वरूप ज्ञान-दर्शन स्वरूपवाला आत्मा है। दर्शन अर्थात् उपयोग... उसका स्वरूप ही त्रिकाल ज्ञान और दर्शनस्वरूप है। पंचास्तिकाय में सब जगह आता है। अपने समयसार में आ गया! दर्शन-ज्ञान अर्थात् नियतवृत्ति। नियतवृत्ति, दूसरी गाथा में आया है। भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन दो, इसका निश्चय अस्तित्व टिकना, ऐसा इसका स्वरूप है। समझ में आया? ऐसा यह

चैतन्य चमत्कार मूर्ति, अपने को जानता है, उसमें अनादि-अनन्त उस प्रमाण जिसका सिद्धपना आदि है, वह ऐसा ही रहा करता है।

मुनिराज श्लोक कहते हैं -

आत्मा ज्ञानं भवति नियतं स्वप्रकाशात्मकं या,
दृष्टिः साक्षात् प्रहत-बहिराल-बना सापि चैषः।
एकाकार-स्व-रस-विसरापूर्ण-पुण्यः पुराणः,
स्वस्मिन्नित्यं नियतवसतिर्निर्विकल्पे महिम्नि।।२८१।।

दृष्टि शब्द से यहाँ दर्शन है। '**विसरापूर्ण**' यह शब्द बहुत जगह आता है, अन्यत्र आता है। '**एकाकारस्वरस-विसरापूर्णपुण्यः**' अमृतचन्द्राचार्य की बहुत शैली ली है। **निश्चय से आत्मा स्वप्रकाशक ज्ञान है;...** यह स्वयं अपने को ही प्रकाशित करता है, ऐसा ही उसका स्वभाव है। यह शरीर और वाणी ज्ञात होते हैं न? लोकालोक ज्ञात होता है न? - कहते हैं, नहीं। यह अपना जो ज्ञान हुआ है, वह ज्ञान ज्ञात होता है। केवली को भी लोकालोक का जो ज्ञान हुआ है, वह ज्ञान ज्ञात होता है। समझ में आया?

जिसने बाह्य आलम्बन नष्ट किया है... निश्चय से तो व्यवहार का निषेध करना है न? बाह्य का अवलम्बन, लोकालोक का जानना, वह इसमें है नहीं। ऐसा यह स्वप्रकाशक है। यहाँ भी इस ज्ञान की पर्याय में यह शरीर, राग, यह ज्ञात हो, वह शरीर और रागादि नहीं ज्ञात होते, कहते हैं; ज्ञान की पर्याय में ज्ञान स्वयं अपने को जाने और स्वयं ज्ञात होता है। समझ में आया? जैसे व्यवहार से भगवान पर को जाने और तन्मय नहीं, वैसे आत्मा नीचे भी राग और पर को व्यवहार से जाने, परन्तु उनमें तन्मय नहीं। समझ में आया?

राग है, पुण्य है, दया-दान के विकल्प हैं, उन्हें धर्मी जीव-आत्मा। आत्मा उसे कहते हैं न? वह रागादि को जाने, शरीर को जाने, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। क्योंकि उन्हें वास्तव में जानता नहीं। वास्तव में तो अपनी ज्ञानपर्याय, द्रव्य-गुण-पर्याय को जानती है। समझ में आया? नीचे भी बाह्य अवलम्बन का त्याग है, भगवान को भी बाह्य अवलम्बन का त्याग है। समझ में आया? धर्मी जीव में, अर्थात आत्मा में, अर्थात् आत्मा की दृष्टि हुई वह, उसे भी बाह्य का अवलम्बन है नहीं, ऐसा कहते हैं। परन्तु यहाँ तो आत्मा की लगायी है। कहनेवाले की-फहनेवाले की यहाँ बात कहाँ है? आहाहा!

भगवान का ज्ञान स्वप्रकाशक है। उस ज्ञान ने बाह्य का अवलम्बन छोड़ा है। लोकालोक है, इसलिए स्व को जानता है - ऐसा नहीं। आहाहा! वह ज्ञान की पर्याय ही इतनी प्रगट हुई

है, उसे ही वह जानता है। उसे जानने से पर को जानता है - ऐसा कहना, वह व्यवहार कहने में आता है। आहाहा! परमात्मप्रकाश का दृष्टान्त दिया था, नहीं? योगीन्द्रदेव कहते हैं, भाई! पानी है, ऐसे पानी-जल, नदी का स्वच्छ निर्मल जल; रात्रि का समय (हो), ऊपर लाखों-करोड़ों चन्द्र और तारे, वे पानी में ज्ञात होते हैं। उस पानी में वे चन्द्र और तारे नहीं है। वहाँ है? पानी है न, पानी? पानी की स्वच्छता, वह सब एक ही रूप स्वयं का है, पानी का वह रूप है; वह कहीं पर के कारण से है और पर उसमें आया है - ऐसा नहीं है। समझ में आया? स्वच्छ पानी का प्रवाह चलता हो, उसे ऐसे देखने पर वह सब पानी की ही पर्याय है। उस पर्याय में चन्द्र-सूर्य आदि सब दिखायी देते है, वह कहीं चन्द्र-सूर्य नहीं है, वह तो जल की अवस्था है। इसी प्रकार केवलज्ञान में लोकालोक ज्ञात होता है, वह कहीं लोकालोक उसमें नहीं आया है। लोकालोक सम्बन्धी का स्वयं का ज्ञान हुआ, उसे वह जानता है। समझ में आया? भाई! यह तो वीतरागमार्ग है। इसे किसी के साथ मिलाया जा सके, ऐसा नहीं है। ऐसी बात है। साधारण प्राणी को ऐसा लगता है न, केवली... भगवान जैसा कुछ... यह भगवान का मार्ग, सर्वज्ञ के कहे हुए ऐसे मार्ग की निश्चय-व्यवहार की बात ही जगत में नहीं है।

अकेला भगवान आत्मा अपने ज्ञान की निर्मलता में, जिस निर्मलता को जानता है, उसमें लोकालोक ज्ञात होता है, ऐसा कहना व्यवहार है। परन्तु उस सम्बन्धी का, अपने सम्बन्धी का ज्ञान जो परिणमा है, उसे जानता है, वह निश्चय है। समझ में आया? यह पानी के दृष्टान्त से। यहाँ भी यही है। अपना जो ज्ञान स्वभाव, वह आत्मा, ज्ञानरूप परिणमन हुआ, ज्ञान की अवस्था हुई, उस ज्ञान में ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है, उस पर्याय में लोकालोक सम्बन्धी का ज्ञान आया है, उसके सम्बन्धी का नहीं, परन्तु उस सम्बन्धी का अपना। वह ज्ञान ज्ञात होता है। यहाँ तो नीचे भी राग, पुण्य और व्यवहार को जानना कहना, वह भी व्यवहार है। वह भी परालम्बी हो गया।

भगवान आत्मा अपनी ज्ञानपर्याय, स्व-पर को प्रकाशित करने की ताकतवाला ज्ञान, वह ज्ञान स्व का अपना है। सर्वज्ञ आया या नहीं? सर्वज्ञ हुआ न? सर्वज्ञ अर्थात् सर्व को जाने इसलिए सर्वज्ञ है, ऐसा नहीं। इसे जाने इसलिए सर्वज्ञ, सर्व शब्द इसमें आया है? सर्वज्ञ ज्ञान की पर्याय वह आत्मज्ञपर्याय है। सर्व शब्द लागू पड़ा, इसलिए व्यवहार हो गया, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? इसलिए यह बड़ा विवाद उठा है न? देखो! सर्वज्ञ कहा। सर्व में सर्व आया, सर्व आया वह पर आया, पर आया इसलिए व्यवहार से पर को जानता है, निश्चय से पर को (जानता) नहीं, परन्तु किस अपेक्षा से? समझ में आया?

यह सर्वज्ञपना ही अपना आत्मज्ञपना निश्चय से है। उसे जानता है। समझ में आया या नहीं? अपनी पर्याय जो सर्वज्ञपना प्रगट हुआ है, वह आत्मज्ञ ही है। वह आत्मा का जाननेवाला है। सर्वज्ञ पर्याय, वह आत्मज्ञ है, आत्मा की पर्याय है। वह पर के कारण सर्वज्ञ पर्याय हुई है, ऐसा नहीं है। आहाहा! सर्वज्ञपने में इतने अधिक बड़े विवाद। अभी जैन में गड़बड़ उठती है और बहुत दरकार समझना न हो, उसे जो भगवान कहे वह सच्चा, जाओ। परन्तु भगवान क्या कहते हैं, उसका तुझे सच्चा निर्णय आये बिना तुझे सच्चा कहाँ से होगा? और दूसरा कोई कहेगा, वहाँ भी हाँ... हाँ... यह बराबर है, यह बराबर है। भगवान का मार्ग अनेकान्त है। किस प्रकार से अनेकान्त है? स्व से जानना वह बराबर है। पर को जानना वह व्यवहार कहने में आता है, वास्तव में वह पर को जानता नहीं। ऐसा अनेकान्त है। समझ में आया?

बाह्य आलम्बन नष्ट किया है ऐसा (स्वप्रकाशक) जो साक्षात् दर्शन उस-रूप भी आत्मा है। लो ठीक। आत्मा स्वप्रकाश ज्ञान है, जिसने बाह्य अवलम्बन छोड़ा है, नष्ट किया है। वह **जो साक्षात् दर्शन उस-रूप भी आत्मा है।** दर्शन ने भी बाह्य का अवलम्बन छोड़ा है, ऐसा कहते हैं। जैसे ज्ञान स्व-प्रकाशक है, वैसे दर्शन भी स्व-प्रकाशक ही है। उसने बाहर का देखना है नहीं। वह तो उसको अनुकूल पड़े। यह तो दूसरी बात कहते हैं। वहाँ ऐसा कहते हैं कि दर्शन अभ्यन्तर है। यहाँ तो अभ्यन्तर और बाह्य का जो दर्शन है, वह निश्चय से स्व का ही है, ऐसी बात है यह तो। समझ में आया? यह तो अन्तर आत्मा की अन्तर वस्तु क्या है, उसकी बात चलती है। आहाहा!

भगवान आत्मा तो ज्ञान और दर्शन से पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... भरपूर पदार्थ है। उसकी जो पर्याय अर्थात् ज्ञानदशा प्रगट हुई, वह भी स्वयं के आश्रय से प्रगट होती है। वह कहीं लोकालोक है, इसलिए केवलज्ञान प्रगट होता है, (ऐसा नहीं है)। लोकालोक तो अनादि के हैं। उससे होवे तो अनादि का केवलज्ञान सबको होना चाहिए। वह केवलज्ञान और केवलदर्शन भी स्वयं से होता है और वह अपने को ही जानता है, ऐसा कहते हैं। अपने से होता है और अपने को ही जानता है। क्योंकि स्वयं तन्मय होकर जानता है, इसलिए निश्चय है। दूसरे को तन्मय होकर नहीं जानता, इसलिए जानता है कहना, यह व्यवहार कहने में आता है। कहो, समझ में आया?

उस-रूप भी आत्मा है। वापस। जैसे ज्ञानरूप आत्मा है, वैसे दर्शनरूप भी आत्मा है। **एकाकार निजरस के विस्तार से पूर्ण होने के कारण...** भगवान आत्मा एक ही स्वरूप

अखण्ड ज्ञान और दर्शनरूप परिणमित हुआ, एकाकार निजशक्ति का विस्तार, अपनी शक्ति का ही फैलाव हुआ है। आहाहा! जानना-देखना, वह निजशक्ति सम्पूर्ण थी, उसका ही फैलाव। विस्ताररूप से उसका परिणमन हुआ। **जो पवित्र है...** अपने **निजरस के विस्तार से पूर्ण होने के कारण जो पवित्र है...** ऐसा। पर को जानना, इसलिए पवित्र है, (ऐसा नहीं)। कहते हैं न, अपने थोड़ा जानते हैं तो थोड़ा। भगवान तो सबको जानते हैं, इसलिए पर को देखने का अनन्त सुख है। क्यों यह नाटक थोड़ा देखने जाए तो उसमें थोड़ा सुख नहीं? भले ही कल्पित किया हुआ। भगवान तीन काल, तीन लोक का नाटक देखते हैं, इसलिए वे सुखी हैं। ऐसा नहीं है। स्वयं को पूर्णरूप से प्रगट हुआ है, इसलिए सुखी हैं और अपने को पूर्णरूप से जानते हैं, इसलिए सुखी हैं। आहाहा!

एकाकार निजरस के विस्तार से पूर्ण होने के कारण... देखो, ऐसा कहते हैं। पर के कारण नहीं, प्रगट अपनी शक्तिरूप फैलाव से, विस्तार से; इस प्रकार वह पवित्र है। जिसे किसी की अपेक्षा नहीं। **तथा जो पुराण (सनातन) है...** भगवान सनातन आत्मा, अनादि का यह आत्मा है। **ऐसा यह आत्मा सदा अपनी निर्विकल्प महिमा में निश्चितरूप से वास करता है।** ऐसा आत्मा सदा अपनी अभेद महिमा में, अपने प्रकाश में **निश्चितरूप से वास करता है।** पर की अपेक्षा जिसे है नहीं। आचार्य ने स्वयं इतना स्पष्टीकरण किया है। व्यवहार से वहाँ... कहा है। यह तो इन्होंने और जरा गाथाएँ आगे-पीछे की है। कैसा सागर? ....सागर। उसने कुछ आगे-पीछे गाथाएँ की हैं। अधिक चतुर हैं। किसी ने कुछ न कुछ किया है... कुछ न कुछ किया है... कुछ न कुछ किया है... इसने गाथा आगे-पीछे की है। नग्न साधु है। आये थे। आठ दिन रहे थे। प्रतिमाधारी थे तब। देखो! भाई! क्या कहते हैं?

अप्पसरूवं पेच्छदि लोयालोयं ण केवली भगवं।
जइ कोइ भणइ एवं तस्स य किं दूसणं होइ।।१६६।।

निश्चय का पहले डाला है, व्यवहार का बाद में डालेंगे। पर को जाने और स्व को न जाने, ऐसा कोई व्यवहार से कहे थे उसे क्या? यह बाद में कहेंगे। वरना तो स्व को जाने और पर को न जाने, ऐसा कोई कहे तो उसमें दूषण क्या है? ऐसा कहे। नीचे हरिगीत।

प्रभु केवली निजरूप देखें और लोकालोक ना।
यदि कोइ यों कहता अरे उसमें कहो है दोष क्या॥१६६॥

श्रीमद् में ऐसा आता है, देखो न! क्या आया है? 'केवल निजस्वभाव का अखण्ड वर्ते ज्ञान, कहिये केवलज्ञान वह देह होत निर्वाण।' लोकालोक आया नहीं। वहाँ निश्चय डाला है।

.... 'केवल निजस्वभाव का अखण्ड वर्ते ज्ञान, कहिये केवलज्ञान वह देह होत निर्वाण।' वह निश्चय से अपने को....

यह, शुद्धनिश्चयनय की विवक्षा से... विवक्षा अर्थात् कहना। शुद्ध निश्चय के कथन से **परदर्शन का (पर को देखने का) खण्डन है।** पर को वास्तव में नहीं देखता, इस तरह खण्डन करते हैं। आहाहा! **यद्यपि व्यवहार से एक समय में तीन काल सम्बन्धी पुद्गलादि द्रव्य-गुण-पर्यायों को जानने में समर्थ सकल-विमल केवलज्ञानमयत्वादि...** केवलज्ञान आदि, **केवलज्ञानमयत्वादि विविध महिमाओं का धारण करनेवाला है, तथापि वह भगवान,...** व्यवहार से एक समय में तीन काल-तीन लोक सम्बन्धी **पुद्गलादि द्रव्य-गुण-पर्यायों को जानने में समर्थ...** व्यवहार से। **सकल-विमल केवलज्ञानमयत्वादि विविध महिमाओं का धारण करनेवाला है, तथापि वह भगवान, केवलदर्शनरूप तृतीय लोचनवाला होने पर भी,...** केवलदर्शनरूप तीसरे नेत्रवाला होने पर भी, **परम निरपेक्षपने के कारण निःशेषरूप से (सर्वथा) अन्तर्मुख होने से....** दो आँखों के उपरान्त केवलदर्शन तीसरा लोचन है, ऐसा कहते हैं। वहाँ पर को देखने की अपेक्षा ली है, तथापि वह व्यवहार से पर को देखता है, ऐसा है।

परम निरपेक्षपने के कारण निःशेषरूप से (सर्वथा) अन्तर्मुख होने से केवल स्वरूपप्रत्यक्षमात्र व्यापार में लीन... लो। अकेला स्वरूप प्रत्यक्ष में लीन। भले उसे केवलदर्शन कहो या पर को देखने की अपेक्षावाला, परन्तु परमार्थ से केवल स्वरूपप्रत्यक्षमात्र, अकेला स्वरूपप्रत्यक्षमात्र व्यापार में लीन। स्वरूपप्रत्यक्ष पहले एक आ गया है। वह त्रिकाल की बात है। पहले आ गया है वह। ज्ञान में आ गया है। यह उसकी पर्याय की बात है। **केवल स्वरूपप्रत्यक्षमात्र व्यापार में लीन...** उपयोग के अधिकार में यह आया है। वह त्रिकाली स्वरूपप्रत्यक्ष। त्रिकाली वस्तु स्वरूपप्रत्यक्ष ही है। यह स्वरूपप्रत्यक्ष पर्याय की बात है।

केवल स्वरूपप्रत्यक्षमात्र... अकेला स्वरूपप्रत्यक्ष। ज्ञान-दर्शन आदि की पर्याय, अखण्ड प्रत्यक्षपना ऐसे **व्यापार में लीन...** लो! ऐसी पर्याय में वह अभेद लीन है। **ऐसे निरंजन निज सहजदर्शन द्वारा...** ऐसे निरंजन—अंजनरहित निर्मल निज सहजदर्शन द्वारा **सच्चिदानन्दमय आत्मा को...** लो! सच्चिदानन्दमय भगवान आत्मा को। लो, आत्मा को यहाँ सच्चिदानन्द कहा। वह कहे, सच्चिदानन्द अपने होता नहीं। सच्चिदानन्द अन्य को होता है। शब्द को क्या दिक्कत है, सुन न! सच्चिदानन्दमय आत्मा। सत् अर्थात् शाश्वत् चिद् और आनन्द। ज्ञान और आनन्दमय ऐसा भगवान यह आत्मा। यह तो आत्मा की व्याख्या है। यह लोग सच्चिदानन्द

कहते हैं, वह तो भगवान और सब व्यापक है, ऐसा कहते हैं। ऐसा नहीं है। यह तो एक ही भगवान आत्मा अपने **निरंजन निज सहजदर्शन द्वारा...** निरंजन निज सहजदर्शन द्वारा। निर्विकल्प शुद्ध पूर्ण हुए दर्शन द्वारा। **सच्चिदानन्दमय आत्मा को निश्चय से देखता है...** वह स्वयं अपने को ही वास्तव में देखता है।

(परन्तु लोकालोक को नहीं)-ऐसा जो कोई भी शुद्ध अन्तःतत्त्व का वेदन करनेवाला (जाननेवाला, अनुभव करनेवाला) परम जिनयोगीश्वर शुद्धनिश्चयनय की विवक्षा से कहता है, उसे वास्तव में दूषण नहीं है। निश्चय से अपने को जानता है, लोकालोक को नहीं। तो वह बराबर है। अपने को जानता है, इसका अर्थ कि लोकालोक सम्बन्धी का ज्ञान अपना है, उसे जानता है। लोकालोक को नहीं। समझ में आया? ऐसे धर्म की बातें कहेंगे सूक्ष्म पड़ेगी। तेरे घर की बातें कैसी है और क्यों है, उसका निर्णय है यह तो। तेरे घर में क्या है? तेरे लिये क्या है? तुझमें क्या है? आहाहा! शुद्ध अन्तःतत्त्व का वेदन करनेवाला ऐसा कोई परम मुनि शुद्धनिश्चयनय के कथन से कहे, उसे वास्तव में दूषण नहीं है। इतना स्पष्टीकरण वहाँ अन्दर से श्लोक में से किया है।

[अब, इस १६६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:] लो! २८२।

पश्यत्यात्मा सहज-परमात्मान-मेकं विशुद्धं,
स्वान्तःशुद्ध्यावसथमहिमाधारमत्यन्तधीरम्।
स्वात्मन्युच्चै-रविचलतया सर्वदान्तर्निमग्नं,
तस्मिन्नैव प्रकृति-महति व्यावहार-प्रपञ्चः ।।२८२।।

(निश्चय से)... इसका स्पष्टीकरण नीचे किया है, देखो! **यहाँ निश्चय-व्यवहार सम्बन्धी ऐसा समझना कि—जिसमें स्व की ही अपेक्षा हो, वह निश्चयकथन है...** स्व -आश्रय निश्चय। **जिसमें पर की अपेक्षा आये, वह व्यवहारकथन है; इसलिए केवली भगवान लोकालोक को—पर को जानते-देखते हैं, ऐसा कहना, वह व्यवहारकथन है और केवली भगवान स्वात्मा को जानते-देखते हैं, ऐसा कहना, वह निश्चयकथन है।** जिसमें स्व की अपेक्षा हो, वह निश्चय और पर की अपेक्षा हो, वह व्यवहार। **यहाँ व्यवहारकथन वाच्यार्थ ऐसा नहीं समझना कि जिस प्रकार छद्मस्थ जीव लोकालोक को जानता-देखता ही नहीं है; उसी प्रकार केवली भगवान लोकालोक को जानते-देखते ही नहीं।** ऐसा नहीं समझना। समझ में आया? लोकालोक को जानते हैं।

छद्मस्थ जीव के साथ तुलना की अपेक्षा से तो केवली भगवान लोकालोक को जानते-देखते हैं, वह बराबर सत्य है—यथार्थ है, क्योंकि वे त्रिकाल सम्बन्धी सर्व द्रव्य-गुण-पर्यायों को यथास्थित बराबर परिपूर्णरूप से वास्तव में जानते-देखते हैं। 'केवली भगवान लोकालोक को जानते-देखते हैं' ऐसा कहते हुए पर की अपेक्षा आती है, इतना ही सूचित करने लिए, तथा केवली भगवान जिस प्रकार स्व को तद्रूप होकर... अपने में तद्रूप होकर वेदन करे-अनुभव करे **निजसुख के संवेदनसहित जानते-देखते हैं,...** अपने आनन्द के वेदनसहित जाने-देखे। **उसी प्रकार लोकालोक को (पर को) तद्रूप होकर परसुखदुःखादि के संवेदनसहित नहीं जानते-देखते,...** नारकी को भगवान जाने तो नारकी का दुःख वेदन करते हैं ? समझ में आया ?

परन्तु पर से बिलकुल भिन्न रहकर, पर के सुखदुःखादि का संवेदन किये बिना जानते-देखते हैं, इतना ही सूचित करने के लिए उसे व्यवहार कहा है। परन्तु इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि लोकालोक को वे जानते ही नहीं। लोकालोक का ज्ञान, वह तो अपनी पर्याय का ज्ञान है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह कहते हैं वे ? कभी प्रश्न उठता है। केवली तो सर्वज्ञ हैं, वे व्यवहार से पर को जानते हैं। परन्तु व्यवहार से पर को जानते हैं, इसका अर्थ क्या ? वे पर को नहीं जानते ? पर में तन्मय होकर नहीं जानते, इसलिए व्यवहार से जानते हैं, ऐसा कहा है। समझ में आया ? इस ज्ञान में अग्नि का ज्ञान होता है या नहीं ? यह ज्ञान अग्नि को जानता है, यह तो व्यवहार हुआ। अग्नि में ज्ञान कहीं एकमेक होकर अग्नि को नहीं जानता। यदि अग्नि में (तन्मय होकर) जाने तो ज्ञान वहाँ जल जाए। ज्ञान अग्नि से भिन्न रहकर अग्नि सम्बन्धी का जो ज्ञान, वह स्वयं को होकर स्वयं को जानता है। आहाहा! इतनी सब चर्चा ली होगी तो कुछ हेतुवश होगी या नहीं ? कुन्दकुन्दाचार्य जैसे अध्यात्म के प्रखर प्रणेता, वे प्रखर स्वसंवेदन के वेदन करनेवाले, प्रचुर स्वसंवेदन। कहो, समझ में आया ? केवलज्ञान और केवलदर्शन की अपनी सम्पत्ति में कुछ फेरफार माने तो वह वस्तु को मान नहीं सकता, इसलिए उसकी छनावट करके बतलाया है।

(निश्चय से) आत्मा सहज परमात्मा को देखता है— ठीक। स्वयं अपने को ही देखता है, उसमें यह सब लोकालोक का ज्ञान आ जाता है। यह लोकालोक का ही नहीं परन्तु अपना। स्व-परप्रकाशक ज्ञान, वह अपना है। परप्रकाशक कहना, वह तो पर की अपेक्षा से भले कहा, परन्तु है वह स्व-परप्रकाशक ज्ञान अपना आत्मज्ञान है। समझ में आया ? **आत्मा सहज परमात्मा को देखता है—कि जो परमात्मा एक है,...** स्वयं एक है, ऐसा यह कहते हैं।

सब होकर परमात्मा की बात यहाँ नहीं है। स्वयं अपना आत्मा एक है। दूसरे के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। **विशुद्ध है, निज अन्तःशुद्धि का आवास होने से (केवलज्ञानदर्शनादि) महिमा का धारण करनेवाला है,...** लो। अन्तःशुद्धिज्ञान और आनन्द का आवास आत्मा है। लोकालोक उसमें नहीं आते, ऐसा कहते हैं। लोकालोक को रहने का वह स्थान नहीं है। परन्तु केवलज्ञान और केवलदर्शन को रहने का वह भगवान आत्मा स्थान है।

अत्यन्त धीर है और निज आत्मा में अत्यन्त अविचल होने से सर्वदा अन्तर्मग्न है। लो। वह स्वयं अपने में ही है। सर्वज्ञ परमात्मा स्वयं अपने में अन्तर्मग्न में ही है। बाहर में कुछ जाते नहीं और बाहर को कुछ देखते नहीं। अपने में रहकर अपने को जानते और देखते हैं। विशेष बाकी है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

८ **श्री नियमसार, गाथा - १६७-१६८, श्लोक २८२-२८३, प्रवचन - १९२**
दिनांक - ०३-१३-१९७१

१६६ गाथा का कलश है, कलश। २८२ है न? आधा चला है, आधा बाकी था, फिर से लेते हैं।

पश्यत्यात्मा सहज-परमात्मान-मेकं विशुद्धं,
स्वान्तः शुद्ध्यावसथमहिमाधारमत्यन्तधीरम्।
स्वात्मन्युच्चै-रविचलतया सर्वदान्तर्निमग्नं,
तस्मिन्नैव प्रकृति-महति व्यावहार-प्रपञ्चः ॥२८२॥

यह ज्ञान-दर्शन की व्याख्या चलती है। भगवान का ज्ञान अपने को जानता है, यह निश्चय है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यहाँ भी वास्तव में तो स्वयं अपने को ही जानता है। पर को जानना, वह तो एक व्यवहार कहने में आता है। पर सम्बन्धी का ज्ञान अपना, वह अपने ज्ञान को जानता है, यह निश्चय है; पर को जानना कहना, वह उपचार से व्यवहार है। भगवान को भी ऐसा है, कहते हैं।

(निश्चय से) आत्मा सहज परमात्मा... अपना त्रिकाली स्वभाव। आत्मा सहज परमात्मा को, वह अपना सहज परमात्मा, उसे **देखता है—** उसे देखता है। भगवान तो अपनी आत्मा को देखते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **कि जो परमात्मा एक है,...** स्वयं एक स्वरूप परमात्मा है, उसमें दूसरे लोकालोक की मिलावट नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! केवलज्ञान कैसा होता है, उसकी व्याख्या है। अरिहंत परमात्मा को जो केवलज्ञान होता है, वह केवलज्ञान अपने को देखता है, ऐसा कहते हैं।

विशुद्ध है,... स्वयं परमात्मा आत्मा पूर्ण शुद्ध एक है। **विशुद्ध है, निज अन्तःशुद्धि का आवास होने से...** लो। स्वयं आत्मा अन्तर शुद्धि का रहने का वह आत्मा स्थान है। निर्मल आनन्द आदि दशा का आवास भगवान आत्मा स्वयं है। **(केवलज्ञानदर्शनादि) महिमा का धारण करनेवाला है,...** केवलज्ञान, अनन्त आनन्द आदि दशा का—अवस्था का वह धारक

है। **अत्यन्त धीर है...** परमात्मा अत्यन्त धीर शान्त... शान्त (है)। **और निज आत्मा में अत्यन्त अविचल होने से....** अपने ही आत्मा में यह अत्यन्त और अविचल होने से **सर्वदा अन्तर्मग्न है।** भगवान अपने अन्तर स्वरूप में ही अन्तर्मग्न है। यह थोड़ा सुधारा है। सुधारा है? भाई ने सुधारा है। अब सुधारा है। अन्तर्मग्न के पश्चात्।

स्वभाव से महान ऐसे उस... ऐसा सुधारना। जो लिखा है, उसमें अन्तर है। **स्वभाव से महान ऐसे उस आत्मा में व्यवहारप्रपंच...** यह सब निकाल डालना। यह निकाल देना। **स्वभाव से महान ऐसे उस आत्मा में व्यवहारप्रपंच (विस्तार) है ही नहीं।** समझ में आया? व्यवहार सम्बन्धी प्रपंच करने में आते हैं, यह सब निकाल डालना। यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा अपना और भगवान आत्मा का। यह अपने स्वभाव की महिमा से **उस आत्मा में व्यवहारप्रपंच (विस्तार) है ही नहीं।** पर को जानना, ऐसा उसमें नहीं है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ऐसा आत्मा अनुभव करे, जाने, उसे सम्यग्दर्शन होता है। जो आत्मा अपने स्वरूप में ही है। महान स्वभाव से महान है। यह पुण्य और पाप, शरीर आदि से तो रहित है परन्तु पर के जानने से भी रहित है। समझ में आया? पर का जानना अर्थात् कि यह है, ऐसा जानना, वह तो व्यवहार है। उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान और अपने सम्बन्धी का अपना ज्ञान, उसे वह जाने, यह निश्चय है। थोड़ी सूक्ष्म बात है। समझ में आया?

स्वभाव से महान **उस आत्मा में व्यवहारप्रपंच (विस्तार) है ही नहीं।** पर को जानना वह इसमें है नहीं। लो, ठीक। अपना सर्वज्ञस्वभाव है, उसे जानता है। पर को जानता है, वह तो व्यवहार ऐसा प्रपंच इसमें नहीं है। कोष्ठक है। **(अर्थात् निश्चय से आत्मा में लोकालोक को देखनेरूप व्यवहार-विस्तार है ही नहीं)।** इतना कलश में डालना। **(अर्थात् निश्चय से आत्मा में लोकालोक को देखनेरूप व्यवहार-विस्तार है ही नहीं)।** समझ में आया? क्या कहा यह? लोकालोक को आत्मा जानता नहीं, ऐसा कहा न? नहीं जानता इसका अर्थ?— कि वह लोकालोक यह है, ऐसा नहीं जानता। वह लोकालोक और अपना जो ज्ञान अपने में, उसे वह जानते हुए लोकालोक जानने में आ जाता है। समझ में आया? ऐसे भगवान आत्मा में लोकालोक का व्यवहार विस्तार नहीं ही है।

श्रीमद् में भी ऐसा ही आता है न? क्या आता है? 'केवल निजस्वभाव का अखण्ड वर्ते...' यह निश्चय से बात की है, इसलिए लोकालोक नहीं जानते, ऐसा नहीं है। लोकालोक को जानना, वह पर है, उसे जानना कहना, वह व्यवहार है। परन्तु लोकालोक और स्वयं जिस

स्वरूप है, उसका ज्ञान अपने में अपने से अपने में होता है, उसे जाने, इसका नाम निश्चय है। इसलिए केवली लोकालोक को नहीं जानते, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

श्रोता : व्यवहार से जानते हैं तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से जानते हैं इसका अर्थ? पर को तन्मय होकर नहीं जानते, इसलिए उसे व्यवहार कहने में आता है। परन्तु उस सम्बन्धी का ज्ञान अपना ज्ञान तन्मय होकर उसमें अपने में जानता है, उसमें लोकालोक का ज्ञान अपनी पर्याय में अपने से अपने में अपने कारण से आ जाता है। यह बात नीचे पढ़ी जा चुकी है। नीचे नोट (फुटनोट) है न? वह पढ़ा गया है।

यहाँ तो पर को जाने ऐसा कहना, वह पर की अपेक्षा आती है न, इसलिए उसे व्यवहार कहा जाता है और स्व को जानने पर स्व की अपेक्षा आवे, इसलिए निश्चय कहा जाता है। स्व के ज्ञान में सर्वज्ञ में सब ज्ञात हो गया है। परन्तु वह सर्वज्ञ की पर्याय अपनी है, उसे जानते हैं, वह निश्चय है - ऐसा कहते हैं। यह तो तत्त्व की सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया?

अन्तर आत्मा, यह ज्ञान ज्ञान को जाने। इस ज्ञान में राग, शरीरादि क्या है, ऐसा उसमें ज्ञान अपने स्व-पर प्रकाश के सामर्थ्य में आ जाता है, तथापि उसे देखे—ऐसा कहना वह व्यवहार है और अपना स्व-पर सामर्थ्य है, स्व-परप्रकाशक जानने का सामर्थ्य है, उसे देखे यह, निश्चय है। आहाहा! गजब! जानने में भी व्यवहार और निश्चय, आचरण में भी व्यवहार और निश्चय, श्रद्धा-ज्ञान में भी व्यवहार और निश्चय, चारित्र में भी व्यवहार और निश्चय। किस अपेक्षा से बात है, यह समझना चाहिए न!

आत्मा अपने स्वरूप को शुद्ध अखण्ड अभेद की श्रद्धा करे, वह सम्यग्दर्शन निश्चय स्व-आश्रय है और पर की श्रद्धा—देव-गुरु-शास्त्र आदि, वह व्यवहार विकल्प है। समझ में आया? ऐसे-ऐसे अपने आत्मा को जाने, वह सम्यग्ज्ञान है, शास्त्र को जाने, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। इसी प्रकार आत्मा अपने स्वरूप में, आनन्द में रमे, वह निश्चयचारित्र है और उसमें पंच महाव्रतादि के विकल्प उठें, वह व्यवहारचारित्र; अर्थात् नहीं है, उसे कहना, इसका नाम व्यवहार है। समझ में आया? इसी प्रकार लोकालोक को जाने, ऐसा कहना वह व्यवहार है क्योंकि लोकालोक का यह ज्ञान नहीं है। यह ज्ञान तो अपना है। समझ में आया?

अरे! आत्मा की इसने बात ही कभी प्रेम से सुनी नहीं। जगत के व्यर्थ प्रयत्न करके

मर गया। समझ में आया? परन्तु यह आत्मा कितना सामर्थ्यवाला सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा वह, हों! परमात्मा तीर्थंकरदेव ने जो ऐसा चैतन्य में से आत्मा की बात करे, वह आत्मा इसने जाना नहीं।

यहाँ तो भगवान आत्मा... कहते हैं कि वह स्वयं ज्ञान की दशा, अपने स्वभाव के आश्रय से ज्ञान से प्रगट की। इस ज्ञान में यह ज्ञान स्व-आत्मा परमात्मा को ही जानता है। परमात्मा का ज्ञान अपने परमात्मा को जानता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? परमात्मा का ज्ञान पर को जानता है, ऐसा कहना, ऐसे पर की अपेक्षा आयी, इसलिए व्यवहार परन्तु परसम्बन्धी का ज्ञान अपने में नहीं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह परसम्बन्धी का अपना ज्ञान है। सर्वज्ञपना, वह आत्मज्ञ है अर्थात् सर्वज्ञपना पर के कारण है, ऐसा नहीं है। वहाँ भी व्यवहार और निश्चय, नीचे व्यवहार और निश्चय। सब विवाद निकाले। निमित्त अकिंचित नहीं... व्यवहार साधन है, ये सब लेख (आते हैं)। भाई! यह सब है, यह सब सुन न।

भगवान आत्मा अपना ज्ञान और आनन्दस्वभाव, उसे अन्तर में अनुभव करके जो सम्यग्दर्शन होता है और उसे जानकर जो ज्ञान होता है और उसमें रमणता करके चारित्र होता है, वह निश्चय कहलाता है, क्योंकि स्व के आश्रय से हुआ। यह सच्चा ज्ञान-दर्शन और चारित्र है। तथा पर के आश्रय से जितना कहा जाता है—देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा... ऐई! भीखाभाई! वह राग कहा जाता है, वह व्यवहार कहा जाता है, वह सत्य नहीं कहा जाता। आहाहा! गजब बात, भाई! निश्चय, वह सत्यार्थ है; व्यवहार, वह असत्यार्थ है। असत्यार्थ का अर्थ? पर को जानता है, वह असत्यार्थ है। पर को जानता है, वह यथार्थ में नहीं है। आहाहा!

अपना भगवान आत्मा अपने ज्ञान-दर्शन-आनन्द को और आत्मा को जाने, वह स्व को जाने, वह यथार्थ है। आहाहा! समझ में आया? नीचे निश्चय और व्यवहार, वह ठेठ केवलज्ञान तक ले गये। आहाहा! ऐसा स्वरूप सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर के अतिरिक्त कहीं नहीं हो सकता। सब वेदान्त भले आत्मा... आत्मा की बातें की हो। समझ में आया? यह वस्तु कहीं है नहीं। समझ में आया? देवजीभाई! यह २८२ कलश हुआ।

१६७ गाथा।

मुत्त-ममुत्तं दव्वं चेयण-मियरं सगं च सव्वं च।
पेच्छंतस्स दु णाणं पच्चक्खमणिंदियं होइ॥१६७॥

नीचे इसका हरिगीत है।

जो मूर्त और अमूर्त जड़ चेतन स्वपर सब द्रव्य हैं।
देखे उन्हें उसको अतीन्द्रिय ज्ञान है प्रत्यक्ष है॥१६७॥

टीका : यह, केवलज्ञान के स्वरूप का कथन है। छह द्रव्यों में... जगत में छह द्रव्य हैं। भगवान ने छह द्रव्य देखे। देखो, और कहते हैं, छह द्रव्य देखे। परन्तु इस ज्ञान में इनका ज्ञान स्वयं को देखा और इन छह द्रव्यों को देखा, वह व्यवहार हुआ। समझ में आया? परन्तु उन छह द्रव्यों को ज्ञान बराबर देखता है। अपनी ज्ञान पर्याय में छह द्रव्य सम्बन्धी का जो ज्ञान कहा है, उसे देखते हैं और उन छह द्रव्यों को देखते हैं, ऐसा कहना वह व्यवहार है। पराश्रय हुआ न? आहाहा!

छह द्रव्यों में... देखो! जगत में छह द्रव्य लिये हैं। अनन्त आत्मायें, इससे अनन्त गुणे परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और आकाश। यह छह द्रव्य जगत के अन्दर हैं, अनादि अनन्त हैं। केवलज्ञान में ये प्रत्यक्ष जानने में आये हैं। उनमें **पुद्गल को मूर्तपना है,...** यह शरीर, वाणी, मन, कर्म यह सब दिखता है, वह मूर्त है। **पुद्गल को मूर्तपना है,...** वह रूपी है, मूर्त है। **(शेष) पाँच को अमूर्तपना है;...** धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल और जीव। जीव को अमूर्तपना है, ऐसा कहा है। कहीं फिर उसे कर्म के सम्बन्ध से मूर्त कहा, वह व्यवहार से कहा है। समझ में आया? मूर्त है नहीं। आलाप पद्धति में लिया है। यह तो मूल तत्त्व का... आलाप पद्धति में पाठ लिया है। जीव मूर्त है, अमूर्त है। मूर्त है, इसका अर्थ? कर्म मूर्त जो है, उनके निमित्त के सम्बन्ध में इसे मूर्त का उपचार दिया है, वस्तु अमूर्त है।

श्रोता : पर्याय?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय अमूर्त है।

श्रोता : उसे मूर्त कही।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस निमित्त के कारण कही। है नहीं उसे कही। पर्याय अमूर्त है। जीव की पर्याय अमूर्त है।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : किस अपेक्षा से? यह तो आत्मा के त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव की अनुभवदशा के भाव में रागादि परिणाम इसका स्वरूप नहीं है, इसलिए इसे पुद्गल के

परिणाम कहा है। गजब बात, भाई! कहो, समझ में आया?

यहाँ तो उसके अस्तित्व में उसका अस्तित्व क्या है, इतना सिद्ध करना है। फिर द्रव्य और पर्याय विकार के दो के अस्तित्व की भिन्नता करनी हो, तब इस द्रव्य में विकार है नहीं। परन्तु विकार है, वह अमूर्त है। समझ में आया? द्रव्य की अशुद्ध पर्याय, संसार वह द्रव्य की अशुद्ध पर्याय है। आहाहा! संसार कहीं जीव की पर्याय से बाहर नहीं रहता। आहाहा! जीव का संसार स्त्री, पुत्र, परिवार, मकान, वह संसार नहीं है। जीव का संसार स्त्री, पुत्र, पैसा, शरीर, कर्म, वह संसार नहीं है, वह तो परवस्तु है। संसार—उसके स्वरूप से हटकर विकार की पर्याय में आया, वह विकार भाव, यह इसका संसार है। समझ में आया? वह विकार भाव 'संसरणं इति संसारः' भगवान आत्मा अपनी शुद्ध आत्मा से हट गया है, हटकर राग में आया, वह संसार है। आहाहा! समझ में आया? संसार का नाश करना है, इसका अर्थ कि यह अज्ञान और मिथ्यात्व और राग-द्वेष का नाश। संसार का नाश करे अर्थात् स्त्री-पुत्र का नाश करना है? समझ में आया? लोग बाहर से तो ऐसा मानते हैं कि लो, यह स्त्री-पुत्र छोड़े तो यह संसार छोड़ा। अरे! संसार कहना किसे, इसकी तुझे खबर नहीं। स्त्री-पुत्र संसार थे? अपने शुद्ध स्वरूप से हटकर राग—पुण्य-पाप आदि मेरे हैं, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव और पुण्य-पापभाव, वह संसार है। आहाहा! समझ में आया? यह उसकी अमूर्तदशा है। बहुत पहलू पड़ते हैं।

एक ओर कहे कि विकार, वह पुद्गल का परिणाम है; एक ओर कहे कि जीव की पर्याय के सत्त्व में वह है, इसलिए इसके परिणाम हैं। दूसरी ओर कहे कि आत्मा आनन्दस्वभाव के भाव में आकर जहाँ परिणमे, फिर जो राग रहा वह कर्म के कारण परिणमता है। (समयसार) ७५वीं गाथा में आता है न? तब राजकोट में चला था न? सोमचन्दभाई! हमारे यहाँ सोमचन्द... टांक। सोमचन्दभाई थे न? इस मनु के पिता।

श्रोता : बोलने की सच्ची अटक खारा।

पूज्य गुरुदेवश्री : खारा अमरेलीवाला। उसने तब प्रश्न किया था। वहाँ राजकोट में किया था (संवत्) १९९९ में। यह विकार है किसका? ७५ में तो ऐसा कहा कि विकार तो कर्म का कार्य है, आत्मा का नहीं। उसमें फिर कहे कि विकार आत्मा में होता है। देखो! अमूर्त है और आत्मा में है। उसका पर से भिन्न अस्तित्व सिद्ध करना हो, तब तो इसमें ही है और इससे विकार हुआ है। परन्तु विकार से ही जब अकेला स्वभाव भिन्न सिद्ध करना हो,

अकेला शुद्ध चिदानन्दमूर्ति आत्मा है। विकार को स्पर्श भी नहीं किया है विकार तो पर है और वहाँ रूपी कहते हैं, उसे मूर्त कहते हैं। यह सब कहते हैं। किस अपेक्षा से है, यह समझना चाहिए न! निकल जाता है, इसकी जाति में नहीं है इसलिए इसे मूर्त कहकर पर का कहा। परन्तु होता है इसकी दशा में। क्या पर की दशा में विकार होता है? विकार का अस्तित्व इसकी दशा में है।

श्रोता : दो बात की, उसमें सच्ची कौन सी?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपेक्षा से दोनों सच्ची है। जिस अपेक्षा से कही उस (अपेक्षा से)। पर से भिन्न कहने में विकार इसका है। विकार से भिन्न कहने में विकार इसका नहीं। समझ में आया? वीतरागमार्ग बहुत गूढ़ है, गम्भीर है। नयों के पहलू इतने अधिक पड़ते हैं कि जिस अपेक्षा से कहा, उसे समझे नहीं तो एकान्त हो जाए। समझ में आया? आहाहा! उसने यहाँ यह पूछा था कि इसमें निश्चय से तो विकार कर्म का कहा है। किसने इनकार किया? कहा। किस अपेक्षा से? आत्मा आनन्दस्वरूप ज्ञानानन्द चिदानन्द है, ऐसा जहाँ भान हुआ, इससे इसका परिणमन तो द्रव्य का है स्वभाव, उसका परिणमन हो उसे। विकाररूप परिणमन फिर रहा, वह जैसे कर्म भिन्न है, वैसे परिणमन भी भिन्न गिनकर, दो कर्म के कार्य गिनकर उसे निकाल डाला परन्तु पहले से विकार कर्म से होता है, कर्म से होता है, वह तो पहले से ही भूला है। कर्म तो परद्रव्य है। परद्रव्य के कारण स्वद्रव्य में होता नहीं। इसमें कहते हैं, देखो!

पाँच तो अमूर्तपना है। जीव को अमूर्तपना है। विकारी पर्याय भी अमूर्त है। समझ में आया? समयसार के निश्चय का अधिकार आवे, तब कहते हैं कि वह तो मूर्त है, स्थूल है। विकार, हों! पुण्य-पाप के परिणाम, वे स्थूल हैं, उनमें सूक्ष्मता का अभाव है क्योंकि भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान का जहाँ भान हुआ, ऐसे सूक्ष्म की अपेक्षा से तो विकार बहुत स्थूल है और निकल जाता है, इसलिए उसकी चीज़ नहीं है, ऐसा कहा है। है तब तक तो उसकी दशा में है। ऐसा अनेकान्तस्वरूप भगवान का है। ऐसा स्वरूप ही वस्तु का है। समझ में आया? लोगों को बात की क्या चीज़ है, उसका ज्ञान किये बिना अकेले ऊपर-ऊपर से क्रियाकाण्ड करे, भक्ति, पूजा, दया, दान और व्रत (करे), वे सब मिथ्यासहित पुण्य बँधता है। चार गति में भटकना मिटता नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि भाई! तू तो तीनों काल अमूर्त है न! वह कहे कि मूर्त कहा है। वह .... करता था। .... दिगम्बर हुआ है न, क्षुल्लक। वेदान्त का, आर्य समाज का। कैसा? कर्म...

श्रोता : कर्मानन्द।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्मानन्द। कर्मानन्द। कर्मानन्द कहता है विकार को रूपी कहा है। वहाँ ऐसा कहा है, जीव को मूर्त कहा है। जीव को मूर्त कहा, उसका विवाद था। अरे! भगवान! सुन न भाई! यह तो अन्तर के सूक्ष्म स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से, निकाल डालना (है इसलिए) उसे रूपी और अमूर्त कहा है परन्तु होता है, इसका अस्तित्व सिद्ध करने के लिये तुझमें है, उसे मूर्त कहा। समझ में आया? आहाहा! यह लोगों को ऐसा ज्ञान करना सूक्ष्म पड़ता है न, इसलिए फिर... व्यवहार में चढ़ गये। दया पालो, व्रत पालो, अपवास करो, भगवान की पूजा करो, व्यवहार में चढ़ गये। भगवान के अतिरिक्त कहीं होता ही नहीं न! तीर्थंकर परमेश्वर के अतिरिक्त यह बात कहीं तीन काल में नहीं होती। वाडावालों को समझ में नहीं आता तो अन्यत्र तो कहाँ होगा? यह वस्तु अन्यत्र होगी कैसी? आहाहा! यह सब स्पष्टीकरण मोक्षमार्गप्रकाशक में किया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है न! प्रज्ञाभक्ति, निर्गुणभक्ति सब बहुत लिया है। बहुत सब अच्छा लिया है। एक-एक बात है। वह सब मिथ्या।

यहाँ तो छह द्रव्य में पाँच तो अनादि-अनन्त अमूर्त हैं। लो, यह तो पहले आया। इसमें प्रवचनसार में। अमूर्त के अमूर्त गुण, अमूर्त की अमूर्त पर्याय। पहले आ गया है। प्रवचनसार में है।

जीव को ही चेतनपना है,... छह द्रव्य में यह भगवान आत्मा ही चेतनेवाला, जाननेवाला है। बाकी दूसरे पाँच द्रव्य अचेतन हैं। कहो, **अचेतनपना है।** यह शरीर, कर्म, वाणी सब अचेतन जड़ हैं, मिट्टी हैं। आहाहा! **त्रिकाल सम्बन्धी मूर्त-अमूर्त चेतन-अचेतन स्वद्रव्यादि अशेष को....** लो। कहते हैं कि भगवान का ज्ञान-केवलज्ञान त्रिकाल सम्बन्धी मूर्त वस्तु पुद्गल, अमूर्त वस्तु पाँच। चेतन एक, अचेतन पाँच। यह स्वद्रव्य आदि, अचेत। अपने को और पर को **(स्व तथा पर समस्त द्रव्यों को) निरन्तर देखनेवाले भगवान श्रीमद् अर्हत्परमेश्वर का जो...** ज्ञान। श्रीमद् श्रीमद्—स्वरूपलक्ष्मी वाले, ऐसे अरहन्त परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा, **जो क्रम, इन्द्रिय और व्यवधान रहित,...** उन्हें जानने में क्रम नहीं होता कि पहले यह जाने, पहले स्व को जाने और पश्चात् पर को जाने, ऐसा क्रम केवली को नहीं होता। इन्द्रिय का अवलम्बन नहीं होता। भगवान को इन्द्रिय का अवलम्बन नहीं होता, उन्हें तो अतीन्द्रिय ज्ञान हुआ। छद्मस्थ को नीचे जानने में इन्द्रिय का निमित्त, अवलम्बन अर्थात् निमित्त (होता है), (वह) उन्हें नहीं होता।

व्यवधान रहित,... आड़; पर्दा... रहित। आगे पहले स्पष्टीकरण आ गया है। केवलज्ञान को जानने में कोई आड़ नहीं है, पर्दा नहीं है, विघ्न नहीं है। आहाहा! ऐसी केवलज्ञान की पूर्ण पर्याय अरहन्त को होती है, ऐसा यदि यथार्थ ज्ञान करे तो उसे अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय जानने पर, अपना आत्मा ऐसा है—ऐसा मिलान करे तो उसे सम्यग्दर्शन हुए बिना नहीं रहता। समझ में आया? आहाहा! सर्वज्ञ की महत्ता जहाँ तहाँ गाते हैं। पूर्ण पर्याय वही सर्वज्ञ। अरे! पूर्ण न हो, दिव्यज्ञान न हो ऐसा तो तुम्हें दिव्यज्ञान कहे कौन? पर के कारण जाने, परोक्ष को जाने, उसे दिव्यज्ञान कहे कौन? प्रवचनसार में आया है।

अतीन्द्रिय सकल-विमल... भगवान का ज्ञान तो **अतीन्द्रिय सकल-विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान वह सकलप्रत्यक्ष है।** लो। वह सबको जानता है। उसमें इनकार किया था। वह सबको जानता है। वह व्यवहार से जानने का इनकार किया था परन्तु जानने का तो उनका बराबर है। समझ में आया? **सकलप्रत्यक्ष है।** असंख्य प्रदेशी चैतन्यसूर्य, शक्ति में से व्यक्ति प्रगट हो गयी है। जो सर्वज्ञ शक्ति थी... शक्ति तो है। पर्याय प्रगटी तो होती है। समझ में आया? आहाहा! सर्वज्ञ शक्तिवान द्रव्य, उसके अन्तर में एकाग्र होकर सर्वज्ञ व्यक्तता प्रगट की, वह **सकलप्रत्यक्ष है।** यह उसका स्वरूप और उसके स्वभाव की पूर्णता की यह स्वच्छता है। समझ में आया?

अरे! ऐसे अरहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने। '**जो जाणदि अरहंतं**' आता है न। '**दव्वत्तगुणत्त पज्जयतेहिं सो जाणदि अप्पाणं**' वह आत्मा को जानता है। है, तो निमित्त पर। परन्तु उसके ज्ञान में उनकी महत्ता जहाँ ख्याल में आयी, ऐसे ज्ञान की पर्याय मेरे द्रव्य से प्रगट हुई है, उन्हें उनके द्रव्य से प्रगट हुई है। मेरा द्रव्य भी वैसा ही है। ऐसी केवलज्ञान की पर्याय, इतनी बड़ी ऐसी, जिसे उनकी सत्ता का स्वीकार होता है, उसका स्वीकार पर्यायदृष्टि से नहीं होता, उसका स्वीकार द्रव्य में ऐसी शक्ति अनन्त है, उसके स्वीकार से उन अरहन्त की पर्याय का स्वीकार कहने में आता है। वह तो सम्यग्दर्शन हुआ। आहाहा! समझ में आया?

यह बात साधारण नहीं है, हों! यहाँ यह कहते हैं। गाथा ली है तो कारण से ली है न? कुन्दकुन्दाचार्य जैसे निर्ग्रन्थ मुनि, तीन कषाय का अभाव (होकर) वीतराग के आनन्द के वेदन करनेवाले, जिन्हें विकल्प भी अमुक छठवाँ गुणस्थान होवे, तब आता है। निर्विकल्प हों तो आनन्द में मस्त हैं। ऐसे वे ऐसी गाथा को कहते हैं। अरिहन्त का पूर्ण रूप स्वप्रत्यक्ष है, ऐसा कहते हैं। उसमें सब पर का ज्ञान आ जाता है, सकलप्रत्यक्ष है। आहाहा! ऐसा तो उनका ज्ञान का स्वभाव है। कोई पुण्य-पाप होना और रहना, वह उनका स्वभाव नहीं है। आहाहा!

श्रोता - ....यह व्यवहार से कहा या निश्चय से ?

पूज्य गुरुदेवश्री - निश्चय से।

केवलज्ञान वह सकलप्रत्यक्ष है। कहो, समझ में आया ? क्योंकि सकलप्रत्यक्ष में सकल आया न ? यह व्यवहार कहना या निश्चय ? यहाँ तो सकलप्रत्यक्ष निश्चय अपना है। **इसी प्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री प्रवचनसार में (५४वीं गाथा द्वारा) कहा है कि:—** लो। आहाहा!

जं पेच्छदो अमुत्तं मुत्तेसु अदिंदियं च पच्छण्णं।
सयलं सगं च इदरं तं णाणं हवदि पच्चक्खं॥

देखनेवाले का जो ज्ञान अमूर्त को, मूर्त पदार्थों में भी... यहाँ तो उसका ज्ञातादृष्टा का स्वभाव कैसा होता है, उसे सिद्ध करना है। कोई राग-बाग और पुण्य-फुण्य उसके हैं, (ऐसा नहीं कहना है)। वह उसमें है ही नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा जैसे गुलाब की कली खिले, वैसे जब खिलकर केवलज्ञान पाता है, तब देखनेवाले का मूर्त-अमूर्त सबमें, अतीन्द्रिय को भी जाने, प्रच्छन्न को जाने। प्रच्छन्न अर्थात् ? भूतकाल, भविष्य काल, वर्तमान में नहीं। ढंका हुआ है, उसे भी जाने। आहाहा! परमाणु को जाने, काल को जाने। आहाहा!

इन सबको—स्व को तथा पर को—देखता है,... स्व-पर को देखे, ऐसा ही ज्ञान अपने को **प्रत्यक्ष है।** मात्र पर को जानना वह है उपचार इतना। परन्तु पर को जानना, वह अपना ज्ञान है। वह उपचार नहीं; वह प्रत्यक्ष ही है। समझ में आया ? अपने को अपनी जाति को जान, ऐसा कहते हैं। वह दूसरे को जानना तेरा एक ज्ञान होगा, उसमें सब ज्ञान आ जाएगा। श्रीमद् के पत्र में एक लाईन आती है—'तुझे एक को जानने पर तेरे ज्ञान में लोकालोक ज्ञात हो जाएगा।' समझ में आया ?

२८३ श्लोक।

सम्यग्वर्ती त्रिभुवन-गुरुः शाश्वतानन्त-धामा,
लोकालोकौ स्वपरमखिलं चेतनाचेतनं च।
तार्तीयं यन्नयन-मपरं केवल-ज्ञान-सञ्ज्ञं,
तेनैवायं विदितमहिमा तीर्थनाथो जिनेन्द्रः॥२८३॥

केवलज्ञान नाम का जो तीसरा उत्कृष्ट नेत्र... लो। ऐसे दो आँखें तो कहते हैं कहीं रह गयी। यह तो तीसरी आँख अन्दर उगी। आहाहा! केवलज्ञानरूपी पर्याय का तीसरा नेत्र। वह

भी **उत्कृष्ट नेत्र, उसी से जिनको प्रसिद्ध महिमा है,...** उस केवलज्ञान से भगवान की महिमा है, कहते हैं। अतिशय और पुण्य बाहर का होता है न? समवसरण और... उससे उनकी महिमा नहीं है। वह तो व्यवहार हुआ। आहाहा! भगवान का अतिशय ऐसा है, वह तो सब व्यवहार है, पुण्य है। समवसरण हो, ऐसी दिव्यध्वनि निकले। यहाँ तो कहते हैं कि **केवलज्ञान नाम का जो तीसरा उत्कृष्ट नेत्र...** भगवान ज्ञान की दशा, अपने ज्ञानस्वभाव में ज्ञान का आराधन करके, अपने ज्ञान का आराधन करके जिन्हें केवलज्ञान पर्याय प्रगट हुई है, उससे उनकी महिमा है। **जिनको प्रसिद्ध महिमा है,...** वह तो प्रसिद्ध महिमा है।

दुनिया में केवलज्ञानी की केवलज्ञान के कारण प्रसिद्ध महिमा है, कहते हैं। उनकी दशा, पूर्ण परमात्मदशा प्रगट हुई, ज्ञान की पूर्णता, वह उनकी महिमा है। समझ में आया? अमुक के वे पुत्र थे, अमुक माता के गर्भ में जन्मे, इन्द्रों ने आकर ऐसा किया, मेरुपर्वत पर ले गये। यह महिमा है। आहाहा! समझ में आया?

जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक को जाननेवाला ज्ञान प्रगट हुआ, वह उनकी महिमा है। समझ में आया? स्वयंभू में कहा न कि हे भगवान! एक समय में जगत के उत्पाद-व्यय और ध्रुव, एक समय में आप जानते हो, यही आपकी सर्वज्ञता की विशेषता विशिष्ट महिमा है। समय एक और उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीन, ऐसी जो ज्ञान की पर्याय की सामर्थ्य, वह सर्वज्ञपना बतलाती है। आपकी सर्वज्ञता है। समझ में आया?

निमित्त, विकल्प और पर्याय से विमुख होकर द्रव्यस्वभाव की महिमा में जावे, तब उसे केवलज्ञान की महिमा यथार्थरूप से दिखती है। समझ में आया? ओहो! ऐसा स्वभाव! वह गुण चैतन्यचमत्कार, गुप्त चैतन्यचमत्कार... जिसके स्वभाव में गुप्तरूप से रहा हुआ ज्ञान, दर्शन, आनन्द की महान सामर्थ्य है, ऐसा जो चमत्कार, वह जीव की महिमा और यहाँ प्रसिद्ध केवलज्ञान हुआ, वह उनकी महिमा है। समझ में आया? उन्होंने तीर्थंकर गोत्र बाँधा, समवसरण आया, इन्द्र आये यह उनकी महिमा नहीं है। समझ में आया?

जो तीन लोक के गुरु हैं... गुरु अर्थात् तीन लोक के जाननेवाले हैं। वे बड़े जाननेवाले। तीन लोक में जाननेवाले वे बड़े हैं। सब उनके ज्ञान में (ज्ञात हो गया है)। आहाहा! ऐसा तू है, ऐसा देख तो सही! ऐसे वे हैं, वैसा तू है। तेरी शक्ति में वह सब पड़ा है, परन्तु यह तुझे खबर नहीं है। अरहन्त, सिद्ध (आदि) पाँचों पद तेरे गुण में स्थित है। आहाहा! वह अरहन्तपद तेरे स्वभाव में स्थित है। आहाहा! यह बाहर का विवाद करने लगे। अरे..! उसकी लगा न।

विवाद किसका करता है ? बड़ा भगवान तू... आहाहा ! तू तीन लोक का गुरु है। देवाधिदेव तू है, भाई ! आहाहा ! पर्याय में प्रगट हुए वे परमात्मा साक्षात् देव हैं। तेरा स्वभाव भी परमात्मा है, तू भी अन्दर परमात्मा अपेक्षा से तीन लोक का जाननेवाला तू भी एक गुरु है। आहाहा ! समझ में आया ?

शाश्वत अनन्त जिनका धाम है— लो। **भव्यता; तेज; बल।** आत्मा में जिसका अनन्त बल है। उस बल का कार्य अनन्त पूर्ण स्वरूप की रचना (करना है)। समझ में आया ? यह क्या कहा ? **शाश्वत अनन्त जिनका धाम है—** कोई ऐसा कहता है कि भगवान को सर्वशक्ति नहीं। अनन्त बल कहो, परन्तु सर्वशक्तिमान न कहो। क्योंकि सर्वशक्तिमान होवे तब तो दूसरे के कर्म भी नाश करे। ऐसी व्याख्या। पण्डित ऐसी व्याख्या करते हैं। ऐई ! एक पण्डित ने ऐसा रखा था। वह बेचारा गुजर गया। फिरोजाबादवाले माणेकचन्द।

सर्वशक्तिमान न कहो, अनन्त शक्तिमान कहो। परन्तु वह तो सर्वशक्तिमान कहो या अनन्त शक्तिमान कहो, दोनों एक ही हैं। पूर्ण शक्तिवान कहो। सर्वज्ञ कहो अर्थात् उसका अर्थ क्या हुआ ? पूर्ण बलवाला है, पूर्ण ज्ञानवाला है परन्तु स्वयं के लिये है न ? पर का कर दे, इसलिए सर्व बलवाला है, ऐसा है वहाँ ? तीन काल, तीन लोक को जानते हैं, किसी का करते नहीं, किसी से लेते नहीं। लेते हैं, द्रव्य में से और जानते हैं सबको। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसे भगवान जिन्हें देवरूप से स्वीकारे, समझ में आया ? उसे पामर की गिनती उसकी दृष्टि में होती नहीं। यह ठेक ठिकाने के देव-देवल को मानता है न ? हनुमान, शिकोतेर, अमुक। ऐई.. ! मनहर ! तुझे क्या था वह ? सांईबाबा। सांईबाबा नहीं, क्या कहलाता है यह ? हैदरशाही। हैदरशाही को माननेवाले बनिये। ऐसे के ऐसे सब ठोठ जैसे सब इकट्ठे किये। हैदरशाही को बहुत मानते थे। खबर है या नहीं ? आहाहा !

ऐसे तीन लोक के नाथ, तीन लोक को—लोकालोक को जाने इस अपेक्षा से। ऐसे देव के अतिरिक्त दूसरे देव धर्मी को होते नहीं। और उस देव का देव तो वापस आत्मा है। उसे जानने पर अनन्त ज्ञान में यह अपने को जानता है। ऐसे अनन्त-अनन्त सिद्धों को जाननेवाला आत्मा है। समझ में आया ? वह तू देव है, ऐसा कहा है न ? तू गुरु है। तेरा गुरु तू है। तू तुझे समझाता है। तू तुझे समझाता है, इसलिए तू तेरा गुरु। तू तेरा दिव्यशक्ति का भण्डार, इसलिए देव। आहाहा !

शाश्वत अनन्त जिनका... वही शक्ति है, बल है, भव्यता। **शाश्वत अनन्त जिनका**

धाम है—ऐसे यह तीर्थनाथ जिनेन्द्र लोकालोक को... ऐसे जिनेन्द्र भगवान **लोकालोक को अर्थात् स्व-पर ऐसे समस्त चेतन-अचेतन पदार्थों को...** स्व को-पर को। **समस्त चेतन-अचेतन पदार्थों को सम्यक् प्रकार से (बराबर) जानते हैं।** आहाहा! समझ में आया? २८३ कलश हुआ।

पुव्वुत्तसयलदव्वं णाणागुणपज्जएण संजुत्तं।
जो ण य पेच्छइ सम्मं परोक्खदिट्ठी हवे तस्स॥१६८॥

जो विविध गुण पर्याय से संयुक्त सारी सृष्टि है।
देखे न जो सम्यक् प्रकार परोक्ष रे वह दृष्टि है॥१६८॥

यहाँ, केवलदर्शन के अभाव में (अर्थात् प्रत्यक्ष दर्शन के अभाव में) सर्वज्ञपना नहीं होता, ऐसा कहा है।

समस्त गुणों और पर्यायों से संयुक्त पूर्वसूत्रोक्त (१६७वीं गाथा में कहे हुए) मूर्तादि द्रव्यों को... क्या कहा? जगत में जितने द्रव्य-पदार्थ हैं, वे समस्त गुण और पर्याय से सहित हैं। देखो! गुण और पर्याय दो डाले हैं। आहाहा! **समस्त गुणों और पर्यायों से...** है न? देखो! गुण और पर्याय दो प्रकार डाले। कितने ही कहते हैं न कि भाई! द्रव्य और पर्याय दो, अब गुण तीसरा नहीं।

श्रोता - श्वेताम्बर के।

पूज्य गुरुदेवश्री - श्वेताम्बर के...

यहाँ तो कहते हैं, वस्तु है, वह द्रव्य है और उसकी कायम रहनेवाली शक्तियाँ, वह गुण है और उसकी वर्तमान दशा, वह उसकी पर्याय है। तीन सिद्ध होते हैं।

समस्त गुणों और पर्यायों से... सहित ऐसा डाला, देखो! **पूर्वसूत्रोक्त (१६७वीं गाथा में कहे हुए) मूर्तादि द्रव्यों को जो नहीं देखता;...** अरे! सब पदार्थ और उनकी शक्तियाँ अर्थात् गुण और पर्याय उस सहित जो देखता नहीं, **अर्थात् मूर्त द्रव्य के मूर्त गुण होते हैं, अचेतन के अचेतन गुण होते हैं,...** लो। देखो, वापस यहाँ आया। ऐसा कहते हैं गुण-पर्यायसहित द्रव्य को देखे तो गुण कैसे? **मूर्त द्रव्य के मूर्त गुण होते हैं,...** यह परमाणु जो यह रजकण हैं, वे मूर्त द्रव्य हैं, जड़ हैं। उनके गुण मूर्त हैं। रंग, गन्ध, स्पर्श। आहाहा! शरीर मूर्त है। उसके रंग, गन्ध, स्पर्श आदि गुण मूर्त हैं।

अचेतन के अचेतन गुण होते हैं,... लो! आत्मा के अतिरिक्त पाँच द्रव्य अचेतन हैं,

उनके गुण अचेतन हैं। **अमूर्त के अमूर्त गुण होते हैं,...** यहाँ स्पष्टीकरण किया। पहले आ गया है। अमूर्त के अमूर्त गुण होते हैं। पुद्गल के अतिरिक्त पाँच अमूर्त—अरूपी हैं। उनके अरूपी गुण होते हैं। द्रव्य स्वयं अरूपी, उसके गुण भी अरूपी। **चेतन के चेतन गुण होते हैं;...** सब होकर चेतन के चेतन गुण होते हैं। ठीक। क्या कहा समझ में आया? आत्मा के जितने गुण हैं, वे चेतन के चेतन गुण होते हैं, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है न? आहाहा! **चेतन के चेतन गुण होते हैं;...** आहाहा!

श्रोता - रागादि चेतन.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री - वह नहीं। वह इसकी पर्याय। यहाँ तो गुणों की बात है न? चैतन्यगुण होता है। यहाँ तो कहना है, चेतन के चेतनगुण होते हैं। चैतन्य के गुण तो चैतन्य ही होते हैं। नहीं तो कहीं ऐसा आता है न कि चेतन है, तो वह ज्ञान-दर्शन उपयोग है, उसे जीव कहा है और एक न्याय से दूसरे को अजीव कहा है। सप्तभंगी ली है। सप्तभंगी में। ज्ञान-दर्शन यह चेतन, उसके अतिरिक्त के अचेतन, ऐसा कहकर सप्तभंगी उतारी है। यहाँ कहते हैं कि वह तो उसका लक्षण मुख्य है, उसका स्वरूप जानने का वह उसकी मुख्यता बताने को... ऐसा यहाँ कहीं डाला है। बाकी यहाँ तो चेतन के गुण सब चेतन हैं। समझ में आया? व्यापक है न? लोगों को कितना याद रखना? वे कहें, छह काय की दया पालना, लो। एक अपवास करना करना, प्रौषध करना, अष्टमी और चतुर्दशी का अपवास करना। जिन लोगों को चौदश नहीं होती, पूर्णिमा का करते हैं। ... जाओ प्रौषध हो गया, धर्म हो गया, लो। धूल में भी धर्म नहीं है, तेरा प्रौषध करके सूख जा न! प्रौषध तो उसे कहते हैं कि जिसमें आत्मा के अनन्त गुण की पुष्टि मिले। अब आत्मा की खबर नहीं हो (तो) पुष्टि कहाँ से लाना? समझ में आया? आत्मा कौन है? गुण क्या है? दशा क्या है? उसका सामर्थ्य कितना है? इसकी खबर बिना पुष्टि कहाँ से लाना? जाना हुआ हो आत्मा आनन्द और शान्ति का सागर है, ऐसा भान हुआ हो, वह अन्तर में एकाग्र हो तो पुष्टि करे, इसका नाम प्रौषध कहलाता है। वह तो सब लंघन है। पूनमभाई! छह काय... छह काय में स्वयं नहीं? अपने को कूट मारा है या नहीं इसने? देखो यह करूँ, यह करूँ, ऐसा करके मिथ्यात्व से कूट मारा है। समझ में आया? आहाहा!

चेतन के चेतन गुण होते हैं;... अचेतन के अचेतन गुण होते हैं। **षट् (छह प्रकार की) हानिवृद्धिरूप, सूक्ष्म, परमागम के प्रमाण से स्वीकार करनेयोग्य अर्थ-पर्यायें...** है।

इस पर्याय में बात आयी। द्रव्य कहा, उसके गुण कहे। थोड़ी सूक्ष्म बात है। छह प्रकार की हानि-वृद्धि होती है। एक समय में अनन्त गुण-हानि, अनन्त गुण-वृद्धि, असंख्य गुण हानि, असंख्य गुण-वृद्धि (इत्यादि) ऐसे छह प्रकार पड़ते हैं। यह जरा सूक्ष्म विषय है। यह **हानिवृद्धिरूप, सूक्ष्म, परमागम के प्रमाण से...** भगवान ने कहे वह आगम से माननेयोग्य हैं। **स्वीकार करनेयोग्य अर्थ-पर्यायें छह द्रव्यों को साधारण हैं,...** सब द्रव्य को अर्थपर्याय होती है। छहों द्रव्यों को—काल को, धर्मास्ति को, सबको अर्थपर्याय होती है।

नरनारकादि व्यंजनपर्यायें पाँच प्रकार की संसारप्रपंचवाले जीवों को होती हैं,... देखो! समझ में आया? व्यंजनपर्याय यहाँ सिद्ध को नहीं ली है। **नरनारकादि व्यंजनपर्यायें...** विभाविक को यहाँ व्यंजनपर्याय में लेते हैं? यह शैली इसमें है। मनुष्य, नारकी आदि आकार है न? द्रव्य का आकार... आकार... यह विभाव **व्यंजनपर्यायें पाँच प्रकार की संसारप्रपंचवाले जीवों को होती हैं,...** लो। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव, ऐसे पाँच परावर्तन में भटकनेवाले, उसे वह व्यंजनपर्याय होती है। यह सब जानकर इसे अन्दर इनका जाननेवाला आत्मा है, उसका अनुभव करना, उसकी दृष्टि करना, उसमें स्थिर होना वह इसका सार है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

९ **श्री प्रवचनसार, गाथा - १३९-१४०, श्लोक २८२-२८३, प्रवचन - १७८**
दिनांक - २८-०६-१९७५

(प्रवचनसार) ज्ञेयतत्त्व (प्रज्ञापन की) १३९ वीं (गाथा)। **टीका - किसी प्रदेशमात्र कालपदार्थ के द्वारा आकाश का जो प्रदेश....** अन्त में ऐसा आयेगा कि, **तो आकाश के प्रदेश का निरंशत्व न बने।** (इस पैराग्राफ की) अन्तिम लाईन है न? वह इसे (इस बात को) बतलाती है। १३९ शुरु होती है न? इसका पैराग्राफ की अन्तिम लाईन के साथ मेल है। **किसी प्रदेशमात्र कालपदार्थ के द्वारा....** प्रदेश अर्थात् आकाश का (प्रदेश) **जो प्रदेश व्याप्त हो.... प्रदेशमात्र कालपदार्थ के द्वारा आकाश का जो प्रदेश व्याप्त हो....** प्रत्येक व्यक्ति धीरे से सुनना।

उस प्रदेश को जब परमाणु मन्दगति से अतिक्रम (उल्लंघन) करता है.... उस प्रदेश को (अर्थात्) किसे? आकाश का प्रदेश है, उसमें कालाणु व्याप्त है। अब उसे सिद्ध करना है। थोड़ा सूक्ष्म विषय हो (तो भी) सुनना। समझ में नहीं आता — ऐसा नहीं मानना। **मन्दगति से अतिक्रम (उल्लंघन) करता है, तब उस प्रदेशमात्र अतिक्रमण के परिमाण के बराबर....** है न? **जो कालपदार्थ की सूक्ष्मवृत्तिरूप 'समय'....** आकाश के एक प्रदेश (में) जो कालाणु व्याप्त है, उसे अब सिद्ध करते हैं कि एक परमाणु एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाये, उसमें एक समय का माप आ जाता है। वह समय है, वह काल (द्रव्य की) पर्याय है। समय, काल है न? उसकी पर्याय है।

वह, उस कालपदार्थ की पर्याय है;.... देखा? भाई! आहा...हा...! **और ऐसी उस पर्याय से पूर्व की तथा बाद की वृत्तिरूप से प्रवर्तमान....** पहले एक समय और फिर दूसरा (समय-) उसमें प्रवर्तमान जो द्रव्य (कि) **जिसका नित्यत्व प्रगट होता है,....** वह काल नित्य है। एक समय में परमाणु, आकाश के (एक) प्रदेश से दूसरे प्रदेश में मन्दगति से जाये उसके एक समय का माप आ जाता है और एक समय की पर्याय है, उसे पर्याय कहते हैं। वह पूर्व और बाद की पर्याय को सन्धिवाला द्रव्य वह नित्य है।

उत्पन्नध्वंसी पर्याय, वह अवस्था है और अन्दर उतने में उत्पन्नध्वंसरहित तत्त्व है,

जितने में समय का माप आया, उतने में वह (काल) द्रव्य है क्योंकि पर्याय जिस क्षेत्र में है, उतने में ही द्रव्य है।

श्रोता : जितना पर्याय का क्षेत्र....

पूज्य गुरुदेवश्री : उतना द्रव्य का क्षेत्र है, भाई! चन्दुभाई!

ऐसा पदार्थ, वह द्रव्य है।.... यह काल को सिद्ध किया। ओ...हो...! जिसे श्वेताम्बर नहीं मानते। सर्वज्ञ परमात्मा केवली के पथानुगामी सन्तों ने काल को मानने की बात सिद्ध की। आहा...हा...! इस प्रकार द्रव्य है। **इस प्रकार द्रव्य समय (कालद्रव्य) अनुत्पन्न-अविनष्ट है....** यह तो पर्याय उत्पन्न और व्यय होती है, द्रव्य तो ध्रुव है। **और पर्याय समय उत्पन्नध्वंसी है....** पर्याय तो एक समय में उत्पन्न और ध्वंसी — नाश (होती है)।

यह 'समय' निरंश है,.... यह समय निरंश है। कौन? पदार्थ — पूरा कालद्रव्य। उसके फिर भाग नहीं हैं। **क्योंकि यदि ऐसा न हो तो आकाश के प्रदेश का निरंशत्व न बने।** आकाश का प्रदेश भी एक ही प्रदेश में है। उसमें भी पूरा एक ही द्रव्य है। इतने में एक ही द्रव्य है, इसलिए यदि यह द्रव्य एक ही रूप और निरंश न हो तो आकाश के प्रदेश का निरंशत्व भी सिद्ध नहीं होता। आहा...हा...! आकाश के प्रदेश का निरंशत्व है। (एक) प्रदेश है, उसमें दूसरा प्रदेश नहीं है। आकाश का एक प्रदेश है, वह दूसरा प्रदेश नहीं है। निरंश सिद्ध हो जाता है। इस प्रदेश का अंश दूसरा है — ऐसा नहीं है। आकाश का एक प्रदेश है, उसका दूसरा अंश है — ऐसा नहीं है। उसमें एक पर्याय का सिद्धपना हुआ तो उतने ही (क्षेत्र में) कालद्रव्य है तो उतने में आकाश का एक ही प्रदेश है। समझ में आया? आहा...हा...! ऐसी बात है!

और एक समय में परमाणु लोक के अन्त तक जाता है.... अब समय का भाग नहीं होता — ऐसा कहना है। (पहले कहा उसने) आकाश के प्रदेश का भाग नहीं पड़ा, एक ही प्रदेश भिन्न है। वैसे यहाँ कालद्रव्य का अंश भिन्न है। इतने में पूरा कालद्रव्य है। कालद्रव्य भिन्न है, उसके — द्रव्य के दो भाग पड़ते हैं — ऐसा नहीं है। **और एक समय में परमाणु लोक के अन्त तक जाता है फिर भी 'समय' के अंश नहीं होते;....** एक समय में चौदह ब्रह्माण्ड जाये, (उसमें) एक समय का असंख्यातवाँ भाग (होता है अर्थात्) एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश (जाने पर) असंख्यातवाँ (भाग) तीसरे (असंख्यातवाँ भाग) ऐसा करके असंख्य प्रदेशी एक समय (होता है) — ऐसा भाग नहीं पड़ता। आहा...! आहा...! सर्वज्ञस्वभाव!

इसमें तो यह सिद्ध करना था कि जैसे परमाणु एक समय में ऐसे जाये तो भी उस समय के भाग नहीं — ऐसे एक समय की काल की पर्याय एक परमाणु एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश जाने पर वहाँ काल का माप इतने में आ जाता है; इसलिए उतनी पर्याय जितना वहाँ द्रव्य है। एक प्रदेश में ही वह द्रव्य अखण्ड है। वह कालद्रव्य दूसरे प्रदेश में है — ऐसा नहीं है। वैसे आकाश का प्रदेश भी अकेला ही सिद्ध हो जाता है। अकेले अंश में पूरा द्रव्य है, वह निरंश है; वह प्रदेश का अंश नहीं है। वह प्रदेश है, उसका दूसरा भाग नहीं है। **गतिपरिणाम होता है।....** है ?

क्योंकि **जैसे (परमाणु के) विशिष्ट (खास प्रकार का) अवगाहपरिणाम होता है,....** एक परमाणु हो, वहाँ अनन्त परमाणु रहे — ऐसा परमाणु में अवगाह गुण है। आकाश का (अवगाह गुण) है, वह अलग बात है। **उसी प्रकार (परमाणु के) विशिष्ट गतिपरिणाम होता है।....** एक **परमाणु के परिमाण के बराबर अनन्त परमाणुओं का स्कन्ध बनता है....** एक परमाणु की चौड़ाई जितना अनन्त (परमाणुओं का बना हुआ) स्कन्ध है, **तथापि वह स्कन्ध परमाणु के अनन्त अंशों को सिद्ध नहीं करता,....** एक परमाणु जितना स्कन्ध (होवे), उसमें अनन्त परमाणु (होवें), वे कहीं परमाणु का अनन्तवाँ भाग सिद्ध करते हैं — ऐसा नहीं है। परमाणु, परमाणुरूप से सिद्ध है। आहा...हा...! कठिन बात भाई!

यहाँ तो ऐसा आया था कि एक परमाणु (जितने) एक प्रदेश में अनन्त परमाणु स्कन्ध रहे, तथापि उस परमाणु का अनन्तवाँ भाग वहाँ है — ऐसा नहीं होता। परमाणु अखण्ड पूर्ण है। एक परमाणु के परिमाण जितना अनन्त रजकणों का स्कन्ध होने पर भी, उस (स्कन्ध में) अनन्त रजकण हैं; इसलिए अनन्तवाँ भाग (होता है) ऐसा नहीं है। वहाँ परमाणु अखण्ड है। इसी प्रकार प्रत्येक परमाणु वहाँ अखण्ड है। वैसे ही प्रदेश अखण्ड है, उसमें दूसरा भाग नहीं है, उसमें अनन्त परमाणु आने पर भी।

इसी प्रकार काल की एक समय की पर्याय उतने में अखण्ड है, उसका द्रव्य भी वहाँ अखण्ड है। यह जाननेवाला कौन ? वह तो वहाँ होती है। यह जाननेवाली ज्ञान की पर्याय है। समझ में आया ? यह ऐसा है और वैसा है, यह इसे कहाँ पता है ? आहा...हा...!

श्रोता : आकाश का एक प्रदेश कहा, उसकी सात दिशा....

पूज्य गुरुदेवश्री : छह दिशा हैं, वह अलग बात है। यह पर्यायनय से भेद पड़ा, वस्तु तो एक अखण्ड है।

यहाँ तो (ऐसा) कहना है कि एक परमाणु एक समय में ऐसे जाये तो भी समय के भेद नहीं हैं। आकाश के एक प्रदेश में अनन्त परमाणु आवें, इससे एक अंश का भेद नहीं होता; वहाँ एक परिमाण जितने अनन्त रजकण हों तो उससे परमाणु का भाग नहीं (होता)। आहा...हा...! समझ में आया?

यहाँ तो इससे विशेष बात रात्रि में यह ली थी न? कि ऐसी एक समय की पर्याय है। अनन्त गुण हैं। तीन काल के समय हैं, उनसे अनन्तवें भाग द्रव्य हैं और उन द्रव्यों से अनन्तगुणा काल है, उससे अनन्त गुणा क्षेत्र है, इससे अनन्त गुणा भाव है। भूतकाल की आदि नहीं, इतना काल है—जिसकी शुरुआत नहीं, उतना काल है। उससे अनन्तगुने जीवद्रव्य हैं। तीन काल से अनन्तवें भाग हैं।

श्रोता : भूतकाल...

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्तगुने जीव हैं, जिसके काल का अन्त नहीं, उससे भी इस जीव की संख्या अनन्तगुनी है और जीव की अनन्तगुनी संख्या से पुद्गल की संख्या अनन्तगुनी है; उससे अनन्तगुनी काल की संख्या है; उससे अनन्तगुनी क्षेत्र की संख्या; उससे अनन्तगुने इसके गुण की (संख्या है)? अर्थात् एक समय की इसकी पर्यायें इतनी है कि क्षेत्र के प्रदेश से अनन्तगुनी पर्यायें हैं। एक समय में अनन्तगुणों की पर्यायें हैं — ऐसी-ऐसी तीन काल की पर्यायें गिनें, एक द्रव्य की, हाँ! तो भी काल के समय से अनन्तगुनी हुई, काल के समय जितनी अनन्तगुनी हुई। जैसे आकाश के प्रदेश से अनन्तगुनी पर्याय और ऐसी ही पर्याय से अनन्तगुनी; इतनी ऐसा नहीं। काल का परिणाम जो है, उतनी अनन्तगुनी हुई। समझ में आया?

और ऐसा जो आत्मा - ऐसे अनन्त गुण और उनकी अनन्त पर्यायों की प्रतीति करने की विकल्प की ताकत नहीं है। यहाँ तो यह सिद्ध करना है, भाई! क्योंकि विकल्प है, वह अचेतन है। समझ में आये, इतना पकड़ना, वस्तु सत्य है। इसलिए व्यवहार का जो विकल्प है, उससे ऐसे अनन्त गुणरूप द्रव्य (है, उसकी प्रतीति नहीं हो सकती है)। जिसके गुण की संख्या अपार - माप नहीं। काल का माप नहीं। आदि नहीं; भविष्य की (बात) बाद में रखो। जीव का माप नहीं, अनन्त संख्या है, उससे अनन्तगुने परमाणु, फिर काल, फिर क्षेत्र, उससे अनन्तगुणी पर्याय। एक समय की अनन्तगुणी पर्यायें! इसलिए ऐसे अनन्त गुण हैं, उनकी पर्यायें हैं, ओ...हो...! ऐसी तीन काल की पर्यायों का समूह, वह गुण है; ऐसे अनन्त गुण का समूह, वह द्रव्य है। उस द्रव्य की प्रतीति करने के लिए विकल्प काम नहीं करता। उस द्रव्य की प्रतीति करने में उस द्रव्य की जो सामर्थ्यवाली पर्याय है (वही कार्य करती है)। समझ

में आया ? इस द्रव्य के गुण और उनकी जो सामर्थ्यवाली पर्याय है, एक समय की पर्याय, हाँ! द्रव्य, गुण को प्रतीति करने की उस पर्याय की ताकत है। आहा...हा... !

श्रोता : विकल्प की ताकत नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ताकत नहीं, अचेतन की ताकत (नहीं)। वह तो ज्ञान की पर्याय है, आहा...हा... ! भले ही एक समय की हो ! आहा...हा... ! समझ में आया ? ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। उसकी पर्याय है, एक समय की एक पर्याय; अनन्त गुण को और ऐसी अनन्त प्रगट पर्यायें हैं, उसे प्रतीति में ले सकती है। उस पर्याय की इतनी सामर्थ्य है ! निर्मल, सम्यक् पर्याय, निर्मल सम्यक्ज्ञान की एक समय की पर्याय की इतनी ताकत है ! आहा...हा... ! ऐसा वह ईश्वर है !!

ऐसे अनन्त गुण का एकरूप (द्रव्य), इसकी प्रतीति करने के लिए उसके सन्मुख होना पड़ता है; जो विमुख है (उसे सन्मुख होना पड़ता है।) आहा...हा... ! समझ में आया ? जिसके जो गुण हैं, उसकी पर्याय को उसके सन्मुख (होना पड़ता है)। सन्मुख हुआ, उसका अर्थ (यह कि) स्वीकार किया.... वह है — ऐसा स्वीकार तब होता है। आहा...हा... ! समझ में आया ? और तब इसे आनन्द का स्वाद भी साथ में आता है, क्योंकि पर्याय से पकड़ में आता है, विकल्प से नहीं और पर्याय में अनन्त गुणों का एकरूप (द्रव्य) प्रतीति में आया अर्थात् शक्ति के — गुण के जितने अंश हैं, उन सबके अंश इसकी व्यक्त दशा में आ जाते हैं। आहा...हा... ! इसलिए सम्यग्दर्शन की पर्याय इतनी ताकतवाली है, उसकी मोहर - छाप आनन्द की है — उसका ट्रेडमार्क आनन्द का है !

अभी भक्ति में बोले थे, नहीं ? भाई ! क्या कुछ बोले थे ? ऐई ! धनजीभाई ! क्या कुछ बोले थे ? आनन्द विस्तरे। भक्ति-पूजा में बोले थे। भगवान की भक्ति में (आया था)। अभी मैं वहाँ था न ? हाँ, यह आनन्द विस्तरे... उसे भी पता नहीं होता। ..मैं वहाँ दर्शन करने गया था। ऐसा बहुत बोलने की अपेक्षा समझने में ध्यान रखो। यह कुछ यह भगवान की भक्ति और आरती से कहीं आनन्द का विस्तार नहीं होता। उसमें वह शब्द आया था, पता है। मात्र उसका व्यवहार भक्ति करनेवाले का लक्ष्य तो द्रव्य के ऊपर है, इसलिए इसे आनन्द का विस्तार होता है। इसमें यह विकल्प है, उसे आरोप देकर ऐसा कहा जाता है क्योंकि आशुभ परिणाम के समय आनन्द का मन्दपना है; शुभ के समय विशेष है और शुद्ध के समय विशेष है। आहा...हा... ! समझ में आया ? इसका आनन्द गुण है न ? और गुण है, उसे प्रतीति में लिया... आहा...हा... ! अर्थात् पर्याय में आनन्द का अंश आया परन्तु अशुभभाव है, तब

आनन्द का अंश अल्प वेदन में आता है, शुभ के समय उससे थोड़ा विशेष (वेदन में आता है)। शुद्ध के समय विशेष (वेदन में आता है) ऐसा ही उस गुण का और राग की मन्दता-तीव्रता के साथ ऐसा सम्बन्ध है। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि जितनी पर्याय एक द्रव्य की, एक गुण की अनन्त हैं, उन पर्यायों के अनन्तवें भाग द्रव्य है। यह क्या कहा? सभी द्रव्य उस पर्यायों के अनन्तवें भाग हैं और द्रव्य से अनन्तगुनी उनकी एक समय की पर्यायें हैं। जितने द्रव्य हैं, उनसे अनन्तगुनी एक द्रव्य की पर्याय है। आहा...हा...! क्या द्रव्य का पेट गहरा! ऐई! हिम्मतभाई! यह सब पहले सुना नहीं होगा। यह करो... यह करो... यह करो... आहा..हा..! यह तो निर्विकल्प होने की विधि है।

स्वभाव... परमाणु का स्वभाव! एक समय में ऐसे जाये तो भी भाग नहीं पड़ते; क्षेत्र के एक प्रदेश में अनन्त परमाणु रहे, तथापि भाग नहीं पड़ते। आहा...हा...! एक परमाणु के प्रमाण जितने में अनन्त परमाणुओं का स्कन्ध होने पर भी उस द्रव्य का भाग नहीं पड़ता। उस प्रदेश का भाग नहीं पड़ता, उस काल का भाग नहीं पड़ता, उस द्रव्य का भाग नहीं पड़ता। आहा...हा...! समझ में आया? इसी प्रकार एक समय की पर्याय में अनन्त... अनन्त... ज्ञात होने पर भी समय का भाग नहीं पड़ता (अर्थात्) पर्याय में दूसरी पर्याय है - ऐसा नहीं होता। आहा...हा...! समझ में आया? लो, यह दूसरे प्रकार से आया, ऐई! वीरचन्दभाई! १३९। आहा...! यह तो आवे, तद्नुसार आवे न!

एक परमाणु जितनी प्रमाण में अनन्त परमाणुओं का अवगाह होने पर भी, परमाणु का अंश अनन्तवाँ हुआ—ऐसा नहीं है। आहा...हा...! एक प्रदेश में अनन्त रजकण समाहित हैं, इसलिए एक प्रदेश का अनन्तवाँ भाग हुआ (अर्थात्) एक परमाणु का एक प्रदेश अंश, दूसरा रहा, इसका अनन्तवाँ भाग, (फिर) तीसरा... ऐसा करके (अनन्तवाँ भाग हुआ—ऐसा नहीं है), वह प्रदेश अखण्ड है, समय अखण्ड है, परमाणु अखण्ड है, इसी प्रकार एक समय की पर्याय... आहा...हा...! अनन्त गुण को स्वीकारे इससे एक पर्याय का अनन्त भाग पड़ जाए—ऐसा नहीं है। चन्दुभाई! थोड़ा-थोड़ा आया है। यह तो रात्रि में चलता था, वह कहा। रात्रि में पौन घण्टा चला था। कहो, समझ में आया? आते... आते... आवे वह (कहा जाता है)। आहा...हा...! ऐसा स्वभाव! अरे! किसका इसे मान करना है? और किसके पास से लेना है? जहाँ पड़ा है, वहाँ से लेता नहीं। आहा...हा...! आनन्द की खान, अनन्त गुण की खान, प्रभु! वहाँ जितना एकाग्र हो, उतना वहाँ से मिले वैसा है। यह बाहर में एकाग्र हो, उतना टले ऐसा है। आहा...हा...!

तथापि वह स्कन्ध, परमाणु के अनन्त अंशों को सिद्ध नहीं करता,.... देखा ? एक परमाणु के प्रमाण जितने अनन्त रजकण आकर अवगाह पाते हैं, तो इससे कहीं परमाणु का अनन्तवाँ अंश सिद्ध नहीं करता। समझ में आता है इसमें कुछ ? परमाणु तो परमाणु अखण्ड ही है, एक परमाणु के प्रमाण जितने अनन्त (रजकण) हो गये। इससे परमाणु-द्रव्य का अनन्तवाँ भाग हो गया — ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! **क्योंकि परमाणु निरंश है;....**

उसी प्रकार जैसे एक कालाणु से व्याप्त एक आकाश-प्रदेश के अतिक्रमण के माप के बराबर एक 'समय' में परमाणु विशिष्ट गतिपरिणाम के कारण.... परमाणु के विशिष्टगति परिणाम के कारण असंख्य समय उलंघता है, पूरा लोक (उलंघता है) ऐसा। **लोक के एक छोर से दूसरे छोर तक जाता है तब (उस परमाणु के द्वारा उल्लंघित होनेवाले) असंख्य कालाणु 'समय' के असंख्य अंशों को सिद्ध नहीं करते,....** एक समय में असंख्य कालाणु (उलंघन करे), इसलिए एक समय में असंख्यातवां भाग हुआ — ऐसा नहीं है। आहा...हा... !

असंख्य कालाणु 'समय' के असंख्य अंशों को.... असंख्य कालाणु को स्पर्श किया, इसलिए एक समय के **असंख्य अंशों को सिद्ध नहीं करते,....** एक समय का अंश परिपूर्ण है। एक समय में चौदह ब्रह्माण्ड गया है। आहा...हा... ! कहो समझ में आया ? भाई ! किसी समय ऐसा सूक्ष्म भी आ जाता है। यह तो भगवान की - ईश्वर की लीला है। आहा... ! ज्ञानरूपी ईश्वर की लीला है !

श्रोता : ज्ञानरूपी ईश्वर की लीला।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ज्ञानरूपी ईश्वर की लीला है।

भावार्थ - परमाणु को एक आकाशप्रदेश से दूसरे अनन्तर.... अनन्तर अर्थात् दूसरे अन्तर बिना **आकाश-प्रदेश पर मन्दगति से जाने में जितना काल लगता है, उसे 'समय' कहते हैं। वह समय कालद्रव्य की सूक्ष्मातिसूक्ष्म पर्याय है।** इस समय में यह समय का माप आया, वहीं कालद्रव्य है, उस प्रदेश में ही कालद्रव्य है — ऐसा कहते हैं। आहा...हा... !

श्रोता : पर्याय...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय वहाँ पूरी हुई तो जितना पर्याय का क्षेत्र, उतना द्रव्य का क्षेत्र है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

कालद्रव्य नित्य है;.... इस पर्याय का एक समय माप आया—छोटे में छोटा काल का माप आ गया अर्थात् पर्याय का माप आया। जितने क्षेत्र में पर्याय का माप आया, उतने

क्षेत्र में द्रव्य है। आ...हा...! पर्याय से बड़ा द्रव्य हो या क्षेत्र से छोटा (हो)—ऐसा नहीं होता है।

किस प्रकार सिद्ध किया है! ओ...हो...! ऐसा स्वभाव सर्वज्ञ ने ज्ञान में देखा है। उसमें होता है, जिसमें होता है, उसे उसका पता नहीं। परमाणु एक समय में ऐसे चौदह ब्रह्माण्ड जाये तो उसे पता है? आहा...हा...! परन्तु ऐसे जाता है, एक समय में जाता है, उसमें असंख्य कालाणु उल्लंघता है, इसलिए समय का असंख्य भाग पड़ गया (—ऐसा नहीं है) एक कालाणु यहाँ है, उसे स्पर्श किया, दूसरे को स्पर्श किया, एक समय का असंख्यवाँ भाग, दूसरे समय का असंख्यवाँ भाग ऐसा करके समय है—ऐसा नहीं है। आहा...हा...! ऐसी गम्भीर वस्तु! केवलज्ञान का तत्त्व कैसा होगा! आहा...हा...!

कालद्रव्य नित्य है; 'समय' उत्पन्न होता है और नष्ट होता है। जैसे, आकाशप्रदेश, आकाशद्रव्य का छोटे से छोटा अंश है,.... आकाशप्रदेश छोटे में छोटा अंश है। **उसके भाग नहीं होते, उसी प्रकार 'समय' कालद्रव्य की छोटी से छोटी निरंश पर्याय है, उसके भाग नहीं होते।** एक समय में भाग पड़ जाये—ऐसा नहीं है। आहा...! यह तो गति की विशेषता के कारण एक समय है। असंख्य कालाणु को स्पर्श किया, इसलिए असंख्य समय (हो जाये) अथवा एक समय का असंख्यातवाँ भाग पड़ जाये (अर्थात्) एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाने पर एक समय का असंख्यातवाँ भाग (पड़ गया) दूसरे प्रदेश में जाने पर असंख्यातवाँ (भाग पड़ गया) ऐसा करके समय के असंख्यात भाग नहीं पड़ते हैं। आहा...हा...! सर्वज्ञ भगवान का तत्त्व बहुत सूक्ष्म है भाई! जिनेश्वर, परमेश्वर.... आहा...हा...! बाड़ा में पड़े हैं परन्तु उसका पता नहीं होता और हम जैन हैं ऐसा मानते हैं।

यदि 'समय' के भाग हों तो परमाणु के द्वारा एक 'समय' में उल्लंघन किये जानेवाले आकाशप्रदेश.... देखो! है न? **के भी उतने ही भाग होने चाहिए;....** आहा...हा...! एक प्रदेश का भाग नहीं होता, प्रदेश अखण्ड है। **आकाशप्रदेश तो निरंश हैं; इसलिए 'समय' भी निरंश ही है।** एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश को उल्लंघने पर प्रदेश के भाग नहीं होते ऐसे ही एक समय में उल्लंघने से समय के भाग नहीं होते हैं।

यहाँ प्रश्न होता है कि ''जब पुद्गल-परमाणु शीघ्र गति के द्वारा एक 'समय' में लोक के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँच जाता है, तब वह चौदह राजू तक आकाश-प्रदेशों में श्रेणिबद्ध जितने कालाणु हैं, उन सबको स्पर्श करता है; इसलिए असंख्य कालाणुओं को स्पर्श करने से 'समय' के असंख्य अंश होना चाहिए।''

श्रोता : एकसाथ स्पर्श...

पूज्य गुरुदेवश्री : एकसाथ हो उसमें... आहाहा! ऐसा ही उसका स्वभाव है। एक समय में सिद्ध कहा न? ओ...हो...! सिद्धपना तो यहाँ उत्पन्न हुआ और ऐसे जरा गया और वहाँ (सिद्धालय में) रहा, वह सब एक समय है। आहा...हा...! वहाँ काल के तीन भाग नहीं हुए। यहाँ उत्पन्न हुए एक समय का दूसरा अंश, बीच में गये वह दूसरा अंश (और) वहाँ गये (वह दूसरा अंश ऐसे भाग नहीं होते)। वस्तु तो देखो! उसे जाननेवाला ज्ञान है। उसकी बात है। आहा...हा...!

जो स्वरूप का ज्ञान हुआ, वह ज्ञान इस समस्त अज्ञान को भलीभाँति जान सकता है। समझ में आया?

अनन्त गुण का धाम...! क्षेत्र के अंश का अन्त नहीं, काल के भाग का अन्त नहीं, गुण की संख्या का अन्त नहीं, ओ...हो...हो...! ऐसे अनन्त गुण का एक रूप है, उसे अन्तर्मुख पकड़ने से पर्याय में अनन्त गुण की सामर्थ्य प्रगट होती है। समकित में, ज्ञान में, चारित्र में (सामर्थ्य प्रगट होती है)। आहा...हा...! अनन्त प्रभुता प्रगट होती है। ऐसे आत्मा का दर्शन सम्यक्, ऐसे आत्मा का ज्ञान सम्यक्-उसकी क्या कीमत! कहते हैं, उसकी क्या माहात्म्य! अलौकिक वस्तु है। द्रव्य को पकड़नेवाले ज्ञान का माहात्म्य है। द्रव्य का माहात्म्य है, परन्तु जाना किसने?

श्रोता : सिद्ध किया पर्याय ने।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय ने सिद्ध किया न! मैं अखण्ड अभेद हूँ — यह निर्णय कौन करता है? ध्रुव निर्णय करता है? 'शुद्ध-बुद्ध चैतन्यघन, स्वयं ज्योति सुखधाम' परन्तु उसे जाना किसने? पर्याय जानती है। मैं यह शुद्ध हूँ, मैं यह बुद्ध हूँ, मैं यह अखण्ड हूँ। लो, स्वयं तो पर्याय है! परन्तु उस पर्याय का ध्येय है, वह मैं हूँ। परिणाम, परिणामी को पकड़ता है; इसलिए परिणाम का माहात्म्य है। माहात्म्य तो परिणाम करता है न? द्रव्य माहात्म्य करता है? अलौकिक बातें हैं, बापू! आ...हा...!

(उसका समाधान) **जैसे अनन्त परमाणुओं का कोई स्कन्ध आकाश के एक प्रदेश में समाकर परिमाण में (कद में) एक परमाणु जितना ही होता है, सो वह परमाणुओं के विशेष (खास) प्रकार के अवगाहपरिणाम के कारण ही है;....** परमाणुओं में ऐसी ही विशेष प्रकार की अवगाहपरिणाम की शक्ति है, उसके कारण ऐसा होता है। (मूल ग्रन्थ में नीचे

फुटनोट में) है न—***आकाश में भी अवगाहहेतुत्वगुण के कारण ऐसी शक्ति है कि उसका एक प्रदेश भी अनन्त परमाणुओं को अवकाश देने में समर्थ है।*** आहा...हा...! आकाश का एक प्रदेश, जितने स्कन्ध हैं, वे सूक्ष्म होकर आवे (उन सबको) अवगाह देता है। काल का एक समय अनन्त द्रव्यों को वर्तने में निमित्त होता है, इतनी ताकत है; परमाणु एक समय में चौदह ब्रह्माण्ड में क्षेत्रान्तर होता है और एक समय में अनन्तगुणी काली, लाल आदि पर्यायरूप परिणमे—ऐसा उसका स्वभाव है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा का स्वभाव एक समय में तीन काल-तीन लोक के जो अनन्त गुण हैं, जिनकी संख्या नहीं—ऐसे-ऐसे असंख्य द्रव्य और ऐसे-ऐसे अनन्त गुण और ऐसे अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें... आहा...हा...! उन्हें एक समय में जान सकता है! उन्हें स्पर्श किये बिना, छुए बिना! ऐसी सम्यक् पर्याय की ताकत है! समझ में आया? यह भाषा तो सादी है, कहीं बहुत ऐसा (न समझ में आये ऐसा नहीं है) छोटूभाई! भाषा तो कोई ऐसी बहुत सूक्ष्म नहीं है।

श्रोता : बात सूक्ष्म है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सूक्ष्म है, भाव सूक्ष्म, भाव तो सूक्ष्म है। आहा...हा...! एक जीव की अनन्त पर्याय, काल से अनन्त गुणी है। तीन काल के समय से एक द्रव्य की, गुण की अनन्त पर्याय है, वह काल से अनन्तगुणी है और उस पर्याय से अनन्तवें भाग तीन काल है। तब यह प्रश्न होता है कि तीन काल के सिद्ध हैं और वे निगोद के शरीर से अंशमात्र हैं। यह तो वर्तमान की अपेक्षा से कथन है। ए...ई...! ऐसे तीन काल को गिनो तब तो सिद्ध से काल असंख्यगुना ही है। यह क्या कहा? जैसे वर्तमान काल तक सिद्ध हुए तो सिद्ध की अपेक्षा काल कितना गया? असंख्यागुणा क्योंकि छह महीने और आठ समय में ६०८ जीव सिद्ध होते हैं। ६०८ संख्या की अपेक्षा छह महीने के समय की संख्या असंख्यगुनी है। यह क्या कहा?

काल की संख्या—भूतकाल के समय की संख्या सिद्ध की संख्या की अपेक्षा असंख्यगुनी है। सिद्ध की संख्या की अपेक्षा भूतकाल के काल की-समय की संख्या असंख्यगुनी है—इससे अनन्तगुनी तो एक द्रव्य के गुण की एक समय की पर्याय है! ऐसी-ऐसी अनन्त द्रव्यों की पर्यायें! परन्तु वे द्रव्य कितने? कि जो अनन्त पर्याय है, उसके अनन्तवें भाग द्रव्य है और उस द्रव्य के गुण हैं, उसकी पर्याय उनसे... असंख्यवें भाग में द्रव्य थे न? परन्तु गुण तो बहुत हैं, तो ऐसी-ऐसी पर्याय भी असंख्यगुणी हो गयी, एक की पर्याय वही असंख्य द्रव्य की

(पर्याय) इसलिए असंख्यगुणी हो गयी न? और वह पर्याय भी काल से अनन्तगुनी हुई— एक द्रव्य के गुण की पर्याय काल से अनन्तगुनी हुई तो ऐसी असंख्य द्रव्य की गुण-पर्याय काल से अनन्तगुनी (हो गयी) आहा...हा...! क्या भगवान का द्रव्य!

एक समय में असंख्य कालाणुओं को उल्लंघन करके लोक के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँच जाता है, सो वह परमाणु के विशेष प्रकार के गति परिणाम के कारण ही है;.... उसकी गति की विशेषता की शक्ति के कारण है। इस कारण वहाँ काल के भाग हो जाते हैं—ऐसा नहीं है। **(परमाणु में ऐसी ही कोई विशिष्ट प्रकार के गति परिणाम की शक्ति है, जिसके कारण ऐसा होता है) इससे कहीं 'समय' के असंख्य अंश नहीं होते।** लो, आज फिर दोबारा आया, भाई! आया तो गत रात्रि की चर्चा के कारण, नहीं तो लेना नहीं था। समझ में आया? आहा..हा..!

अनन्त गुण वीतरागभाव से भरपूर हैं। वीतरागभाव की पर्याय से ही वह ज्ञात हो ऐसा है, क्योंकि आत्मा का जिनस्वरूप, वीतरागस्वरूप गुण है तो अनन्त गुण वीतरागस्वभावी हो गये। भले ही संख्या की मर्यादारहित (अमर्यादित) गुण हों! ओ...हो...! क्षेत्र की हद नहीं, काल की हद नहीं, उसे ज्ञान जान लेता है। भाव की हद नहीं, उसे भी ज्ञान की पर्याय जान लेती है!! उस पर्याय की कितनी ताकत है! हाँ, स्थिरता करना, वह तो इससे अनन्तगुनी ताकत है! परन्तु श्रद्धागुण और ज्ञानगुण की इतनी ताकत है!

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इनकी इतनी ताकत है! आहा...हा...! स्थिरता का पुरुषार्थ इससे अनन्तगुना है परन्तु वह तो पर्याय के पुरुषार्थ की अपेक्षा से बात है परन्तु पर्याय में जिस द्रव्य को लक्ष्य में लिया, उसकी तो इतनी सामर्थ्य है, जिसकी दृष्टि में-द्रव्य की मुख्यता वर्तती है।

१३९ गाथा हुई - परमाणु, समय, प्रदेश और पर्याय — यह सब अखण्ड हैं। परमाणु द्रव्यरूप से, प्रदेश क्षेत्ररूप से, समय कालरूप से पर्याय एक समय की अवस्थारूप से (अखण्ड है)। आहा...हा...! भगवान का शासन...

श्रोता : इन सबको द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में समाहित कर लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब समा गया न! अपना द्रव्य लो तो द्रव्य निर्विकल्प है; क्षेत्र लो तो असंख्य प्रदेशी है; काल लो तो इसकी अनन्त पर्याय, वह उसका काल है; गुण लो तो अनन्त गुण हैं। द्रव्य लो तो निर्विकल्प वस्तु है, क्षेत्र लो तो असंख्य प्रदेशी है, काल लो तो

अनन्त पर्यायें हैं, भाव लो तो अनन्त गुण हैं। आहा...हा... ! एक समय में सबको पकड़ता है। निर्विकल्प द्रव्य को, असंख्य प्रदेश को, अनन्त भाव को, अनन्त पर्याय को, परन्तु एक समय की पर्याय स्वयं उसे भी माने, स्वयं को माने और उसे भी माने। आहा...हा... ! अब ऐसी बात सर्वज्ञ के सिवाय कहीं नहीं होती और लोग कहाँ-कहाँ सिर फोड़ते हैं।

श्रोता : यह सर्वज्ञपने की अभी ऐसी बात करे वह आप करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वस्तुस्थिति ऐसी है। लोग जहाँ-तहाँ भटकते हैं (कि) यहाँ है और यहाँ है... अरे... ! बापू, कहीं नहीं है, भाई ! इस बात की गन्ध जिनेश्वरदेव के अतिरिक्त (कहीं नहीं है) — ऐसा गम्भीर स्वभाव... ! आहा...हा... ! जिसने उसका माप कर डाला ! प्रमाण कर डाला न ? उस ज्ञेय का ज्ञान हो गया, प्रमाण हो गया। यह प्रमाण, वह प्रमाण है। आहा... ! यह फिर से पौन घण्टा हुआ ! अब इसमें... रामजीभाई कितनी बार कहते हैं। पौन घण्टे के बाद दस मिनिट ही बाकी है। आहाहा !

इसमें विशेषता तो यह है कि एक समय की पर्याय में अनन्त पर्याय जाने, अनन्त गुण जाने, तथापि उस पर्याय के अनन्त भाग नहीं। अविभाग प्रतिच्छेद सामर्थ्य की शक्ति विशेष भले हो परन्तु पर्याय दो नहीं। आहा...हा... ! प्रदेश के दो भाग नहीं पड़ते; समय के दो भाग नहीं पड़ते; पर्याय के दो भाग नहीं पड़ते, आहा...हा... ! ऐसी जो पर्याय, वह जीव के स्वरूप को पकड़ सकती है। राग की पर्याय, चाहे तो भगवान की भक्ति हो (परन्तु) उसे पकड़ नहीं सकती, क्योंकि वह राग अचेतन है। आहा...हा... ! व्यवहार अचेतन है, वह निश्चय चेतन को कैसे पकड़े ? कैसे जाने ? आहा...हा... ! राग-व्यवहार से निश्चय ज्ञात होता है, यह बहुत बड़ी गड़बड़ी है। भगवान की सामर्थ्यवाली जो पर्याय है, वह उसे पकड़ और जान सकती है। आहा...हा... ! वह भी, पर्याय में खड़े रहकर नहीं, क्योंकि जिसका माहात्म्य है, वस्तु है, उसमें दृष्टि रहे और उसे स्थापित करे, तब पर्याय का माहात्म्य होता है। आहा...हा... ! समझ में आया ? अब १४० गाथा।

यह प्रश्न तो यहाँ से अधिक उठा है कि तीन काल के सिद्ध की अपेक्षा सिद्ध के जीवों की संख्या निगोद के अनन्तवें भाग है, अल्प है — ऐसा कहा न ? परन्तु उसका अर्थ यह है। ऐसा यदि तीन काल का माप करने जाये तो जब-जब सिद्ध होंगे, उन सिद्ध की संख्या की अपेक्षा काल तो असंख्य गुणा है, तो इस प्रकार तीन काल को प्राप्त करने जाये तो नहीं मिले, क्योंकि सिद्ध की संख्या की अपेक्षा काल असंख्यगुणा है और जीव की संख्या काल की अपेक्षा अनन्तगुणी है। तो मिलान किस प्रकार खायेगा ? ऐई ! चेतनजी !

निगोद का शब्द पड़ा है, उसमें से निकाला। गाथा का आया था न? वह तो पहले कहा गया है। (बनारसीविलास, अथ कर्मप्रकृति विधान अधिकार) 'बढै न सिद्ध अनंता, घटै न राशि निगोद, जैसे के तैसे रहे यह जिन-वचन विनोद।' (श्लोक, ९८) ओहो...हो...! इस श्लोक पर यह श्लोक है। यह श्लोक है, उस पर यह श्लोक है - 'एक निरोध शरीर में जीव अनन्त अपार भरे जन्म सब एक के मरहि एक ही बार' (श्लोक, ९५)। 'मरण अठारह बार कर जन्म अठारह देव, एक श्वांस उच्छ्वास में यह निगोद की टेव' (श्लोक ९६)। 'एक निगोद शरीर में ऐसे जीव बखान तीन काल के सिद्ध सब एक अंश परिमाण' (श्लोक, ९७)। 'बढ़ै न सिद्ध अनन्ता, घटै न राशि निगोद...' इसमें अनन्त में अनन्त भाग बढ़े तो भी उसे क्या कहना? और अनन्त में अनन्तवें भाग घटे वह घटे (क्या कहना)? अनन्त की बड़ी राशि पड़ी है! 'बढ़ै न सिद्ध अनन्ता, घटै न राशि निगोद, जैसे के तैसे रहे यह जिनवचन विनोद' (श्लोक ९८)। 'तातैं बात निगोद की, कहैं कहाँ लो कोय, साधारण प्रकृति उदय, जिय निगोदिया होय', (श्लोक, ९९)। 'यह साधारण प्रकृति लौं, वरणी चौदह साठ, बाकी चौदह जे रहें ते वरणो मुख भात' (श्लोक, १००)। यह बनारसीविलास है, गृहस्थ ऐसा काम कर गये हैं! सनातन सत्य था। वरना ये तो श्वेताम्बर थे, फिर यह मिल गया। शृंगारी थे परन्तु सत्य मिल गया फिर हो गया, सर्वज्ञ की जो परम्परा थी, वह हाथ लग गयी।

अब, आकाश के प्रदेश का लक्षण सूत्र द्वारा कहते हैं.... स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं) वह तो आधार दिया था। १३७ में कहा था न? १३७ गाथा में कहा था कि **(भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव) स्वयं ही सूत्र द्वारा कहेंगे....** १३७ में कहा था। १३७ गाथा में कहा था। है टीका? **(भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य) स्वयं ही (१४० वें) सूत्र द्वारा कहेंगे कि आकाश के प्रदेश का लक्षण एकाणुव्याप्यत्व है (अर्थात् एक परमाणु से व्याप्त होना वह प्रदेश का लक्षण है) और यहाँ (इस सूत्र या गाथा में) 'जिस प्रकार आकाश के प्रदेश हैं, उसी प्रकार शेष द्रव्यों के प्रदेश हैं' — इस प्रकार प्रदेश के लक्षण की एक प्रकारता कही जाती है।** यहाँ प्रदेश के लक्षण की एक प्रकारता कही जाती है और आकाश के प्रदेश का लक्षण १४० (गाथा) में आयेगा। यह वह आया। १३७ में है, पहले आ गया।

आगासमणुणिविट्ठं आगासपदेससण्णया भणिदं।
सव्वेसिं च अणूणं सक्कदि तं देदुमवगासं॥१४०॥

परमाणु जितने क्षेत्र को, धारण करे वो 'प्रदेश' है।
वो प्रदेश सब परमाणु को, अवकाश-दान समर्थ है॥

आहा...हा... ! सन्तों को शास्त्र की रचना में विकल्प निमित्त हुआ। विकल्प निमित्त हुआ! स्वयं तो विकल्प को करते नहीं। निमित्तकर्ता विकल्प नहीं (मात्र) निमित्तरूप से। पर्याय के कर्ता समय विकल्प के कर्ता हों, वह निमित्तकर्ता कहलाता है। यह निमित्तकर्ता नहीं; निमित्त अवश्य। है न बन्ध अधिकार में - मात्र निमित्त हैं, निमित्तकर्ता नहीं। आहा...हा... ! जयसेनाचार्यदेव की टीका में दूसरों को सुख-दुःख होता है, उसमें निमित्तमात्र हैं, निमित्तकर्तारूप नहीं, वह तो अज्ञानी है। आहा...हा... ! यह चीज है उसका ज्ञान करने के लिए है।

वीतरागमार्ग में बहुत समझने का है — ऐसे तो माहात्म्य हो इसे! ऐसे थोड़ी बहुत बात करके समझ गया और हो गया, जाओ! ऐसा नहीं है। यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर हैं, बापू! थोड़ा ज्ञान में कुछ जानना होवे तो ऐसा हो जाता है कि ओ...हो... ! अब तो हम बड़े हो गये हैं, पण्डित हो गये! ऐसा नहीं बापू! जीव, पण्डित और मूर्ख दोनों नहीं है। आहा...हा... ! वह तो पर्याय की बात है। चौदह गुणस्थान जीव कहाँ है ? आ...हा... !

श्रोता : वही चारित्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वही चारित्र है।

अरे... ! इसे यह मौसम आया है! आत्मा को प्राप्त करने के लिए यह मनुष्य अवतार का मौसम है! ऐसे मौसम में तो जितना (अन्दर) झुका जाये, उतना झुकना चाहिए।

आकाश का एक परमाणु से व्याप्य अंश.... आकाश के प्रदेश को सिद्ध करते हैं। **आकाश का एक परमाणु से व्याप्य अंश वह आकाश प्रदेश है....** वह आकाश का एक भाग — अंश है। **और वह एक (आकाश प्रदेश) भी शेष पाँच द्रव्यों के प्रदेशों को तथा परम सूक्ष्मतारूप से परिणमित अनन्त परमाणुओं के स्कन्धों को....** स्थूल तो नहीं आ सकते परन्तु सूक्ष्मरूप से परिणमित हों, उन्हें **अवकाश देने में समर्थ है।....** आहा...हा... ! आकाश का एक प्रदेश बाकी के अनन्त पाँच द्रव्यों के प्रदेशों को और सूक्ष्मरूप से परिणमित अनन्त (परमाणुओं के स्कन्धों को) अवकाश देने को समर्थ है। ओ..हो..हो.. ! उसकी समर्थता इसमें है, इसका उसे कहाँ पता है ? ज्ञान को पता है कि एक प्रदेश अनन्त परमाणु को अवकाश दे और सूक्ष्मरूप से परिणमित स्कन्ध हों, वे भी एक ही प्रदेश में (रहे) इतनी ताकत है! ओ...हो... ! इस ताकत को जाननेवाला ज्ञान है !! वह आकाश के प्रदेश की ताकत का आकाश के प्रदेश को पता नहीं है। आहा...हा... ! समझ में आया ? माहात्म्य है यह ज्ञान की पर्याय का।

एक प्रदेश में अनन्त परमाणु आवे और सूक्ष्म अनन्त-अनन्त स्कन्ध, स्कन्धरूप से परिणमे अनन्त आवे (तो उन्हें अवगाह देने की) एक प्रदेश में ताकत है। वह पर्याय एक समय की, हाँ! आकाशद्रव्य और गुण तो भिन्न है। अवगाह की एक समय की पर्याय में इतनी ताकत है! आहा...हा...! ऐसा भगवान आत्मा की पर्याय की इतनी ताकत है (कि) तीन काल-तीन लोक से अनन्त गुणा हो तो जान सके! उसके गुण, द्रव्य की बात नहीं, गुण की तो बात क्या करना! आहा...हा...! ऐसा आत्मा इसे प्रभुरूप से जँचे नहीं और दूसरे को महत्ता दे, वह स्वयं को हीन कर डालता है। समझ में आया?

आकाश अविभाग (अखण्ड) एक द्रव्य है,... आकाश में कहीं द्रव्य के दो भाग नहीं हैं। **अविभाग (अखण्ड)....** अविभाग अर्थात् भाग पड़े बिना अखण्ड **एक द्रव्य है, फिर भी उसमें (प्रदेशरूप) अंशकल्पना हो सकती है,....** वस्तुरूप से—द्रव्यरूप से एक अखण्ड है परन्तु उसके प्रदेशरूप से उसकी कल्पना (हो सकती है)। **क्योंकि यदि ऐसा न हो तो सर्व परमाणुओं को अवकाश देना नहीं बन सकेगा।** समझ में आया? एक ही प्रदेश अनन्त परमाणुओं को (अवकाश) देता है तो प्रदेश कल्पना हो सकती है। सम्पूर्ण आकाश में अनन्त रहते हैं—ऐसा नहीं, एक प्रदेश में अनन्त परमाणु और स्कन्ध रहते हैं; इसलिए उस अखण्ड द्रव्य का एक अंश भी सिद्ध होता है।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१०

श्री समयसार कलश टीका, कलश - २०७, प्रवचन - २३१
दिनांक - १३-०२-१९७८

कलश टीका २०७।

वृत्त्यंशभेदतोऽत्यन्तं वृत्तिमन्नाशकल्पनात्।
अन्यः करोति भुंक्तेऽन्य इत्येकान्तश्चकास्तु मा।।२०७।।

क्षणिकवादी प्रतिबोधित किया जाता है – अर्थात् एकान्त से पर्याय को ही माननेवाले को समझाया जाता है। **'इति एकांतः मा चकास्तु' इस प्रकार द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक के भेद बिना किये...** क्या कहते हैं ? द्रव्यार्थिक से द्रव्य नित्य है और पर्याय से अवस्था अनित्य है। दो भेद का स्वीकार नहीं करते हुए एकान्त का स्वीकार करना, वह मिथ्यात्व है। आगे लेंगे। अकेले द्रव्य का ही स्वीकार और पर्याय का स्वीकार न करे तो भी मिथ्यात्व है और अकेली पर्याय का ही स्वीकार करे और त्रिकाल को न स्वीकार करे तो वह भी मिथ्यादृष्टि है।

किसी जीव को स्वप्नमात्र में भी ऐसा श्रद्धान मत होओ। आहाहा! स्वप्न में भी ऐसी कल्पना न हो कि मैं एक पर्यायमात्र हूँ और त्रिकाली द्रव्य नहीं। द्रव्य त्रिकाल रहनेवाली चीज़ है, वह नहीं - ऐसा स्वप्नमात्र में भी न हो। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा कैसा ? **'अन्यः करोति अन्यः भुंक्ते' अन्य प्रथम समय का उत्पन्न हुआ कोई जीव कर्म का उपार्जन करता है, अन्य दूसरे समय का उत्पन्न हुआ जीव कर्म को भोगता है – ऐसा एकान्तपना मिथ्यात्व है।** आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है – जीव वस्तु द्रव्यरूप है, पर्यायरूप है। दो रूप है अकेली पर्यायरूप भी नहीं, अकेली द्रव्यरूप भी नहीं। क्षणिक बौद्धमति आदि अज्ञानी अनादि से पर्याय को ही मानते हैं और संख्यामति जो वेदान्ती आदि अकेले द्रव्य को ही मानते हैं, पर्याय को नहीं मानते। वे कहते हैं कि आत्मा और आत्मा का अनुभव, यह तो दो हो गये। ऐसे दो नहीं। एक ही सर्व व्यापक है - यह भी मिथ्या है और पर्यायमात्र मानते हैं, वह दृष्टि तो अनादि से बौद्ध की तो है परन्तु अनादि अज्ञानी का भी पर्याय पर लक्ष्य है। क्योंकि प्रगट पर्याय है। वस्तु पर्याय के समीप में पर्याय की अपेक्षा से अप्रगट कहने में आती है। पर्याय

की अपेक्षा से। उसकी अपेक्षा से प्रगट है। आहाहा! समझ में आया? अव्यक्त कहा न? परन्तु अव्यक्त तो पर्याय की अपेक्षा से कहा है, द्रव्य की अपेक्षा से व्यक्त है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

श्रोता : एक का एक पदार्थ व्यक्त और एक का एक पदार्थ अव्यक्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, एक का एक पदार्थ व्यक्त और एक का एक पदार्थ अव्यक्त। आहाहा! यह कहते हैं, अभी दूसरे श्लोक में विशेष कहेंगे।

उस व्यक्त - प्रगट पर्याय का ही अनुभव अनादि से है और... नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार दिगम्बर जैन साधु होकर गया, पंच महाव्रतादि (पालन किये) परन्तु उसकी दृष्टि पर्याय पर ही है। बहुत सूक्ष्म बात, भगवान! उस पर्याय के समीप में पूर्ण असंख्य प्रदेशी वस्तु है, उस पर कभी दृष्टि की ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! रात्रि में थोड़ा कहा था और पहले भी कहा था। क्या? कि जो यह असंख्य प्रदेशी आत्मा है न? तो जो पर्याय है, वह प्रत्येक प्रदेश के ऊपर है।

श्रोता : ऊपर के भाग में या नीचे के भाग में।

पूज्य गुरुदेवश्री : समस्त भाग में। दूसरा कहना है, यह बात तो कल कही थी। पहले बहुत कही थी कि पर्याय ऊपर के प्रदेश में ही है, यह नहीं, अन्दर प्रदेश असंख्य हैं, ऐसा नहीं। पर्याय तो अन्दर में जो यह है, वहाँ असंख्य प्रदेश का बिम्ब है तो प्रत्येक पर्याय प्रत्येक प्रदेश पर पर्याय है और यह जो पेट है अन्दर में असंख्य प्रदेशी जीव है, असंख्य प्रदेश का दल, तो ऊपर के प्रदेश की पर्याय है, इतना नहीं परन्तु प्रत्येक प्रदेश पर पर्याय अन्दर में है। समझ में आया?

श्रोता : प्रत्येक पर्याय प्रदेश के ऊपर रहती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नयी-नयी उत्पन्न होती है।

श्रोता : प्रदेश के ऊपर रहती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रदेश के ऊपर रहे, अन्दर में न जाए। उस दिन कहा था, पर्याय ऊपर है, उसका अर्थ क्या? कि ये असंख्य प्रदेश हैं। शरीर-वाणी-मन एक ओर रखो, कर्म एक ओर रखो। असंख्य प्रदेश का पिण्ड है तो ऊपर-ऊपर के प्रदेश में पर्याय है, ऐसा नहीं। अन्तर जो असंख्य प्रदेश का पिण्ड है अन्दर, उस प्रदेश में भी प्रत्येक प्रदेश पर पर्याय है। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : असंख्य प्रदेशों में व्यापक।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यापक, ऊपर। परन्तु ऊपर का अर्थ इसलिए कहा है। ऊपर का अर्थ क्या? कि प्रदेश असंख्य है तो प्रत्येक प्रदेश पर पर्याय है और अन्दर में ध्रुवता है।

श्रोता : ऊपर से पर्याय का आवरण है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय-फर्याय का आवरण नहीं। पर्याय है। आवरण-फावरण कुछ है नहीं। समझ में आया? यहाँ तो पर्याय को ऊपर है, ऐसा कहते हैं तो ऊपर की व्याख्या क्या, इतनी बात है। इस शरीर को एक ओर रखो, कर्म एक ओर रखो। असंख्य प्रदेश का जो पिण्ड है तो ऊपर-ऊपर के प्रदेश पर पर्याय है - ऐसा नहीं, असंख्य प्रदेश का अन्दर दल है तो प्रत्येक प्रदेश के ऊपर पर्याय है। प्रत्येक प्रदेश के ऊपर पर्याय है तो उस पर्याय को अन्दर झुकाना। सूक्ष्म विषय है, प्रभु! आहाहा! यहाँ भी प्रदेश है न अन्दर। असंख्य (प्रदेश का) दल है, उस प्रत्येक प्रदेश के अन्दर ऊपर-ऊपर पर्याय है। ऊपर अर्थात्? यह असंख्य प्रदेश यहाँ हैं, उनके ऊपर पर्याय है, ऐसा नहीं। अन्दर जो असंख्य प्रदेश का दल है (उन सब पर पर्याय है)। समझ में आया? हैं?

श्रोता : कुछ समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में नहीं आता? अधिक स्पष्ट कराने के लिये ऐसा कहते हैं। समझ में तो आता है। अधिक स्पष्ट कराने को कहते हैं।

यह ऊपर-ऊपर है, उसी प्रदेश की पर्याय है, ऐसा नहीं। अन्दर भी प्रदेश है, यह परमाणु है न? इस परमाणु में तो ऊपर-ऊपर पर्याय है। ऐसा विषय। यहाँ तो पर्याय और द्रव्य दोनों भिन्न हैं परन्तु किस प्रकार से है? - कि यह ऊपर-ऊपर पर्याय है, इतना ही नहीं परन्तु अन्दर प्रत्येक परमाणु भिन्न है, उस प्रत्येक परमाणु की पर्याय ऊपर-ऊपर है। इसकी ही ऊपर है, ऐसा नहीं। इसी प्रकार प्रत्येक प्रदेश आत्मा में है, उस प्रत्येक प्रदेश के ऊपर-ऊपर पर्याय है, अन्दर में ध्रुव में प्रवेश नहीं करती। यह तो आता है न? पर्याय ऊपर-ऊपर रहती है। अबद्धस्पृष्ट में (आता है)। अबद्धस्पृष्ट श्लोक आया न? अबद्धस्पृष्ट में। वह पर्याय ऊपर-ऊपर रहती है, ऐसा पाठ है। अबद्धस्पृष्ट। (समयसार) १४-१५ गाथा में लिखा है। पण्डित जयचन्दजी ने बहुत स्पष्ट किया है कि वह सब पर्याय अनित्य है तो वह ऊपर-ऊपर रहती है, सामान्य में-ध्रुव में प्रवेश नहीं करती। अब ऐसा विषय सूक्ष्म, क्या हो? हैं?

श्रोता : दो भाग कर दिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो भाग ही है। एक पर्याय का भाग और एक द्रव्य का भाग, ऐसे दो भाग हैं। दोनों के क्षेत्र भी भिन्न हैं।

श्रोता : समुद्र में ऊपर-ऊपर तरंग उठती है, उसकी तरह....

पूज्य गुरुदेवश्री : पानी का तो वहाँ दृष्टान्त दिया है कि जैसे जल में तेल... तेल कहते हैं न? (तेल की) बूँद गिरे तो वह तेल अन्दर प्रवेश नहीं करता, वह ऊपर-ऊपर रहता है परन्तु उस जल में ऊपर-ऊपर रहता है। इस स्थूल दृष्टान्त में क्या कहना? बाकी जल के जो प्रदेश हैं अन्दर में, उसके ऊपर-ऊपर पर्याय के हैं। समझ में आया? भाई! यह तो द्रव्यानुयोग का विषय है, सूक्ष्म है।

यह असंख्य प्रदेश का दल पूरा आत्मा है। यह कर्म, शरीर नहीं। वह चीज़ तो इसमें है ही नहीं। उससे तो भिन्न ही है, परन्तु यह असंख्य प्रदेश जहाँ-जहाँ है, वहाँ-वहाँ उन प्रदेश पर पर्याय है, नहीं कि असंख्य प्रदेश अर्थात् ऊपर-ऊपर की पर्याय, वही उसकी पर्याय है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? कल रात्रि में बहुत कहा था, यह पहले बहुत बार व्याख्यान में कहते हैं कि भाई! यह पर्याय ऊपर है और द्रव्य अन्दर है, उसका अर्थ क्या? आहाहा! उसका भावभासन होना चाहिए न? ऐसे के ऐसे मान लेने का अर्थ क्या? भाव में... आता है मोक्षमार्गप्रकाशक में? भावभासन। ज्ञान में यह ऐसा है, ऐसा भासन होना चाहिए न? तो यह पर्याय ऊपर है, उसका भासन क्या? और अन्दर में नहीं है, वह क्या? तो असंख्य प्रदेशी प्रभु आत्मा पूरा अन्दर है - शरीर, कर्म से सबसे भिन्न, तो वह सबसे भिन्न होने पर भी असंख्य प्रदेश जो हैं, प्रत्येक प्रदेश के पिण्ड में जो है, वह अन्दर के जो प्रदेश हैं, उनमें भी ऊपर पर्याय है। डाह्याभाई! आहा! ऐसी बातें हैं। क्या कहा?

श्रोता : कोई वस्तु हो, उसे कागज लपेटकर....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं, ऐसा भी नहीं। वह तो ऊपर-ऊपर से हुआ। इसके लिये तो यह स्पष्ट किया जाता है। जैसे इस लकड़ी का ऊपर-ऊपर कहा, ऐसा नहीं। यहाँ तो लकड़ी में जो प्रत्येक परमाणु है, वह प्रत्येक परमाणु, वह (मात्र) ऊपर के परमाणु नहीं, अन्दर के परमाणु में भी ऊपर-ऊपर पर्याय है। आहाहा! ऐसी प्रत्यक्ष वस्तु है। समझ में आया?

यहाँ तो दूसरा कहना है कि क्षणिकवादी और बौद्धमति ऊपर-ऊपर जो पर्याय है, उसे ही मानते हैं, परन्तु पर्याय का आधार द्रव्य अन्दर पूर्ण ध्रुव समस्त स्थान में है, उसकी खबर

नहीं है। ऐसा अनादि का पर्यायबुद्धिवाला नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया, जैन साधु (होकर) निरतिचार पंच महाव्रत (पालन किये) मिथ्यात्वभाव में। उसकी भी पर्यायबुद्धि थी। आहाहा! ऊपर-ऊपर की पर्याय को ही मानता था। वह वहाँ तक मानता था कि इस प्रदेश में, प्रत्येक प्रदेश का दल है, उस प्रदेश ऊपर पर्याय है, ऐसा भी मानता था परन्तु उस पर्याय जितना ही मैं हूँ, बस! आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह अकेली क्षणिक बौद्ध की बात नहीं है।

श्रोता : द्रव्यलिंगी का पूरा जोर पर्याय पर ही था।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय पर ही अनादि का अज्ञानी का सब जोर है। पंच महाव्रत पालकर पूरा लक्ष्य, रुचि, प्रेम वहाँ जमा रहे कि मैं यह कुछ करता हूँ। वह चीज़ ही मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो क्षणिकवाद को न्याय से, पर्याय जो क्षणिक है उस पर्याय के पीछे अन्दर ध्रुवता पड़ी है, उस ध्रुव के ऊपर पर्याय तैरती है। समझ में आया? समयसार में आ गया है। १४वीं गाथा है। सामान्य ऊपर-ऊपर तैरता है। अबद्धस्पृष्ट। आहा! समयसार तो समुद्र है, एक-एक शब्द समुद्र, हों! एक-एक शब्द! आहाहा!

श्रोता : समुद्र में डुबकी खाते हुए वापस तैरना आना चाहिए न!

पूज्य गुरुदेवश्री : डुबकी मारे तो भी उसे—तैराक को खबर है, अन्दर। यह सुना नहीं तुमने? समुद्र में मोती लेने जाता है। समुद्र में बहुत (मोती) पड़े हो न? किसी का जहाज टूटा हो, प्लेन टूट गया हो। नीचे रत्न पड़े हैं, नीचे बहुत पड़े हैं। उन्हें लेने मनुष्य नीचे जाता है न? सुना है न? तो वह एक भूंगली साथ में लेकर जाता है। वह भूंगली बाहर रहती है, वहाँ से हवा अन्दर आवे तो वहाँ गहरा जा सके, नहीं श्वांस लिये बिना मर जाए। यह क्या कहा? वह मोती लेने जाते हैं न वहाँ? एक तो अन्दर जरा प्रकाश भी चाहिए। इसलिए आँख में भी अन्दर थोड़ा प्रकाश रहता है, देखने के लिये। और हवा चाहिए, हवा बिना तो मर जाए। एक भूंगली ऐसी रखे कि ऊपर से हवा अन्दर आती है। ऊपर से अन्दर आती है और अन्दर जाए तो हवा के कारण श्वांस ले सकता है और प्रकाश के कारण देख सकता है कि यह मोती है, यह हीरा है। समझ में आया? अभी होता है। हमने तो सब बात सुनी है न!

इसी प्रकार भगवान आत्मा... आहाहा! अपनी पर्याय को अन्दर झुकाने से हीरा हाथ आता है। समुद्र पड़ा है प्रभु अन्दर। आहाहा! वर्तमान पर्याय को, इतना ही मैं हूँ—ऐसा नहीं मानकर, पर्याय जिसकी है, उसकी सत्ता में अन्तर्मुख होनेरूप पर दृष्टि पड़ती है, उसे द्रव्यदृष्टि कहते हैं, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं और उसे आनन्द का पता लगता है। अतीन्द्रिय आनन्द का

सागर भगवान है, वहाँ पर्याय को अन्दर झुकाने से अतीन्द्रिय आनन्द का तल जो है, तल जो नीचे तल है, ध्रुव है,... आहाहा! (उसका) पता लगने से पर्याय में भी आनन्द आता है तो उस पर्याय में आनन्द आया।

कल तुम्हारा प्रश्न था न? चेतना क्यों कहा? ऐसा कि पहले ज्ञान कहा, फिर दृष्टि कहा, फिर चारित्र कहा, फिर और चेतना क्यों कहा? कल कलश में आया था। वहाँ आनन्द कहना है। क्या (कहा)? वहाँ चेतना का आनन्द कहना है। ज्ञानचेतना, कर्मचेतना, कर्मफलचेतना - पर्याय के तीन भेद हैं न, पर्याय में? ज्ञानचेतना (अर्थात्) सम्यग्दर्शन में स्वरूप की एकाग्रता (हो), वह ज्ञानचेतना; अन्दर राग में एकाग्रता (हो), वह कर्मचेतना। कर्म अर्थात् जड़ की यहाँ बात नहीं और राग का फल भोगना, वह कर्मफलचेतना, राग का फल कर्मफलचेतना। समझ में आया? आहाहा!

एक बात तो दूसरी भी है। कहाँ का कहाँ आ जाता है मस्तिष्क में। शुद्धज्ञानचेतना, शुद्धकर्मचेतना और शुद्धकर्मफलचेतना - ऐसे तीन बोल प्रवचनसार में आये हैं। भाई! हैं? है न? अन्दर में आनन्दस्वरूप ध्रुव में जाते हैं, तब पर्याय में जो शुद्ध उपयोग हुआ, उस शुद्ध उपयोग को कर्मचेतना कहने में आया है। शुद्धकर्मचेतना। आहाहा! प्रवचनसार में है। आहाहा! शुद्धकर्मचेतना! आहा! है तो पर्याय परन्तु वह ध्रुव सन्मुख झुकने से जो आनन्द की शुद्ध पर्याय प्रगट हुई, उसे भी कर्मचेतना कहने में आता है। राग को कर्मचेतना कहा, वह तो अशुद्ध चेतना की क्रिया के लिये कहा है। यह तो शुद्धकर्मचेतना। कर्म अर्थात् कार्य। शुद्ध चैतन्यवस्तु जो ध्रुव है, उसके अवलम्बन से, उसके आश्रय से, उसके ध्येय से, उसके लक्ष्य से पर्याय में जो शुद्धता प्रगट हुई, उस शुद्धता को भी शुद्धकर्मचेतना कहा जाता है। आहाहा! यशपालजी! सूक्ष्म बात है, भगवान! क्या हो? मार्ग कोई ऐसा है।

शुद्धकर्मफलचेतना। यह शुद्ध निर्मल परिणति जो प्रगट हुई, वह आनन्द का जो वेदन है, वह शुद्धकर्मफलचेतना है। है तो पर्याय। आहाहा! कर्म शब्द से यहाँ राग भी नहीं, जड़ भी नहीं। आहाहा! मात्र अपना कार्य शुद्धचैतन्य की दृष्टि से हुआ, उस कार्य को अनुभवना, वह शुद्धकर्मचेतना का अनुभव है, ऐसा कहना है। आहाहा! और उसका फल आनन्दरूप भोगना, उसे शुद्धकर्मफलचेतना कहा जाता है। बात ऐसी है, बापू! यह तो वीतराग का मार्ग ऐसा सूक्ष्म है। आहाहा! और यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं है। अन्दर में स्वीकार आवे कि यह चीज़ ऐसी है। यह चीज़ अन्यत्र कहीं नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

कर्मचेतना – कर्मफलचेतना के दो प्रकार हुए। समझ में आया ? राग को वेदना, वह कर्मचेतना है, वह अशुद्धकर्मचेतना है। राग का, सुख-दुःख का वेदन, वह कर्मफलचेतना अशुद्ध चेतना है। आहाहा! है तो वह पर्याय और पर्याय के पीछे ध्रुव पड़ा है। वह पर्याय भी ऊपर है। आहाहा! असंख्य प्रदेश के दल में भिन्न (स्वरूप) है। कर्म है ही नहीं, छूते ही नहीं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी भी तीन काल में स्पर्श नहीं करते। यह तो समयसार तीसरी गाथा में आ गया। अपने धर्म को चुम्बन करते हैं, पर को चुम्बन नहीं करते। इतनी बात तो पर से भिन्न करने के लिये कही। अब फिर जब अन्दर में राग को कर्मचेतना कहने में आया है तो वह कर्मचेतना भी द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। समझ में आया ? और फिर ऐसा लो कि शुद्ध चैतन्य वस्तु है, उसका अनुभव होकर जो शुद्ध परिणमन हुआ, वह शुद्ध चेतना, शुद्ध उपयोगरूपी चेतना-कर्मचेतना है, वह भी ऊपर-ऊपर पर्याय में है। भाई! बापू! (ऐसा है)। भगवान! तू कौन है ? भाई! आहाहा!

आनन्द का वेदन (आया) वह शुद्धकर्मफलचेतना, वह भी पर्याय है। उस पर्याय के पीछे अन्दर में प्रत्येक स्थान में, असंख्य प्रदेश में जहाँ-जहाँ शुद्ध उपयोग उत्पन्न होता है, वह भी असंख्य प्रदेश में (होता है), कहीं ऊपर के प्रदेश में होता है, ऐसा नहीं, अन्दर-अन्दर सब प्रदेश में अन्दर उत्पन्न होता है। समझ में आया ? आहाहा! उस पर्याय के पीछे अन्दर में ध्रुव दल पड़ा है। आहाहा! उसे यहाँ द्रव्यार्थिकनय का विषय-द्रव्यदृष्टि कहते हैं।

यहाँ आया न ? द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। यहाँ आया न ? **द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक के भेद बिना किये सर्वथा ऐसा ही है, ऐसा कहना किसी जीव को स्वप्नमात्र में भी ऐसा श्रद्धान मत होओ।** आहाहा! अभी यह विषय चलता है। यह तो अपने जानने की अपेक्षा से बात है, हों! कथनमात्र 'अन्दर पर्याय है' ऐसा कहना, ऐसी बात नहीं। वह तो वाचक है परन्तु अन्दर में पर्याय और द्रव्य – दो की स्थिति मानना, एक को मानना और एक को न मानना, ऐसी वस्तुस्थिति नहीं है। क्योंकि पर्याय में तो कार्य होता है और द्रव्य में कार्य नहीं होता। कार्य पर्याय में होता है। राग का हो या शुद्धपरिणति, निश्चय शुद्धकर्मफल या कर्मचेतना (हो), वह सब पर्याय में है और पर्याय को ही मानना, परन्तु जिसे शुद्ध कर्मफलचेतना प्रगटी है और वह तो पर्याय को और द्रव्य को-दोनों को मानता है। समझ में आया ? परन्तु जिसे अकेला राग का ही वेदन है—दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हों—वहाँ ही जो सन्तुष्ट है, उसने पर्यायमात्र को आत्मा माना। आहाहा! अन्दर भगवान ध्रुवचैतन्य है।

जिस पर्याय में राग के कर्तृत्वरूप परिणमन है, वह पर्याय अन्दर में नहीं जा सकती। क्या कहा यह? जो पर्याय ऊपर है, उस पर्याय में राग का और दया, दान के विकल्प का कर्ता है, वह पर्याय अन्दर में नहीं जा सकती, वह तो वहाँ रह गयी। समझ में आया? बाद की पर्याय उत्पन्न हुई और अन्दर प्रवेश किया, दोनों का एक ही समय है। आहाहा! क्या कहते हैं? समझ में आया? क्या कहा?

श्रोता : व्यय और उत्पाद दोनों एक ही समय में हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बराबर है। परन्तु जो पर्याय राग की ओर झुककर कर्तापने में परिणमी है, वह पर्याय अब अन्तर्मुख नहीं हो सकती। क्योंकि उस पर्याय का तो व्यय हो जाता है। अब व्यय होता है और जो नयी पर्याय उत्पन्न होती है, द्रव्य के आश्रय से वह उत्पन्न हुई और अन्दर झुकी। दोनों का एक ही समय कहने में आता है। आहाहा! यह क्या कहा, समझ में आया?

श्रोता : अन्दर में झुकती हुई उत्पन्न होती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में झुकने की जो पर्याय है, वह राग की पर्याय (जो) करता है, वह पर्याय अन्दर में नहीं झुक सकती। अब उस समय दूसरी पर्याय तो है नहीं। तब दूसरी पर्याय द्रव्य पर लक्ष्य करने से आती है... आहाहा! और वही पर्याय अन्दर झुकी, ऐसा कहने में आता है। ऐसा है, बापू! सूक्ष्म वस्तु है। तत्त्वज्ञान बहुत सूक्ष्म है। लोगों ने बाहर से कल्पित किया है। आहाहा! अनन्त काल में इसने वास्तविक स्थिति का अन्दर भासन नहीं किया। समझ में आया?

यहाँ कहा कि द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक दोनों। परन्तु उस पर्याय को ऐसा कहना कि पर्याय को भूतार्थ का आश्रय करना। परन्तु कौन सी पर्याय को? जो पर्याय राग के कर्तापने में (परिणमित हुई है) कर्मपर्याय-कर्मचेतना है, वह पर्याय तो अशुद्ध वहाँ रही, वह पर्याय अन्दर नहीं जा सकती। आहाहा! बाद की पर्याय उत्पन्न होकर अन्दर में झुकी और उत्पन्न हुई, दोनों का एक ही समय है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो यह कहना है कि पर्यायमात्र को मानना, वह भी एकान्त है और एकान्त द्रव्य को ही मानना, ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह आया न? २०७ **किसी जीव को स्वप्नमात्र में भी ऐसा श्रद्धान मत होओ।** आहाहा!

ऐसा कैसा? 'अन्यः करोति अन्यः भुंक्ते' अन्य प्रथम समय का उत्पन्न हुआ कोई

जीव कर्म का उपार्जन करता है, अन्य दूसरे समय का उत्पन्न हुआ जीव कर्म को भोगता है – ऐसा एकान्तपना मिथ्यात्व है। भावार्थ इस प्रकार है – जीव वस्तु द्रव्यरूप है, पर्यायरूप (दोनों) है। इसलिए द्रव्यरूप से विचार करने पर जो जीव कर्म का उपार्जन करता है, वही जीव उदय आने पर भोगता है;... आहाहा! कैसी शैली की है, देखी? १०२ गाथा में तो ऐसा कहा है कि जिस समय में राग का कर्ता है, उसी समय भोक्ता है। अब यहाँ दूसरे प्रकार से कहना है। यहाँ तो संयोग से बात करनी है। क्या कहा, समझ में आया? समयसार की १०२ गाथा में (ऐसा कहा कि) जिस समय राग का कर्ता है, उसी समय भोक्ता है। उसमें समयभेद नहीं है। अब यहाँ तो समयभेद कहेंगे। यह सत्य है। वह भी सत्य है और यह भी सत्य है। यह किस अपेक्षा से? कर्म की अपेक्षा से। वह अपने भाव की अपेक्षा से कहा था। विकार का करना और विकार का भोगना दोनों का समय एक है। अब यहाँ कर्म की अपेक्षा लेनी है। आहाहा! है? देखो!

द्रव्यरूप से विचार करने पर जो जीव कर्म का उपार्जन करता है, वही जीव उदय आने पर भोगता है;... है? जीवद्रव्य की अपेक्षा से यह (बात है)। **पर्यायरूप से विचार करने पर जिस परिणाम अवस्था में ज्ञानावरणादि कर्म का उपार्जन करता है,...** देखा? **जिस परिणाम अवस्था में ज्ञानावरणादि कर्म का उपार्जन करता है, उदय आने पर...** यह जड़, अब जड़ की अपेक्षा यहाँ है। जो जड़ (कर्म) बँधा, उसका समय भिन्न है और उसका उदय आकर भोगने का समय भिन्न है। समझ में आया? है? देखो!

परिणाम अवस्था में ज्ञानावरणादि कर्म का उपार्जन करता है, उदय आने पर उन परिणामों का अवस्थान्तर होता है;... दूसरी अवस्था भोगती है। यह जड़ की अपेक्षा यहाँ बात है। जिस समय में कर्म किया, उस कर्म का उदय आवे और भोगता है, यह तो कर्म की अपेक्षा से बात है, भाई! आहाहा! यह क्या कहते हैं? १०२ गाथा में कर्ता-कर्म (अधिकार में) जो कहा, वह तो उस समय में कर्ता और उसी समय में भोक्ता है, वह भाव की बात है। अब यहाँ तो जिस समय में कर्म बँधा, उस समय में कर्म का भोक्ता नहीं होता। समझ में आया? अरे! ऐसी अपेक्षाओं का पार नहीं होता। भगवान का मार्ग बहुत सूक्ष्म – गहन मार्ग है, प्रभु! लोगों ने ऊपर-ऊपर से मान लिया है, ऐसा नहीं। यह तो गहन विषय है, प्रभु! आहाहा!

श्रोता : कर्म का फल तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विषय नहीं है। यहाँ तो कर्म रजकण परवस्तु है, उसका फल

उस समय में नहीं, इतना बताना है। समझ में आया? यहाँ आया न? कहाँ आया?

जिस परिणाम अवस्था में ज्ञानावरणादि कर्म का उपार्जन करता है, उदय आने पर उन परिणामों का अवस्थान्तर होता है; इसलिए अन्य पर्याय करती है, अन्य पर्याय भोगती है। जिस समय जड़ को किया, उस समय तो कर्ता है, बस! अब फिर उदय आया, तब ज्ञानावरणीय को भोक्ता है, यह समयभेद हो गया। संयोग को करना और भोगना यह समयभेद है, अपने भाव का करना और भोगना, उसमें समयभेद नहीं है। आहाहा! क्या कहा? उसके ख्याल में तो स्पष्ट आना चाहिए न? ऐसे का ऐसा मानना, यह कोई चीज़ है। आहाहा!

ज्ञान में अपनी निर्मल परिणति करे और भोगे, वह एक ही समय और विकार की परिणति करे और भोगे, वह भी एक ही समय। अब, जिस अवस्था से ज्ञानावरणादि कर्म बँधे, वह अवस्था कर्म के उदय काल में रही नहीं। उदय में दूसरी अवस्था भोगती है। वह पर-द्रव्यकर्म की अपेक्षा से बात है। समझ में आया? यहाँ तो बात ऐसी है। थोड़ा न्याय बदले तो पूरी वस्तु पलट जाती है, वस्तुस्थिति सिद्ध नहीं होती। आहाहा! यहाँ तो कर्म की अपेक्षा ली है। एक ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि जिस समय कर्ता, उसी समय भोक्ता। वे ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि जिस समय कर्म बँधा, उस समय उसका भोक्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया? सुनकर साथ में थोड़ा विचार भी करना। विचार करना। धीरे-धीरे कहते हैं। यथार्थरूप से तुलना होनी चाहिए न। समझ में आया? आहाहा!

जिस समय अवस्थान्तर कहा न? **जिस परिणाम अवस्था में...** ऐसा कहा न? **जिस परिणाम अवस्था में ज्ञानावरणादि कर्म का उपार्जन करता है, उदय आने पर उन परिणामों का अवस्थान्तर होता है;...** देखा? वह परिणाम नहीं रहते। उदय आवे, तब भोगने के परिणाम वे नहीं रहते, दूसरे परिणाम होते हैं। आहाहा! हीराभाई! ऐसी बात है। **इसलिए अन्य पर्याय करती है, अन्य पर्याय भोगती है।** देखो! है? जिस अवस्था ने कर्म किया, उस अवस्था ने भोगा नहीं। उसका उदय आया, तब दूसरी अवस्था ने भोगा। समझ में आया? भाई! यहाँ तो जरा विचार करके अन्दर ऊहापोह करके अन्दर निर्णय करना चाहिए, ऐसा का ऐसा मान लेना, वह कोई चीज़ नहीं है। आहाहा! ऐसे ऊपर-ऊपर से तो अनन्त बार माना है। ग्यारह अंग भी पढ़ गया है। आहाहा! क्या कहा?

अन्य पर्याय करती है, अन्य पर्याय भोगती है। - ऐसा भाव स्याद्वाद साध सकता है। देखा? **ऐसा भाव स्याद्वाद साध सकता है।** कथंचित् वह पर्याय करती है और कथंचित्

दूसरी पर्याय भोगती है, कर्म की अपेक्षा से; और विकार तथा अविकार की अपेक्षा से, अपने भाव की अपेक्षा से जिस समय जो भाव करता है, उसी समय उसका भोक्ता है। आहाहा! चन्दुभाई! आहाहा! ऐसा है, भाई! अब ऐसा (समझने के लिये) लोगों को निवृत्ति कहाँ हो? निवृत्ति ले (तो समझ में आये)। प्रवृत्ति के कारण... सेठ! पूरे दिन संसार की प्रवृत्ति, बीड़ी और तम्बाकू, आहाहा! यहाँ तो परमात्मा तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव की यह तो वाणी है। सन्त, सर्वज्ञ की वाणी आढ़तिया होकर कहते हैं। आढ़तिया समझ में आता है? आहाहा!

ऐसा भाव स्याद्वाद साध सकता है। जैसा बौद्धमत का जीव कहता है, वह तो महाविपरीत है। आहाहा! जिस पर्याय ने किया और दूसरी पर्याय ने भोगा। यह तो कहता है कि जीव ही दूसरा हो गया। जिस पर्याय ने किया, वह जीव (और) दूसरी पर्याय ने (भोगा उसमें) वह जीव नहीं रहा, ऐसा कहते हैं - ऐसा नहीं है। पर्याय दूसरी हुई है। जीवद्रव्य तो वही है। आहाहा! समझ में आया? जिस पर्याय ने विकार किया, अवस्थान्तर होकर, उस कर्म के उदय काल में तो वह पर्याय रही नहीं, बन्ध काल के समय वह अवस्था थी। नया बन्ध पड़ता है, उस समय वह अवस्था है। अब बन्ध का जब उदय आया, तब तो वह (पर्याय) नहीं है। बन्ध नहीं अर्थात्? उस बन्धरूप न रहा वह तो उदय आया। बन्धरूप तो सत्तारूप वस्तु है। उदय आया वह तो सत्ता में से प्रगट हुआ। आहाहा! सत्ता के एक अंश में से प्रगट हुआ। आहाहा! उस समय जिस अवस्था से बँधा था, वह अवस्था से तो अभी है नहीं, उदय काल में तो दूसरी अवस्था भोगती है, जीवद्रव्य तो वही है। परिणाम दूसरा हुआ, परन्तु जीवद्रव्य दूसरा हो गया, ऐसा क्षणिकमत कहता है। करने के काल का जीव दूसरा और भोगने के काल का जीव दूसरा, ऐसा कहता है। आहाहा! हैं?

श्रोता : जीव को क्षणिक मानता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षणिक ही माना है, पर्यायमात्र (ही माना है)। और वापस बौद्ध ऐसा कहते हैं कि एक समय का जीव है, वह दूसरे समय में संस्कार डालकर जाता है। परन्तु संस्कार डालकर जाता है तो संस्कार क्या है? खबर है न, यह तो वे लोग कहते हैं। संस्कार छोड़ जाता है। छोड़ जाता है अर्थात् समझे? डालता है। परन्तु दो भिन्न हैं, उसमें डाला किस प्रकार? आहाहा!

श्रोता : नाश होनेवाली पर्याय संस्कार किस प्रकार डाले?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वे लोग मानते हैं। पहले समय में से दूसरे समय में स्मरण में

तो आता है या नहीं ? तो वे कहें, कहाँ से आयी ? भिन्न चीज़ है न ! तो कहते हैं कि पहले के संस्कार डाल गयी। परन्तु संस्कार कहाँ से डाल गयी ? वह तो व्यय हो गयी और यह तो उत्पन्न हुई है। समझ में आया ?

जैसा बौद्धमत का जीव कहता है, वह तो महाविपरीत है। सो कौन विपरीतपना। 'अत्यन्तं वृत्यंशभेदत: वृत्तिमन्नाशकल्पनात्' द्रव्य का ऐसा ही स्वरूप है, सहारा किसका ? अवस्था, उसका अंश अर्थात् एक द्रव्य की अनन्त अवस्था, ऐसा... एक द्रव्य की अनन्त पर्यायें-अवस्थाएँ हैं। तो एक अवस्था जाती है और एक अवस्था उत्पन्न होती है, उसमें द्रव्य में क्या आया ? द्रव्य दूसरा हो गया ? समझ में आया ? एक द्रव्य की अनन्त-अनन्त अवस्थाएँ। **कोई अवस्था विनश जाती है,...** देखा ? और **अन्य कोई अवस्था उत्पन्न होती है...** परन्तु वह तो द्रव्य की पर्याय की बात है। पर्याय एक उत्पन्न होती है और एक नाश होती है तो द्रव्य उत्पन्न हुआ, नाश हुआ - ऐसा कहाँ आया ? आहाहा !

ऐसा अवस्थाभेद विद्यमान है; ऐसे अवस्थाभेद का छल पकड़कर... देखा ? इस अवस्था भेद का छल पकड़कर। अवस्था भिन्न हो गयी न ? भिन्न हो गयी, ऐसा छल पकड़कर द्रव्य अन्य हो गया, ऐसा मानते हैं। जैसे कि यहाँ आत्मा है, देह छूटे, छूटने के पश्चात् जहाँ जाए वहाँ पर्याय भिन्न, क्षेत्र भिन्न, काल भिन्न, भाव भिन्न (हो जाते हैं)। यहाँ का मनुष्यपना है, उसमें ऐसा माने कि मैं ऐसा हूँ, वहाँ जाए तो दूसरा भव, भव ही दूसरा हो गया, पर्याय दूसरी हो गयी, संस्कार दूसरे हो गये, आसपास के द्रव्य, क्षेत्र, काल के संयोग दूसरे हो गये। इसलिए ऐसा माने कि मैं ही दूसरा हो गया। समझ में आया ? यह तो पर्याय के संयोग में दूसरा हो गया, वस्तु तो वस्तु है। आहाहा ! यहाँ बँगले में, चालीस-चालीस लाख के, करोड़ के बँगले में पड़ा हो।

ब्रह्मदत्त (चक्रवर्ती को) लो। आहाहा ! ऐसे हीरा का... क्या कहलाता है ? पलंग। हीरा के पलंग में सोता था, ब्रह्मदत्त। और अन्त में मृत्यु काल में स्त्री को याद करता है, मेरी स्त्री... नाम क्या ? हें ? कुरुमति। कुरुमति। आहाहा ! सातवें नरक में पाताल में गया। तैंतीस सागर। अब कहाँ वह क्षेत्र ? कहाँ स्त्री ? कहाँ संयोग ? कहाँ शरीर ? सब पलट गया। सब पलट गया अर्थात् द्रव्य दूसरा हो गया ? आहाहा ! एक समय पहले हीरा के पलंग में और चौदह-चौदह हजार देव (सेवा करे), रक्षक के देव थे। आहाहा ! सात रत्न के सात हजार और ऐसे एक स्त्री रत्न के हजार उसके रक्षक थे। सब पड़ा रहा। सातवाँ नरक। आहाहा !

सात सौ वर्ष उसकी स्थिति थी। सात सौ वर्ष के श्वास हैं, श्वास, उसके श्वास गिनो... चक्रवर्ती के कुछ सात सौ वर्ष नहीं थे, वह तो बाद में, परन्तु सात सौ वर्ष के श्वास गिनो तो एक-एक श्वास के फल में सातवें नरक में पल्योपम, अनेक पल्योपम उसे दुःख हुआ। क्या कहा, समझ में आया? क्या? धनजीभाई को खबर होगी। यह बात की थी, सब याद नहीं रहता। ग्यारह लाख छप्पन हजार... क्या कहा? सात सौ वर्ष रहे न, सात सौ वर्ष? तो उसके जितने श्वास हैं न, तो एक श्वास के फल में ग्यारह लाख छप्पन हजार पल्योपम के दुःख हैं। उस समय कहा था, पश्चात् कहीं सब याद रहता है? आहाहा! पूरी बात बदल गयी। स्थिति बदल गयी। भगवान ध्रुव तो अन्दर स्थित है। हैं? बाहर से इतना ही मानना और पूरा द्रव्य अन्दर भगवान पूर्णानन्द का नाथ स्थित है, उस पर दृष्टि न करना, वह पर्यायमूढ़ अज्ञानी है। उसे बौद्धमति कहो या पर्यायमूढ़ अज्ञानी कहो। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा अवस्थाभेद विद्यमान है; एक द्रव्य की अनन्त अवस्था, ऐसा भेद है अर्थात् कोई अवस्था विनशती है, अन्य कोई अवस्था उपजती है... नरक की अवस्था उत्पन्न हुई, चक्रवर्ती की अवस्था का नाश हुआ। आहाहा! **एक द्रव्य की अनन्त अवस्था, ऐसा कोई अवस्था विनश जाती है, अन्य कोई अवस्था उत्पन्न होती है, ऐसा अवस्थाभेद विद्यमान है;...** यह तो अवस्था भेद है। द्रव्य के भेद हैं, ऐसा नहीं। परन्तु यह बहुत कठिन काम, बापू! द्रव्य वह क्या चीज़ अन्दर है? आहाहा! जैन सम्प्रदाय में ग्यारह अंग पढ़ा, पंच महाव्रत (पालन किये), हजारों रानियाँ छोड़ी, हजारों! और मुनिपना दीक्षा ली और निरतिचार पंच महाव्रत (पालन किये), हों! अट्ठाईस मूलगुण (पालन किये)। उसके लिये बनाया हुआ भोजन हो तो प्राण जाए तो भी न ले, ऐसी सख्त किया थी; परन्तु द्रव्यस्वरूप क्या है, उस ओर का झुकाव नहीं। आहाहा! द्रव्यार्थिकता विषय द्रव्य क्या है? सीख तो गया, द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय। हैं? ग्यारह अंग पढ़ा तो उसमें यह बात नहीं आयी? परन्तु उस चीज़ का अन्दर पता नहीं लिया। आहाहा! है?

ऐसे अवस्थाभेद का छल पकड़कर कोई बौद्धमत का मिथ्यादृष्टि जीव... 'वृत्तिमन्नाशकल्पनात्' वृत्तिमान्-जिसका अवस्थाभेद होता है, ऐसी सत्तारूप शाश्वत वस्तु का नाशकल्पना=मूल से सत्ता का नाश मानता है;... क्या कहते हैं? अवस्था का नाश होने से सत्ता का नाश हो गया, ऐसा वह मानता है। पर्याय का नाश होने से जो मूल वस्तु है, उसका नाश हो गया, ऐसा मानता है।

श्रोता : द्रव्य ही कहाँ मानता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता कहाँ है? दृष्टि में मूल ध्रुव भगवान (को नहीं मानता)। आहाहा! ध्रुवतारे के (आधार से) जहाज चलता है। जहाज देखा है समुद्र में? वह समुद्र में चलता है। ध्रुवतारा एक स्थान में रहता है। उसके आधार से किस ओर जाना है (यह खबर पड़ती है)। ध्रुवतारा होता है। इसी प्रकार ध्रुव यह भगवान है, यह अन्दर ध्रुव है। ध्रुव के लक्ष्य से, ध्रुव के आश्रय से अन्दर शुद्ध परिणति होती है। आहाहा! समझ में आया? तो उसमें भी परिणति पलटती है परन्तु ध्रुव तो ऐसा का ऐसा रहता है। आहाहा!

अर्थात् अक्षर के अनन्तवें भाग निगोद में क्षयोपशम है तो भी द्रव्य तो पूर्ण-परिपूर्ण जैसा है वैसा ही है और केवलज्ञान होता है, अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... तीन काल-तीन लोक को पर्याय जाने तो भी द्रव्य पर्याय से हीन हो गया है, पर्याय इतनी प्रगट हुई तो द्रव्य में कमी हो गयी है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह द्रव्य किसे कहना? वह जरा... अक्षर के अनन्तवें भाग निगोद की पर्याय है तो वहाँ अल्प विकास है (इसलिए) द्रव्य विशेष पुष्ट है, ऐसा भी नहीं है और केवलज्ञान पूर्ण प्रगट हुआ तो वहाँ दशा—वस्तु की स्थिति हीन हो गयी, ऐसा नहीं है। वस्तु तो ऐसी की ऐसी त्रिकाल है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु में कम-ज्यादा नहीं होता। पर्याय में कम-ज्यादा होने से वस्तु में कम-ज्यादा होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह तो क्या चीज़ है यह? यह चमत्कार नहीं?

केवल(ज्ञान) पर्याय उत्पन्न होती है महा, महा तो भी कहते हैं कि द्रव्य तो जैसा है वैसा है। पर्याय आयी कहाँ से? इतनी अधिक बाहर आयी तो भी द्रव्य ऐसा का ऐसा? और अक्षर के अनन्तवें भाग (ज्ञान रहा) तो भी द्रव्य ऐसा का ऐसा है? यह क्या है? देवीलालजी! आहाहा! यह चमत्कारिक वस्तु है। चैतन्य चमत्कारी, द्रव्य चमत्कारी, पर्याय चमत्कारी। वस्तु कोई अलौकिक है। कैसे होगी अन्दर से लो? अन्दर में अनन्त चतुष्टय शक्तिरूप ध्रुव है, उसमें से अनन्त चतुष्टय व्यक्तरूप हुआ। केवली को अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द व्यक्त (हुए) तो वहाँ कहीं कम हुआ है? उसमें से इतनी सब पर्याय आयी तो भी उसमें कम नहीं हुआ? और जिसमें अक्षर के अनन्तवें भाग अल्प पर्याय रह गयी तो भी वहाँ द्रव्य में पुष्टि नहीं हुई? बहुत भरा है और अल्प बाहर आया, बहुत भरा है और बहुत बाहर आ गया, इसलिए कम हो गया। बापू! उस द्रव्य का स्वरूप ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसे द्रव्य पर इसने कभी दृष्टि नहीं की। समझ में आया?

इस **मूल से सत्ता का नाश मानता है;...** देखा? वे भाई कहते थे न? बंशीधरजी (कहते थे) सत्ता नाश हो गया। पण्डितजी कहते थे। पर्याय की सत्ता का नाश हुआ, वहाँ

सत्ता का नाश मानता है। सत्यानाश नहीं कहते? उसका सत्यानाश हो गया? वे कहते थे। यहाँ आये थे न? यहाँ आठ-दस दिन रह गये थे। वहाँ गये थे न? सम्मेदशिखर। फिर यहाँ आकर रह गये थे, पन्द्रह दिन या महीना रह गये थे। यह (बौद्धमति जीव) पर्याय का नाश होने पर पूरी सत्ता का नाश मानता है।

जिसका अवस्थाभेद होता है, ऐसी सत्तारूप शाश्वत वस्तु का नाशकल्पना=मूल से सत्ता का नाश मानता है; इसलिए ऐसा कहना विपरीतपना है। यह मानना विपरीतपना है। पर्याय बदलने पर द्रव्य में कम-ज्यादा हो गया, ऐसा नहीं है। समझ में आया? और आत्मा की प्रगट पर्याय में भी कम-ज्यादा होता है, वह कहीं कर्म के कारण नहीं। समझ में आया? ज्ञान की हीन दशा हुई तो ज्ञानावरणीय कर्म के उदय का बहुत जोर है, इसलिए हीन हुई, ऐसा नहीं है। अपनी पर्याय की योग्यता से कमी हुई है और अपनी पर्याय की योग्यता से वृद्धि हुई है। आहाहा! अब एक ओर कर्म के निमित्त से कुछ होता नहीं, ऐसा मानना; और पर्याय में कम-अधिक होवे तो द्रव्य में कुछ कम-अधिक होता नहीं, ऐसा मानना। यह क्या चीज़ है। हैं?

श्रोता : अद्‌भुत आश्चर्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अद्‌भुत आश्चर्यकारी चीज़ ऐसी है। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि बौद्धमत का जीव पर्यायमात्र को वस्तु मानता है,... बस! पर्याय के ऊपर दृष्टि है तो पर्यायमात्र को ही मानता है। पर्याय जिसकी है **पर्याय जिसकी है, ऐसी सत्तामात्र वस्तु को नहीं मानता है।** आहाहा! **इस कारण ऐसा मानता है, सो महामिथ्यात्व है।** आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

११ श्री समयसार कलश टीका, कलश २०८, प्रवचन - २३२
दिनांक - १४-०२-१९७८

२०८ है न? कलश टीका २०८ (कलश)।

आत्मानं परिशुद्धमीप्सुभिरतिव्याप्तिं प्रपद्यान्धकै:
कालोपाधिबलादशुद्धिमधिकां तत्रापि मत्वा परै:।
चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य पृथुकै: शुद्धर्जुसूत्रे रतै:
आत्मा व्युज्झित एष हारवदहो नि:सूत्रमुक्तेक्षिभि:।।२०८।।

बहुत मत प्रयोग करते हैं। **एकान्तपने से जो माना जाए सो मिथ्यात्व है...** यह तो सूत्र कहा। अब एकान्तपने की व्याख्या क्या? **अहो पृथकै: एष: आत्मा व्युज्झित:' भो जीव! 'पृथुकै:'** अर्थात् **नाना प्रकार...** विपरीत **अभिप्राय है जिनका ऐसे जो मिथ्यादृष्टि जीव...** अनेक प्रकार के विपरीत मिथ्यात्व भाव हैं। ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव अनेक प्रकार में किस-किस प्रकार से मानता है, वह कहते हैं। **'पृथुकै:'** है न? **'पृथुकै:।'** ऐसा एकान्त माननेवाले को, एकान्त ही मानता है। कोई पर्याय ही मानता है, कोई द्रव्य ही मानता है। कोई त्रिकाली आत्मा अशुद्ध है, ऐसा कोई मानता है, कोई त्रिकाल शुद्ध है परन्तु पर्याय में अशुद्धि नहीं मानता—(ऐसे) अनेक प्रकार के अभिप्राय विपरीत मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

'एष: आत्मा' 'एष: आत्मा' यह आत्मा **शुद्ध चैतन्यवस्तु...** है। **'व्युज्झित:' सधी नहीं।** एकान्त अभिप्रायवाले को आत्मा शुद्ध वस्तु चैतन्य है, उसे साध सके नहीं। आहाहा! प्रसिद्ध नहीं कर सके। आहाहा! उसमें पहले एक दृष्टान्त देते हैं। **कैसे हैं एकान्तवादी? 'शुद्धर्जुसूत्रे रतै:'** क्या कहते हैं? वर्तमान पर्याय को विषय करनेवाला ऋजुसूत्रनय, बस। उसमें जो रत है, वह वर्तमान पर्याय (जो कि) ऋजुसूत्रनय का विषय है, वही चीज़ है, बस! (ऐसा मानते हैं)। समझ में आया? आगे कहेंगे। अन्दर दूसरा अर्थ करेंगे। यह एक परन्तु दूसरा भी अर्थ है। उसने वस्तु को जो उपाधि लगायी त्रिकाल तो वह अशुद्ध हो जाती है। वर्तमान ऋजुसूत्र है, उसे माने तो शुद्ध है, ऐसा (कहते हैं)। त्रिकाल रहनेवाला है, ऐसा कहना, वह अशुद्ध है। त्रिकाल की उपाधि लागू पड़ गयी। क्या कहा, समझ में आया?

यहाँ अर्थ दूसरा किया है परन्तु अर्थकार ने-मूल समयसार में यह अर्थ है। यहाँ दूसरा अर्थ है। तीन काल मानने जाए तो अशुद्ध ही रहेगा। आत्मा अशुद्ध ही है, कभी शुद्ध हुआ नहीं। पर्याय जितनी अशुद्ध है, वही है परन्तु अर्थ में-संस्कृत टीका में दूसरा लिया है और कलश-टीका में (दूसरा अर्थ लिया है)।

है... एक वर्तमान ऋजुसूत्र बस, वही चीज़ है। उसे त्रिकाल लागू करोगे तो उपाधि हो गयी। समझ में आया? एक वर्तमान है, बस! उसे मानना। उसे त्रिकाल मानना, वह तो उपाधि हो गयी। तीन काल, वह तो उपाधि है—ऐसा अज्ञानी का अन्दर गहरे-गहरे अभिप्राय है। समझ में आया? वर्तमान पर्याय में जिसकी क्रीड़ा है, ज्ञानादि की या रागादि की क्रीड़ा में जो है, उसे आत्मा इतना ही लगता है कि यह आत्मा इतना है। उसे 'त्रिकाली है' ऐसी धारणा में बात आ गयी है, परन्तु त्रिकाली विषय है, उसे दृष्टि में लिया नहीं। समझ में आया? आत्मा नित्य है, ऐसा शास्त्र पढ़ा है, ग्यारह अंग पढ़ा तो उसमें यह सब नहीं आया? परन्तु उस वर्तमान पर्याय में त्रिकाली द्रव्य का जो ज्ञान होना चाहिए, जो सन्मुख होकर प्रतीति (होनी चाहिए), ज्ञान में भास होकर प्रतीति होनी चाहिए, वह चीज़ नहीं हुई तो उसने त्रिकाली आत्मा को माना ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? बहुत (गहरा) विषय है। आहाहा!

रात्रि में तो थोड़ा कहा था न वह? '**गुणपर्ययवत् द्रव्यम्**' अकेली पर्याय को माने तो द्रव्य तो '**गुणपर्ययवत् द्रव्यम्**' है, तो उसने भी आत्मा '**व्युज्झितः**' दृष्टि में से छोड़ दिया और वह पर्याय है, वह पर से होती है, ऐसा माने तो भी उसने पर्याय को नहीं माना। पर्याय स्वतन्त्र उस समय में मेरी (हुई है), उस पर्याय-गुणसहित द्रव्य है, तो वह पर्याय उसकी है, पर की नहीं, तो पर से (पर्याय) मानी तो उसने पर्याय नहीं मानी। समझ में आया? ऐसा कि अपनी पर्याय में विकार होता है, तो वह कर्म से होता है, ऐसा माननेवाले को वर्तमान पर्याय है, स्वतन्त्र उत्पाद है, उस उत्पाद और व्ययसहित, गुणसहित द्रव्य नहीं माना। समझ में आया? सूक्ष्म है, भाई! वैसे तो अनन्त बार पढ़ा है, ग्यारह अंग पढ़ा, वहाँ नहीं (आया)? ग्यारह अंग पढ़ा 'सब शास्त्रन के नय धारी हिये, मत मण्डन खण्डन भेद लिये, वह साधन बार अनन्त कियो, तदपि कछु हाथ हजू न पर्यो।' आहाहा! उसे प्राप्त करने की पद्धति कोई अलौकिक है। उस पर्याय में बिल्कुल पर्याय जितना माने, उसका अर्थ कि द्रव्य ध्रुव है, उस ओर इसका झुकाव नहीं हुआ। समझ में आया? यह कहा न?

ऋजुसूत्र—सीधे वर्तमान पर्याय को ही माने, वह ऋजु-सीधा, सरल। ऐसा। है? ऋजुसूत्र है न? '**शुद्धर्जुसूत्रे रतैः**' '**शुद्ध**' शुद्ध का अर्थ **द्रव्यार्थिकनय से रहित**... त्रिकाल

से रहित वर्तमान पर्याय में रत है, वह ऋजुसूत्रनय में रत है, उसने आत्मा को छोड़ दिया। समझ में आया? आहाहा! ऋजुसूत्रनय तो वर्तमान परिणाम को ही मानता है न? समझ में आया? और एकान्त पर्याय, ऋजुसूत्रनय का विषय सीधा (लेकर) उसे त्रिकाल लागू पाड़ना, वह वर्तमान पर्याय है, ऐसी कोई त्रिकाली चीज़ है, ऐसी उपाधि लगाना वह मिथ्यात्व, अज्ञान है, ऐसा अज्ञानी मानता है। समझ में आया?

'शुद्धर्जुसूत्रे रतैः' आहाहा! वह तो वर्तमान पर्याय में (जो कि) ऋजुसूत्रनय का विषय वर्तमान परिणाम है, बस! उसमें ही रत है। आहाहा! परन्तु उस पर्याय में स्वज्ञेय जानने की ताकत है, ऐसी पर्याय में वर्तमान पर्याय जितनी ही मानी, परन्तु उस पर्याय में त्रिकाली को जानने की ताकत है, उससे सहित परिणाम को नहीं माना। समझ में आया? आचार्य को कहना है, ऋजुसूत्र अर्थात् वर्तमान सीधा दिखाई दे इतना, बस! आड़ा-टेढ़ा वह त्रिकाल और शुद्ध ध्रुव (द्रव्य) है और वह सब उपाधि क्या? ऐसा अज्ञानी की अन्तर मान्यता में ऐसा शल्य पड़ा है। समझ में आया? ऋजुसूत्र, है न? **'रतैः' वर्तमान पर्यायमात्र में वस्तुरूप अंगीकार करनेरूप एकान्तपने में मग्न हैं।** यह ऋजुसूत्र। और जिसकी पर्याय है, वह चीज़ क्या है, उस पर इसकी दृष्टि नहीं है। समझ में आया? यहाँ ऋजुसूत्रनय वर्तमान पर्याय को ही जानता है, मानता है, बस।

श्रोता : ऋजु का अर्थ द्रव्यार्थिकनय से रहित ऐसा शुद्ध का अर्थ किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न? यह तो फिर अर्थ किया कि ऋजुसूत्र द्रव्यार्थिकनय से रहित। अकेला द्रव्यसहित ऋजुसूत्र माने तब तो यथार्थ है। त्रिकाली द्रव्यसहित पर्याय को माने तो यथार्थ है, परन्तु त्रिकाली द्रव्य को न मानकर, वर्तमान पर्याय को ही माना तो द्रव्यार्थिकनय से रहित ऋजुसूत्र, वह पर्याय (मानी)। समझ में आया? मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! यह अलौकिक बात है। आहाहा! इसने कभी अन्तर में पता लिया ही नहीं। इसने वास्तविक पर्याय को भी नहीं माना। क्योंकि वास्तविक पर्याय को माने तो पर्याय का विषय द्रव्य है, वह तो इसके स्वभाव में आता ही है। वर्तमान ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय-द्रव्य का प्रकाश अन्दर होता ही है, परन्तु पर्याय को ही यथार्थ रीति से नहीं मानी। वर्तमान अंश है, बस इतना। (उस पर्याय) अंश में अन्दर जानने की ताकत है, वह सब बात छोड़ दी। समझ में आया? इसलिए उस ऋजुसूत्र में-वर्तमान (अंश) जितना (मानता है)। वर्तमान है न? देखो न, ऋजुसूत्र की व्याख्या की है। **वर्तमान पर्यायमात्र में वस्तुरूप अंगीकार करनेरूप...** यही वस्तु है, बस! आहाहा! अन्दर गुण त्रिकाल है और द्रव्य त्रिकाल है। गुण भी त्रिकाल है न?

गुण और द्रव्य त्रिकाल है और यह तो इस समय की पर्यायमात्र है, उसे माना परन्तु त्रिकाली गुण ध्रुव है, (उसे नहीं माना)।

चिद्विलास में एक प्रश्न लिया है। चन्दुभाई! गुण परिणमते हैं या द्रव्य परिणमता है? ऐसा प्रश्न लिया है। चिद्विलास में (लिया है), भाई! बात हो गयी थी। गुण नहीं, द्रव्य परिणमता है। गुण तो अनन्त हैं, तो एक-एक गुण परिणमे और द्रव्य न परिणमे तो ऐसी चीज़ नहीं है। द्रव्य परिणमते हुए गुण परिणमते हैं, ऐसा (लिया है)।

यहाँ क्या कहते हैं? कि पर्याय में द्रव्य का ज्ञान होता है तो द्रव्य परिणमता है तो ध्रुव का भी ज्ञान हुआ और वर्तमान पर्याय का भी ज्ञान हुआ। तो, वह तो निर्विकल्प ज्ञान हुआ। आहाहा! राग के अवलम्बन के अतिरिक्त वह पर्याय और ध्रुव, कायम रहनेवाले गुण। वे गुण और पर्याय, परन्तु यह परिणमता कौन है? गुण नहीं। समझ में आया? द्रव्य परिणमते हुए गुण परिणमते हैं। आया है न चिद्विलास में। बताया था, चिद्विलास में है, भाई! दीपचन्दजी कृत है, उसमें है, यहाँ चर्चा हो गयी है।

जिसने वर्तमान को माना तो यह परिणमन किसका है? द्रव्य परिणमे तो परिणमता है, उस द्रव्य को उसने माना नहीं। आहाहा! डाह्याभाई! जिसके ऊपर पर्याय है, किसके ऊपर है, उसे माना नहीं। समझ में आया? यह पर्याय सत्ता, द्रव्यसत्ता के ऊपर पर्याय है न? तो वह पर्याय किसकी है और किसका परिणमन होकर यह परिणमन हुआ है? उस द्रव्य को उसने माना नहीं। आहाहा! पर्याय ऋजुसूत्र, बस! वर्तमान। पर्याय के **एकान्तपने में मग्न हैं।** बस! आहाहा! वह तो वर्तमान पर्याय में (मग्न है), चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि पर्याय है, बस! उसमें मग्न है। आहाहा! परन्तु वह पर्याय जिसका परिणमन है, द्रव्य का ही परिणमन है, वह द्रव्य की पर्याय है। गुणपर्ययवत् द्रव्यम्, वह द्रव्य की पर्याय है। उस द्रव्य पर दृष्टि नहीं की। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : द्रव्य का परिणमन है परन्तु द्रव्य तो परिणमता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य परिणमता है, यह व्यवहारनय से परिणमता है, ऐसा कहने में आता है। द्रव्यार्थिकनय से तो द्रव्य है, परन्तु परिणमता है, वह द्रव्य परिणमता है—ऐसा कहा जाता है। द्रव्य तो द्रव्य है, ध्रुवरूप है परन्तु पर्याय है, वह द्रव्य की है; इसलिए द्रव्य परिणमता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! किस अपेक्षा से, जो बात चलती हो, उस अपेक्षा से यहाँ तो बात चलती है। हैं? आहाहा! ऐसे तो गुण भी परिणमते नहीं, वे तो ध्रुव हैं। और ऐसा कहते हैं कि, द्रव्यगच्छई। द्रव्य किसे कहते हैं? - कि जो द्रवे.. द्रवे.. द्रवे.. द्रवे.. जैसे पानी

किसे कहते हैं ? - कि जिसमें तरंग उठे, द्रवे। ऐसे द्रव्य किसे कहते हैं ? - कि जिसमें से पर्याय द्रवे, उठे। द्रव्य सिद्ध करना हो तो किस प्रकार सिद्ध करे ? समझ में आया ? पर्याय स्वयं द्रव्य में एकमेक नहीं है। यह निश्चय से तो द्रव्य से हुई नहीं। आहाहा! ऐसी बात! समझ में आया ?

(समयसार) ३२० गाथा में लिया है न ? जयसेनाचार्य की टीका, नहीं ? कि ध्यान जो है, वह द्रव्य से यदि अभिन्न होवे तो ध्यान की पर्याय का नाश होता है तो वस्तु का नाश हो जाएगा। क्या कहा, समझ में आया ? ३२०, जयसेनाचार्यदेव की टीका, समयसार। राग तो नहीं, यह तो ध्यान जो मोक्ष का मार्ग ध्यान,... आहाहा! वह ध्यान की पर्याय भी द्रव्य में अभेद नहीं है। भाई! समझ में आया ? यदि अभेद होवे तो ध्यान की पर्याय का तो नाश होता है। पर्याय का नाश होता है और अभेद होवे तो द्रव्य का भी नाश हो जाए। इसीलिए पर्याय भी द्रव्य से कथंचित् भिन्न है, वहाँ तो ऐसा लिया है। वहाँ ऐसा लिया है, कथंचित् भिन्न लिया है, बाकी है तो सर्वथा भिन्न, परन्तु जरा शिष्य को बात कठिन पड़े।

श्रोता : सर्वथा भिन्न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसका अस्तित्व भिन्न है। अस्तित्व भिन्न है, क्षेत्र भिन्न है, काल भिन्न है, भाव भिन्न है।

श्रोता : एक अपेक्षा से।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, एक अपेक्षा नहीं, सर्वथा ऐसा ही है। कथंचित् तो क्यों कहा कि पर्याय इसकी है, इतना बताने के लिये कथंचित् भिन्न है, ऐसा कहा। बाकी है तो निश्चय से सर्वथा भिन्न। नहीं तो दो धर्म सिद्ध नहीं होंगे। सामान्य और विशेष दोनों सर्वथा भिन्न हैं। विशेष, विशेष से है; सामान्य, सामान्य से है। ऐसी बात एक-दूसरे की अपेक्षा रखोगे तो सिद्ध नहीं होगी।

श्रोता : ऐसा सिद्ध करना हो तब।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ सिद्ध करना है न...

श्रोता : एक वस्तु है...

पूज्य गुरुदेवश्री : एक वस्तु परन्तु कब ? किस प्रकार ? कि वह तो पर से भिन्न करने के लिये एक वस्तु है, ऐसा कहना है। परन्तु उसके दो भाग करना हो तो दोनों भिन्न, स्वतन्त्र है। सूक्ष्म बात है। समझ में आया ?

श्रोता : स्वरूप भिन्नता से काम चल जाता है तो प्रदेश भिन्नता क्यों कहें ?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रदेश भिन्न है, यह जरा सूक्ष्म पड़ेगा। पर्याय का अंश जो है, वह जितने क्षेत्र में से उत्पन्न हुआ, तो उसका कोई क्षेत्र है या नहीं ? या पर्याय क्षेत्र के बिना (हुई है ?) द्रव्य का क्षेत्र ध्रुव है और पर्याय का क्षेत्र इतना भिन्न अध्रुव है। यह तो कहा न, संवर का अधिकार है, वहाँ तो विकार लिया है, परन्तु ८९ गाथा में कहा न ? चिद्विलास ८९ पृष्ठ। पर्याय का क्षेत्र पर्याय से है। द्रव्य का क्षेत्र उस पर्याय से भिन्न है। अरे... अरे ! ऐसी बातें हैं।

श्रोता : ऐसा भी आता है न कि पर्याय का क्षेत्र है वह द्रव्य-गुण का है, वह पर्याय का है, ऐसा भी शास्त्र में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किस अपेक्षा से ? - वह तो पर से भिन्न करने के लिये। कहा न पहले ? पर से भिन्न करने के लिये, परन्तु इन दोनों को भिन्न करने के लिये वह नहीं है। ऐसी बातें हैं, बापू ! यह तो न्याय के काँटे में एक भी न्याय बदले तो पूरा तत्त्व बदल जाता है। पृथक् लक्षण है, ऐसा तो कहा न ? जिनके प्रदेश भिन्न हैं, उन्हें पृथक् लक्षण से परद्रव्य कहा, परन्तु अपने गुण और पर्याय या द्रव्य और पर्याय दोनों में अतद्भावरूप अन्यत्व है। यह कहा न ? प्रवचनसार मूल श्लोक में है, टीका भी है। द्रव्य, वह गुण नहीं। यह तो बाद में, और द्रव्य-गुण का बारीक-सूक्ष्म पड़ जाएगा। परन्तु गुण, वह पर्याय नहीं और पर्याय, वह द्रव्य नहीं। वहाँ तो गुण, वह द्रव्य नहीं और द्रव्य, वह गुण नहीं, ऐसा पाठ संस्कृत में लिया है। क्योंकि गुण की संज्ञा गुण है, द्रव्य की संज्ञा द्रव्य है। गुण अनन्त हैं, द्रव्य एक है। संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजन - चार से गुण और द्रव्य भिन्न है।

श्रोता : प्रदेश से अभेद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रदेश से अभेद है, यह कहा न ?

श्रोता : सत्ता से भी अभेद है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों की सत्ता एक है। गुण और द्रव्य की सत्ता तो एक ही है परन्तु लक्षण, संख्या, प्रयोजन, नाम / संज्ञा (अर्थात्) नाम से तो भिन्न है। यह तो वीतराग का स्याद्वाद मार्ग है, बापू ! बहुत अलौकिक है, तो फिर पर्याय का नाम—संज्ञा, लक्षण, संख्या और प्रयोजन भिन्न है। द्रव्य और गुण की सत्ता के प्रदेश एक हैं। द्रव्य और गुण की सत्ता के प्रदेश एक हैं तथापि संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन से भिन्न है। पर्याय का क्षेत्र और गुण का क्षेत्र भिन्न है। आहाहा ! अरे ! बहुत सूक्ष्म बात, बापू ! मूल अन्दर तत्त्व की गहराई को पहुँचे बिना यह

सम्यग्ज्ञान इसे नहीं होगा और सम्यग्ज्ञान के बिना अन्दर में दृष्टि निर्मल नहीं होगी। आहाहा!

श्रोता : द्रव्य और पर्याय की लक्षण भिन्नता और प्रयोजन भिन्नता क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य का प्रयोजन गुणाश्रय है। गुणाश्रय द्रव्य है, ऐसा कहा न? द्रव्याश्रयागुणा। परन्तु द्रव्य का आश्रय गुण, ऐसा नहीं है। और पर्याय में ऐसा नहीं है, अपेक्षा से पर्याय द्रव्याश्रित है, उसकी अपेक्षा से पर्याय, पर्याय के आश्रय से है। षट्कारक लिये। यह तो कहा न?

प्रत्येक द्रव्य की एक समय की पर्याय में षट्कारक का स्वयंसिद्ध परिणमन स्वयं से होता है। बात तो हुई थी, नहीं? वहाँ, वर्णीजी के साथ। इक्कीस वर्ष पहले बड़ी चर्चा (हुई थी)। सब पण्डित बैठे थे। पंचास्तिकाय की ६२वीं गाथा बतायी थी। देखो! जीव की विकृत अवस्था भी पर के कारक की अपेक्षा बिना निरपेक्षरूप से विकृत अवस्था पर्याय में षट्कारक से स्वयं से होती है, जिसका द्रव्य-गुण कारण नहीं, क्योंकि द्रव्य-गुण तो शुद्ध है, शुद्ध (होवे वह) अशुद्ध में कारण कैसे होगा? और पर्याय है, उसमें परद्रव्य कारक नहीं, (क्योंकि) परद्रव्य भिन्न है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। जब एक समय की विकृत अवस्था भी द्रव्य-गुण की अपेक्षारहित होती है... यह तो १०१ गाथा में कहा न? उत्पाद को ध्रुव की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! १०१ (गाथा), प्रवचनसार। तीन अंश सत् है न? और सत् अहेतु है, उसे सिद्ध करने के लिये दूसरे हेतु की आवश्यकता नहीं है। अहेतु है, ऐसी बात है। जब विकृत अवस्था को भी द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं, निमित्त की अपेक्षा नहीं; षट्कारक से है, तो निर्मल पर्याय की बात क्या करनी? आहाहा! निर्मल पर्याय भी एक समय में षट्कारक के परिणमन से सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई है। आहाहा!

'**भूदत्थमस्सिदो**' कहने में आया, भूतार्थ का आश्रय। परन्तु आश्रय का अर्थ (यह है कि) पर्याय उस ओर झुकी है। दूसरे पदार्थ में तो वह चीज़ है नहीं। यहाँ तो ज्ञानप्रधान कथन है न...! तो पर्याय द्रव्यसन्मुख झुकी है, वह ताकत तो पर्याय की है, कहीं द्रव्य की ताकत से अन्दर झुकी है, ऐसा नहीं है। सूक्ष्म है, बापू! क्या हो? यह निर्मल पर्याय भी अपने षट्कारक से (हुई है), वह भी उस समय जिस समय होनेवाली है, उस समय (हुई है), आगे-पीछे नहीं, आगे-पीछे नहीं। जिस समय की जो पर्याय (होने की हो), उस काल में वहाँ षट्कारक से परिणमन होकर होती है। आहाहा! कर्ता द्रव्य है, ऐसा भी उसमें नहीं है। वह तो पर्याय कर्ता, पर्याय कार्य, पर्याय करण-साधन, पर्याय पर्याय को रखती है, पर्याय से पर्याय (होती है), पर्याय के आधार से पर्याय है। ऐसी वस्तु की स्थिति है, भाई! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि इतनी पर्याय को ही द्रव्य मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? ऋजुसूत्र कहा न? पर्यायमात्र को अंगीकार करनेरूप। **पर्यायमात्र में वस्तुरूप अंगीकार करनेरूप एकान्तपने में मग्न हैं।** पाठ तो इतना है - **'शुद्धर्जुसूत्रे रतैः'** वर्तमान परिणाम में रत, बस! दूसरा आगे-पीछे देखने जाऊँगा तो उपाधि लगेगी। तीनों काल लागू पड़ेंगे तो उपाधि लगेगी। इसलिए अपने तो अकेले वर्तमान परिणाम। वह मिथ्यादृष्टि का एकान्त है। भाई!

'चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य' बस! इस परिणाममात्र में अपना स्वरूप जाननेवाला (ऐसा मानता है कि) **एक समयमात्र में एक जीव मूल से विनश जाता है,...** यह पर्याय, वही जीव है, वह नाश होता है। **अन्य जीव मूल से उत्पन्न होता है...** मूल से उत्पन्न होता है! आहाहा! **ऐसा मानकर बौद्धमत के जीवों को जीवस्वरूप की प्राप्ति नहीं है।** लो! आहाहा! यह तो बौद्ध का दृष्टान्त दिया है, परन्तु जिसकी दृष्टि पर्यायमात्र की है, वे सब बौद्ध ही हैं। आहाहा! पर्याय के साथ रहा हुआ पूरा द्रव्य, भगवान पूर्णानन्द अनन्त-अनन्त रत्नाकर का समुद्र। उसे चैतन्य रत्नाकर कहा न? मोक्षमार्ग की पर्याय को जब रत्नत्रय कहा तो वह तो चैतन्य रत्नाकर है। वस्तु चैतन्य रत्नाकर है। रत्न का आकर - समुद्र है वह तो। ओहोहो! यह दृष्टि अज्ञानी ने छोड़ दी और वर्तमान को माना।

अब दूसरी बात, दूसरा मतान्तर (कहते हैं) **'अपरैः तत्रापि कालोपाधिबलात् अधिकां अशुद्धिं मत्वा'** इन्होंने यह अर्थ किया है, संस्कृत में दूसरा अर्थ है। **कोई मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी ऐसे हैं जो जीव का शुद्धपना नहीं मानते हैं,...** वह तो तीनों काल अशुद्ध है, बस! है? **शुद्धपना नहीं मानते हैं, सर्वथा अशुद्धपना मानते हैं। 'कालोपाधिबलात्'** उसका अर्थ किया। **'काल उपाधि बलात्'** यह तीन काल की उपाधि के बल से वह अशुद्ध ही है, ऐसा। शुद्ध नहीं। और संस्कृत टीका में भाई जयचन्दजी ने अर्थ किया, उसमें ऐसा कहा कि एक समय में तीन काल लागू पाड़ने जाता है, वह उपाधि है। वर्तमान के अतिरिक्त तीन काल, ऐसा कहो तो भूत और भविष्य (कहने पर) उपाधि आ गयी, ऐसा अज्ञानी मानता है। तीनों काल, वह तो काल की अपेक्षा से बात है परन्तु वस्तु तो त्रिकाल टिकती चीज़ है, उसमें यह भूत और भविष्य हैं, ऐसे भेद भी उसमें कहाँ है? वह तो टिकता ध्रुव, ध्रुव टिकता तत्त्व अनादि-अनन्त है।

श्रोता : स्वीकार ही कहाँ आया है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहा न, तीन काल-ऐसा कहना वह कहाँ अन्दर है? परन्तु

समझाने के लिये क्या कहना ? पर्याय एक समयमात्र है और द्रव्य त्रिकाली है, ऐसा कहे न ? द्रव्य है, वह द्रव्यार्थिकनय का विषय द्रव्य त्रिकाली है और ऋजुसूत्रनय का विषय वर्तमान एक समय की पर्याय है। समझाना होवे तो किसे समझावे ? अरे ! समझ में आया ?

यहाँ तो कहते है, वर्तमान समय में जो वस्तु है, वह भविष्य में रहेगी, पूर्व में थी, वह कहाँ ? यहाँ तो है ही, बस यह ध्रुव है, ध्रुव है। पश्चात् उसे समझाने के लिये ऐसा कहा जाता है कि यह ध्रुव त्रिकाली रहता है। आहाहा ! समझ में आया ? यह ध्रुव है, वह तीनों काल रहता है, इसीलिए इसकी दृष्टि करूँ, ऐसा उसमें है ? पर्याय एक समय रहती है और ध्रुव त्रिकाल रहता है। इसलिए त्रिकाल रहता है, इसलिए मैं उसकी दृष्टि करूँ, ऐसा है ? यह तो वर्तमान पर्याय है, वह त्रिकाल टिकती चीज़ ध्रुव है, उसका आश्रय लेती है, उसका अवलम्बन लेती है। बस ! उसे यहाँ तीन काल रहनेवाली चीज़ है, इसलिए ध्रुव है, ऐसे भेद वहाँ नहीं है। आहाहा ! ऐसा है, भाई !

'**कालोपाधिबलात्**' कहा न ? '**कालोपाधिबलात्**' का अर्थ इतना किया कि तीनों काल में रहनेवाली यह शुद्धता, वही मैं, ऐसा अर्थ किया। और संस्कृत में ऐसा अर्थ किया कि एक समय की स्थिति को तीन काल लागू पाड़ना, वह उपाधि है। डाह्याभाई ! दोनों में न्याय का विवाद नहीं है। '**कालोपाधिबलात् अधिकां अशुद्धिं मत्वा**' देखा ? **कोई मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी ऐसे हैं जो जीव का शुद्धपना नहीं मानते हैं, सर्वथा अशुद्धपना मानते हैं। उन्हें भी वस्तु की प्राप्ति नहीं है...** आहाहा ! कर्म के निमित्त का झुकाव, उसका अशुद्ध है, उसे नहीं मानता। अशुद्धता न माने तो अशुद्धता के पीछे शुद्धता है, उसे तो मानता ही नहीं। समझ में आया ? पर्याय में अशुद्धता है, ऐसा न माने तो शुद्धता त्रिकाली है, ऐसा तो उसकी मान्यता में कहाँ से आवे ? आहाहा !

अबद्धस्पृष्ट के भावार्थ में पण्डित जयचन्दजी ने लिखा है कि अबद्धस्पृष्ट है, ऐसा है, परन्तु पर्याय है, ऐसा ज्ञान लक्ष्य में रखकर यह लक्ष्य में लेना। है अर्थ, भावार्थ में है, १४वीं गाथा। अबद्धस्पृष्ट। पाँच बोल हैं न ? और १५वीं गाथा में भी पाँच बोल हैं। उसमें ऐसा लिया है कि ज्ञान का अर्थ करके बहुत सरस अर्थ किया है। इन्होंने जो टीका की है, ऐसी टीका तो... जहाँ चाहिए वहाँ, जिस प्रकार से चाहिए उस प्रकार से वस्तु सिद्ध की है। एकदम अबद्धस्पृष्ट को सामान्य कहने में आया तो, उसे पर्याय है, इतना लक्ष्य ज्ञान में होना चाहिए। पश्चात् यह बात। भाई ! अर्थ में है, खबर है ? है, अब सब निकालने कहाँ जाएँ ? सब खबर है। कहाँ है, कैसे है, सब (खबर है)। आहाहा !

यहाँ कहते हैं, **अनन्त काल हुआ जीव द्रव्य कर्म के साथ मिला हुआ ही चला आया है, भिन्न तो हुआ नहीं–ऐसा मानकर उस जीव में... 'अधिकां अशुद्धिं मत्वा' 'अधिकां अशुद्धिं मत्वा'** देखा? **जीव द्रव्य अशुद्ध है, शुद्ध है ही नहीं... 'अधिकां अशुद्धिं'** का अर्थ यह। '**अधिकां**'अर्थात् अशुद्धता को ही माननेवाला, ऐसा। और ३१वीं गाथा में कहा न? भाई, ३१। अधिकं। '**णाणसहावधियं**' वहाँ '**अधिकं**' का अर्थ भिन्न है। जहाँ जिस जगह (जो हो, वह अर्थ होता है)। ३१वीं गाथा में ऐसा लिया, '**जो इंदिय जिणित्ता णाणसहावधियं मुणदि आदं।**' जो इन्द्रिय को जीतकर। जीतकर का अर्थ उस इन्द्रिय को वश करना और ब्रह्मचर्य (पालना) ऐसा नहीं। इन्द्रिय अर्थात् जड़, भाव और इन्द्रिय का विषय – स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देव–गुरु–शास्त्र और देव–गुरु की वाणी, वह सब इन्द्रिय है। आहाहा! इन तीनों को जीतकर अर्थात् तीनों की ओर का लक्ष्य छोड़कर '**जो इंदिय जिणित्ता**' का इतना अर्थ हुआ। पश्चात् कहा, '**णाणसहावधियं मुणदि आदं।**' उससे ज्ञानस्वभावस्वरूप को भिन्न जानना। वहाँ '**अधिकं**' का अर्थ भिन्न (होता है)। समझ में आया? दूसरा पद है यह। आहाहा!

श्रोता : '**अधिकं**' अर्थ परिपूर्ण किया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी कहा है, परिपूर्ण भी कहा है। यहाँ भिन्न जानने का अर्थ कि यह जब अपूर्ण है तो भिन्न है वह परिपूर्ण है ही। परिपूर्ण है, अधिक है, भिन्न है, ऐसा उसका अर्थ होता है। आहाहा!

यहाँ तो दूसरा कहना है, यहाँ '**अधिकं**' अशुद्धता को '**अधिकं**' मानी है भिन्न। वहाँ ज्ञानस्वभाव '**अधिकं**'। पर्याय से और अशुद्धता से भिन्न पूरा तत्त्व है, उसे वहाँ '**णाणसहावधियं मुणदि आदं।**' (कहा)। आहाहा! समझ में आया? किस जगह किस अपेक्षा से बात है (यह समझना चाहिए)। बापू! यह तो वीतरागमार्ग है। आहा! स्याद्वादमार्ग है, यह फुदड़ीवाद नहीं है, स्याद्वाद का अर्थ ऐसा नहीं कि व्यवहार से भी निश्चय होता है और निश्चय से निश्चय होता है; निमित्त से भी उपादान में होता है, उपादान से उपादान में होता है, ऐसा स्याद्वाद नहीं है। हैं? आहाहा!

श्रोता : तब तो निमित्त कहलाये नहीं। तब तो निमित्त कहा, वह खोटी बात हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह खोटी बात। आहा! यह तो वस्तु का जैसा स्वभाव है, उस प्रकार उसे पर्याय को, द्रव्य को, स्याद्वादरूप से जानना, इसका नाम स्याद्वाद है। समझ में आया?

मतान्तर कहते हैं... दूसरा '**अन्धकैः अतिव्याप्तिं प्रपद्य**' आहाहा! **एकान्त मिथ्यादृष्टि जीव कोई ऐसे हैं जो... 'अतिव्याप्तिं प्रपद्य' कर्म की उपाधि को नहीं मानते हैं,..** अशुद्धता है ही नहीं, ऐसा मानता है '**आत्मानं परिशुद्धिं ईप्सुभिः**' है? **जीव द्रव्य को सर्व काल सर्वथा शुद्ध मानते हैं;...** वह भी मिथ्या है। आहाहा! समझ में आया? यह एक मतान्तर लिया है। सर्व काल शुद्ध है, पर्याय भी सर्व काल शुद्ध है, ऐसा नहीं। पर्याय अनादि से संसार में अशुद्ध है। आहाहा! द्रव्य और गुण शुद्ध है, परन्तु पर्याय तो अनादि से अशुद्ध है। आहाहा! समझ में आया? है?

जीव द्रव्य को सर्व काल... और **सर्वथा...** सर्वथा। कथंचित् अशुद्ध और कथंचित् शुद्ध माने, वह दूसरी बात है। द्रव्य शुद्ध है, पर्याय अशुद्ध है, यह कथंचित् हुआ। परन्तु यह तो सर्वथा शुद्ध है, (ऐसा मानता है)। पर्याय भी शुद्ध ही है, ऐसा मानता है। वह बिल्कुल मिथ्या बात है। आहाहा! यहाँ तो अभी तेरहवें गुणस्थान तक भी असिद्ध भाव कहा है, वहाँ भी इतनी मलिनता है, उतना उदयभाव कहा न? चौदहवें में भी असिद्ध भाव कहा न? सिद्ध भाव नहीं। हैं? आहाहा! चौदहवें गुणस्थान में भी अभी उदयभाव की इतनी मलिनता है। नहीं तो असिद्ध कहा है, चौदहवें में भी असिद्ध है, सिद्ध नहीं। इतनी अन्दर विकृत अवस्था पर्याय में है। आहाहा! चार प्रतिजीवी गुण वहाँ निर्मल नहीं है। आहाहा! समझ में आया? केवलज्ञान, अनन्त चतुष्टय, भाव मोक्ष है, परन्तु अभी द्रव्य मोक्ष हुआ नहीं। पर्याय में अभी इतनी प्रतिजीवी गुण की विकृत अवस्था चौदहवें तक भी है। आहाहा! समझ में आया? यह तो कहे, सर्वथा शुद्ध ही है। आहाहा! समझ में आया? चौदहवें तक भी अशुद्ध है। आहाहा! पर्याय की बात नहीं है। है?

सर्व काल सर्वथा शुद्ध मानते हैं; उन्हें भी स्वरूप की प्राप्ति नहीं है। आहाहा! गजब बातें! अनेक नय की अपेक्षा आती हैं, बापू! आहाहा! आत्मा में अशुद्धता तीन काल में नहीं है, वह द्रव्य। परन्तु पर्याय में अशुद्धता चौदहवें गुणस्थान तक है। है या नहीं? असिद्ध भाव कहा न? तो असिद्ध भाव किसलिए कहा? सिद्ध भाव नहीं। निर्मल पर्याय जो चाहिए, वह नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मार्ग गम्भीर है, भाई! अन्दर वास्तविक तत्त्वज्ञान और सम्यग्दर्शन, वह चीज़ कोई अलौकिक है, वह कोई साधारण बात (नहीं है)। आहाहा! सब पहलुओं से मिथ्यात्व का भाव छूटकर (सम्यग्दर्शन होता है)। मिथ्यात्व अनन्त प्रकार का है। ऐसा लिखा है न, उस बन्ध अधिकार में! मैं इसे जिलाता हूँ, एक मिथ्यात्व का एक भाग है, ऐसा लिखा है, भाई!

है न ? है न खबर ? ऐसा कि जिस जीव को जिला सकता हूँ, यह भी एक मिथ्यात्व का भाग है। पूरे मिथ्यात्व में तो बहुत भाग हैं। समझ में आया ? समयसार, बन्ध अधिकार में कहते हैं कि मैं इसे जिला सकता हूँ, जीवन दे सकता हूँ, उसे मार सकता हूँ, उसे अनुकूल संयोग दे सकता हूँ, सुखी कर सकता हूँ अर्थात् अनुकूल संयोग। वह भी एक मिथ्यात्व का भाग है। आहाहा! मिथ्यात्व के प्रकार तो अनन्त हैं, उसमें का यह एक भाग है। आहाहा! समझ में आया ? है, अन्दर लिखा है। आहाहा!

उन्हें भी स्वरूप की प्राप्ति नहीं है। कैसे हैं एकान्तवादी ? आहाहा! यहाँ तो रात्रि में कहा था न ? उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् – प्रत्येक द्रव्य उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं समय-समय में है। अब अपना उत्पाद-व्यय समय-समय में स्वयं से होता है, तब तो वह द्रव्य है। अब वह पर्याय दूसरे से होवे तो उसमें पर्याय पर से हुई। उसमें पर्याय मानी नहीं। आहाहा! जैसे यह अशुद्ध पर्याय मानी नहीं, वैसे उसने पर्याय मानी नहीं। पर के कारण मुझे ऐसा हुआ है अथवा दूसरे द्रव्य को पर के कारण ऐसा होता है। तो उसका गुणपर्ययवत् द्रव्यम् रहा नहीं। तो उसने भी पर्याय नहीं मानी। आहाहा! सूक्ष्म है, भगवानदासजी! वहाँ से वे... क्या कहलाते हैं ?

श्रोता : समझना तो पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझना पड़ेगा, भाई! वहाँ का वहाँ घुसकर... ऐसे तो हम बहुत बार कहते हैं न ? नौकरी करे तो पचपन वर्ष में छोड़ देते हैं।

श्रोता : वह तो सरकारी नौकरी होवे तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सुना है, अपने तो कहाँ... ? सरकार में भी बीस वर्ष में नौकरी करे और पैंतीस वर्ष हो जाए... और तुम्हारे तो, साठ हो, सत्तर हो तो भी मेल नहीं मजदूरी करने में। सब राग की मजदूरी है न ? सेठ! यह पचपन में नौकरी करता है न ? सुना है। बीस वर्ष की उम्र में नौकरी में लगे, पैंतीस वर्ष नौकरी करे तो पचपन वर्ष में (छोड़ दे)। इस व्यापारी को कहीं मेल है कि कितने काल तक व्यापार करना और पश्चात् निवृत्ति लेना ? आहाहा! वह तो यह निर्णय करने के लिये निवृत्ति की बात है, हों! हैं ? आहाहा!

कैसे हैं एकान्तवादी ? 'निःसूत्रमुक्तेक्षिभिः' स्याद्वाद सूत्र बिना... 'मुक्तेक्षिभिः' सकल कर्म के क्षयलक्षण मोक्ष को चाहते हैं; उनके प्राप्ति नहीं है। आहाहा! स्याद्वादमार्ग है, प्रभु! द्रव्य से शुद्ध है, पर्याय से अशुद्ध है। पर्याय एक समय रहती है, वस्तु त्रिकाल रहती है, ऐसा स्याद्वादमार्ग है। एक समय की पर्याय है तो द्रव्य परन्तु एक समय रहती है और द्रव्य

त्रिकाल है, तो पर्याय भी त्रिकाल रहती है और अशुद्ध एक समय की पर्याय है तो द्रव्य भी अशुद्ध है, यह रतनचन्दजी कहते हैं, अभी अखबार में आया था। प्रवचनसार में नौवीं गाथा में है न? शुभ से परिणमते शुभ है, अशुभ से परिणमते अशुभ है। आता है न नौवीं गाथा? प्रवचनसार। वहाँ ऐसा कि शुभ से परिणमता है, तब पूरा आत्मा शुभरूप परिणम जाता है। अशुभ से परिणमता है, तब पूरा आत्मा अशुभरूप परिणम जाता है, ऐसा कहते थे। रतनचन्दजी मुख्तार है न? ऐसा नहीं है। द्रव्य तो त्रिकाल शुद्ध है। समझ में आया? पर्याय में शुभ होता है, तो पर्याय में तन्मय है। शुभपना पर्याय में तन्मय है। द्रव्य के साथ तन्मय है, ऐसा नहीं है। आहाहा! लोग अभी बहुत अर्थ बदलते हैं, कुछ के कुछ। मिथ्यात्व के अनेक प्रकार हैं, उनमें बहुत प्रकार में से कुछ न कुछ कोई अटके हैं। आहाहा!

यहाँ एक प्रकार कहा। ऐसा स्याद्वाद... है? **स्याद्वाद सूत्र बिना...** जैसे वह हार होता है न हार? हार में डोरा है न? पूरा डोरा होता है, तब प्रत्येक मोती रहता है न? मोती, मोती के काल में मोती है परन्तु डोरा तो सबमें है न? इसी प्रकार ध्रुव सबमें है, पर्याय एक समय की है, मोती की भाँति। दोनों को यथार्थ मानना चाहिए। आहाहा! समझ में आया? **'हारवत्' हार के समान। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार सूत के बिना मोती नहीं सधता है...** है? आहाहा! ९९ गाथा में दिया है न? भाई! प्रवचनसार, ९९ गाथा में इस हार का दृष्टान्त दिया है। मोती के स्थान में मोती है। हार में ऐसे डोरा सलंग हैं। दोनों बराबर मानना चाहिए। पर्याय के स्थान में पर्याय के काल में पर्याय है, आगे-पीछे नहीं। वहाँ प्रवचनसार ९९ में पाठ है- आगे-पीछे। जिस समय में पर्याय होनी है, उस समय में होगी। उस हार में जहाँ मोती है, वहाँ ही मोती है। वह मोती आगे-पीछे है, ऐसा नहीं है और जहाँ-जहाँ मोती है, वहाँ-वहाँ मोती है। इसी प्रकार पर्याय भी जहाँ-जहाँ है, वहाँ-वहाँ ही है और सूत्र उसमें सलंग है। इसी प्रकार ध्रुव सलंग है, पर्याय में। आहाहा! समझ में आया?

इसके लिये तो, भाई! थोड़ी निवृत्ति लेकर अमुक दृष्टि करके शास्त्र का स्वाध्याय करना चाहिए। अपनी पकड़ रखकर स्वाध्याय करे तो यह भासित नहीं होता। यह प्रवचनसार में आता है न? ज्ञान अधिकार पूरा होकर ज्ञेय अधिकार लेते हैं, तब कलश में कहते हैं कि स्वरूप के लक्ष्य से आगम का अभ्यास करना चाहिए। आहाहा! यह तो अभ्यास नहीं होता और ऊपर से जरा घण्टे भर निवृत्ति लेकर जो सुना हो, धारण किया हो, उसे मानकर हो गया मानो! अरे! बापू! मार्ग अलग, नाथ! आहाहा! हारवत् कहा न? वहाँ ९९ में भी ऐसा कहा। जहाँ-जहाँ मोती है, वहाँ-वहाँ मोती है, आगे-पीछे नहीं। आगे-पीछे करने जाएगा तो हार टूट

जाएगा। इसी प्रकार द्रव्य में पर्याय जिस समय में होनी हो, उसी समय में होगी। आगे-पीछे नहीं। पहले होनेवाली थी, वह बाद में हुई, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! समझ में आया? द्रव्य टूट जाएगा, द्रव्य का नाश हो जाएगा, पर्याय आगे-पीछे करने जाएगा तो। आहाहा!

यह क्रमबद्ध...! यहाँ के सामने लोगों को, पण्डितों को पाँच विवाद है। एक क्रमबद्ध का, एक व्यवहार से निश्चय होता है इसका, एक निमित्त से उपादान में होता है, ऐसे पाँच विवाद हैं। आहाहा! पाँचों विवाद एक झटके में उड़ जाते हैं। जिस समय जो पर्याय होनी है, वह मोती के स्थान पर वह है। यह क्रमबद्ध हुआ। क्रमबद्ध हुआ तो उस समय में सामने जो निमित्त है, उसकी भी क्रमबद्ध में उसकी पर्याय वहाँ रही। निमित्त से उसमें कुछ आया, ऐसा नहीं है। व्यवहार के काल में व्यवहार क्रम में आया है परन्तु व्यवहार के काल में व्यवहार से निश्चय है, ऐसा नहीं। **'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।'** (बृहद्द्रव्यसंग्रह, गाथा ४७)। जिस समय में आश्रय लिया है वह निश्चय हुआ, उस समय व्यवहार बाकी है, वह व्यवहार हुआ। उसमें व्यवहार से निश्चय होता है, यह बात रही नहीं। निमित्त से उपादान में होता है, यह बात रही नहीं और आगे-पीछे पर्याय होती है, यह भी रहा नहीं। आहाहा! समझ में आया? ९९ गाथा में बहुत विस्तार है।

'हारवत्' हार के समान। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार सूत के बिना मोती नहीं सधता है... देखो! है न? **हार नहीं होता है, उसी प्रकार स्याद्वादसूत्र के ज्ञान बिना...** आहाहा! ध्रुव और पर्याय की अपेक्षा के ज्ञान बिना **एकान्तवादों के द्वारा आत्मा का स्वरूप नहीं सधता है...** विकृत पर्याय पर से होती है, ऐसा कहने में वस्तु सिद्ध नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि शुद्ध-अशुद्ध पर्याय का पिण्ड तो द्रव्य है। अन्दर द्रव्य में अशुद्धता नहीं आ जाती, परन्तु अशुद्ध बिल्कुल न माने, उसे मोक्षमार्गप्रकाशक में दो जगह कहा है कि शुद्ध-अशुद्ध पर्याय का पिण्ड, वह द्रव्य है - ऐसा कहा है। मोक्षमार्गप्रकाशक। क्योंकि अशुद्ध पर्याय जब अनादि-सान्त थी, उस पर्याय को-अंश को न माने तो पूरा द्रव्य जो है, वह तो पूरा होता नहीं। पर्याय को निकाल डाली तो सत् का अंश रहा नहीं और सत् तो त्रिकाली पर्याय-गुण का पिण्ड, वह द्रव्य है। समझ में आया? डाह्याभाई! न्याय से बात है। यह भी भगवान का मार्ग है, बापू! यह कहीं हठ करने का मार्ग नहीं है। क्या कहा?

स्याद्वादसूत्र के ज्ञान बिना एकान्तवादों के द्वारा आत्मा का स्वरूप नहीं सधता है - आत्मस्वरूप की प्राप्ति नहीं होती है;... आहाहा! पर्याय भी है, अशुद्ध भी है। पर्याय

से भी एकान्त शुद्ध ही मान ले तो अशुद्धता मिटाने का प्रयत्न व्यर्थ जाता है। समझ में आया? वेदान्त कहता है न कि सर्वथा शुद्ध है। तो कहते हैं, सर्वथा शुद्ध है तो उसे उपदेश क्यों दिया? एक व्यापक है, ऐसा निर्णय करो। तो अशुद्धता, विपरीतता उसके पास है। तुमने उपदेश दिया एक व्यापक है। अशुद्धता टाली, ऐसा तुम्हारी दृष्टि से हुआ। वहाँ भी पर्याय सिद्ध हो गयी। समझ में आया? वहाँ द्वैत सिद्ध हो गया, द्रव्य और पर्याय द्वैत सिद्ध हो गया। आहाहा!

इसलिए जो कोई आपको सुख चाहते हैं,... आहाहा! देखो! जिसे आनन्द की अभिलाषा है... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द की जिसे अभिलाषा है... आहाहा! **वे स्याद्वाद सूत्र के द्वारा जैसा आत्मा का स्वरूप साधा गया है, वैसा मानिएगा।** आहाहा! त्रिकाली वस्तु भी है, वर्तमान पर्याय है, त्रिकाल शुद्ध है, वर्तमान अशुद्ध है, पर्याय जितना आत्मा नहीं और त्रिकाली द्रव्य में पर्याय नहीं। पर्याय, पर्याय के काल में है, वस्तु त्रिकाल में है ऐसी जैसी वस्तु की स्थिति है, वैसी सुख के अभिलाषी (जीव) को, सच्चे सुख के अभिलाषी को ऐसा है - ऐसा स्याद्वाद मानना पड़ेगा, तो उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाएगी और जो दृष्टि जाएगी, वह दृष्टि पर्याय है। समझ में आया? पर्याय की भी प्रतीति हो गयी। तो जैसा है, वैसा मानने से अन्तर सम्यग्दर्शन होगा और सुख की प्राप्ति होगी। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१२ **श्री समयसार कलश टीका, कलश - २५८, प्रवचन - २५७**
दिनांक - २२-१२-१९६५

स्याद्वाद अधिकार, समयसार कलश, बारहवाँ कलश बीच में आता है, देखो! मिथ्यादृष्टि क्या मानता है? अज्ञानी का स्वभाव और परभाव के अन्तर में अन्तर क्या है? इसकी व्याख्या चलती है। जिसकी दृष्टि में असत्यपना है, वह **'परभावभावकलनात्'** इस आत्मा की ज्ञान अवस्था में परभाव सम्बन्धी जो ज्ञेयाकृति ज्ञान की पर्याय, ज्ञेयों की शक्तियों की पर्याय, दूसरे द्रव्य की शक्ति जो सामर्थ्य है, उस सामर्थ्य को लक्ष्य में लेकर जो ज्ञान की पर्याय परिणमी है, वह परभाव है, उसमें स्वभाव को मान रहा है। समझ में आया?

स्व-भाव से अस्ति। ग्यारहवाँ भंग, उससे विरुद्ध परभाव में अपने भाव की अस्ति। ऐसी पहले व्याख्या चलती है। क्या कहा समझ में आया? यह क्या पूछा इसने? क्या चलता है? व्याख्या तो यह चलती है कि यह आत्मा जो है, उसमें अनन्त-अनन्त शक्तिरूप स्वभावभाव है। वस्तु-वस्तु आत्मपदार्थ है, उसमें शक्ति अर्थात् गुण अर्थात् स्वभाव, अनन्त-अनन्त शक्तिरूप अनन्त गुण का स्वभावरूप आत्मा है। उस स्वभाव से अस्ति। ज्ञानी अपने त्रिकाल अनन्त गुण के स्वभाव से अपनी अस्ति मानता है। अज्ञानी ऐसा नहीं मानता, यह बात चलती है। कहो, समझ में आया इसमें?

यह आत्मद्रव्य, वस्तु है, पदार्थ है और पदार्थ में... पदार्थ है, उसका भाव होता है या नहीं? उसकी शक्ति, उसका गुण-सामर्थ्य होता है या नहीं? इस आत्मा का अनन्त-अनन्त स्वभावरूप यह शक्तिरूप सामर्थ्य है, ऐसा जो आत्मद्रव्य का भाव, उसे अपने स्वभावभाव रूप से अज्ञानी की दृष्टि, स्वभावभाव के सामर्थ्य की नहीं है। उसकी दृष्टि वर्तमान ज्ञान की दशा में परपदार्थ के सामर्थ्य के ज्ञान की जो पर्याय (हो), उसके आकार परिणमे, ऐसे ज्ञेयाकार ज्ञान की पर्याय, वह मेरा भाव है (ऐसा मानता है)। वह है परभाव। समझ में आया? भाई! भारी सूक्ष्म, भाई! लो, हमारे दरबार कहते हैं, बहुत अच्छा आता है। कहो, समझ में आया इसमें?

आत्मा वस्तु है या नहीं? वस्तु पदार्थ है या नहीं? वस्तु तत्त्व है या नहीं? तो वस्तु है

उसमें बसे हुए अनादि स्वभावरूप गुण हैं या नहीं? अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त प्रभुता आदि अनन्त उसकी शक्तिरूप सामर्थ्य स्वभाव है। दूसरे प्रकार से कहें तो सर्वज्ञस्वभाव, सर्वदर्शीस्वभाव, पूर्ण प्रभुतास्वभाव, पूर्ण स्वच्छतास्वभाव, ऐसी अनन्त शक्ति का स्वभावरूप आत्मा का भाव है। समझ में आया? ऐसे आत्मा के महान स्वभाव को नहीं मानकर वह **'परभावभावकलनात्' ज्ञेय की शक्ति की आकृतिरूप है ज्ञान की पर्याय...** मात्र जगत के दूसरे पदार्थ अर्थात् भाव, शक्तियाँ, गुण उनके सामर्थ्य के भाव की ओर उसकी वर्तमान ज्ञान की दशा में उन सबके सामर्थ्यरूप उसका सामर्थ्य है, ऐसे जानने के लक्ष्य से ज्ञान की अवस्था हुई है, वह अवस्था वास्तव में परभावरूप है। समझ में आया?

यह परभाव, उसे **'परभावभावकलनात्'** उसे अपना एक समय का अनन्त भाव जो गुण अनन्त शक्तिस्वरूप है, सर्वज्ञस्वभाव, सर्वदर्शीस्वभाव, अनन्त पुरुषार्थस्वभाव, अनन्त प्रभुतास्वभाव - अनन्त स्वच्छतास्वभाव, अनन्त जीवत्वशक्ति आदि आनन्दस्वभाव ऐसा पूरा भाव - स्वभाव जो पूर्ण है, उसे एक समय की दशा में दूसरे के सामर्थ्यरूप जानने की पर्याय हुई, उसमें अपना भाव मानता है। इसका नाम असत्यबुद्धि, मिथ्याबुद्धि और इसका नाम पापदृष्टि कहने में आता है। गजब बात, भाई! इसमें किसका पाप किया इसने? क्या किया अपना? बनिया बोले तो सही... कहो समझ में आया इसमें? एक समय की ज्ञान की दशा में जड़ के सामर्थ्य का भाव, दूसरे चैतन्य के सामर्थ्य का भाव, अरे! केवलज्ञानी के अनन्त वीर्य और ज्ञान के सामर्थ्य का भाव, ऐसी एक समय की पर्याय में उसका जानना होता है कि ये ऐसे हैं, ये सर्वज्ञ हैं, यह सर्वदर्शी है, यह पूर्ण है, इस परमाणु में एक समय में नीचे से ऊपर जाने की शक्ति है, यह तुम्हारे क्या कहते हैं उड़ते हैं वे सब? रॉकेट और फॉकेट उन सब रजकणों में शक्ति का सामर्थ्य है, उस शक्ति का सामर्थ्य पर शक्तिरूप है। उसे अपनी माने, वह तो स्थूल मिथ्यादृष्टि है।

श्रोता : वह तो बहुत दूर।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बहुत दूर रह गया। परन्तु उन शक्तियों के सामर्थ्य को यह ज्ञान की अवस्था जाननेरूप उनके ज्ञेयाकाररूप जाननेरूप परिणमे, वह ज्ञेयशक्ति का ज्ञान, शक्ति का ज्ञान इस प्रकार परिणमे, इतने में पूरी त्रिकाली सर्वज्ञ शक्ति आदि को माने, उसने परभाव में स्वभाव माना, इसलिए उसे असत्य बुद्धि का मिथ्यात्व का पाप लगता है। उसने अपने जीव महास्वभाव को घात डाला है। यह जीविया बहोरुविया किया उसने। जुगराजजी!

यह जीविया बहोरुविया आता है या नहीं ? ....जीविया बहोरुविया। वह कहे... यह नहीं, यह जीविया बहोरुविया।

अपना जीवत्वशक्तिरूप महान सत्व, आनन्दशक्तिरूप महान सामर्थ्य और वीर्य का अनन्त-अनन्त वीर्य का महासामर्थ्य एक समय में ऐसे अनन्त भावरूप सामर्थ्य, महान सामर्थ्य, इसकी प्रतीति में इसे भाव आना, ऐसी प्रतीति और श्रद्धा में न लेकर, मात्र अपनी वर्तमान एक दशा में दूसरे सामर्थ्य का ज्ञान हो तो स्व-स्वभाव का ज्ञान उसमें नहीं रहा, अकेला परपदार्थ की ताकतरूप ज्ञान ने जाना, उतनी पर्याय को यहाँ त्रिकाल सामर्थ्य के स्वभाव की अपेक्षा से उसे उस पर्याय को परभाव कहा जाता है। आहाहा!

इसलिए वह **'परभावभावकलनात्'** जिसने भावरूप से निर्णय किया है। ऐसा लेना। ज्ञानवस्तु का अस्तित्व ऐसा जिसने माना है, **ऐसे झूठे अभिप्राय के कारण।** वह मिथ्या अभिप्राय, असत्य अभिप्राय, पाखण्ड अभिप्राय, मिथ्या अभिप्राय है। अरे.. अरे..! यह गजब बात भाई! कहो, समझ में आया ? अच्छा लड़का हो, अच्छे पैसे हों, अच्छे घोड़े-बैल-हाथी घर में हों, उन सब शक्तियों को देखकर स्वयं प्रसन्न होता है या नहीं ? क्या मणिभाई! तुम्हारे कहाँ लड़के हैं, वह तुम प्रसन्न होओ। किसी के लड़के देखकर प्रसन्न हो। फूलचन्दभाई! क्या होगा ? होशियार लड़का होवे तो उसका उत्साह आ जाए, लो। उसकी शक्ति का ज्ञान होने पर। ओहो!

श्रोता : रत्न पका।

पूज्य गुरुदेवश्री : रत्न पका। कुल को प्रकाशित किया, बापू! कहते हैं कि यह उसके सामर्थ्य का ज्ञान किया, वह सामर्थ्य तो पर में है। यह सामर्थ्य मेरा है और मुझे मदद और मुझे लाभ है, ऐसा माने तो महान असत्य मिथ्या प्रतीति इसने की है। परन्तु उसके सामर्थ्य के ख्याल में परिणमित ज्ञान, इतने को स्वयं पूरा आत्मा माने, ऐसे पूरे स्वभाववाला तत्त्व, उस भाव में माने तो उसकी झूठी दृष्टि और झूठा अभिप्राय है। उसने भगवान आत्मा अनन्त भाव के सामर्थ्यरूपी जीव का अनादर किया है। ऐसे स्वभाव का उसने अनादर किया है और एक समय की पराकृति शक्ति की पर्याय का आदर किया। कहो, जमुभाई! आहाहा!

द्रव्य के स्वभाव की अभी बात चलती है। द्रव्य में पहले गया। द्रव्य-क्षेत्र-काल दूसरे में गया। यहाँ अभी द्रव्य का स्वभाव शाश्वत् है, शक्ति महान। वह शब्द बदले तो पूरा बदल जाए ऐसा है। यह ऐसा चले, ऐसा नहीं। स्वभाव।

परन्तु कहाँ कब ऐसा देखे तब न ? मानने में भी नहीं आता। ऐसा मैं अनन्त गुण का धनी ! एक समय में तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसा मेरा गुण, इससे अनन्त गुण को जाने, ऐसी मेरी शक्ति। आहाहा ! अनन्त क्षेत्र और अनन्त काल और अनन्त भाव को जानने की मेरी शक्ति। ऐसे-ऐसे अनन्त गुण। जिसने एक शक्ति को टिकावे, ऐसा वीर्य, उसे टिकावे ऐसी मान्यता, ऐसे सब अनन्त गुण उसमें पड़े हुए हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

श्रोता : खबर नहीं कि...

पूज्य गुरुदेवश्री : भान नहीं करता। खबर नहीं क्या ? पश्चात् ऐसा मूढ़ होकर चला जाता है ऐसा का ऐसा। यह पैसे कुछ मिले, यह मकान हुए, हम कुछ बड़े हुए, ऐसा मानकर चला जाता है। घर में उतारना अच्छा है या नहीं ? कहो, समझ में आया इसमें ? आहाहा ! घर में से कुछ ऐसा नया निकले न ? पैसे को क्या कहा जाता है ? हीरा, माणिक की कुछ खान निकली हो, कलश निकल जाए। वह तो कहाँ तेरे थे ? परन्तु तेरा ज्ञान और उसकी शक्ति... फर्क पड़ा, सब अन्तर पड़ा है। घड़ा है जो घर का, क्या कहलाता है यह ? पाया। पायावाले को कहना नहीं, कल बन्द रखना। गहरा-गहरा लगता है दबाया हुआ। कहते हैं। इसमें यह आया था न उस राजा ने कुछ दबाया था। कोई बड़ा राजा था, उसने दबाया है यह सब। पचास अरब रुपये का सोना। किसी ने कहीं से लेकर उसके लड़के के लिये दबाया। वह मर गया और रानी उसके लड़के को लेकर बाहर चली गयी। वह सब पड़ा रहा। ऐसा पड़ा हो, उसमें राजा को... ओहोहो ! पागल हो जाए।

यहाँ तो कहते हैं, वे चीजें तो पृथक् और उनकी सामर्थ्य भी पृथक्। उनकी सामर्थ्य को तुझे कुछ छूने जैसा नहीं है। उसे और तेरे कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु उसके सामर्थ्य के ख्याल में परिणमित तेरी दशा, इतने भाव को परभाव कहने में आता है। उसे आत्मा का त्रिकाल **'परभावभावकलनात्'** परवस्तु के भाव में अपने पूरे भाव का अभ्यास करता है। **'कलना'** अर्थात् अनुभव करता है। इसका नाम मिथ्या अभिप्राय और मिथ्या श्रद्धा है। समझ में आया इसमें ? भारी सूक्ष्म बात भाई यह ! फूलचन्दभाई ! लड़का होशियार हो और वह मर जाए तो अन्दर मन में कुछ होता है या नहीं ? क्या करना इसमें ? परन्तु किसके ? कहते हैं। किसका द्रव्य और किसकी शक्ति और किसका सामर्थ्य ? आहाहा ! हीरा जैसा लड़का था, कहे भाई ! मिलनसार था, प्रेमी था, बुद्धिवाला था, अमुक था। अब तो उसमें रहा। यहाँ आया है कुछ ? नहीं आया ? अब उसकी ज्ञान की पर्याय जानी, ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हुआ कि वह ऐसा था... ऐसा था। वह ज्ञान की पर्याय पराकृति रूप से शक्ति के भावपने का परिणमन

उसका स्वभाव है। परन्तु इतना परप्रकाशक परशक्तिरूप परिणमा, वह भाव ही वास्तव में परभाव है। वह वस्तु का स्वभावभाव नहीं है और वास्तव में वह वस्तु की वास्तविक पर्याय भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अब यहाँ तो कहाँ का कहाँ मानकर बैठे। अस्ति-नास्ति की खबर नहीं होती और धर्म हो जाए, लो। यह अनेकान्त इसका नाम है। वह अनेकान्त उड़ा देता है। सर्वज्ञ ऐसा जाने, अमुक ऐसा जाने, अमुक ऐसा जाने। अरे भगवान! समझ में आया? नियत और काल और अकाल, नियत, अनियत ये चार नय अवरोधक है। परन्तु इसका अर्थ तुझे खबर नहीं है, उसमें क्या है यह?

श्रोता : अर्थ देकर...

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थ लिखकर दिये, तब कहे तुम इसमें तुम्हारा उसमें भाव रखकर बचाव किया है। ऐसे के ऐसे।

एक समय की ज्ञान की पर्याय तीन काल-तीन लोक को जैसे व्यवस्थित है, वैसे जाने, ऐसी तो एक पर्याय की ताकत। ऐसी अनन्त पर्याय की ताकत ज्ञानगुण में पड़ी है। ऐसे-ऐसे अनन्त गुण की एक समय में अनन्त गुण की ताकत पड़ी है। आहाहा! श्रद्धा की भी ऐसी ताकत है या नहीं? एक समय में तीन काल तीन (लोक) को जिस प्रकार से जाने, वैसी ही श्रद्धा हो, ऐसा गुण अन्दर पड़ा है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा वीर्य इतना पड़ा है कि एक समय में जाने तीन काल-लोक को, इस प्रकार ऐसी-ऐसी अनन्त शक्ति का सामर्थ्य जिस ज्ञानगुण में है, ऐसे अनन्त उसका वीर्य उसे स्वीकार करे, ऐसा वीर्य अन्दर पड़ा है। ऐसे अनन्त-अनन्त शक्ति के सामर्थ्य का भगवान भाव आत्मा का, उसे अपना न मानकर एक समय की अवस्था के पर के सामर्थ्यरूप परिणमित ज्ञान, उसे ही अपना त्रिकाली भाव मानता है, वह अभिप्राय झूठा है। गजब बात, भाई! ऐसा तो कुछ... यह जैन की बातें होंगी? जैन के अतिरिक्त यह भाव और एक समय की पर्याय और पररूप परिणमे और पर की आकृतिरूप परिणमना, यह अन्यत्र हो कहाँ से? समझ में आया?

श्रोता : सर्वज्ञ के अतिरिक्त नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सर्वज्ञ और तीन काल और तीन लोक में जो एक-एक द्रव्य के स्वभाव भरे हैं, तेरे स्वभाव के सामर्थ्य का क्या कहना! ऐसे सामर्थ्य की प्रतीति अन्तर्मुख न करके एक समय की पर्यायबुद्धि में तेरी बुद्धि अटक गयी है, उसने परभाव को अपना माना है, ऐसा मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। दूसरे जीव को घात न करे। घात तो कहाँ कर सकता है? मार नहीं सकता, बोल नहीं सकता, कुछ नहीं। मात्र उसकी एक समय की पर्याय में पर की शक्ति

का जानने का परिणमन हुआ, उसमें पूरे आत्मा को माना, इसका नाम आत्मा की महाहिंसा है। समझ में आया? यह एकान्त माना। लो, इसका नाम एकान्त। यह एकान्त और अनेकान्त की व्याख्या गजब, भाई!

और कैसा है एकान्तवादी? अब आता है, देखो! उसमें माना... **'स्वभावमहिमनि एकान्त निश्चेतनः'** देखा? **जीव की ज्ञानमात्र निजशक्ति के...** यहाँ तो पूरा ज्ञानमात्र लेना है न? परन्तु यह अनन्त शक्ति। जीव की त्रिकाल ज्ञानमात्र शक्ति, जीव की त्रिकाल स्वभावरूप अनन्त शक्तियों की **'महिमनि'**। अनादि अनन्त शाश्वत् प्रताप। अनन्त गुण का, अन्तर शक्ति का शाश्वत् प्रताप। ज्ञानगुण... ज्ञानगुण... ज्ञानगुण... जानना... जानना... जानना... इसकी प्रधानता से पूरी बात है। इस ज्ञानगुण का अनन्त, अनादि-अनन्त शाश्वत् प्रताप, ऐसे **शाश्वत प्रताप में एकान्तनिश्चेतन...** एकान्त निश्चेतन—जड़ हो गया है, कहते हैं। यह महा अनन्त ज्ञान का पिण्ड प्रभु, अनन्त सामर्थ्य, उसका निश्चेतन, यह मेरा नहीं, यह मेरा नहीं, ऐसे निश्चेतन हो गया है। ओहोहो! समझ में आया? **एकान्तनिश्चेतन...** लो। एक समय की इतनी पर्याय को माना तो एकान्त निश्चेतन, भाई! अचेतन कहा। आहाहा! समझ में आया? कहो, भीखाभाई!

चेतन जो महान सामर्थ्य का पिण्ड एकरूप है, उसकी महिमा का स्वीकार नहीं, वह अचेतन हुआ है। आहाहा! एक समय की पर्याय में दूसरी शक्ति का परिणमनरूप ज्ञान (हो), उतने को माननेवाला, महासामर्थ्य के भावस्वरूप का अनादर करनेवाला, वह चैतन्यस्वभाव जो वस्तु है, (उसे) नहीं माना; इसलिए कहते हैं कि निश्चेतन है। ओहोहो! यह जड़ हो गया? यह निश्चेतन क्या हुआ? भाई! वह एक समय की पर्याय वह कहीं चेतना का पूरा स्वरूप है? वह तो वास्तव में पूरे अनन्त गुण का सामर्थ्य ऐसा भगवान है। उसका स्वीकार नहीं, वह निश्चेतन-अचेतन है, ऐसा कहते हैं। उस चेतन की महान स्वभाव की महिमा नहीं होती, उसे पर्याय में अचेतन कहते हैं। छोटाभाई! गजब बातें ऐसी! ऐई! कहाँ गये वे तुम्हार न्यालभाई। गये मौके से थे।

अर्थात् उससे सर्वथा शून्य है। अर्थात् क्या? एकान्त निश्चेतन शब्द प्रयोग किया न? अपने अनन्त स्वभाव की शक्ति की महिमा के बिना एकपक्षी अत्यन्त अचेतन हो गया है। समझ में आया? सर्वथा शून्य हो गया। भगवान महान सामर्थ्यस्वरूप से शून्य हो गया। मानो खाली। अकेली एक समय की पर्याय पर की आकृति से भरपूर और मेरा पूरा स्वभाव मानो शून्य है। ऐसा दृष्टि में इसने माना है। ओहोहो!

भावार्थ इस प्रकार है कि स्वरूपसत्ता को नहीं मानता है... देखो! **स्वरूपसत्ता को नहीं मानता है, ऐसा है एकान्तवादी,...** क्या कहते हैं? अपने स्वरूप की शक्ति, सामर्थ्य, वस्तु का त्रिकाल सामर्थ्य। वस्तु जैसे त्रिकाल है, वैसे उसके ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि त्रिकाल सामर्थ्य है। त्रिकाल सामर्थ्य है। ऐसी **स्वरूपसत्ता को नहीं मानता है...** ऐसे स्वरूप के स्वभावभाव की शक्ति को नहीं मानता। **ऐसा है एकान्तवादी,...** एकपक्षी माननेवाला।

उसे प्रति स्याद्वादी समाधान करता है... उसके पक्ष में ज्ञानी-धर्मात्मा उसे कहते हैं। **'तु स्याद्वादी नाशं न एति' एकान्तवादी मानता है उस प्रकार नहीं है, स्याद्वादी मानता है उस प्रकार है।** समझ में आया? **अनेकान्तवादी विनाश को नहीं प्राप्त होता है।** अनेकान्तवादी पूर्ण-पूर्ण भाव को माननेवाला, एक समय की अवस्था, अवस्थारूप से, परभावरूप से जाननेवाला, पूर्ण भावरूप से स्वभाव अस्ति माननेवाला और उसमें एक समय की अवस्थारूप से नास्ति माननेवाला। समझ में आया? यह अनेकान्तवादी। पहला एक समय की आकृति में पूरा भाव माननेवाला, यह एक समय के पूर्ण भाव में पूर्ण माननेवाला, एक समय की अवस्था को उतनी आकाररूप व्यवहार जाननेवाला। समझ में आया?

अनेकान्तवादी विनाश को नहीं प्राप्त होता है। भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञानमात्र वस्तु की सत्ता को साध सकता है। भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञानमात्र सत्ता को साधता है। समझ में आया? आज और यह शब्द आया था, परन्तु अर्थ नहीं। प्रवचनसार की जयसेनाचार्य की शीतलप्रसाद की पहली पुस्तक कोई ले गया है? यहाँ नहीं। प्रवचनसार की पहली जयसेनाचार्य का पहला भाग। उसमें एक गाथा है न? जयसेनाचार्य में 'सो अरिट्ठं इट्ठं' एक गाथा है। सर्वज्ञ की। ऐसे सर्वज्ञ को माने, वह समकिती है, ऐसी गाथा है। समझ में आया? है या नहीं? देखो न क्या है? कहाँ गया? लो। यह सर्वज्ञ को ओलि करते हैं। क्या है यह?

पर्याय सर्व पदार्थ में श्रेष्ठ। उसे श्रद्धा करता है, वह दुःख का क्षय करता है। क्या कहते हैं? यह तो एक सर्वज्ञ की पर्याय की श्रद्धा करता है, ऐसी बात की। एक समय की प्रगट पर्याय। परन्तु उस प्रगट पर्याय की श्रद्धा कब हो? कि पूरे द्रव्य की... यह साधक-साध्य अपने चलता है न, उसमें थोड़ा यह रखना है, हों! सर्वज्ञ के साथ सन्धि करके। सर्वज्ञ एक समय के इस जगत में हैं, एक समय की ताकत। उस ताकत की प्रतीति अपने द्रव्य में, वह शक्ति उसकी, परन्तु वह द्रव्य में से आयी थी। इस प्रकार अपने द्रव्य में पूरा गुण इतना अनन्त

शक्तिवाला पड़ा है। उसमें उसकी प्रतीति करे, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है, तब उसे सर्वज्ञ की प्रतीति हुई कहलाती है। तब यह शक्ति जो मेरे द्रव्य में पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. है। वह अनेकान्तवादी मान सकता है। एक समय में अल्पज्ञता होने पर भी और एक समय में अल्पज्ञता में पूरा वर्तमान में पर के आकार परिणमा ऐसा होने पर भी, इतना मैं नहीं। समझ में आया? अर्थात् पूर्ण वस्तु जो पूरा तत्त्व है, उसे प्रतीति करके पर्याय परिणमी, उतना भी मैं नहीं। यहाँ भाव का वर्णन है न? पूरा भाव पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण वस्तु। वस्तु ऐसी है, भाई जरा। समझ में आया? जमुभाई! यह गुजराती चलता है।

अनेकान्तवादी विनाश को नहीं प्राप्त होता है। क्योंकि **ज्ञानमात्र वस्तु की सत्ता को साध सकता है। कैसा है अनेकान्तवादी जीव? 'सहजस्पष्टीकृतप्रत्ययः'** यह छपाने में भूल हो गयी है। **'सहजस्पष्टीकृतप्रत्ययः' स्वभाव शक्तिमात्र ऐसा जो अस्तित्व...** अपना जो स्वभाव। समझ में आया? त्रिकाल शक्ति पूर्ण भाव, द्रव्य में पूर्ण शक्ति स्वभावभाव, ध्रुवभाव, ध्रुवभाव। अनादि-अनन्त जैसे आत्मा है, वैसे उसकी ज्ञान-दर्शन आदि शक्तियाँ ध्रुव अनादि भाव अन्दर पड़ा है। ऐसे भाव को... समझ में आया? ऐसा जो होनापना। अस्ति अर्थात् होनापना। अपने अनन्त-अनन्त शक्ति आदि का ज्ञान, दर्शन आदि की अनन्त शक्ति का अस्तित्व **उस सम्बन्धी दृढ़ किया है। 'स्पष्टीकृत'** स्पष्टीकृत यह आशय जिसने स्पष्ट किया है अर्थात् अनुभव किया है आशय जिसने। समझ में आया?

दृढ़ किया है। 'प्रत्ययः' अर्थात् **अनुभव जिसने...** देखो! भाषा। कितने शब्द पड़े हैं। भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण शक्ति का सम्पन्न भाव... भाव.. भाव.. पूर्ण...पूर्ण..। ऐसा **'स्पष्टीकृत'** प्रत्यय अर्थात् कि स्वभाव इतना है, इतना है—ऐसा स्पष्ट किया है अनुभव जिसने। समझ में आया? जैसा स्वभाव पूर्ण है, ऐसा ही स्पष्टीकृत, ऐसा अस्तिरूप दृढ़ किया है। स्पष्ट का अर्थ दृढ़ किया है। **'प्रत्ययः'** अर्थात् अनुभव। ऐसा अनेकान्तवादी। पूर्णानन्द प्रभु पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण। एक समय में पूर्ण परमात्मा, जिसकी शक्ति और स्वभाव, उसके सामर्थ्य का क्या कहना? जिसका स्वभाव, उसके सामर्थ्य का क्या कहना? ऐसा आत्मा महान अनन्त स्वभाव सम्पन्न है। ऐसा अन्तर में जिसने दृढ़रूप से प्रतीति में अनुभव किया है, उसे अनेकान्तवादी कहा जाता है। समझ में आया? उसे अमृत का अनुभव है। अन्य को मिथ्यात्व का अनुभव था, मिथ्यात्व का। यह महान पदार्थ... समझ में आया?

बहुत बार कहा गया है न? आकाश.. आकाश.. आकाश.. आकाश.. खाली... खाली...

खाली... कहीं अन्त है ? इस प्रकार दसों दिशाओं में जाए, पश्चात् क्या ? पश्चात् क्या ? पश्चात् क्या ? पश्चात् क्या ? पश्चात् क्या ? कहीं नास्ति ही नहीं। अस्ति.. अस्ति.. अस्ति.. चला ही जाए। है.. है.. है.. है.. ऐसे चला जाए।

वह है – है के क्षेत्र की अस्ति की नास्ति नहीं है। इसी प्रकार इस आत्मा के एक-एक शक्ति के अस्तित्व के सामर्थ्य की कोई नहीं, ऐसा नहीं है। पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. अरे! यह बात। समझ में आया ? समझ में आया या नहीं ? जिसका इतना अमाप क्षेत्र। पश्चात् क्या होगा ? पश्चात् क्या होगा ? दीवार होगी ? बंडी होगी ? पश्चात् क्या होगा ? जहाँ निषेध करने जाए, वहाँ अस्ति की हाँ पड़ेगी। ऐसे क्षेत्र के अमाप, क्षेत्र का चौड़ा भाव अमाप। तो आत्मा के स्वभावभाव के सामर्थ्य का क्या कहना ? ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? इसे क्षेत्र की आवश्यकता नहीं। भाव के सामर्थ्य को क्षेत्र की आवश्यकता नहीं। भाव के सामर्थ्य में उसके सत्त्व में सामर्थ्य की उसे आवश्यकता है, बस! एक-एक गुण का इतना सत्त्व, दर्शन का, ज्ञान का, चारित्र का, आनन्द का, अस्तित्व का, वस्तुत्व का, प्रमेयत्व का, प्रभुत्व का, महा अनन्त शक्तिरूप आत्मा, उसका **'स्पष्टीकृत प्रत्ययः' दृढ़ किया है अनुभव जिसने...** ऐसे महान स्वभाव की श्रद्धा को ज्ञान में लिया, उसे सत्य का परिणमन होने पर शान्ति का परिणमन होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! निकाल डाला, राग निकाल डाला, निमित्त निकाल डाला, एक समय में पर के आकार परिणमित इतनी पर्याय निकाल डाली। ऐसा महा आत्मा अनन्त गुण का भावरूप, प्रभु! उसे जहाँ दृष्टि में, ज्ञान में लिया, कहते हैं कि सतरूप अनेकान्त का परिणमन, वह सम्यग्ज्ञान हो गया। उसे अन्तर में अमृत का स्वाद आवे, सत्य का। अज्ञानी को एकान्त के – मिथ्यात्व के जहर का स्वाद आता है, ऐसा कहते हैं। इसमें धर्म-अधर्म की पूरी बात है। गजब बात, भाई!

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा छूटे। कभी कहाँ इसे खबर है कि मैं कौन हूँ ?

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दृष्टान्त दिया जाता है। यह दृष्टान्त इसीलिए तो दिया कि नास्तिक मनुष्य भी ऐसा विचार करेगा न कि ऐसे का ऐसा, ऐसे का ऐसा यह खाली ऐसा क्षेत्र तो अमुक स्थान में है परन्तु पश्चात् कुछ है या नहीं ? क्षेत्र खाली... खाली... खाली... उस खाली का अन्त कहाँ ? नास्तिक मनुष्य भी विचार करेगा या नहीं ?

इसका अर्थ यह कि खाली का अन्त नहीं है। इतनी तो क्षेत्र की अचिन्त्यता है, तो उसके जाननेवाले के भाव की अचिन्तता क्या! ऐसी यहाँ तो बात ली जाती है। समझ में आया? आहाहा! एक समय की पर्याय की बात नहीं, हों! सर्वज्ञ की एक समय की पर्याय, उसकी यहाँ बात नहीं। यहाँ तो एक समय का पूरा भाव सब। वस्तु है, उसका स्वभावभाव, स्वभावभाव त्रिकाल शक्ति स्वभाव। उसका जिसने एकान्तपना टालकर, अनेकान्त ऐसे भाव में एक समय की पर्याय नहीं, एक समय की पर्याय में ऐसा पूरा भाव आता नहीं। समझ में आया? इसका नाम अनेकान्त है, लो! ओहो!

ऐसा है सम्यग्दृष्टि जीव। अनेकान्तस्वरूप को जैसा है, वैसा माननेवाला, अनुभव करनेवाला, जाननेवाला जीव। कहो, सुगनचन्दजी! क्या करना अब? अभी तो बाहर के समझ को और किसी ने प्रश्न किया था कि यह धर्मशाला बनावे तो धर्म होगा या नहीं? अरे! धर्मशाला बनावे तो मोक्ष होगा। अरे! भारी कर डाला अब तो। एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि धर्मशाला, वह त्याग में-दया, धर्म में है, त्यागधर्म में वह है। दस प्रकार का धर्म है, उसमें त्यागधर्म में वह है। दस प्रकार के धर्म में त्यागधर्म में वह है। ऐई! देवानुप्रिया! अरे! धर्मशाला बनाने को प्रश्न किया तूने? कितने श्लोक वापस। पद्मनन्दि के। अरे! भगवान! क्या करता है तू यह? आहाहा! यह ठगने का और दूसरे बेचारे ठगा जाएँ। दस हजार की, बीस हजार की एक धर्मशाला बनावे तो उसका मोक्ष हो गया। गजब भाई! हमारे तो यहाँ दो लाख खर्च किये, ढाई लाख खर्च किये, (तब) नानालालभाई को पूछा, तुम्हारे आठवें भव में मोक्ष होगा। तो वह कहे, नहीं, नहीं। हम ऐसा नहीं मानते। महाराज इनकार करते हैं। आहाहा! जैन गजट में ऐसा लिखा है। ओहोहो! परन्तु बहुत स्थूल में उतर गये, बहुत उतर गये।

श्रोता : जो कोई बाहर का शुभभाव करे, वे सब...

पूज्य गुरुदेवश्री : सब भाव शुभभाव। आहाहा! त्याग है न उसमें? त्याग है न! तीव्र कषाय का त्याग हुआ, उतना धर्म हुआ, ऐसा। वह धर्म हुआ और उससे उसे मुक्ति होगी, जाओ। ऐई! धर्मचन्दजी! कुछ मेहनत नहीं होती। यह कितना यह समझने की मेहनत, श्रद्धा करना... वह तो कुछ नहीं। एक मन्दिर बनावे तो मोक्ष हुए बिना रहे? धर्मशाला बनावे तो मोक्ष होवे तो मन्दिर बनाना (ही चाहिए), यह तो भगवान का मन्दिर है। और वापस ऐसा दिया है कि धर्मशाला बनावे उसमें कितने भूखों को वह होता है, भय मिट जाता है, दुःख का भय मिटे, क्षुधा का भय मिटे, अमुक का भय मिटे। इसलिए इसने बहुत ऐसा किया, इसलिए (इसे मोक्ष हो जाएगा)। यह शास्त्र में लिखा। ओहोहो! उसकी क्या बात करना! उसने

धर्मशाला बनायी, उसने त्यागधर्म किया, उसकी प्रशंसा की क्या बात करना! ओहोहो! बहुत स्थूल कर डाला।

श्रोता : बारोठ आया था, वह ऐसा कहे...

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्यों तुम्हारा पिता न सहे? पैसा लेना है तुम्हारे पास से। आहाहा! समझ में आया?

भगवान! यहाँ तो कहते हैं एक समय की ज्ञान की पर्याय में वह धर्मशाला और मन्दिरों की शक्तियों के ज्ञानरूप तेरा पर्याय में परिणमन होता है, इतने को तू माने तो अनन्त संसारी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

श्रोता : करावे तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : कराने-बराने का कहाँ रह गया? करावे तो कौन? यह लिखा न! यह तो यह... धर्मशाला बनायी। आहाहा! अरे! भगवान! क्या करता है कहा यह। गजब परन्तु यह उल्टा गिरे तो... भगवान... आहाहा! शास्त्र की बात को कहीं उड़ा दिया। वीतरागभाव से संसार का अभाव। दृष्टि के बिना तीन काल में नहीं होता। उसके बदले यह... एक कर सकता है, और वापस कर सकता है, यह भाव है, इससे त्याग है, इससे धर्म है, लो। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, लाख मन्दिर बने तो भी इससे मोक्ष नहीं है, ले! कहो, क्या है? गुलाबचन्दभाई! कहाँ गये? आकर चले गये? मलूकचन्द नहीं आये? वापस गये? उस दिन गये। यह तो उसके कारण बनने का हो, उसे बने। बनानेवाले का भाव शुभ होता है। भगवान के दर्शन के लिये शुभभाव। परन्तु उस शुभभाव से मुक्ति हो जाए और जन्म-मरण मिट जाए, इस बात में कुछ दम नहीं है। आहाहा!

श्रोता : तब तो पैसेवाले को मजा पड़े...!

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसेवाले को मुक्ति हो, गरीब तो बेचारे को रोना पड़े। अरे रे! परन्तु गजब कर डाला। आहाहा!

यहाँ तो भगवान सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं कि हे आत्मा! तुझमें एक समय में अनन्त-अनन्त शक्ति के भावरूप सामर्थ्य है, उसे माने बिना तू एक समय की अवस्था में, इस जगत की ताकत के सामर्थ्य के जाननेरूप एक समय में परिणम कर उसे तू अपना माने, तो भी मिथ्यादृष्टि अनन्त संसारी है। आहाहा! अब बाहर की कहाँ बात? मन्दिर और धर्म... ऐई! हिम्मतभाई! क्या करना? यह सब पण्डित ऐसे हुए हैं, लो! आहाहा!

अरे! प्रभु! क्या करता है तू यह? पूरा आत्मा केवलज्ञान मिल जाए इतने पैसे से! यह तो गजब बात भाई!

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा उसे बना सके, ऐसी मान्यता माने, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? धर्मशाला या मन्दिर मैं बना सकता हूँ। वह तो पर की पर्याय है। उसे कौन बनावे? उसमें और पैसा मेरा, हमने यह बनाया। आहाहा! कितना अभिमान? हमने यह छोड़ा। भाई! तेरा शुभराग हो, राग की मन्दता का भाव शुभ, वह शुभ पुण्यबन्ध का कारण है। परन्तु तू माने कि बन्ध-अभाव परिणाम इससे होंगे और मुक्ति का कारण होगा, उसमें एक भी प्रतिशत सत्य नहीं है।

श्रोता : शुभभाव से ऊँचा आकर शुद्ध में आवे...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी सच्चा नहीं। अशुभ में से शुभ में आया। ऊँचा शुभ किसे कहना? यह तो अशुभ में - मिथ्यात्व में पड़ा है, वह अशुभ है। यह मैंने किया, यह मुझसे हुआ, इससे मुझे कल्याण होगा, ऐसे मिथ्यात्वभाव के अशुभभाव में तो पड़ा है। कठिन बात है भाई इसमें? ऐई! सत्य बात है? यहाँ चिट्ठी ऐसी नहीं है, ऐसा भगवान कहते हैं। यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ का कहा हुआ तत्त्व है, यह कहीं कल्पित और लोग मान लें उनके घर से, ऐसी बात नहीं है। समझ में आया?

यहाँ तो ऐसा कहना चाहते हैं कि भाई! यह पर की दया मैं पाल सकता हूँ, पर की पर्याय कर सकता हूँ, वह तो मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। वह तो है परन्तु उसकी शक्ति... देखो तो सही, किस प्रकार यह बचता है? किस प्रकार टिके हैं? उसके सामर्थ्य का ज्ञान तेरी पर्याय में होता है, उस पर्याय में तेरे कारण ज्ञान होता है, उसके कारण नहीं। तेरे कारण तेरी पर्याय में उसका ज्ञान होता है, इतना भी मैं आत्मा हूँ, ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि एक अंश में पूरे स्वभाव को अर्पित कर दिया है। पूरे अनन्त स्वभाव गुण को एक समय में अर्पित कर दिया है। परभाव में त्रिकाल भाव को माननेवाला मूढ़ अज्ञानी है। आहाहा! गजब बात, भाई! फिर ऐसा होगा तो कोई नहीं करेगा। हमारे वापस यह कहते थे। मलूकचन्दभाई को वहाँ अहमदाबाद में मन्दिर बनाना है। कौन बनावे? वह तो निकलने का होगा वह निकले बिना रहेगा नहीं। निकाले कौन और दे कौन? भाई! सब बात समझने जैसी है। बोला जाए जब अमुक कहना हो तो, बाकी तो सब समझने जैसा है। आहाहा! कथन को बोलने के अमुक प्रकार होते हैं। क्या जानना है, इस अपेक्षा से। आहाहा!

कहते हैं, हम धर्मी उसे कहते हैं, तीन लोक के नाथ तीर्थंकर कहते हैं कि जिसने एक

समय की अवस्था में अपना पूरा रूप नहीं माना, परन्तु एक समय में पूरा अनन्त गुण का पिण्ड भगवान दृष्टि में लेकर, फिर एक समय की अवस्था है, उसका वह ज्ञान करता है, ऐसे सम्यग्दृष्टि को हम धर्मी कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

और कैसा है? 'सर्वस्मात् नियतस्वभावभवनज्ञानात् विभक्त: भवन्' देखो, आया। ऐसे से कहा। अब उससे विभक्त कहते हैं **जितने हैं अपनी अपनी शक्ति विराजमान ऐसे जो ज्ञेयरूप जीवादि पदार्थ...** देखो! परपदार्थ। जितने अनन्त आत्माएँ हैं, अनन्त परमाणु हैं, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल आदि अनन्त पदार्थ हैं। एक आत्मा के अतिरिक्त दूसरे अनन्त पदार्थ हैं। वे **अपनी अपनी शक्ति विराजमान...** हैं। वह सब अपनी शक्ति से विराजमान हैं। सर्वज्ञ परमात्मा सिद्ध भगवान भी अपनी शक्ति से विराजमान हैं। आहाहा! समझ में आया? अनन्त सिद्ध और लाखों केवली महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। वे उनकी अपनी शक्ति से विराजमान सभी पदार्थ हैं।

ऐसे जो ज्ञेयरूप जीवादि पदार्थ... उस ज्ञान की पर्याय में जाननेयोग्य पदार्थ जो हैं, **उनकी सत्ता की आकृतिरूप परिणमी है ऐसी...** उसके सामर्थ्यरूप ज्ञान की पर्याय, अपनी अपने से परिणमी है, वह आकृति है, इसलिए नहीं परिणमी। आहाहा! अनन्त सर्वज्ञ उनकी शक्ति से विराजमान, अरिहन्त, केवली लाखों विराजमान, सच्चे साधु करोड़ों विराजमान (होवे) परन्तु वे सब इस आत्मा की पर्याय से भिन्न पदार्थ हैं। समझ में आया? उन भिन्न पदार्थ के कारण मेरी ज्ञानपर्याय परिणमती है, इस बात को तो महा मिथ्यादृष्टि कहा है। आहाहा!

परन्तु कहते हैं **'नियतस्वभाव'** नियत अर्थात् उनका निश्चय स्वभाव। **अपनी अपनी शक्ति विराजमान ऐसे जो ज्ञेयरूप...** देखो, नियत आया या नहीं? इसका नियत स्वभाव है वह। प्रत्येक आत्मा का, प्रत्येक परमाणु का जो निश्चय स्वभाव है। **ज्ञेयरूप जीवादि पदार्थ...** जीवादि पदार्थ छहों आ गये। अपने अतिरिक्त दूसरे अनन्त **उनकी सत्ता की आकृतिरूप...** यह अब भवन की व्याख्या करते हैं। भवन की व्याख्या करते हैं। भवन की व्याख्या कहाँ जाएगी? यह **'भवन ज्ञानात्'** उस पर की सत्ता की आकृतिरूप परिणमी है ऐसी जीव की ज्ञानरूप पर्याय, ज्ञान की एक समय की पर्याय। आत्मा के ज्ञान की एक समय की पर्याय, अवस्था। अनन्त ज्ञेयों की शक्ति को जाननेरूप परिणमी है एक समय की पर्याय, उससे विभक्त। उससे मेरा तत्त्व भिन्न है। आहाहा! उससे मेरा पूरा भाव भिन्न है। समझ में आया? परवस्तु से तो भिन्न है, पर की, शुभभाव की शक्ति से भी भिन्न है, परन्तु शुभभाव और

परवस्तु की शक्ति से परिणमित एक समय का ज्ञान, इतने एक समय के ज्ञान की पर्याय से मेरा स्वरूप त्रिकाल भिन्न है। ऐसे पर से विभक्त जिसने माना है, स्व में पूर्ण है, ऐसा जाना है, ऐसे पर्याय विभक्त ज्ञान में होता ऐसा अनुभव करनेवाला सम्यग्दृष्टि अनेकान्ती कहलाता है। गजब बात भाई! और वापस ऐसा कहे, और वापस मन्दिर तथा तीर्थ और यात्रा (करे)। सुन तो सही। ऐई! यह तो जब उस शुभभाव का समय हो और तब यह क्रियादि होने की हो, तब उसका लक्ष्य शुभ का पर में जाता है, बस इतनी उसकी मर्यादा है। वह मर्यादा निकाल डालो तो भी मिथ्यादृष्टि है। क्योंकि ज्ञान की पर्याय में उस काल में वह शुभराग और उस निमित्त को जानने का पर्याय का धर्म है। समझ में आया?

श्रोता : इस मिथ्यात्व का अन्त आवे, ऐसा एक बोल है...?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह एक बोल कहा न यह। ऐसा कहते हैं, मिथ्यात्व कितने प्रकार के। एक ही प्रकार का कहा न। एक वस्तु महास्वभाव से भरपूर सागर पूर्णानन्द प्रभु, वह मेरा पूर्ण भाव है, इस एक समय की अवस्था से विभक्त है। एक समय की अवस्था, पर से तो भिन्न है परन्तु इसके जाने हुए की पर्याय से भी भिन्न यह त्रिकाली भाव है। उसको मानना, इसका नाम मिथ्यात्व का नाश और समकित की उत्पत्ति है, लो! आहा.! समझ में आया इसमें? लाभुभाई! कभी यह सुना नहीं होगा, ऐसा है लो यह। अपने आप पढ़ने जाए तो समझ में आये, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो महँगी वस्तु है, ऐसा बताने के लिये बात चलती है। समझता है तो वह स्वयं से समझता है। आहाहा! कितनी बात।

'**सर्वस्मात् नियतस्वभावभवनज्ञानात् विभक्तः भवन्**' देखो! ऐसी तो (बात) की है। '**ज्ञानात् विभक्तः**' ऐसा कहा न? पाठ ही ऐसा है, लो न। ऐई! हिम्मतभाई! पाठ ही ऐसा है, देखो! '**सर्वस्मान्नियतस्वभाव**' अर्थात् पर। उसका भवन, उसका जो ज्ञान, उससे विभक्त भवन। पाठ ही ऐसा है। आहाहा! गजब परन्तु यह। जयचन्दजी ने उसमें ऐसा अर्थ नहीं किया, हों!

श्रोता : परपदार्थ की बात...

पूज्य गुरुदेवश्री : परपदार्थ की बात की है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहा न '**सर्वस्मात् नियतस्वभावभवनज्ञानात् विभक्तः भवन्**' ऐसा कहा है न? अर्थ बराबर किया है। ओहोहो! राजमल पाण्डे परन्तु... 'पाण्डे राजमल जिनधर्मी समयसार नाटक के मर्मी।' आहाहा! देखो न! यह शब्द अन्दर पड़ा है, इसका अर्थ किया है,

हों! उसमें भी ऐसा था। समझ में आया? वह ऐसा था, **'विश्रान्त परभावभावकलनान्नित्यं बहिर्वस्तुषु'** समझ में आया? अर्थात् उसमें से फिर अन्तिम शब्द में से सब निकाला है। समझ में आया? तीसरे में। आहाहा! तब उसमें से पहले निकाला न? इसमें यह शब्द पड़ा है, इसलिए उसमें से वह ज्ञान की पर्याय निकाली है, उसमें-एकान्त में।

श्रोता : विभक्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसमें एकत्व कहा, किसके साथ? अर्थात् उस विभक्त में से वह एकत्व निकाल डाला। ऐसा मेरा कहने का (आशय) है।

जब ज्ञान की एक समय की पर्याय पर को जाननेरूप है, इतना माने, वह परभाव को अपना मानता है और ज्ञानी एक समय की ज्ञान की पर्याय, वह विभक्त पूर्ण को मानता है, इसलिए समकिती अनेकान्त है। इस पाठ से यह शैली खड़ी होती है। समझ में आया? ओहोहो! अंशबुद्धि नहीं, द्रव्यबुद्धि नहीं, उसमें फिर पर्याय का परिणमन भले हो। समझ में आया? कहो, जुगराजजी! ऐसा मार्ग है। यह तो मन्दिर बनाओ, उपाश्रय बनाओ, सामायिक-प्रौषध करना, प्रतिक्रमण करना, अपवास करना, धर्म हो गया, लो। हो गया।

दिगम्बर लोग अरे! भगवान! तेरे घर में वस्तु पड़ी है, भाई! उसको तो वस्तु ही नहीं है। वहाँ तो शास्त्र में भी ऐसी बात नहीं है। यह तो शास्त्र में ये बातें परम्परा सर्वज्ञ भगवान ने कही हुई बात पड़ी है। ऐई! रतिभाई! समझ में आया या नहीं? धीरे-धीरे। यह हवाफेर आया। परन्तु यह समझ में आती है या नहीं, ऐसा कहना है यहाँ तो। आहाहा!

कहते हैं, देखो! पूरे श्लोक का सार कि वस्तु का - पदार्थ का अनन्त-अनन्त शक्तिरूप स्वभाव है। आत्मा है न, वस्तु है न? और वस्तु है, उसकी गुण शक्ति के माप का क्या कहना? जिसका स्वभाव है, स्वभाव है, स्वभाव है, उसका क्या कहना? वह तो अनन्त-अनन्त शक्ति का सामर्थ्य है। स्वभाव को हद क्या होगी? ऐसा एक-एक गुण अनन्त शक्ति का पिण्ड प्रभु आत्मा, उसे एक समय की दशा में पर की आकृति की शक्तिरूप परिणमित ज्ञान, वह तो तुच्छ साधारण बात है। इसलिए उस साधारण दशा में पूरा ऐसा आत्मा मानना, वह मिथ्यात्व है, असद्बुद्धि है। सत्स्वरूप भगवान पूरा स्वभाव तो पड़ा रहा और अनन्त ऐसा स्वभाव पूर्ण प्रतीति में दृढ़ता में लेकर और पर्याय एक समय की हुई, उसे जाने, यह तो अनेकान्त है। आहाहा! समझ में आया?

कितने ही कहते हैं न, वहाँ सामायिक नहीं, प्रतिक्रमण नहीं, प्रौषध नहीं। ऐई!

...भाई! कहते हैं या नहीं? क्यों प्रेमचन्दभाई! अरे! भगवान! सुन तो सही, प्रभु! सम्यक्-समभावरूपी सम्यक् दृष्टि। वह समभावरूपी सम्यक् दृष्टि किसे कहा जाता है, वह इसे खबर नहीं है। एक समकितरूपी सामायिक कही जाती है। वह सम्यक् सामायिक-सम्यग्दर्शन सामायिक; एक सम्यक् ज्ञान सामायिक; पश्चात् चारित्र का-आंशिक सामायिक... और उसमें पहली सम्यग्दर्शन सामायिक किसे कहना, इसकी बात चलती है। समझ में आया? जुगराजजी! ऐसा आता है। अनुयोगद्वार में आने पर। भाई! हम कहते थे, तब बात करते थे। यहाँ तो चार बोल हैं। यह चार प्रकार की सामायिक आती है। सम्यग्दर्शन सामायिक अनुयोगद्वार में आती है। अनुयोगद्वार तो पूरा बहुत पढ़ा है न। एक सम्यग्दर्शन सामायिक आती है, सम्यग्ज्ञान सामायिक पश्चात् आंशिक स्थिरता, वह सामायिक; पश्चात् सर्वविशुद्ध स्थिरता वह सामायिक। इस सामायिक के चार (प्रकार)। अभी पहली सामायिक का ठिकाना नहीं और यह सामायिक कहाँ से लाये? तब भड़कते अवश्य थे। समझ में आया? अनुयोगद्वार में आता है। (संवत्) १९८५-८६ वर्ष में। अनुयोगद्वार का बहुत घोलन चलता था। सवेरे उठकर दो-दो घण्टे। दो घण्टे पहले उठते। दो घण्टे में पूरा अनुयोगद्वार अन्दर पर्यटन हो जाए। अमरेली में प्रेमचन्दभाई का मकान था। प्रेमचन्द खारा की धर्मशाला, वहाँ उतरे थे। समझ में आया? आहाहा!

यह सम्यग्दर्शन सामायिक किसे कहना, इसकी यह बात चलती है और मिथ्यादर्शन विभ्रम, विषम मिथ्यात्वभाव किसे कहना, उसकी बात चलती है। भगवान आत्मा परम सत् साहेब, पूर्णानन्द की शक्ति का सत्व, एक समय में अनन्त ऐसे गुण के महान स्वभाव ऊपर सन्मुख दृष्टि नहीं और एक समय की पर्याय के अंश पर जिसकी दृष्टि है, उसे मिथ्यात्व के भाव का पाप का लाभ होता है। वह ऐसे बैठा हो - णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं (करता हो) तो भी वह मिथ्यादृष्टि पाप का लाभ करता है। जुगराजजी! आहाहा!

धर्मी लड़ाई की क्रिया में खड़ा होता है, लड़ाई की क्रिया में खड़ा दिखता है तो भी उसकी पूर्णानन्दस्वभाव के ऊपर ही उसकी प्रतीति और दृढ़ श्रद्धा है। एक समय के अंश जितना मैं नहीं। - ऐसे पूर्णानन्द गुण के भाव पर जिसकी प्रतीति का जोर वर्तता है, उसे उस समय सम्यग्दर्शन सामायिक वर्तती है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? लो, यहाँ दो बातें की, लो! गजब बात, भाई! लोग तो परन्तु... अकेले अमृत को घोंटा है। ओहोहो! लोग ऐसा नहीं कहते कि धर्म को अधर्म माने, वह मिथ्यात्व। अधर्म को धर्म माने, वह मिथ्यात्व। वह बात करते हैं यह।

श्रोता : यह अर्थ अलग...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अर्थ अलग। उसे भान कब था। वहाँ बोल जाए पच्चीस मिथ्यात्व के बोल। भगवानभाई! यह ७५ वर्ष पुराने व्यक्ति है न, वहाँ सब सीख जाए, फिर शाम-सबेरे बोले णमो अरिहंताणं.. णमो अरिहंताणं... मिच्छामि दुक्कडं... मिच्छामि दुक्कडं जाओ। परन्तु किसका मिथ्या? सत्य क्या है कि तुझे मिथ्यात्व लगा? सत्य क्या है कि जो मिथ्या अर्थात् खोटा लगा? समझ में आया?

एक समय का भगवान पूर्ण आनन्दादि पूर्ण शक्ति का पिण्ड प्रभु सत् है। उसकी प्रतीति अनुभव करके पर्याय में समता प्रगट करना, इसका नाम धर्म और सत्य का आदर किया कहलाता है। एक समय की दशा का भी आदर करे, मैं पूर्ण हूँ, तो भी कहता है यह मिथ्यादृष्टि का भाव, वह भले त्यागी, मुनि होकर बैठा हो, बाहर में हिंसा-विंसा के परिणाम कदाचित न दिखते हों, परन्तु अन्दर में एक समय की आकृति पर की शक्तिरूप परिणमित ज्ञान की दशा का ही जहाँ लक्ष्य है, पूरी चीज़ ही अनन्त गुण का पिण्ड, उसकी दृष्टि नहीं तो कहते हैं कि वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ असंयमी, अचारित्री और मिथ्यादृष्टि है। कहो, बराबर होगा? लो, सलंग में १५८ हुआ। ऐसे सलंग में बारह हुई। अस्ति की व्याख्या की। अब, परभाव की नास्ति का श्लोक आयेगा.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१३ **श्री समयसार कलश टीका, कलश - २१६, प्रवचन - २४०**
दिनांक - २४-०२-१९७८

कलश टीका २१६। है न?

(मन्दाक्रान्ता)

शुद्धद्रव्यस्वरसभवनात्किं स्वभावस्य शेष–
मन्यद्द्रव्यं भवति यदि वा तस्य किं स्यात्स्वभावः।
ज्योत्स्नारूपं स्नपयति भुवं नैव तस्यास्ति भूमि–
र्ज्ञानं ज्ञेयं कलयति सदा ज्ञेयमस्यास्ति नैव।।२१६।।

क्या कहते हैं? देखो! **'सदा ज्ञानं ज्ञेयं कलयति अस्य ज्ञेयं न अस्ति एव'** आत्मा स्वरूप से सर्वज्ञ परमात्मस्वरूप है। आत्मा सर्वज्ञस्वभावी परमात्मस्वरूप है। वह पर को जानता है, कहते हैं। **सर्व काल ज्ञान अर्थात् अर्थग्रहणशक्ति...** उसका स्वभाव तो पदार्थ को जानन (वह है)। ग्रहण अर्थात् जानना। अर्थग्रहण — स्व और पर, ऐसे अर्थ का ग्रहण। पदार्थ का जानना उसकी शक्ति है। आहाहा!

भगवान आत्मा तो सर्वज्ञस्वभावी प्रभु, उसे तो स्व और पर पदार्थ को जानने की शक्ति है। आहाहा! पर का कुछ करना, वह तो है नहीं। पर को जानना, इससे ज्ञान की पर्याय का जो अस्तित्व है, उसका अंश कहीं ज्ञेय की ओर अन्दर जाता है? ज्ञानस्वरूप जो अस्तित्व सत्ता है, ज्ञानस्वभावी, सर्वज्ञस्वभावी परमात्मा स्वयं, ऐसी उसकी सत्ता का सिद्ध होना, उसकी सत्ता का कोई अंश जानने के पदार्थ में प्रविष्ट होता है? समझ में आया? आहाहा!

अर्थग्रहणशक्ति... ज्ञेय के दो प्रकार। **स्वपरसम्बन्धी समस्त ज्ञेय वस्तु को...** स्व भी ज्ञेय। आहाहा! ज्ञान की पर्याय में जानने की शक्ति है, वह स्व अर्थात् ज्ञायकभाव परिपूर्ण प्रभु को भी जाने। और स्वयं से परज्ञेय है, उसे जानने का स्वभाव अपना है। उसे जानता है, ऐसा कहना, वह व्यवहार है परन्तु स्वयं स्व-पर को जाने, ऐसे उसके अस्तित्व की पर्याय का

स्वभाव है। ज्ञेय जानता है, इसलिए यहाँ ज्ञेय का ज्ञान है, ऐसा नहीं है। ज्ञान उसे जानता है, इसलिए ज्ञेय ज्ञान में आ जाता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब, भाई! है?

एक समय में द्रव्य-गुण-पर्यायभेदयुक्त जैसी है, उस प्रकार जानता है। ज्ञान का स्वभाव ऐसा है कि पर्याय में भी ऐसा स्वभाव है कि स्व और पर जो पदार्थ है, उसे एक समय में, अपने द्रव्य-गुण-पर्याय और पर के द्रव्य-गुण-पर्याय दोनों को एक समय में जाने ऐसा उसका स्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? **एक समय में द्रव्य-गुण-पर्यायभेदयुक्त...** वापस, ऐसा। प्रत्येक द्रव्य, द्रव्यरूप से; गुण, गुणरूप से है; पर्याय, पर्यायरूप से है ऐसा भेद जैसा है, उस प्रकार से जाने। अस्तिरूप से-सत्तारूप से सिद्ध हुआ है, वह स्व और पर को जानना... आहाहा!

अन्दर तो भगवान सर्वज्ञ परमात्मस्वरूप है, यह आत्मा। ज्ञ-स्वभावी परमात्मस्वरूप है। वह सर्व इसमें आया है, इसलिए जरा स्व और पर इकट्ठे इसमें डाले। समझ में आया? पर और स्व को जानने की सत्ता में रहकर, अपने जानने के अस्तित्व में रहकर, अपने जानने की मौजूदगी में रहकर द्रव्य-गुण में प्रवेश नहीं करता और द्रव्य-गुण को जानता है। हैं?

श्रोता : किस आत्मा की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस आत्मा की बात अन्दर तुम्हारा है उसकी। सेठ! इसलिए पहले कहा न कि प्रत्येक आत्मा सर्वज्ञ परमात्मस्वरूप ही है। आहाहा! अरे! कैसे इसे जँचे?

स्व और पर को परिपूर्ण रीति से जाने, ऐसा ही इसका सर्वज्ञस्वभाव स्वरूप है। यह प्रत्येक आत्मा की बात है। अरे! इसने देखा नहीं। पर्याय जो है, स्व और पर का जैसा-जैसा जितना स्वरूप, वैसा उसका वह बराबर जाने। आहाहा! एक समय में जाने, यहाँ लिया है। भले श्रुतज्ञान हो परन्तु एक समय में जानने की इसकी ताकत है। आहाहा! अपने स्वभाव के अतिरिक्त परद्रव्य का कुछ करना, एक पर्याय का बदलना, इसमें नहीं है। आहाहा! यहाँ तो यह कहेंगे। दृष्टान्त देंगे।

ज्ञान के सम्बन्ध से ज्ञेय वस्तु ज्ञान से सम्बन्धरूप नहीं है। यह क्या कहा? जो जाननेयोग्य पदार्थ है, अरे! स्व और पर दोनों। आहाहा! उस **ज्ञान के सम्बन्ध से ज्ञेय वस्तु ज्ञान से सम्बन्धरूप नहीं है।** आहाहा! ज्ञेय तो दो प्रकार से कहे न? हैं?

श्रोता : पर के साथ सम्बन्ध नहीं, पर्याय के साथ तो सम्बन्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ यह नहीं। स्व-पर को साथ में जानता है, दोपहर में ऐसा आया था।

श्रोता : अपने में तन्मय होकर नहीं जानता।

पूज्य गुरुदेवश्री : तन्मय है नहीं, भिन्न ही है पर्याय। बहुत सूक्ष्म बातें, बापू!

श्रोता : प्रदेश से तो तन्मय है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह प्रदेश भी भिन्न है और भाव भी भिन्न है।

यहाँ तो उसे जानने की पर्याय का स्वभाव सर्वज्ञस्वभावी तो शक्ति है, स्वभाव है परन्तु पर्याय में सर्व जानना, ऐसा पर्याय का स्वभाव है। वह जानना, ऐसी पर्याय की सत्ता में स्व द्रव्य-गुण-पर्याय स्वयं। पर्याय, पर्याय को जानती है वह तो छूकर-स्पर्शकर परन्तु द्रव्य-गुण और दूसरे के द्रव्य-गुण-पर्याय की सत्ता को जानने पर वह पर्याय उसरूप / पररूप नहीं होती। आहाहा! ज्ञेय तो यहाँ दो प्रकार के कहे न? हें? क्या कहा? **स्वपरसम्बन्धी समस्त ज्ञेय...** ऐसा लिया न? आहाहा! भगवान आत्मा सर्वज्ञ प्रभु है। आहाहा! वह तो त्रिकाली स्वभाव, उसका परमात्मस्वरूप ही है। उसकी दृष्टि करने पर, उस सर्वज्ञस्वभाव की दृष्टि करने पर दृष्टि में वह ज्ञेय आता नहीं, परन्तु ज्ञेय का जितना सामर्थ्य है, उतना ज्ञान की पर्याय में आ जाता है, अत: वास्तव में तो ज्ञान की पर्याय स्व-पर जानने की है, उस ज्ञान की अवस्था को इसका द्रव्य-गुण का सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! वह वर्तमान ज्ञान की पर्याय अपने द्रव्य-गुण को जाने, तथापि वह पर्याय ज्ञेय के साथ सम्बन्धरूप नहीं है। सूक्ष्म बात है, बापू! यह तो मार्ग बहुत सूक्ष्म, प्रभु! आहाहा! एक समय की पर्याय के समीप में प्रभु विराजता है। एक समय की पर्याय के पास-पास—साथ में भगवान विराजता है। आहा! उसका इसने दर्शन नहीं किया। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि उस पर्याय का स्वभाव ही ऐसा है। उस ज्ञान की सत्ता को सिद्ध करने पर उसके स्वभाव का स्वरूप ही ऐसा है कि स्वज्ञेय और परज्ञेय को अपने में रहकर पर के साथ सम्बन्ध बिना जानना, उसका स्वरूप है। धीरे से समझना। यह तो अन्तिम श्लोक है और बहुत ऊँचे हैं। 'सर्वविशुद्धज्ञान' है यह। आहाहा! अरे! दृष्टान्त आयेगा।

श्रोता : इसका नाम ज्ञायक ही पड़ा है...

पूज्य गुरुदेवश्री : जानता है, कहा न, पर्याय जानती है। किसे जानती है? - कि स्व और पर दोनों को। जानने की पर्याय स्व-पर दोनों को जानती है, वह ज्ञायक है। द्रव्य-गुण तो ज्ञायक है, परन्तु पर्याय भी ज्ञायक है। चन्दुभाई! ऐसा है जरा। आहाहा! भगवान बड़ा समुद्र, गम्भीर सागर अन्दर पड़ा है। आहाहा! ऐसा होने पर भी वह स्वज्ञेय है, उसे भी पर्याय जानती

है। अर्थग्रहण आया न? अर्थग्रहण अर्थात् अर्थ अर्थात् पदार्थ को जानना, ऐसी शक्ति। एक बात। अब अर्थ दो प्रकार के —स्व और पर। इन दो को जानने की पर्याय में ताकत, ज्ञायक की पर्याय में ताकत है। आहाहा! हें?

श्रोता : स्व और पर को जाने तो स्व में कितना द्रव्य?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्व में पूरा द्रव्य-गुण सब लेना। कहा न यह? तथापि उस ज्ञेय और ज्ञान को सम्बन्ध नहीं है। उस ज्ञान को और ज्ञेय को सम्बन्ध नहीं है अर्थात् ज्ञान ज्ञेयरूप नहीं हुआ। तथा वह ज्ञेय द्रव्य-गुण है, वह ज्ञान की पर्याय में नहीं आये। आहाहा! उस सम्बन्धी का ज्ञान आया परन्तु वह चीज़ जो द्रव्य-गुण है, जानने की पर्याय में द्रव्य-गुण नहीं आये तथा परवस्तु को जानने पर वह तो चैतन्य की सत्ता के स्वभाव का अस्तित्व सिद्ध हुआ। उसमें परवस्तु ज्ञेय यहाँ आयी है, ऐसा नहीं है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म, बापू! तत्त्व ही अलौकिक है। आहाहा!

श्रोता : स्व को जाने और पर को तो परज्ञेयरूप से जानता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों को जानता है। स्व को स्व रूप से, पर को पर रूप से। पर्याय दोनों को जानती है। अर्थग्रहणशक्ति कही न? तो अर्थग्रहणशक्ति में ज्ञेय दो प्रकार से कहे। ऐसा कहा? है? **स्वपरसम्बन्धी समस्त ज्ञेय वस्तु...** ऐसा कहा न? या पर ही कहा? सूक्ष्म बात है, भाई! यह मार्ग तो अलौकिक है। आहाहा!

ध्रुव है, वह जानने का कार्य नहीं करता। शक्ति है उसकी, परन्तु जानने का कार्य जिस सत्ता में होता है, उस सत्ता की पर्याय-अस्तित्व स्व और पर दोनों पदार्थों को बराबर जानती है, तथापि उस ज्ञेयरूप वह ज्ञान की पर्याय नहीं होती। अर्थात्? जानने की पर्याय द्रव्य-गुण को जानती है तो भी द्रव्य-गुण की नहीं होती। जानने की पर्याय पर को जानती है तो भी वह पर्याय पर की नहीं होती। अरे! ऐसी बातें हैं। चिमनभाई! सूक्ष्म बातें, बापू! यह तो मार्ग...

प्रभु साक्षात् सर्वज्ञ परमात्मा विराजमान हैं। प्रभु स्वयं सर्वज्ञ परमात्मा देवाधिदेव! आहाहा! स्वयं देवाधिदेव है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह तो पहले आया था। कहा न (संवत्) १९६३ के वर्ष में। 'तूं ही देवनो देव छो।' १९६३ के वर्ष में। आहाहा! सब विवाह में गये थे और मैं तथा नौकर दो रहे थे। दो दुकानें थीं। दो व्यक्ति कहाँ बैठे? दुकान बन्द रखें परन्तु ध्यान रखते। दुकान के सामने बड़ी रामलीला आयी थी। वह लीला देखने गये, उसमें यह (आया) प्रभु! तू कौन है? 'शिवरमणी रमनार तू, तू ही देव का देव तू है।'

कितने वर्ष हुए ? ६३, ६३। कितने वर्ष हुए ? ६३, ६३। तुम्हारे जन्म के पहले। आहाहा! 'तू ही देव का देव' ऐसा आया था। और यह स्त्री का रमण तुझे न हो। तू तो शिवरमणी रमनेवाला है न, प्रभु! यह क्या है यह ? ऐसा अन्दर से आया था। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! ओहोहो! इसे ज्ञान की वर्तमान पर्याय की जानने की ताकत, स्व और परज्ञेयों को जानने की ताकत, ऐसा कहा है न ? या पर को जानने का अकेला नहीं लिया। और ज्ञेय दो प्रकार के लिये हैं—स्व और पर। आहाहा! वह पर्याय पर्याय को जाने, पर्याय द्रव्य-गुण को जाने, पर्याय परद्रव्य-गुण को जाने तो भी परद्रव्य-गुणरूप और स्व के द्रव्य गुणरूप वह पर्याय नहीं होती। आहाहा! ज्ञेयरूप से वह ज्ञान की पर्याय नहीं होती, इसका अर्थ क्या हुआ ? कि स्वज्ञेयरूप भी, पर्याय स्वज्ञेय है, वह पर्यायरूप हुई है, परन्तु द्रव्य-गुणरूप पर्याय नहीं होती। आहाहा! बापू! मार्ग बहुत, जन्म-मरण के अन्त की बातें बहुत सूक्ष्म, भाई! अनन्त काल से इसे यह बात अन्दर बैठी नहीं है। आहाहा!

इस राग को जानने पर रागरूप होकर जाना नहीं, ज्ञानरूप रहकर राग को जानता है, तो उस ज्ञेयरूप ज्ञान हुआ नहीं और वह ज्ञेय-राग वह ज्ञानरूप आया नहीं। आहाहा! व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प उठता है, उसे ज्ञान की पर्याय परज्ञेयरूप से जानती है, तथापि उस जानने की पर्याय का अंश उस राग के ज्ञेय में गया नहीं। तथा उस राग का अंश है, वह यहाँ ज्ञात हुआ है, वह ज्ञात हुआ है, वह तो उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान, उस ज्ञान में कहीं राग आया नहीं, ज्ञेय का अंश यहाँ आया नहीं। आहाहा!

श्रोता : ज्ञानी की बात है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो ज्ञानी की बात है, वस्तु के स्वभाव की बात है। वस्तु का स्वभाव ऐसा है। माने अज्ञानी चाहे जिस प्रकार। समझ में आया ? आहाहा!

श्रोता : अपने आनन्दस्वभाव में आनन्द की पर्याय को क्या कहोगे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द की पर्याय भी पररूप से ज्ञेय है।

श्रोता : परज्ञेय रूप से ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, है न ?

श्रोता : द्रव्य, गुण और पर्याय...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह अपनी पर्याय के अतिरिक्त सब पर्याय परज्ञेयरूप से है।

आहाहा! बहुत सूक्ष्म पड़ेगा। आहाहा! उसका अस्तित्व कितना और कैसा है और कैसे है, यह बात है। क्या कहा?

'सदा' अर्थात् **सर्व काल... 'ज्ञानं'** अर्थात् **अर्थग्रहणशक्ति...** अर्थ अर्थात् पदार्थ को जानने की शक्ति। देखो! ग्रहण का अर्थ जानना। भाई ने कहा है न कि व्यवहार को ग्रहण करना अर्थात् कि जानना। मोक्षमार्गप्रकाशक, सातवाँ अधिकार। यह अर्थग्रहणशक्ति ज्ञान, यह ज्ञान की व्याख्या की। अब ज्ञेय? **स्वपरसम्बन्धी समस्त ज्ञेय वस्तु...** यह ज्ञेय की व्याख्या की। आहाहा! **एक समय में द्रव्य-गुण-पर्यायभेदयुक्त जैसी है, उस प्रकार जानता है।** आहाहा! यह तो नियमसार में आगे नहीं आया यह? निश्चय से ज्ञान अपने को जानता है और निश्चय से पर जो गुण हैं, उन्हें भी जानता है। यह निश्चय से कहने में आता है, स्व के हैं इसलिए। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अमृत का सागर भगवान पूरा स्थित है, परन्तु जिसे कहते हैं कि उसे जाना... आहाहा! वह जानने की पर्याय स्वयं ज्ञेयरूप, स्व और पर ज्ञेयरूप नहीं होती, तथापि वह जाने बिना नहीं रहती, तथापि उस ज्ञेय का अंश ज्ञान में आता नहीं और ज्ञान का अंश ज्ञेय में जाता नहीं। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। अब यहाँ तो अभी बाहर में तूफान... यह किया और यह किया और यह किया... आहाहा! विपरीत मान्यता, कहते हैं, वस्तु के स्वरूप से विपरीत है।

सम्बन्धरूप नहीं है। 'एव' है? **'एव' निश्चय से ऐसा ही है। 'एव'** अर्थात् निश्चय। **निश्चय से ऐसा ही है।** आहाहा! **दृष्टान्त कहते हैं – 'ज्योत्स्नारूपं भुवं स्नपयतिं तस्य भूमिः न अस्ति एव' चन्द्रिका का प्रसार...** यह चन्द्र, चन्द्र की चाँदनी के प्रकाश का प्रसार **भूमि को श्वेत करता है। एक विशेष – ज्योत्स्ना के प्रसार के सम्बन्ध से भूमि ज्योत्स्नारूप नहीं होती।** चाँदनी के प्रकाश से भूमि चाँदनीरूप हुई नहीं तथा चाँदनी का प्रकाश भूमिरूप हुआ नहीं। आहाहा! तथा चाँदनी का प्रकाश भूमि को स्पर्शा-छुआ नहीं।

श्रोता : श्वेत करता है, ऐसा तो लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोग देखते हैं, इस अपेक्षा से कहा है। यह तो अन्दर पहले आया था। लोग ऐसा कहते हैं न, देखो! यह सफेद हुआ। परन्तु क्या सफेद हुआ? सफेद तो चाँदनी हुई है। सफेद पृथ्वी हुई नहीं। आहाहा! सफेदरूप का परिणमन का अस्तित्व वह तो सफेदरूप स्वयं चाँदनी है, वह हुई है। वह चाँदनी पृथ्वी को सफेद करती है, ऐसा कहना, वह तो व्यवहार का कथन है। पृथ्वी चाँदनीरूप हुई नहीं। चाँदनी पृथ्वीरूप हुई नहीं। प्रत्येक

अपने अस्तित्व में-सत्ता में रहे हुए हैं। प्रकाश पर को करता है, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। आहाहा! है? क्या कहा?

श्रोता : कलई के दृष्टान्त से कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कलई... कलई का दृष्टान्त... कलई दीवार को स्पर्श नहीं करती। कलई, कलई में रहकर सफेदरूप पसरती है। उस दीवार को कलई ने सफेद नहीं किया तथा दीवार सफेदरूप हुई नहीं अर्थात् सफेद की अवस्था में दीवार आयी नहीं। आहाहा! ऐसा है। मूल तत्त्व दृष्टि का विषय बहुत सूक्ष्म है। यह विषय अभी पूरा पड़ा रहा। बाहर में सब हालमहोल... आहाहा! अरेरे! ऐसी जिन्दगी मिली और ऐसा मनुष्यपना (मिला), उसमें वास्तविक तत्त्व की व्यवस्था और अवस्था, उसका ज्ञान यथार्थ न हो तो इसके जन्म-मरण नहीं मिटेंगे। आहाहा! क्या?

श्रोता : सबको लागू पड़े ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको लागू पड़े। न समझे उसे (सबको)। आहाहा! कहा? श्रीमद् ने यह दृष्टान्त दिया है, उनकी पुस्तक में।

चाँदनी का प्रकाश पृथ्वी को सफेद करता है, ऐसा कहना तो निमित्त का कथन है। चाँदनी पृथ्वी को स्पर्श नहीं करती और पृथ्वी चाँदनी के प्रकाश में आयी नहीं और स्पर्शी नहीं। आहाहा! इसी प्रकार भगवान ज्ञान की पर्याय... आहाहा! ज्ञेय को जानने पर ज्ञेयरूप हुई नहीं, तथा वह ज्ञेय ज्ञानरूप में आया नहीं। आहाहा! वास्तव में तो ज्ञान (जिस ज्ञेय को) जानता है, उस ज्ञेय को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! स्वयं स्वद्रव्य और गुण। आहाहा!

इसकी ज्ञानपर्याय के अतिरिक्त की भी पर्याय हैं, उन्हें भी वह स्पर्श नहीं करता, ऐसा जिसका स्वभाव, चैतन्य का स्व-परप्रकाशक अस्तित्व अनन्त पर्याय को ज्ञेयरूप से ज्ञान जानता है, आहाहा! परन्तु वह पर्याय पर अनन्त पर्यायरूप हुई नहीं और वे अनन्त पर्यायें जो हैं, वे जानने की पर्याय में आयी नहीं। आहाहा!

श्रोता : ज्ञान आनन्द बिना का हो जाएगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्दवाला होता है यहाँ।

श्रोता : एक का रूप दूसरे में आता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक का रूप आता है, यह कहना था। रात्रि में नहीं कहा था? आत्मा में अनन्त सामान्य गुण हैं, अनन्त विशेष गुण हैं। एक गुण का अनन्त में रूप है और

अनन्त गुण का एक गुण में रूप है। आहाहा! दूसरा गुण दूसरे गुण में आता नहीं, परन्तु दूसरे गुण का स्वरूप और रूप, रूप तरीके इसमें होता है। आहाहा! ज्ञानगुण में अस्तित्वगुण आता नहीं, परन्तु अस्तित्वगुण का रूप ज्ञान 'है', वह अपनेरूप है, ऐसा अस्तित्व आता है। आहाहा! और वह ज्ञानगुण अस्तित्व को... आहाहा! अतद्भाव है न? एक गुण, गुण में अतद्भाव है। आहाहा! एक गुण दूसरे गुणरूप नहीं है। सर्व गुण असहाय है। आहाहा! अरे! अरे..! यह तत्त्वज्ञान का विशाल भाव है। है? लोग बाहर से अटक (गये हैं)। यह बात तो समझना नहीं और बाहर से करके जिन्दगी निकाल डालते हैं। आहाहा! व्यक्ति को मनुष्यपना मिला और फिर भी ज्ञायक क्या चीज़ है, उसे अनुभवे-जाने नहीं, तब तो वह मनुष्यपना मिला, नहीं मिला (बराबर है)। पशु को मिला नहीं और इसे मिला है, दोनों व्यर्थ गये। आहाहा!

ध्वजा को पवन स्पर्श नहीं करता और ध्वजा हिलती है। वह हिलती है, वह पवन को स्पर्श नहीं करती, पवन उसे स्पर्श नहीं करता। एक-दूसरे के अभावस्वभावस्वरूप है। आहाहा!

श्रोता : दवा का क्या काम?

पूज्य गुरुदेवश्री : दवा का क्या... धूल भी नहीं होती। दवा, दवा की पर्याय। यह तुम्हारे डॉक्टर का पूछता है। दवा का एक रजकण दूसरे रजकण को स्पर्श नहीं करता। इस दवा का एक रजकण शरीर के रजकण को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! ऐसा तत्त्व है। है? क्या कहते हैं?

श्रोता : दवा खाना या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन खाता है? तुम्हारे तो सामने बहुत दवायें होती हैं। छह लाख का मकान है इनका। वहाँ हमारा आवास था। वह मैं भोजन करके ऐसा घूमता था, जहाँ उसका सोने का था, वहाँ बहुत दवायें पड़ी थीं। छह लाख का रहने का मकान है इन्हें। भाई का अलग है, वह भी बड़ा मकान है, शोभालाल! किसका मकान? बापू! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि मकान को जानता है, ऐसा कहना वह भी व्यवहार है। आहाहा! ज्ञान, ज्ञान को जानता है, उसमें स्पर्शकर-छूकर जानता है, वह ज्ञान। पर को स्पर्श नहीं करता, इसलिए पर को किसप्रकार जाने? परसम्बन्धी का ज्ञान अपना है, उसे वह जानता है। ऐसे कठोर नियम गजब...! आहाहा! लो, कलई ने दीवार को सफेद नहीं किया। अब दृष्ट इष्ट ऐसा बहुत से कहते हैं। दिखता है, उसका तुम निषेध करते हो। अरे..! प्रभु! तू सुन तो सही।

एक पण्डित आया था। (वह कहता है), पानी अग्नि से गर्म होता है, इसका तुम निषेध करते हो। दिखता है सीधा। परन्तु बापू! पानी की पर्याय को अग्नि की पर्याय ने छुआ ही नहीं। आहाहा! कहो, रजनीभाई! ऐसा है। कभी सुना है कहीं? सब धमाधम... आहा! पोपटभाई का पुत्र है। एक बार निकाला था बड़ा... क्या कहलाता है? यात्रा नहीं निकाली थी? कान्तिभाई ध्रांगध्रावाला। आहाहा! थोड़ा पैसा खर्च करे, पाँच-पच्चीस हजार, वहाँ ऐसा हो जाता है कि आहाहा! हमने तो बड़ी यात्रा (निकाली) और धर्म किया। आहाहा! अरे..! यहाँ तो कहते हैं कि पर का तो कर सकता नहीं परन्तु पर को जानने में पर है, इसलिए ज्ञान जानता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा!

श्रोता : पर को जानता तो है...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर को जानता है अर्थात् उस सम्बन्धी का ज्ञान (हुआ) इसलिए जानता है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! बाकी ज्ञान, ज्ञान को जानता है। आहाहा! जिसे स्पर्शकर जाने, उसे जाना कहा जाता है। पर को स्पर्शकर नहीं जानता, इसलिए पर को निश्चय से वास्तव में नहीं जानता। ऐसा भेद, ज्ञान है। सूक्ष्म बात। आहाहा!

ज्योत्स्ना के प्रसार के सम्बन्ध से भूमि ज्योत्स्नारूप नहीं होती। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार ज्योत्स्ना फैलती है,... सफेद होती है। **समस्त भूमि श्वेत होती है, तथापि ज्योत्स्ना का भमिका सम्बन्ध नहीं...** सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! चाँदनी की सफेद पर्याय को और पृथ्वी को दो को सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

श्रोता : पृथ्वी सफेद हुई तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ की है? यह तो बताया, यह लोग कहते हैं। सफेद स्वयं अपनेरूप के अस्तित्व में सफेद हुई है। वह पृथ्वी के अस्तित्व में सफेद नहीं हुई। अपना अस्तित्व वहाँ जरा भी गया है? आहाहा! चाँदनी का सफेदी का अस्तित्व, वह पृथ्वी के अस्तित्व में वह सफेदपना गया है? आहाहा! ऐसा है। धीरे से समझे नहीं, सुने नहीं और फिर यह... एकान्त है, एकान्त है, एकान्त है - ऐसा कहे। निश्चय को ही मानते हैं, व्यवहार को (मानते नहीं)। परन्तु व्यवहार अर्थात् क्या? यह पर को सफेद करे, ऐसा जानना, वह व्यवहार। परन्तु वह व्यवहार अभूतार्थ-झूठा है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। है?

तथापि ज्योत्स्ना का भूमिका सम्बन्ध नहीं उसी प्रकार ज्ञान समस्त ज्ञेय को जानता है... समस्त ज्ञेय लिये न? स्व-पर सबको। **तथापि ज्योत्स्ना का भूमिका सम्बन्ध नहीं...**

आहाहा! जाननहार पर्याय... आहाहा! उसकी ताकत तो देखो! अपने द्रव्य-गुण को जाने तो भी उसके साथ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! अपने अतिरिक्त अनन्त पर्यायें हैं, उन्हें जाने तो भी उनके साथ सम्बन्ध क्या? स्वतन्त्र पर्याय है, वहाँ उसे पर के साथ सम्बन्ध क्या? आहाहा! चन्दुभाई! आहाहा! क्योंकि एक समय की ज्ञान की पर्याय में षट्कारक स्वयं अपने से हुए हैं। आहाहा! वह द्रव्य-गुण के कारण नहीं, दूसरी पर्याय के कारण नहीं। आहाहा! भगवान एक समय के ज्ञान की दशा वह स्वयं ही कर्ता है, वह ज्ञान की दशा, वह कर्म / कार्य है, वही साधन है, उससे-पर्याय से पर्याय हुई है, पर्याय होकर पर्याय में रखी है, पर्याय के आधार से पर्याय हुई है। आहाहा! जिसे द्रव्य और गुण की भी अपेक्षा नहीं है। आहाहा!

इसी प्रकार अज्ञानी यहाँ पर में सुखबुद्धि मानता है... आहाहा! वह तो मिथ्याभ्रम है परन्तु उसे जानता है, ऐसा कहना वह भी ज्ञान कहीं पर के ज्ञेय में स्पर्शा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। वहाँ टाईल्स-फाईल्स में कहीं मिले ऐसा नहीं है। इनको बीड़ी का बड़ा तूफान है। तम्बाकू के बड़े भरे हुए... क्या कहलाते हैं? बड़े गोदाम, उसकी पूरी लाईन है। परन्तु किसके? वह चीज़ कहाँ इसकी है? इसने कहाँ भरा है और रखा है? आहाहा! उसे जानता है, ऐसा कहना वह भी वह ज्ञान कहीं पर में प्रविष्ट नहीं है कि जाने है। आहाहा! आहाहा! तत्त्वज्ञान का विषय बहुत कम हो गया, फेरफार (हो गया) इसलिए लोगों को यह ऐसा लगता है कि यह क्या परन्तु ऐसा? हमें क्या करना, इसमें सूझ पड़ती नहीं। तुझे करना क्या है? तू कौन है? उसे यथार्थ रीति से जानना, यह करना है। आहाहा!

ज्योत्स्ना का भूमि का सम्बन्ध नहीं उसी प्रकार ज्ञान समस्त ज्ञेय को जानता है तथापि ज्ञान का ज्ञेय का सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! एक ओर स्व-पर ज्ञेय कहे, एक ओर स्व-पर ज्ञेय को भी ज्ञान जाने, तथापि स्पर्श नहीं करता। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : ज्ञान और आत्मा का सम्बन्ध ही न रहे तो आत्मा में जड़पना हो जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्बन्ध है ही नहीं, भिन्न चीज़ है। पर्याय का सम्बन्ध और द्रव्य-गुण का भिन्न सम्बन्ध है, अतद्भाव है। पर्याय में द्रव्य-गुण नहीं और द्रव्य-गुण में पर्याय नहीं। अतद्भावरूप से अन्य है, अन्यत्वरूप से अन्य नहीं। अन्यत्वरूप से अभाव नहीं। अतद्भावरूप से अभाव है। आहाहा! प्रवचनसार में आता है। आहाहा! ज्ञान की पर्याय का इतना स्वभाव है, इतना स्वभाव है कि वह पर्याय इतनी ही है, ऐसा कहें तो भी बस... आहाहा! क्योंकि उस पर्याय में अनन्त पर्याय का, अनन्त द्रव्य का, गुण का और यहाँ का सब ज्ञान एक समय की पर्याय में आ जाता है। वह ज्ञान, हों! वह ज्ञेय आता नहीं। द्रव्य-गुण यहाँ

आते नहीं। दूसरी पर्यायें, इस पर्याय में आती नहीं, परन्तु पर्याय-जानने की पर्याय... आहाहा! उन सबको जानने पर भी पर की नहीं हुई और पर के साथ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! यह तो वीतराग का मार्ग, बापू! जिनेश्वर-सन्त, दिगम्बर सन्त... आहाहा! परमेश्वर के पुत्र हैं। आहा! गणधर को पुत्र कहा है न! भगवान के पुत्र कहा है। आगम.. क्या कहलाता है वह? धवल.. धवल। धवल, जयधवल में कहा है। आहाहा! लोग कहते हैं न, ईशु परमेश्वर का पुत्र है। ईशु.. ईशु कहते हैं न वे। वह तो सब गप्प है। गणधर आदि हैं, वे सर्वज्ञ के पुत्र हैं। यह भी एक अपेक्षा से। आहाहा!

ज्ञान की एक पर्याय सर्वज्ञ पर्याय को भी... परद्रव्य है न वह? परद्रव्य का सर्वज्ञपना, उसका अनन्त आनन्द, उसकी अनन्त शान्ति, ऐसी पर्याय को, गुण को, द्रव्य को ज्ञान की पर्याय उसे जानती है तो भी उस जानने के अस्तित्व का अंश पर के ज्ञेय को जानने में अस्तित्व का अंश जाता नहीं, तथा पर के अस्तित्व का अंश जानने के ज्ञान में आता नहीं। आहाहा! अस्तित्व का अंश आता नहीं। आहाहा! ऐसा बड़ा भगवान (है), उसे पामररूप से माना है। आहाहा! उसने जीव को मरणतुल्य कर डाला। ऐसा स्वरूप जीवनज्योति, अस्तिधारक ऐसा तत्त्व, उसे ऐसी अस्तिवाला नहीं... आहाहा! और अल्प अस्तिवाला माने, वह तो उसकी अस्ति का इसने मरण कर डाला। आहाहा! है?

(ज्ञान का और) ज्ञेय का सम्बन्ध नहीं है, **ऐसा वस्तु का स्वभाव है।** यह तो वस्तु का ऐसा स्वभाव है, भाई! आहाहा! यह किसी ने किया नहीं और किसी से यह हुआ नहीं। आहाहा! यह वस्तु का ज्ञान की पर्याय का स्वभाव स्व-पर को जाने, तथापि स्व-पर में जाये नहीं और पर इसमें आवे नहीं। आहाहा! ऐसी बातें सूक्ष्म पड़ती है, इसलिए लोग फिर (ऐसा कहते हैं), ऐ... निश्चय है, निश्चय है। परन्तु निश्चय है अर्थात् सत्य है, ऐसा कह। आहाहा!

ऐसा कोई नहीं माने उसके प्रति युक्ति के द्वारा घटित करते हैं... इस प्रकार कोई न माने तो न्याय द्वारा अब उसे सिद्ध करते हैं। **'शुद्धद्रव्यस्वरसभवनात्' शुद्ध द्रव्य अपने अपने स्वभाव में रहता है तो... 'स्वभावस्य शेषं किं'** स्वभाव का कौन सा बाकी शेष (अंश) रहा, वह पर में जाये? आहाहा! **सत्तामात्र वस्तु का क्या बचा?** जब सिद्ध किया कि ज्ञान है, ऐसे अस्तित्व सत्ता सिद्ध की तो उस ज्ञान का अंश पर में जाये तो यहाँ सत्ता सिद्ध हुई, वह रही कहाँ? है? आहाहा! अस्तित्व-ज्ञान का अस्तित्व इतना है कि जो स्व-पर को जानता है। वह स्व-पर को स्पर्शे बिना इतनी सत्ता सिद्ध की, अब वह सत्ता पर में जाये तो इस सत्ता का क्या रहा? सत्ता रही कहाँ? सत्ता बची कहाँ? आहाहा! अपनी सत्ता तो सिद्ध की,

अब वह सत्ता इतनी है, ज्ञान की स्व-पर जानने की सत्ता का अस्तित्व, वह तो सिद्ध किया। अब यदि वह अंश पर में जाये तो यहाँ बाकी क्या रहा ? सत्ता का एक अंश भी पर में जाये तो सत्ता जो पूरी सिद्ध है, उसमें रहा क्या ? बचा क्या ? आहाहा ! बहुत सूक्ष्म। ऐसा तो तुम्हारे कहीं (सुनने को मिलता नहीं होगा)। आहाहा ! पाँच, पचास हजार खर्च करे, पश्चात् यह करे और मानो हो गया धर्म। इस सेठ ने तीन लाख की एक धर्मशाला बनायी है। सागर में (बनायी है)। दूसरे बहुत भी देते हैं परन्तु यह सब क्रियाएँ स्वयं कर सकता है, यह बात ही मिथ्या है, यहाँ तो कहते हैं। सेठ !

श्रोता : आपने ही ऐसा कहा कि धर्मशाला सेठ ने बनायी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा दूसरी क्या होगी ? आहाहा ! इसलिए निर्जरा अधिकार में कहा न ? ज्ञानी सचेत—अचेत को भोगता है, ऐसा तो पाठ यह आया और एक ओर कहते हैं कि पर को भोगता नहीं। परन्तु लोग कहते हैं, उस भाषा से उन्हें समझाते हैं। आहाहा ! आता है न ? धर्मी जीव सम्यग्दृष्टि, सचेत-अचेत को भोगता है तो उसे निर्जरा का हेतु है, ऐसा कहते हैं। सचेत को छूता है, उसे भोगता है ? अचेत को छूता है, उसे भोगता है ? परन्तु दुनिया ऐसा कहती है कि देखो ! यह सचेत को भोगता है, अमुक को भोगता है, यह सब्जी को खाता है, स्त्री को भोगता है, पैसे को भोगता है, बड़े मकान पाँच-पचास लाख के बनाकर यह... झूले में झूलता है। लोग ऐसा मानते हैं, (इसलिए) उस भाषा में बात की है। आहाहा ! अब ऐसी बात समझ में न आवे, इसलिए फिर निकाल डाले, यह तो निश्चय है, एकान्त है, एकान्त है। व्यवहार चाहिए। परन्तु व्यवहार अर्थात् क्या ? वह तो कहनेमात्र व्यवहार है, कथनीमात्र। आगे आयेगा। आहाहा ! नियमसार में आयेगा। व्यवहाररत्नत्रय कथनमात्र है, वह अनन्त बार किया है, कहते हैं। आहाहा ! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत, भक्ति यह तो अनन्त बार किया है। यह नयी चीज़ कहाँ है ? आहाहा !

'स्वभावस्य शेषं किं' क्या कहा ? **शुद्ध द्रव्य अपने-अपने स्वभाव में रहता है तो सत्तामात्र वस्तु का क्या बचा ?** यदि पर में अंश जाये तो सत्ता जो सिद्ध की है, उसमें रहा क्या ? उसका अस्तित्व जिस प्रकार है, वह तो रहा नहीं। आहाहा ! पवन की सत्ता सिद्ध की कि पवन है। एक दृष्टान्त (लेते हैं)। अब उसका अंश यदि ध्वजा में जाये तो यहाँ जो सत्ता भिन्न सिद्ध की, वह रही कहाँ ? ध्वजा को पवन स्पर्श नहीं करता और ध्वजा हिलती है। आहाहा ! जो सत्ता सिद्ध की कि यह वस्तु है, पवन वस्तु है, पानी वस्तु है। अब पानी की सत्ता सिद्ध की, अब उसकी पर्याय में उष्णता आयी, वह अग्नि से आयी तो यहाँ सत्ता जो सिद्ध की

है, उस सत्ता का अंश कहाँ गया? आहाहा! समझ में आया? ऐसी धर्मकथा सूक्ष्म है। आहाहा! है? क्या कहते हैं?

श्रोता : दृष्टि स्थिर हुए बिना भिन्न ज्ञात होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान स्थिर ही है। माना है अस्थिर। यहाँ तो स्थिर की ही बात है। ज्ञानस्वभाव ही उसका ऐसा है। यहाँ तो सिद्ध यह करना है। आहाहा! ज्ञानस्वरूपी भगवान का स्वभाव ही ऐसा है कि स्व-पर को जानना, बस। उस स्व-पर की अपेक्षा से स्व-पर को जाने, ऐसा भी नहीं। आहाहा! उस पर का और स्व का ज्ञान (जो हुआ), वह पर और स्व की अपेक्षा बिना स्वयं से जानता है। उस जानने का अस्तित्व जो है, वह पर की अपेक्षा नहीं रखता। आहाहा! यह तो कल भी सूक्ष्म आया और आज भी सूक्ष्म आया। चन्दुभाई कल बहुत बोले थे, आज आया, ऐसा सब आने देना। वह तो आवे अन्दर से। आहाहा!

श्रोता : दुःख को जानता है, तब तो दुःखी है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। दुःख को जानता कहाँ है? दुःख को स्पर्श नहीं करता न! और दुःख का भाव है, इसलिए यहाँ दुःख का ज्ञान हुआ है, ऐसा भी नहीं है। वह तो ज्ञान का स्वभाव है कि स्व-पर को जाने। वह तो अपनी स्व-पर (प्रकाशक) शक्ति है, वह तो अपनी ताकत है। आहाहा! बहुत कठिन लगे ऐसा। तीन लोक के नाथ ने ऐसी पुकार की है। आहाहा! दिव्यध्वनि द्वारा (ऐसी बात की है) ऐसी वाणी कहाँ है? भाई! आहाहा! ऐसा परमसत्य तो सुनने को मिले, वह भाग्यशाली है। ऐसी बात है, बापू! क्या कहें? क्या कहा यह अन्तिम?

जो कुछ चीज़ की सत्ता सिद्ध की है कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ऐसी सत्ता-अस्तित्व सिद्ध किया है। अब यदि उसका अंश भी पर में जाये तो यह सत्ता है, उसमें रहा क्या? आहाहा! समझ में आया? पर को जानने पर ज्ञान पर में जाये तो अपनी सत्ता जो भिन्न सिद्ध की है, वह सत्ता रही कहाँ? आहाहा! कहो, पण्डितजी! यह लॉजिक से तो बात है। आहाहा! बनिया बाहर के धन्धे में पूरे दिन रचे-पचे (रहते हैं), वह इनकी यह पंतु जैसी भाषा। उसे कुछ नया सीखना है। वह भाव यह, वह भाव यह। वह का वह करे पूरे दिन। नये तर्क उसमें (नहीं आते), वकीलों को तो तर्क करना पड़ते हैं। यह तो वह का वह। इसका यह भाव है और टाईल्स का भाव है और अमुक का भाव है, वह का वह सीखा। पाँच मण चाहिए हो, दस मण चाहिए हो, परन्तु वह के वह शब्द। आहाहा!

हमारे मास्टर थे, हीराचन्द मास्टर। वे ऐसा कहते थे कि हम सब मास्टर पंतु... क्या कहलाता है ? पंतु.. पंतु। पंतु हैं। क्योंकि हमें वह का वह सिखाना, नया कुछ नहीं। पहली पुस्तक में यह, दूसरी में यह। हीराचन्द मास्टर थे। रतिभाई रहते हैं न, उनके पुत्र। रतिभाई वहाँ मुम्बई में रहते हैं। यहाँ मास्टर थे। आहाहा! क्या कहते हैं ?

श्रोता : आप भी भाव बताते हो न!

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बताता है ? ऐसी बातें, बापू! सूक्ष्म, भाई! भाषा भाषा के कारण निकलती है। भाषा को ज्ञान का अंश स्पर्श करता है ? और भाषा का जो अस्तित्व-सत्ता है, उस प्रकार से जो सिद्ध की है कि यह पर्याय भाषा की है, अब उसे ज्ञान के कारण से यह भाषा होती है तो उसकी सत्ता जो सिद्ध की, वह तो रहती नहीं। आहाहा! ऐसा कहीं मिले ऐसा है वहाँ मुम्बई ? रजनीभाई! ऐसी बात है, बहुत फेरफार (हो गया है)। आहाहा!

यह तो वस्तु की स्वयंसिद्ध सत्ता की सिद्धता करनी है। आहाहा! और वह भी यहाँ तो जानने की पर्याय की सत्ता को सिद्ध किया है। आहाहा! स्व-पर को जानने की ताकतवाली वह शक्ति है, उसकी शक्ति का एक अंश पर में-ज्ञेय में जाये तो यहाँ सत्ता का जो सामर्थ्य सिद्ध किया है, वह रहा कहाँ? आहाहा! समझ में आये ऐसा है, हों! भाषा कहीं ऐसी कठिन नहीं है। भाषा तो सादी है। आहाहा! अरे! किसका अभिमान इसे, बापू! आहाहा! थोड़ा बहुत जानपना जहाँ धारणा का हो तो इसे ऐसा हो जाता है कि आहाहा! मानो मैं कुछ बढ़ गया! आहाहा!

यहाँ तो ज्ञान की पर्याय ऐसी, स्व-पर को पूर्ण जाने तो भी उस सत्ता का अभिमान नहीं, क्योंकि वह तो इसका इतना स्वभाव ही है। हैं ? आहाहा! और सर्वज्ञ हो तो भी वह तो जो स्वभाव था, वह स्वभाव आया है, वह कहीं नया नहीं है, वह तो इसका स्वरूप ही-स्वभाव ही है। आहाहा! सर्वज्ञ परमात्मा स्वयं भगवानस्वरूप भगवान है आत्मा। आहाहा! उसकी शक्ति में से व्यक्तता सर्वज्ञ की आयी, वह भी कहीं नवीन बात नहीं है। वह तो इसका स्वरूप इतना था, ऐसा एक पर्याय में जानने में आया ? आहाहा! नये लोगों को ऐसा लगता है कि यह क्या कहते हैं ? इसमें कुछ पकड़ में नहीं आता। अरे! भाई! तेरे घर की बातें हैं, प्रभु! तेरा घर कितना है, उसकी बात है। तेरा घर इतना है कि एक समय की पर्याय में तेरा इतना विशाल घर है कि तेरी पर्याय का उस ओर लक्ष्य किये बिना, उसे स्पर्श किये बिना... आहाहा! उस ज्ञान में अपने स्वभाव के स्व-परप्रकाशक के सामर्थ्य से प्रकाशित हो रहा है।

आहाहा! उसकी सत्ता को पर सत्ता की सहायता की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! अरे..रे..! उस ज्ञान की पर्याय की सत्ता को द्रव्य-गुण की भी अपेक्षा नहीं है, कहते हैं। आहाहा!

'स्वभावस्य शेषं किं' है? स्वभाव में क्या बचा? ऐसा कहते हैं। **सत्तामात्र वस्तु निर्विभाग...** निर्विभाग अर्थात् भाग पड़े बिना की वस्तु। **एकरूप है,...** ऐसा। उसमें थोड़ा भाग पर में जाये और थोड़ा भाग यहाँ रहे, ऐसा है उसमें? ऐसा। **निर्विभाग एकरूप है,...** ज्ञान की पर्याय निर्विभाग एकरूप है। **जिसके दो भाग होते नहीं।** आहाहा! **जो कभी.. 'अन्यद्रव्यं भवति' अनादिनिधन सत्तारूप वस्तु अन्य सत्तारूप होवे...** दूसरे के अस्तित्व में थोड़ा इसका अपना अस्तित्व जाये तो इसका अस्तित्व रहा कहाँ? जितना है, उतना तो रहा नहीं। अर्थात् वास्तव में वह रहा ही नहीं। आहाहा! **'तस्य स्वभावः किं स्यात्' पहले साधी हुई सत्तारूप वस्तु का स्वभाव क्या बचा?** आहाहा! देखा? पहले सत्ता सिद्ध की है। ज्ञानपर्याय स्व-पर को जानने के स्वभाववाली ताकतवाली पर्याय है। ऐसी तो उसकी सत्ता सिद्ध की है। अब, उसमें से कोई अंश पर में जाये तो वह सत्ता रही कहाँ? आहा..! पर को जानने पर में जाये, पर को जानने पर में जाये,... अरेरे..! द्रव्य-गुण को जानने द्रव्य-गुण में जाये... आहाहा! वीतराग.. वीतराग मार्ग.. आहाहा! परमेश्वर त्रिलोकनाथ का विरह पड़ा। आहाहा! और पीछे यह बात ऐसी रह गयी है। विशेष कहा जायेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१४

श्री समयसार, गाथा - ४९, प्रवचन - ७४
दिनांक - २१-०९-१९६१

यह दशलक्षणी पर्व का आठवाँ दिन है। त्याग.. त्याग। त्याग है न? '**परिग्रह निवृत्ति त्यागः**' इतना सूत्र है। क्या कहते हैं? - कि परिग्रह से निवृत्त होना, इसका नाम त्याग। परिग्रह दो प्रकार के हैं। एक अपने आत्मा से पर चेतन और अचेतन। दोनों प्रकार की ममता का अन्तर स्वभाव के अवलम्बन से उसका त्याग होना। त्याग करना, ऐसा शब्द उपदेश में तो ऐसी ही कथन पद्धति आवे न। '**परिग्रह निवृत्ति त्यागः।**' लो!

समयसार (गाथा) ३४ में कहते हैं कि भाई! राग का त्याग आत्मा करता है, ऐसा उसे नाम भी लागू नहीं पड़ता। समझे? पण्डितजी! राग का त्याग भी नहीं कर सकता, ऐसा शास्त्र में कहते हैं। क्योंकि आत्मा को राग के त्याग का कर्ता कहना, तो क्या राग पर दृष्टि है कि मैं राग छोड़ूँ? ऐसा नहीं है। आत्मा अपने ज्ञानस्वरूप में दृष्टि रखकर एकाग्र होता है, उसमें राग छूट जाता है। राग छोड़ना और राग का त्याग करना, ऐसा आत्मा में कथनमात्र, नाममात्र, संज्ञामात्र, व्यवहारमात्र है। परमार्थ से तो आत्मा राग के त्याग का कर्ता भी नहीं है। समझे मोतीलालजी! यहाँ कहते हैं '**परिग्रह निवृत्ति त्यागः**' किस अपेक्षा से कथन चलता है, वह समझना चाहिए या नहीं? ऐसा का ऐसा कहे, यह शास्त्र में लिखा, इस शास्त्र में लिखा...

परिग्रह के दो भेद हैं। एक चेतनात्मक परिग्रह। अपने चैतन्य के अतिरिक्त दूसरे चेतन। फिर उसमें सिद्ध भी आते हैं, हों! और जिन्हें लोग जंगम सम्पत्ति के नाम से बाह्य से कहते हैं। यह स्त्री, पुत्र, परिवार इत्यादि को। और अचेतनात्मक परिग्रह, जिसे स्थावर सम्पत्ति के नाम से जानते हैं। इन दोनों प्रकार के समस्त परिग्रह का त्याग करना। मुनि की प्रधानता से बात है न? अन्तरस्वरूप में इतनी शान्ति की वृद्धि हो कि जिसके कारण से इस ममत्व का अंश भी परसन्मुख का हो, उसकी उत्पत्ति न हो, उसका त्याग हो, उसे त्यागधर्म कहा जाता है।

त्यागधर्म में बहुत-बहुत व्याख्या है। बारह प्रकार के तप में भी त्याग है। सब में थोड़ा-थोड़ा अन्तर है। वह लम्बा कथन है। कहो, समझ में आया? इन सब परिग्रह की

अन्तरबुद्धि स्वभाव की दृष्टि रखकर, और स्वभाव की सावधानी में राग, ममत्व, चैतन्य और जड़ के प्रति की वासना का त्याग करना, उसे आठवाँ त्यागधर्म कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

कितने ही कहते हैं, भाई! वीतराग का मार्ग तो त्यागधर्म ही है, ऐसा कहते हैं। परन्तु उसका अर्थ क्या? वीतराग मार्ग तो निवृत्ति मार्ग है, त्याग मार्ग है। पर का जितना त्याग करो, उतना धर्म होगा। - ऐसी बात नहीं है। त्यागधर्म का अर्थ (यह है कि) स्वभाव के अस्तित्व की सत्ता को सम्हालने से, अन्दर राग का उग्र अभाव हो जाता है, उसे नास्ति से त्यागधर्म कहा जाता है। ऐसी बात है। वास्तव में भगवान का मार्ग त्याग है, वह तो.. जिन कहते हैं न? जिन। राग को जीतनेवाला वह जिनधर्म, इस अपेक्षा से कहने में आया है। जीतने के अर्थ में भी विवाद है। जिन (अर्थात्) राग-द्वेष को जीतना। क्या जीतना? यह राग है, उसे मैं छोड़ूँ - ऐसा है? ज्ञानस्वरूप की दृष्टि होकर उसमें लीन होकर शान्ति से एकाग्र हो, जितनी वृत्ति पहले समय में उत्पन्न होती थी, उतनी दूसरे समय में उत्पन्न नहीं होती, इसका नाम त्यागधर्म (कहा जाता है)। दृष्टिपूर्वक शुद्धता की वृद्धि और वैराग्यवृद्धि को त्यागधर्म कहा जाता है। बाकी बाह्य से त्याग किया, इसलिए इतना निवृत्त हुआ और धर्म हुआ, ऐसा नहीं है। यह आठवाँ बोल हुआ।

समयसार अधिकार। ४९ गाथा। अव्यक्त, अव्यक्त विशेषण की बात चलती है। भगवान आत्मा कैसा है? जो दृष्टि का विषय, जो सम्यग्दृष्टि परिपूर्ण को स्वरूप का लक्ष्य करके जो अनुभव करता है, वह आत्मा कैसा है? समझ में आया? भगवान आत्मा अव्यक्त है। छह द्रव्यस्वरूप लोक है, जो ज्ञेय, वह व्यक्त अर्थात् पर है और ऐसा जीव अन्य है, इसलिए उसे अव्यक्त कहते हैं। छहों द्रव्य से भिन्न प्रभु चैतन्यमूर्ति अखण्ड एकरूप है। ऐसा वस्तु का स्वभाव, उसमें सम्यग्दृष्टि-ज्ञानी उस ओर का ध्यान करके, ऐसे अखण्ड स्वभाव को (अनुभव करता है), उसे अव्यक्त कहा जाता है।

कषायों का समूह जो भावकभाव, वह विकारी है। यह तो छह बोल में उस पर्याय का अभाव तो लिया है, नहीं? वह क्षयोपशमभाव का लिया है न? विकारीभाव का जैसा अभाव लिया है, वैसा क्षयोपशमभाव का भी छह बोल में स्वभाव की दृष्टि से देखने पर... स्वभाव की दृष्टि से देखने पर उस क्षयोपशम का अंश उसमें है ही नहीं। अर्थात् कि भावेन्द्रिय से काम लेता है, ऐसा नहीं है। वह पर्याय भावेन्द्रिय, क्षयोपशम की पर्याय का भी निषेध किया। वस्तु में क्या है? वस्तु तो एक चैतन्यस्वभावी वस्तु है, उसे यहाँ आत्मा कहा जाता है। ऐसे आत्मा

को लक्ष्य में, दृष्टि में, ध्येय में लेकर अन्तर में अनुभव करना, वह तो पर्याय है। अनुभव करना, वह तो पर्याय है। परन्तु कैसा लक्ष्य में लेना? – कि एकरूप चैतन्यस्वभाव ध्रुव है, ऐसा लक्ष्य करके अनुभव करना, उसे यहाँ आत्मा कहते हैं।

कषायों का समूह जो भावकभाव... आत्मा में, पर्याय में कर्म का भावक, उसका जो विकार भाव प्रगट होता है, उससे जीव अन्य है। विकारी भाव से अन्य है। व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प से अन्य / पृथक् है। ऐसे आत्मा को सम्यग्दृष्टि ध्येय में लेकर अनुभव करना, उसे आत्मा कहते हैं। कहो, बरैयाजी! यह बात है, प्रभु! अन्य है, इसलिए अव्यक्त है। दो बोल आये।

तीसरा। **चित्सामान्य में...** ज्ञायकभाव, एकरूप ज्ञानभाव में... चित्सामान्य—ज्ञायक.. ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञान.. एकरूप सामान्य में। सामान्य का अर्थ, इस विशेष अवस्थारहित का त्रिकाली स्वरूप है, ऐसे चित्त ज्ञान सामान्य में **चैतन्य की सर्व व्यक्तियाँ निमग्न हैं...** चैतन्य की सर्व प्रगट अवस्थायें उसमें अभेद हो गयी, निमग्न है। उसमें भिन्न पड़ना नहीं। चैतन्य भगवान चित्सामान्य में वर्तमान सब निर्मल पर्यायें चित्सामान्य में अन्दर मग्न है। अन्तर्मग्न है, निर्मग्न है, लीन है, अभेद है। इस कारण से भी भगवान आत्मा को अव्यक्त कहा जाता है। समझ में आया?

बहुत पर्यायें है या नहीं? अनेक पर्यायें हैं। एक पर्याय कहाँ है? यहाँ तो कहते हैं, वह पर्याय उसमें लीन है, ऐसा एकरूप सामान्य चैतन्य। स्वभाविक चैतन्य सहज स्वभाव का एकरूप पिण्ड, उसमें सब निर्मल पर्यायें अन्तर्मग्न हैं। सामान्य को यहाँ अव्यक्त कहते हैं। कहो, समझ में आया? बहुत सूक्ष्म। अव्यक्त का बोल सूक्ष्म है। जैसे अलिंगग्रहण के बीस बोल है न?

भगवान ज्ञानस्वरूप एकरूप प्रभु में चैतन्य की सर्व प्रगट दशाएँ, चैतन्य की सर्व प्रगट दशाएँ। **निमग्न (अन्तर्भूत) है....** इस कारण से भगवान आत्मा दृष्टि का विषय ऐसा लक्ष्य में लेना, दृष्टि में लेना, ध्येय बनाना, ऐसे आत्मा को अव्यक्त कहते हैं। समझ में आया? लो! इसमें बाहरपना तो सब छूट गया। पैसा और स्त्री, पुत्र, यह और वह, अमुक। ममता भी नहीं, भावक भी नहीं, यह पर्यायें भी नहीं। क्योंकि पर्याय सामान्य में एकरूप हो गयी। अन्तर्मुख हुआ तो पर्याय तो सामान्य में लीन हो गयी। इस अपेक्षा से आत्मा को दृष्टि के विषय में सामान्य कहा जाता है, अव्यक्त कहा जाता है। यह तीसरा बोल हुआ।

चौथा बोल। **क्षणिक व्यक्तिमात्र नहीं...** भगवान आत्मा एक समय की निर्मल पर्यायमात्र

भी नहीं है। निर्मल पर्याय, हों! विकारी पर्याय तो दूसरे में गयी। एक समय में निर्मल पर्याय के अनन्त-अनन्त अंश जो हैं, उतना आत्मा नहीं है। एक समय की अनन्त गुण की निर्मल पर्याय जितना आत्मा नहीं है। **क्षणिक व्यक्तिमात्र नहीं...** एक समय की निर्मल अवस्था प्रगटरूप व्यक्त है, उतना आत्मा नहीं है, इस कारण से भी प्रभु को-आत्मा को अव्यक्त कहा जाता है। कहो, समझ में आया? क्षणिकमात्र भी अकेला नहीं। क्षणिक अवस्था है अवश्य। उतना मात्र नहीं। वह तो पूर्ण निर्मल अकेला द्रव्यस्वभाव अव्यक्त अर्थात् पूर्ण एकरूप स्वभाव, उसे यहाँ अव्यक्त कहा जाता है। बहुत सूक्ष्म परन्तु भाई धर्म का। ऐसा धर्म का स्वरूप यहाँ बाहर में यदि हो जाता हो और यह व्रत, नियम, दान, दया से... यहाँ तो उसकी बात याद नहीं करते। इसकी निर्मल पर्याय पर भी आश्रय / लक्ष्य नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पर के ऊपर तो कहाँ आया? निर्मल पर्याय क्षणमात्र है, क्षणिक एक समय की पर्याय है, उतना आत्मा नहीं। भगवान पूर्णानन्दस्वरूप है, उसे यहाँ आत्मा, उसे यहाँ अव्यक्त, उसे यहाँ ज्ञायकभाव कहने में आया है। कहो, समझ में आया? बहुत ध्यान रखे तो समझ में आये, ऐसा है।

अब पाँचवाँ। **व्यक्तता और अव्यक्तता...** व्यक्तपना पर्याय और अव्यक्तपना द्रव्य। **एकमेक मिश्रितरूप से प्रतिभासित होने पर...** अथवा व्यक्तपना पर और अव्यक्तपना स्वद्रव्य, उनका एक साथ ज्ञान में प्रतिभासन होने पर भी, एक क्षण में दोनों का ज्ञान होने पर भी, **वह व्यक्तता को स्पर्श नहीं करता...** इतना लेना। (हिन्दी में से) 'केवल' निकाल डालना, 'ही' निकाल डालना। **वह व्यक्तता को स्पर्श नहीं करता...** अर्थात् परपदार्थ को स्पर्श नहीं करता, छूता नहीं। पर और स्व का प्रतिभास आत्मा को एकसाथ होता है, परन्तु पर को स्पर्श नहीं करता। कहो, समझ में आया? देवानुप्रिया आया है या नहीं? यह क्या कहा जाता है? यह समझ में आता है? इसमें तो व्यवहार और निमित्त की बात भी कहीं नहीं आती।

यह दिखता नहीं और वह व्यवहार दिखता है ऐसा? ठीक। वह किससे दिखता है, वह? व्यवहार किससे दिखता है? ज्ञान की पर्याय से या व्यवहार से? जिसका अंश है, वह पूरा कितना है, वह दिखता नहीं? जिसमें दिखता है, वह अंश किसका है? समझ में आया? दृष्टान्त नहीं दिया? आज ही सवेरे बात हुई थी। मतिज्ञान, केवलज्ञान का अंश है। पूरे स्तम्भ को देखे बिना उसका एक भाग नहीं दिखता। यह हांस कहते हैं न? क्या कहते हैं? हांस। इस स्तम्भ में। क्या कहलाता है वह? तुम्हारी भाषा में क्या कहते होंगे? यह कोना होता है न स्तम्भ में? हांस पाड़ते हैं न? यह तो अपनी भाषा में हांस परन्तु इनकी भाषा में ये समझते नहीं। इसकी भी खबर नहीं होती अभी इनकी भाषा में।

यह स्तम्भ होता है या नहीं ? देखो ! यह वस्तु है, देखो ! उसकी यह हांस है। हांस अर्थात् कारीगरी। तो कारीगरी किसका अंश है ? किसका अवयव है ? उस अवयवी को जाने बिना अवयव कहाँ से ज्ञात होगा ? समझ में आया ? ऐसे स्तम्भ होता है। लकड़ी में पाड़ते हैं न ? हांस है या नहीं ? इस पेंसिल में, देखो ! लो, देखो पेंसिल। देखो हांस है। एक, दो, तीन, चार देखो है न ? तो एक हांस को देखने पर पूरी चीज़ क्या है, ऐसे लक्ष्य में लिये बिना यह हांस क्या है, यह ख्याल में नहीं आता। जिसका अवयव है, जिसका अंश है, जिसका भाग है, उस पूरे भाग का, भागवान पूरी चीज़ के ख्याल बिना उस भाग का ख्याल नहीं आता।

उसी प्रकार भगवान आत्मा केवलज्ञान पूरा अवयवी है, उसके मति-श्रुत एक अवयव हैं। केवलज्ञान क्या चीज़ है, उसका भान हुए बिना अवयव का भान नहीं होता। समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं, यहाँ तो कहा न, व्यवहार ज्ञात होता है न ! क्या कहा ? यह ज्ञात नहीं होता। अब यह इसका अर्थ चलता है। व्यवहार, विकल्प, राग, निमित्त ज्ञात होता है, किसमें ? किसके अंश में ? कि ज्ञान के अंश में। तो ज्ञान के अंश में वह ज्ञात होता है तो इसका अर्थ हुआ, वह अंश किसका है ? वह अंश किसका है ? वह अंशी त्रिकाली द्रव्य का है। कहो, समझ में आया ? देवानुप्रिया ! क्या दिखता है इसमें ? निश्चय से तो व्यवहार ज्ञात भी नहीं होता, ज्ञान ही ज्ञात होता है। वास्तव में व्यवहार ज्ञात नहीं होता। क्या व्यवहार ज्ञात होता है ? लोकालोक ज्ञात होता है ? राग ज्ञात होता है ? वह तो है ही नहीं। व्यवहार ज्ञात होता है, ऐसा कहे तो ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है, व्यवहार नहीं। ज्ञान की पर्याय ही ज्ञात होती है। ज्ञान, ज्ञान को जानता है तो ज्ञान, ज्ञान के अंश को जानता है, वह अंश किसका है ? वह अंश राग का है ? पर का अंश है ? वह त्रिकाली द्रव्य का अंश है। त्रिकाली द्रव्य का अंश है तो त्रिकाली द्रव्य का लक्ष्य लिये बिना अंश को जाना किस प्रकार ? और अंश ज्ञात हुए बिना यह राग है, यह व्यवहार है, वह जाना किसने ? समझ में आय ? व्यवहार ज्ञात होता है और वह ज्ञात नहीं होता। क्या कहते हैं यह ?

कहते हैं कि आत्मा एक पर्यायमात्र, क्षणिकमात्र नहीं है। उस पर्याय का भान हुआ, राग तो पर है। परवस्तु पर है परन्तु क्षणिक निर्मल पर्याय जो है, उतना आत्मा नहीं है और निर्मल का ज्ञान हुआ, तो निर्मल का अंश किसका है ? वही आत्मा है। पूर्ण ज्ञायक, वही आत्मा है। पर्याय तो एक समय की है, उतना मात्र प्रभु आत्मा नहीं है। समझ में आया ? ओहो ! बहुत सूक्ष्म, हों ! वजुभाई ! सूक्ष्म इसमें तो कुछ हाथ नहीं आता। व्यापारी को मानो

मस्तिष्क में प्रविष्ट नहीं होता, मानो ऐसा लगता है। ऐसा होगा! यह तो सब केवलज्ञान प्रगट कर सके ऐसा यह है। केवलज्ञान प्रगट कर सके और श्रुतज्ञान में सब समाहित हो जाता है। भावश्रुतज्ञान अर्थात् केवलज्ञान का कक्का। केवलज्ञान लेने की तैयारी! ऐसे भाव श्रुतज्ञान में... वह तो पर्याय भावश्रुत है, तो कहते हैं इतनी पर्यायमात्र आत्मा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

केवलज्ञान भी एक समय की पर्याय है, इतना भी आत्मा नहीं है। एक समय की केवलज्ञान पर्याय है, एक समय की अनन्त चतुष्टय पर्याय है। अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य। ऐसी-ऐसी कर्ता-कर्म की पर्याय का निर्मल-निर्मल परिणमन। निर्मल पर्यायमात्र आत्मा नहीं है। ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय का समूह पिण्डरूप एक द्रव्यस्वभाव है। समझ में आया? ऐसे द्रव्य को पहले ख्याल में लेकर, उसे ध्येय बनाकर, उसका अनुभव करना, उसका ध्यान करना, वह पर्याय है। परन्तु पर्याय में ऐसा पूर्ण आत्मा है, वह पर्यायमात्र नहीं है। राग तो नहीं, निमित्त तो नहीं, राग को जानता है, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार उपचार है। ज्ञान की एक समय की पर्याय अपने को जाने, ऐसा कहो तो भी उस पर्याय का ज्ञान द्रव्य से आश्रय बिना, पूर्ण द्रव्य अंशी है—ऐसा ज्ञान हुए बिना पर्याय का ज्ञान यथार्थ नहीं होता। समझ में आया? इस ज्ञान की ऐसी ताकत है कि द्रव्यस्वभाव एक समय की पर्यायमात्र नहीं है। वह पर्यायमात्र नहीं, ऐसी पूरी पूर्ण चीज़, उसे यहाँ आत्मा, उसे यहाँ अव्यक्त कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

पाँचवाँ। **व्यक्तता और अव्यक्तता एकमेक...** मिश्रित अर्थात् तुम्हारी भाषा में क्या कहते हैं? इकट्ठा। **मिश्रितरूप से प्रतिभासित होने पर भी वह केवल व्यक्तता को ही स्पर्श नहीं करता...** व्यक्त अर्थात् पर और स्व का ज्ञान आत्मा में है। स्व और पर का ज्ञान आत्मा में है, तथापि पर को स्पर्श नहीं करता। ऐसा स्व स्वरूप अखण्ड आत्मा, उसे अव्यक्त कहते हैं। समझ में आया? परवस्तु प्रगटरूप और अव्यक्त अपना द्रव्य। तो पर में पर्याय भी ले सकते हैं। परन्तु वह स्पर्शता नहीं, ऐसा है न? तो पर्याय को स्पर्शता तो है, परन्तु उस पर्यायमात्र का स्पर्श नहीं। त्रिकाल द्रव्य है, ऐसा उसके अनुभव में है। **व्यक्तता और अव्यक्तता एकमेक मिश्रितरूप से प्रतिभासित होने पर भी वह केवल व्यक्तता को ही स्पर्श नहीं करता...** अर्थात् कि पर को स्पर्शता नहीं। ऐसे आत्मा को अव्यक्त कहा जाता है। समझ में आया?

अब छठा बोल। इसमें ज्ञान की बात की है। अब प्रत्यक्षज्ञान का विशेषण देते हैं। आत्मा प्रत्यक्ष है। **स्वयं अपने से...** निज आत्मा.. अपना आत्मा **स्वयं अपने से ही बाह्याभ्यन्तर**

स्पष्ट अनुभव में आ रहा है... बाह्य अर्थात् पर्याय और द्रव्य। पर्याय और द्रव्य। और बाह्य में अन्य पदार्थ भी लिये जाते हैं। अपनी एक समय की पर्याय, राग आदि सब। उसे और अभ्यन्तर भगवान आत्मा, उसे **स्पष्ट अनुभव में आ रहा है...** स्व-पर का प्रत्यक्ष अनुभव ज्ञान में है। समझ में आया? **तथापि व्यक्तता के प्रति उदासीनतरूप से प्रद्योतमान (प्रकाशमान) है...** परवस्तु के प्रति और एक समय की पर्याय के प्रति भी **उदासीनतरूप से प्रकाशमान है...** एक समय में रुका नहीं रहता। त्रिकाल... त्रिकाल वस्तु की ओर उसका झुकाव है, तो इस अपेक्षा से उसे अव्यक्त कहने में आता है। परन्तु बहुत सूक्ष्म। न्यालभाई! फिर बाहर में सब विवाद (करे)।

प्रभु! परन्तु तू कैसा है, यह देख तो सही। ऐसी वस्तु की दृष्टि बिना और उस ओर का लक्ष्य आये बिना परिपूर्ण ऐसी चीज़ है, ऐसा ज्ञात हुए बिना उस ओर का ध्यान नहीं हो सकता और उसकी यथार्थ प्रतीति तथा स्वसंवेदन नहीं हो सकता। समझ में आया? निज आत्मा निज से ही। **अपने से ही....** अर्थात् निज से। **बाह्य अभ्यन्तर...** बाह्य पर्याय और सब पदार्थ और अभ्यन्तर द्रव्यस्वभाव प्रत्यक्ष अनुभव में आया है। सब प्रत्यक्ष हो गया। प्रत्यक्ष है, उसे ज्ञान कहते हैं। प्रत्यक्ष है। ऐसा **है, तथापि व्यक्तता के प्रति उदासीन...** परपदार्थ और एक समय की पर्याय के प्रति उदासीन। **प्रद्योतमान (प्रकाशमान) है...** इसलिए भी आत्मा को अव्यक्त कहने में आता है। परन्तु बहुत सूक्ष्म, इसमें तो कुछ समझ में नहीं आये, हों! दो महीना रहे या छह महीना रहे, इसमें कुछ समझ में नहीं आता। क्यों कुंवरजीभाई! वे पूछते हैं कि क्या (आया था)? परन्तु वह याद भी कहाँ रखना था? परन्तु यह बात कहाँ है? कौन जाने क्या होगा यह सब? कभी ऐसा नहीं आया कि भाई! मन्दिर बनाया वह धर्म। अमुक किया वह धर्म। तब तो कहलाये भी सही कि कहते थे मन्दिर (बनाओ तो धर्म होगा)। और अपने दस हजार डालकर मन्दिर बनाया, देखो! कहाँ डाले? धूल डालता है कोई? वह तो जड़ की चीज़ वहाँ रचनी थी, बननी थी, वह बन गयी है। किसने बनाया? किसी ने बनाया नहीं। मकान बनाते नहीं, मन्दिर बनाते नहीं। क्या कहते हैं? कौन कहते हैं? सेठी! वहाँ कैसे बैठे? देरी से आते हो। स्पष्ट अर्थात् प्रत्यक्ष। ज्ञान में राग, विकल्प, निमित्त और मन की अपेक्षा बिना और परज्ञेय की इन्द्रिय की अपेक्षा बिना अपना स्पष्ट अर्थात् ज्ञान स्वसंवेदन से, स्व-पर के ज्ञान का प्रत्यक्षपने का वेदन होता है, प्रत्यक्षपने का ज्ञान होता है, उसे आत्मा कहते हैं। समझ में आया? है, तथापि उस पर्याय के प्रति उदासीन है। उसे यहाँ तो आत्मा कहते हैं। समझ में आया? प्रत्यक्ष तो दोनों हैं और पर भी प्रत्यक्ष ही है। लोकालोक ज्ञान में प्रत्यक्ष है। श्रुतज्ञान

में श्रुतज्ञान प्रमाण में भी प्रत्यक्ष ही है। उस परोक्ष का अर्थ क्या? पर को जाने। बाकी स्व की अपेक्षा में... अपेक्षा से है पूर्ण, उसे भी प्रत्यक्ष कहने में आता है। कहो, समझ में आया? एक न्याय से पाँचों पर्याय प्रत्यक्ष है, ऐसी बात है। पर की अपेक्षा बिना अपनी सब पर्याय अपनी अपेक्षा से तो प्रत्यक्ष ही है। वह तो निमित्त की अपेक्षा से मति-श्रुत में अमुक आता है, इस अपेक्षा से उसे परोक्ष कहने में आता है।

भगवान आत्मा ऐसा है कि अपना स्वरूप **अपने से ही बाह्याभ्यन्तर स्पष्ट...** प्रत्यक्ष। अनुभव में आता है अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। ऐसा **होने पर भी...** बाह्य पदार्थ और एक समय की पर्याय के प्रति **उदासीनरूप से प्रकाशमान है।** उससे उदास, उदास, पर से भिन्न भिन्न पूरा अखण्डानन्द प्रभु स्थित है। समझ में आया? इस कारण से भी... ओहोहो! अमृतचन्द्राचार्य की टीका इस भरत में, उसमें यह समयसार की टीका (अजोड़ है)। प्रवचनसार में भी यह अलिंगग्रहण आदि अद्भुत रचना... अद्भुत रचना! कहाँ से आया और कहाँ जायेगा। यह प्रत्यक्ष दृष्टि में अनुभव में आता है कि यह आत्मा कहाँ से आया और कहाँ जायेगा। समझ में आया?

इसके वर्तमान विकास में जो वस्तु की स्थिति रम रही है और प्रगटरूप से ऐसे सरल भाषा में, साधारण भाषा में लोगों को पात्र को ख्याल में आवे, उसे ऐसी चीज़ से समझाने की ताकत। ओहोहो! सर्वज्ञ की वाणी तो कैसी! समझ में आया?

यह तो पंचम काल के सन्त मुनि, जिन्हें एकावतारी होना है। केवल (ज्ञान) तो है नहीं, परम अवधि नहीं, सर्वावधि नहीं, अवधिज्ञान भी नहीं। यह तो अभी हुए न, ९०० वर्ष पहले। परन्तु यह मति-श्रुत तो अणअवधिज्ञान है। अवधिज्ञान नहीं, यह तो अणअवधिज्ञान है। मति-श्रुतज्ञान में पूर्ण द्रव्य आया। उस अवधि में तो पूरा द्रव्य आता नहीं। वह तो पर का-रूपी का ज्ञान करता है। समझ में आया? वह इन्कार किया न? वह इन्कार क्यों हो गया। महान अवधिज्ञान है।

मति-श्रुतज्ञान जिसमें... सर्वावधि या परमावधि तो रूपी की पूर्ण शक्ति की ताकत रखता है, इससे अनन्तगुणा या दूसरे विशेष असंख्यगुणे हों तो भी जान सकता है। मति-श्रुतज्ञान अवधि और मन:पर्ययज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेद करने पर भी उसके अनन्तगुणे हैं। आहाहा! समझ में आया? अवधिज्ञान की जो ताकत है और अंश का अविभाग। और मन:पर्यय का अविभाग है, उससे मतिज्ञान के अविभाग अनन्त गुण हैं। इससे श्रुतज्ञान के अनन्तगुणे हैं और उससे अनन्तगुणा केवल (ज्ञान) है। बस, पूरा हो गया। समझ में आया?

यह श्रुत और केवल (ज्ञान) दो बीच में है। बाकी इस ओर सब रह जाता है। अवधि, मन:पर्यय, मति इस ओर रह जाता है। श्रुतज्ञान की पर्याय अणअवधि। ओहो!

कहते हैं कि इस ज्ञान की पर्याय और द्रव्य को सबको जानता है, प्रत्यक्ष जानता है, प्रत्यक्ष जानता है। उस ज्ञान की सामर्थ्यता में प्रत्यक्षपना है। समझ में आया? उपयोग पर के ऊपर जाये और परोक्ष हो जाये, वह दूसरी बात है। परन्तु ज्ञान की स्व अपेक्षित पर्याय पर अपेक्षा बिना इतनी ताकत उसमें है कि पूर्ण जानने की ताकत है। अचिन्त्य अपरिमित पर्याय का माप अपार है। समझ में आया? श्रुतज्ञान और केवलज्ञान में परोक्ष-प्रत्यक्ष का भेद अपेक्षा से लिया है। यहाँ तो प्रत्यक्ष स्व की अपेक्षा लेते हैं। समझ में आया?

कहते हैं कि **बाह्याभ्यन्तर स्पष्ट अनुभव में आ रहा...** है। प्रत्यक्ष ज्ञान हो रहा है। **तथापि व्यक्तता के प्रति उदासीन...** पर से तो उदासीन परन्तु एक समय की पर्याय में भी रुकता नहीं। वह तो त्रिकाल द्रव्य सन्मुख के झुकाव का जोर चलता है, ऐसी जो चीज़ है, उसे यहाँ अव्यक्त कहने में आता है। **इस प्रकार छह हेतुओं से अव्यक्तता सिद्ध की है।** कहो, समझ में आया? छह हेतु से अव्यक्त भगवान आत्मा... अव्यक्त कोई दूसरे परमेश्वर नहीं, हों! अपने परमेश्वर को ही यहाँ अव्यक्त कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

प्रभु अपना आत्मा पर्दे के पीछे पूर्ण है। एक समय की पर्याय के पीछे पूर्ण है, वह भगवान अव्यक्त है। अव्यक्त अर्थात् बाह्य में प्रगट पर्यायरूप उसका अंश नहीं है, स्वभावरूप प्रगट है, स्वभावरूप प्रगट है, उसे पर्याय की अपेक्षा और बाह्य की अपेक्षा से अव्यक्त कहने में आता है। ओहोहो! पहले यह ख्याल में-ज्ञान में बात तो ले कि यह चीज़ क्या है। छह बोल कहे।

इस प्रकार रस,... पहले अरस के छह बोल आये थे। उसमें भी स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से क्षयोपशम पर्याय को उड़ा दी थी। **रूप, स्पर्श, शब्द, संस्थान और व्यक्तता का अभाव होने पर भी...** यह व्यक्तपने का अभाव प्रभु आत्मा में **अभाव होने पर भी....** उसमें अभाव होने पर भी। **स्वसंवेदन के बल से...** लो, स्वसंवेदन के बल से। ज्ञान, ज्ञान का वेदन, ज्ञान की पर्याय में, ज्ञान ज्ञान को जानता है, ऐसे ज्ञान का वेदन करके **स्वसंवेदन के बल से...** क्या कहते हैं? उसमें विकल्प का बल, मन का बल, शास्त्र पढ़ा उसके बल से नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा स्वसंवेदन के सामर्थ्य से, बल से अपनी ज्ञानपर्याय ज्ञाता के साथ अभेद होकर वेदन करती है, वह अपने बल से। उसमें कोई व्यवहार का, निमित्त की, शंका या पूर्व में कोई शास्त्र पढ़ा हो, उसके बल से यह प्रत्यक्ष होता है, ऐसा नहीं है। समझ में

आया ? बारह अंग पढ़ा हो तो भी उससे आत्मा प्रत्यक्ष होता है, ऐसा नहीं है। वह तो बारह अंगवाले को प्रत्यक्ष आत्मा है ही, परन्तु उस बारह अंग के कारण से नहीं। समझ में आया ?

अपनी ज्ञायक चैतन्य ज्योति, प्रभु परमात्मस्वभाव, ऐसी दृष्टि करके, उसमें जो स्वसंवेदन के बल से दशा उत्पन्न हुई, इस कारण से **सदा प्रत्यक्ष होने से...** सदा प्रत्यक्ष होने से। लो, एक न्याय से तो द्रव्य सदा प्रत्यक्ष है। समझ में आया ? एक न्याय से द्रव्य तो सदा प्रत्यक्ष है और पर्याय में वेदन हुआ, तब कहने में आया कि यह सदा प्रत्यक्ष है। पर्याय में प्रत्यक्ष हुआ तो सदा प्रत्यक्ष भगवान है। त्रिकाल प्रत्यक्ष पड़ा है।

अनुमानगोचरमात्रता के अभाव... मात्र अनुमानगोचरपने का अभाव। वह अनुमान, परन्तु अनुमान की निर्मल पर्याय है। समझे ? परन्तु वह प्रत्यक्षरूप नहीं। प्रत्यक्षपने का अर्थात् वह अनुमानगोचरमात्रपना नहीं। अनुमान है अवश्य। अनुमान है अवश्य परन्तु अकेला अनुमानमात्रपना आत्मा में नहीं है। प्रत्यक्षपना है तो अनुमानपना है, ऐसा कहने में आता है। यह तो अपने अलिंगग्रहण में बीस बोल में आया। दूसरा आत्मा अनुमान से दूसरे को जाने, ऐसा आत्मा नहीं और आत्मा दूसरे को अनुमान से जाने, ऐसा आत्मा नहीं। बहुत बात भाई यह तो कहीं... दूसरे जीव को अनुमान करके आत्मा जाने, ऐसा आत्मा है ही नहीं। आत्मा अपना प्रत्यक्षपना करता है, उसमें उसका अनुमान आ जाता है और दूसरा अनुमान करके जान ले, ऐसा यह आत्मा नहीं है। समझ में आया ? दूसरे को अनुमान करके जानना, यह आत्मा में नहीं है और दूसरा इसे अनुमान करके जाने, ऐसा आत्मा नहीं है।

यह अनुमान करे कि ऐसा ज्ञान है वहाँ आत्मा है, आत्मा है वहाँ ज्ञान है, ऐसा अनुमान है। वह अनुमान प्रत्यक्षरहित अनुमान नहीं है। ऐसा जाने कि ऐसा है। श्रद्धा-ज्ञान अच्छा है तो सम्यग्दृष्टि है, ऐसा अनुमान, ऐसा अनुमान... वह प्रत्यक्ष बिना अनुमान नहीं होता। समझ में आया ? भारी सूक्ष्म बात, भाई ! यह बात वह लोग कहते हैं न कि यह बात है सूक्ष्म, लोहा काटे छैनी। छैनी लोहे को (काटती है)। लोहा होता है न ? लोहा। छैनी... छैनी। यहाँ भेदज्ञान की बात है। छैनी मारकर भेदज्ञान की बात चलती है।

भगवान आत्मा एक समय में (पूर्ण है) ऐसी जिसे भान-दृष्टि हुई, उसे पराश्रयपना उसकी दृष्टि में रहता ही नहीं। समझ में आया ? कि निमित्त है तो मुझमें कार्य होता है, राग है तो मुझमें कार्य होता है और राग है तो निमित्त से होता है, कर्म से होता है, ऐसी पराश्रयबुद्धि का तो कहीं भुक्का उड़ जाता है। ऐसी बुद्धि का नाश हुए बिना उसे प्रत्यक्षज्ञान ज्ञायक है, ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया ?

ऐसा भगवान आत्मा **स्वसंवेदन के बल से स्वयं सदा प्रत्यक्ष होने से अनुमानगोचर-मात्रता के अभाव के....** समझे ? मन और विकल्प ऐसा समाधान कर ले कि मैंने आत्मा को जाना है। तो ऐसा नहीं है, कहते हैं। मन को गम्य नहीं, विकल्प को गम्य नहीं। समझ में आया ? शास्त्र के पठन से गम्य नहीं। सदा प्रत्यक्ष भगवान ज्ञायकमूर्ति होने से अनुमानगोचर-अनुमानगम्य, अनुमानगम्य (अर्थात्) यह है तो यह है, यह ज्ञान है तो यह है। जड़ में नहीं। ऐसा अनुमान भी उसमें नहीं। अकेला, हों!

अनुमानगोचरमात्रता के अभाव के कारण (जीव को) अलिंगग्रहण कहा जाता है। यह अलिंगग्रहण में डाला है। वहाँ तो बहुत बोल लिये हैं। प्रवचनसार १७२ गाथा में यह गाथा है। उसमें एक अलिंगग्रहण में बीस बोल उतारे हैं। अपने सब व्याख्यान में स्पष्ट आ गया है। वहाँ तो पर्याय द्रव्य को स्पर्शती नहीं; द्रव्य पर्याय को स्पर्शता नहीं। अन्तिम १९-२० बोल में है। छेल्ला कहते हैं न ? हमारे छेल्ला कहते हैं। अन्तिम बोल। द्रव्य पर्याय को छूता नहीं और पर्याय द्रव्य को छूती नहीं। द्रव्य को अनस्पर्शी पर्याय काम करती है। द्रव्य को अनस्पर्शी पर्याय का वेदन-अनुभव होता है, क्योंकि उसमें द्रव्य का अनुभव नहीं, अनुभव तो पर्याय का है। वह पर्याय द्रव्य को स्पर्श किये बिना पर्याय का अनुभव करती है। गजब बात, भाई! समझ में आया ?

पर्याय द्रव्य को स्पर्शती नहीं, अनालिंगित। द्रव्य पर्याय को आलिंगन करे, एकरूप हो जाये, आलिंगन हो जाये तो द्रव्य, पर्यायरूप हो गयी, और पर्याय-अंश अंशीरूप हो गया। ऐसा नहीं है। अंशी, वह अंशी है और अंश, वह अंश है। दो के बीच भी अतद्भाव है। चार अभाव की बात नहीं है, हों! मास्टर! मास्टर वहाँ बैठे हैं। वह चार अभाव है न ? वे नहीं। अतद्भाव। पर्याय में द्रव्य का अभाव और द्रव्य में (पर्याय का)। अतद्भाव—वह भाव यह नहीं, द्रव्यभाव वह पर्यायभाव नहीं। उस अलिंगग्रहण में बहुत सूक्ष्म लिया है। यह सब व्याख्यान में आ गया है। सब प्रकाशित हो गया है। उसे **अलिंगग्रहण कहा जाता है।** ऐसा आत्मा।

अभी आत्मा कैसा है, उसे लक्ष्य में ले नहीं। माल क्या है ? चाय किसे कहते हैं और केसर किसे कहते हैं ? खबर नहीं। वह चाय लेने आया तो सेर केसर दे दी। जरा काली और हरी में अन्तर। कैसा ? पीला। वह दानावाला होता है और केसर भी वह। कितने की चाय ? दो-ढाई रुपये की सेर। पाँच सेर लाओ, पाँच सेर दो। पाँच सेर केसर तोल दिया। कुंवरजीभाई! क्या कहे उसे ? मूरख कहे, मूरख। परन्तु यह कहे वह भी ऐसी... ऐसी छिलके जैसी थी।

यह भी छिलके जैसी थी। जरा वह काला और यह पीला, इतना अन्तर था न? इतना अन्तर था, दूसरा अन्तर तो नहीं था। अरे! होली, तेरे चालीस रुपये का... तोला का क्या होगा? सूरजछाप केसर। अभी एक तोले के कितने हैं? सोलह रुपये तोला। पहले तो एक रुपया था। सोलह रुपये तोला। जो हो वह, उसकी बात कहाँ है? वह कहे चाय दो, तो इसने पाँच सौ केसर तोल दिया। रोकड़ रुपये लेकर आया है, कहे लो। रोकड़ ले। ला तोल दे। फिर वापस पूछ न मिटे, नाम-बाम कुछ नहीं। ऐसे भान न हो कि केसर किसे कहते हैं और चाय किसे कहते हैं? और दोनों की कीमत क्या है? दोनों की कीमत क्या है, इसकी खबर नहीं और व्यापार करने बैठा। बड़ा मूर्ख है, पागल है, पागल।

इसी प्रकार भगवान आत्मा जिसमें केवलज्ञान के केसर का पुंज निकलता है। क्या कहलाता है उस फूल में कहलाता है न अन्दर? वह केसर कहलाती है। वह अन्दर बड़े-बड़े फूल-छिलके निकलते हैं। पराग नहीं। केसर। केसर निकले ऐसी लम्बी लाईन होती है। सब देखा है न? वह भी केसर कहलाती है, वह भी केसर कहलाती है और वह भी रंग में पीला हो और यह भी रंग में पीला हो। परन्तु कीमत बिना? इसी प्रकार भगवान आत्मा उस रस-गंध-रूप-स्पर्श से रहित और स्वसंवेदन के बल से अनुभव में प्रत्यक्ष होनेवाला। ऐसा आत्मा, उसे यहाँ **अलिंगग्रहण कहा जाता है।** मात्र अनुमानलिंग से पकड़ में नहीं आता। अकेले अनुमानलिंग से पकड़ में नहीं आता। प्रत्यक्ष से पकड़ में आता है, तो अनुमान से आया, ऐसा व्यवहार पश्चात् लागू पड़ता है।

अपने अनुभव में आनेवाले चेतनागुण के द्वारा... अब कहते हैं, चेतनागुण शब्द पड़ा है न? यह तो अलिंगग्रहण हुआ। चेतनागुण शब्द का अर्थ करते हैं। यह एक शब्द सब में रह गया है। अस्ति। **अपने अनुभव में आनेवाले चेतनागुण...** जानना-देखना गुण। उस द्वारा **सदा अन्तरंग में प्रकाशमान है...** सदा अन्तरंग में चैतन्य ज्योति प्रकाशमान-ज्ञान का पुंज है। **इसलिए (जीव) चेतनागुणवाला है।** इस कारण भगवान चेतनागुणवाला है। अब अस्ति से लिया। समझ में आया? चेतनागुणवाला त्रिकाल है।

कैसा है चेतनागुण? चेतनागुण कैसा है? कैसा है चेतनागुण? इसमें न्याय आयेगा। **वह समस्त विप्रतिपत्तियों को (जीव को अन्य प्रकार से माननेरूप झगड़ों को) नाश करनेवाला है,...** कोई कहे, आत्मा पर का कर्ता है। कोई कहे, आत्मा राग का कर्ता है। कोई कहे, आत्मा में राग है। कोई कहे, आत्मा में उदयभाव है। इन सब झगड़ों का नाश करनेवाला चेतनागुण है। समझ में आया? चेतनागुणस्वरूप आत्मा... चेतनागुणस्वरूप आत्मा। यह स्वभाव

चेतनागुण **समस्त विप्रतिपत्तियों को (जीव को अन्य प्रकार से माननेरूप...)** एक समयमात्र भी मानना या राग को मानना, क्रोधी जीव, मानी जीव, मायावी जीव, पण्डित जीव, मूर्ख जीव, रंक जीव, राजा जीव - इन सब झगड़ों को दूर करनेवाला चेतनागुण है। आत्मा तो चेतनागुण सम्पन्न है। वह किसी चीज़ में नहीं है। समझ में आया?

वह समस्त विप्रतिपत्तियों को (जीव को अन्य प्रकार से माननेरूप झगड़ों को)... अन्य प्रकार से माननेरूप झगड़े का नाश करनेवाला चेतनागुण है। वह तो जानने-देखनेरूप स्वभाव ही आत्मा है। इसके अतिरिक्त दूसरे से ज्ञात हो, ऐसी वह चीज़ नहीं है। कहो, समझ में आया? कहो, इसमें यह लिया। कोई व्यवहार इसमें है, राग है, पुण्य है और उससे आत्मा की सत्ता का भास होता है, इस झगड़े का नाश करनेवाला चेतनागुण है। लो, यह व्यवहार-निश्चय का झगड़ा चलता है, इन सब झगड़ों का नाश करनेवाला चेतनागुण है। वह तो चेतनागुण से लक्षित होकर अनुभव में आता है। बस, दूसरा कोई उसका कारण नहीं है। उसके अस्तित्व में दूसरा नहीं है। अस्तित्व की बात चलती है न? समझ में आया? ओहो!

व्यवहार करते-करते निश्चय होता है अथवा व्यवहार के अस्तित्व से निश्चय का अस्तित्व जागृत होता है, और अनुकूल निमित्त मिलते हैं तो निमित्त से आत्मा को सम्यक् बोध होता है। इन सब झगड़ों का नाश करनेवाला, अन्त करनेवाला चेतनागुण, वह आत्मा है। सब आ गया, जाओ। समझ में आया? दूसरा आत्मा नहीं। दूसरा नहीं तो दूसरे चेतनागुण से बोध हो, ऐसा नहीं है। अरे! बड़ी दुकान। जवाहरात की दुकान। चेतनागुण सम्पन्न प्रभु! वाद-विवाद। कोई कहे कि ऐसा निमित्त मिले तो ज्ञान खिलेगा। ऐसा राग-कषाय की बहुत मन्दता करके कर्मकाण्ड बहुत करे न, कर्मकाण्ड, इससे वह खिलेगा। शुभभाव-महाव्रत पाले तो खिलेगा। सबका झगड़ा, चेतनागुणवाला है, ऐसा भान होने से सब झगड़ों का नाश होता है। उसमें किसी का अवलम्बन या आश्रय नहीं रहता। समझ में आया?

जिसने अपना सर्वस्व भेदज्ञानी जीवों को सौंप दिया है,... किसने? चेतनागुण ने। चेतनागुण ने भेदज्ञानी को सौंप दिया है कि चेतनागुण, वह आत्मा। राग, पुण्य और विकल्प उस अस्तित्व में है ही नहीं। ऐसा सर्वस्व चेतनागुण ने भेदज्ञानी को उसका रहस्य, मर्म सौंप दिया है। लो! समझ में आया? 'सब आगम भेद सु उर बसे, वह केवल को बीज ज्ञानी कहे।' यह श्रीमद् में आता है न? श्रीमद् में। समझ में आया?

कैसा है चेतनागुण? **जिसने अपना सर्वस्व...** सर्वस्व। किसी का अधिकार दूसरे में नहीं है। कोई विकल्पवाला, व्यवहारवाला, निमित्तवाला, शास्त्र बनानेवाला उसमें झगड़ा

उठावे। वह झगड़ा-फगड़ा उसमें है ही नहीं। चेतनागुण में सर्वस्व, सर्वस्व-अपना पूर्ण अधिकार। **भेदज्ञानी जीवों को सौंप दिया है,...** समझ में आया? राग, पुण्य, विकल्प, दया, दान, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, विकल्प से पार, उसका भेद करके ज्ञान से इस ज्ञाता का भान होता है, ऐसा भेदज्ञानी को उसका रस सौंप दिया है। अज्ञानी उसका पता नहीं ले सकता। समझ में आया? क्या टीका है! एक टीका में कहाँ का कहाँ डालते हैं? ... हो जाये सब स्थिर होकर। मुखिया कहते हैं न? मुखिया वह लड़का कहता है न? यहाँ कहते हैं, मुखिया होकर तुम पड़े हो सब राग और निमित्त और पर्याय और ... हम अखण्डानन्द प्रभु चेतनागुण सम्पन्न हैं। समझ में आया? तेरे मुखिया का मुखियापना तोड़ डालते हैं। हमारे यह मुखिया हैं, मुखिया हैं। वे ... लड़का ना बोलता है न? सियार और खरगोश की कथा करते हैं। दायें पैर में दायें भाग कहते हैं मुखिया। वह मुखिया अर्थात्... कहाँ गया? है या नहीं? वह सियार और खरगोश की कथा करता है।

यहाँ कहते हैं कि अपना सर्वस्व, चेतनागुण में अपना सर्वस्व। **जिसने...** अर्थात् चेतनागुण ने। **अपना...** अपने स्वरूप का **सर्वस्व भेदज्ञानी जीवों को सौंप दिया है,...** चेतनागुण ने सौंप दिया है। गुण पर दृष्टि की तो पर्याय निर्मल हुई, वह पर से नहीं परन्तु अपने कारण से होती है। इस प्रकार चेतनागुण ने अपना सर्वस्व... समझे? अपना। जिसने अर्थात् चेतनागुण ने। अपना अर्थात् स्वयं का **सर्वस्व भेदज्ञानी जीवों को सौंप दिया है,...**

जो समस्त लोकालोक को ग्रासीभूत करके मानो... यह पूर्ण स्वरूप भी ऐसा है और यहाँ साधक में भी यह दशा है। **समस्त लोकालोक को ग्रासीभूत...** ग्रासीभूत कर जाता है। ज्ञान की ऐसी दशा, चेतनागुण से आत्मा को जाना तो पर्याय निर्मल हुई। अथवा शक्ति भी पूरे लोकालोक को जानने की-ग्रासीभूत करने की है। स्व-पर, लोकालोक सर्वदर्शी और सर्वज्ञान, ऐसी उसकी शक्ति भी है और उसकी पर्याय में भी जहाँ प्रगट हुआ, **समस्त लोकालोक को ग्रासीभूत...** देखो, ग्रासी को क्या कहते हैं। ग्रास कर गया। ग्रास बड़ा है या मुँह बड़ा है? ग्रास बड़ा है या मुँह बड़ा है? ग्रास तो छोटा है, मुँह बड़ा है। ऐसे-ऐसे ग्रास तो बहुत चले जाते हैं। समझ में आया या नहीं? गज बड़ा है या पर्वत बड़ा है? पर्वत बड़ा नहीं है, गज बड़ा है। क्यों कि माप करते... करते... करते... जमीन समाप्त हो जाती है, माप समाप्त नहीं हो जाता। पर्वत के पर्वत गज से माप लेते हैं, परन्तु गज घटता नहीं और पर्वत का माप तो पूरा हो जाता है। गज बड़ा है या पर्वत? कहे, पर्वत बड़ा है। कहो, समझ में आया?

इसी प्रकार यहाँ क्या कहा? समझे न? लोकालोक... आहाहा! यहाँ तो ग्रास पर प्रश्न

उठा था। **ग्रासीभूत...** आहाहा! ज्ञान की शक्ति की क्या बात और उसकी श्रुतज्ञान आदि पर्याय की क्या बात! ओहोहो! समझ में आया? 'सब आगम भेद सु उर बसे...' यह चीज़ कैसी है? कहाँ है? व्यवहार-निश्चय क्या है? सब झगड़ों का अन्त लानेवाली चीज़ है, चेतनागुण सम्पन्न प्रभु। और समस्त लोकालोक का ग्रास कर गया। शक्ति में तो अपार रहा। लोकालोक को ग्रास कर गया। केवलज्ञान तो लोकालोक का ग्रास कर गया, उससे अनन्तगुणा लोकालोक होता तो भी और तीन काल से अनन्त काल होता तो भी उसे जान लेता। उसमें झगड़ा। अरे! प्रभु! क्या करता है? उससे विशेष चीज़ नहीं है, इसलिए यहाँ ज्ञान नहीं खिलता, विशेष होता तो खिलता। अरे! सुन तो सही! सदा खिला हुआ ही पड़ा है। पत्र में ऐसा आता है। देखो! भाई! आत्मा की इतनी शक्ति है कि उससे अनन्तगुणा लोक हो तो भी जान ले। परन्तु लोक नहीं है, ज्ञेय नहीं है तो ज्ञान की शक्ति संकुचित हो गयी। देखो! निमित्त के आधीन हो गयी। न्यालभाई! अरे! सुन तो सही। उसकी शक्ति की तो अपरिमितता ही है। निमित्त होवे तो भी और विशेष होवे तो भी और न होवे तो भी, अपरिमित ही है। ग्रासीभूत कर गया। सब ज्ञान में ग्रासीभूत हो गया।

मानो अत्यन्त तृप्ति से उपशान्त हो गया है... स्वरूप भी तृप्त से स्थिर हो गया द्रव्यस्वभाव है। पर्याय भी अत्यन्त तृप्तरूप है। समझ में आया? आहाहा! **इस प्रकार (अर्थात् अत्यन्त स्वरूप-सौख्य से...)** स्वरूप का सुख आनन्द। **(तृप्त-तृप्त होने के कारण स्वरूप में से बाहर निकलने का अनुद्यमी हो...)** शक्कर के ऊपर जो मक्खी गिरी हो तो उसके स्वाद में से उठने की ताकत नहीं रहती। शक्कर की डली के ऊपर मक्खी बैठती है न? मक्खी.. मक्खी.. शक्कर का ऐसा स्वाद आता है कि मक्खी को उड़ने की ताकत नहीं रहती। कोई पकड़ ले तो पकड़ में आ जाये परन्तु उस स्वाद में लीन हो जाती है। इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने अतीन्द्रिय स्वरूप के आनन्द के सुख में से **बाहर निकलने का अनुद्यमी...** है। आलसी है। स्वरूप में से निकलने का आलसी। वह (अज्ञानी) स्वरूप में प्रवेश होने का आलसी। समझ में आया? राग और पुण्य में धर्म माननेवाले स्वरूप में प्रवेश करने में प्रमादी-आलसी हैं। यह तो अन्दर में प्रविष्ट हुए तो बाहर निकलने में अनुद्यमी है। ऐसा आत्मा... लो! **सर्व काल में किंचित्मात्र भी चलायमान नहीं होता और इस तरह सदा लेशमात्र भी नहीं चलित अन्यद्रव्य से असाधारणता होने से जो (असाधारणता) स्वभावभूत है।** ज्ञानस्वरूप। ऐसा स्वभावभूत आत्मा है। उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। यह छह बोल आदि.... हो गये हैं।

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१५

श्री प्रवचनसार, गाथा - १७२, प्रवचन - ५६
दिनांक - २०-१२-१९७७

प्रवचनसार १७२ गाथा। इसका १९वाँ बोल चला। अलिंगग्रहण। क्या कहा अलिंगग्रहण में? सूक्ष्म बात है भाई! मूल बात ऐसी बारीक-सूक्ष्म है। वीतराग का कहा हुआ तत्त्व बहुत अलौकिक है। यहाँ कहते हैं कि जो यहाँ आत्मा है, आत्मा, वह देह से तो भिन्न है, देश से भिन्न है, कर्म से भिन्न है, परन्तु अन्दर पुण्य-पाप के विकल्प / राग हो, उनसे भी प्रभु भिन्न है। वह आत्मा स्वयं द्रव्य-वस्तु है, वह पर्याय को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! क्या कहते हैं यह?

अन्दर चैतन्यघन वस्तु जो है, द्रव्य। द्रव्य अर्थात् यह तुम्हारा पैसा नहीं, हों! द्रव्य अर्थात् वस्तु अन्दर। अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान और (अनन्त) शान्ति का जिसका पूर्ण रूप है, आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा—द्रव्य। वह शरीर को तो स्पर्श नहीं करता... आहाहा! अन्दर कर्म हैं, उन्हें भी स्पर्श नहीं करता। आहाहा! परन्तु वह पर्याय को स्पर्श नहीं करता, कहते हैं। ऐसी बात है, बापू! बहुत सूक्ष्म तत्त्व। आहाहा!

यह वस्तु जो है, वह अपना अस्तित्व जो ध्रुव, सामान्यरूप से जो ध्रुव एकरूप वस्तु जो भगवान आत्मा है, वह उसकी वर्तमान पर्याय, उसे जाननेवाली पर्याय, उसे माननेवाली पर्याय। पर्याय क्या? कहाँ पड़ी है जगत को... आहाहा! यह पर्याय, जो ज्ञान की वर्तमान पर्याय अर्थात् अवस्था, वह ज्ञेयस्वरूप भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप को जाने और श्रद्धा की पर्याय पूर्ण स्वरूप की श्रद्धा करे, तथापि उस ज्ञान की पर्याय और श्रद्धा की पर्याय को द्रव्य स्पर्श नहीं करता। यह क्या कहते हैं? आहाहा! समझ में आया?

यह तो बहुत बात कहलाती थी। सब्जी है न, सब्जी? लौकी, करेला और छुरी है न छुरी? यह छुरी सब्जी को स्पर्श नहीं करती। यह बात किसे जँचे? और उस सब्जी के टुकड़ें हों। आहाहा! क्योंकि छुरी वह परद्रव्य है और सब्जी लौकी या करेला, वे पर हैं। उस पर चीज़ को यह छुरी स्पर्श नहीं करती और छुरी उस सब्जी को स्पर्श नहीं करती। अरेरे! ऐसी

बातें अब ! यह बात तो एक ओर रही। परन्तु यह आत्मा जो वस्तु है, भगवान पूर्णानन्द प्रभु, उसकी इसे कहाँ खबर है ? आहाहा ! और खबर बिना बेखबरी... बेखबरी अर्थात् ? दो खबर होगी ? बेखबरी अर्थात् खबररहित, भानरहित। आहाहा ! अन्तर में भगवान अरूपी आनन्दघन, सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा और देखा ऐसा जो, वह तो विज्ञानघन है। आहाहा ! ऐसा परमात्मस्वरूप, परमस्वरूप, भगवत्स्वरूप वह तो है, कहते हैं। आहाहा ! उस स्वरूप, उसकी वर्तमान पर्याय, उसे जाननेवाली पर्याय को वह स्वरूप स्पर्श नहीं करता। आहाहा ! भेदज्ञान का मार्ग अरूपी अलौकिक है, बापू ! आहाहा ! क्या हो ? अभी सब बिखर गया। आहाहा ! सम्प्रदाय में यह बात ही नहीं है। क्या कहें ? सत्य बात है ही नहीं।

हमारे सम्प्रदाय के गुरु थे, वे भी कहते, कहा न, ... ज्ञानी का यह सार है कि ... शान्त थे, कषाय मन्द थी, मारवाड़ के किसान थे। परन्तु यहाँ आ गये न, उनकी माँ मर जाने के पश्चात् दीक्षा रोटियों के लिये ली थी। उसमें से थोर में कैसा पके ? उसकी सम्प्रदाय की लाईन प्रमाण उनकी स्थिति बहुत ऊँची थी। हीराजी महाराज कहलाते थे। वे व्याख्यान में ऐसा कहते, हजारों लोग, दो-दो हजार लोग उनकी सभा में (आते थे) शान्त.. शान्त.. पूठुं होय न। स्थानकवासी में हाथ में रखे पढ़ने का। उसके सामने नजर। सभा के सामने नजर नहीं करे। आदमी बैठे हों, उस ओर नजर करे। बोले ऐसा कि ज्ञानी का यह सार है कि किसी प्राणी को घात नहीं करना। वहाँ स्वयं नहीं। यह सब मलूकचन्दभाई और खीमचन्दभाई के सम्प्रदाय के गुरु थे। हीराजी महाराज को देखा होगा न ? कान्तिभाई ने देखा होगा। हीराजी महाराज। आहाहा ! ऐसा प्ररूपित करे, परन्तु शान्ति से। भगवान ऐसा कहते हैं कि किसी भी प्राणी को घात नहीं करना, वह अहिंसा है और अहिंसा... आहाहा ! वह जितने जाना, उसने सब जाना, ऐसा कहते थे। .... परप्राणी को बिल्कुल नहीं मारना, यह अहिंसा, यह सिद्धान्त का सार है, ऐसा कहते थे। यहाँ कहते हैं कि यह सब बात झूठ है। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि पर को मारने में या जिलाने में यह स्पर्श भी नहीं करता न.. ! यह जीव, उसका शरीर, दूसरे का शरीर भिन्न पड़े, उसे मरण कहते हैं। प्राण वियोग हो, उसे मरण कहते हैं, प्राण का। आत्मा का कहाँ वियोग (होता है) ? आत्मा तो अन्दर आत्मा है। यह प्राण जो पाँच इन्द्रिय के जड़-मिट्टी, इनका वियोग हो, उसे मरण कहते हैं और उस प्राण की रक्षा करना, उसका नाम जीव की दया कहते हैं।

यहाँ प्रभु कहते हैं कि यह बात झूठी है। पर प्राणी की रक्षा आत्मा नहीं कर सकता। प्रभु ! तुझे खबर नहीं। यह पर को स्पर्श नहीं कर सकता तो रक्षा किस प्रकार करे ? आहाहा !

ऐसी बात है। यह तो एक ओर रहा, परन्तु अन्दर में पुण्य और पाप के भाव होते हैं, तत्त्व, वह जीवतत्त्व नहीं है। दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव होते हैं, वह पुण्यतत्त्व है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, कामभोग, कमाना आदि के पैसा, धन्धे का भाव, वह सब पाप है। वह पाप और पुण्यतत्त्व, नव तत्त्व में पुण्यतत्त्व से आत्मतत्त्व भिन्न चीज़ है। आहाहा! वह तो भिन्न है... आहाहा! परन्तु यह द्रव्य जो है, यह इसकी पर्याय जो है, सम्यक् पर्याय, ज्ञान की, आनन्द की। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! दुनिया में क्या चलता है, वह तो सब खबर है न। वीतराग का मार्ग कोई अलौकिक है। बेचारे को सुनने को भी नहीं मिलता। आहाहा! अरे..! इसका कब जन्म-मरण का अन्त आवे।

कहते हैं कि आत्मा, अपनी जो निर्मल पर्याय है, सम्यग्दर्शन, जो वस्तु त्रिकाल आनन्द का नाथ प्रभु द्रव्य शुद्ध चैतन्यघन है, उसके सन्मुख होकर, उसका आश्रय करके जो सम्यग्दर्शन होता है, उस सम्यग्दर्शन की पर्याय को वह द्रव्य स्पर्श नहीं करता। आहाहा! न्यालभाई! यह तो जिन्दगी में कभी सुना नहीं।

श्रोता : शून्य में से एकड़ा करना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी है, बापू! आहाहा! बहुत, बापू... क्या है? अरे रे!

भगवान त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव ऐसा फरमाते हैं, प्रभु! तू जो द्रव्य-वस्तु है, वह तेरी पर्याय है, उसे वह द्रव्य स्पर्श नहीं करता। आहाहा! क्या कहते हैं? एक ओर समयसार की तीसरी गाथा में ऐसा कहते हैं कि प्रत्येक द्रव्य अपने धर्म अर्थात् जो शक्ति और पर्याय उसे चूमता है। चूमता है अर्थात् उसके अस्तित्व में है। तीसरी गाथा में आया। आत्मा अपने गुणों और अपनी पर्याय को वह चूमता है, परन्तु कर्म को और शरीर को आत्मा ने कभी स्पर्श नहीं किया, चुम्बन नहीं करता, स्पर्श नहीं करता, छूता नहीं। आत्मा कर्म को और शरीर को कभी स्पर्श भी नहीं करता। आहाहा! यह रजकण यह शरीरादि है, उन्हें आत्मा अन्दर में स्पर्श भी नहीं करता, छूता भी नहीं। आहाहा! स्पर्श करे तो दो चीज़ एक हो जाती है। समझ में आया?

यहाँ तो इससे अधिक परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव ऐसा कहते हैं कि **लिंग अर्थात् पर्याय...** यह पर्याय निर्मल लेना। समझ में आया? आहाहा! यह वस्तुस्वरूप प्रभु अखण्ड है। एक समय में चिदानन्द भगवान ज्ञानघन, विज्ञानघन आत्मा जो द्रव्य है, वह वस्तु है, उसकी श्रद्धा करनेवाली जो पर्याय, उसे जाननेवाली जो ज्ञान की पर्याय, उसे वह द्रव्य छूता-स्पर्शता नहीं है। आहाहा! अर र! भगवानजीभाई! ऐसा कभी सुनने को नहीं मिलता, यह तो ऐसी बात है। है?

लिंग अर्थात् पर्याय... १९वाँ बोल फिर से लेते हैं। **ऐसा जो ग्रहण अर्थात् अर्थावबोध...** अर्थात् सभी पर्यायें, उसमें **वह विशेष जिसे नहीं है...** आहाहा! उस द्रव्य में वह निर्मल पर्याय नहीं है। क्या कहते हैं यह? आहाहा! पर्याय भी है और द्रव्य भी है। दोनों का अस्तित्व है। परन्तु अस्तित्व में द्रव्य जो वस्तु भगवान आत्मा, वह पर्याय को स्पर्श नहीं करता, छूता नहीं, पर्याय को स्पर्शा नहीं है। यह क्या है? पागल जैसा लगे, ऐसा है। कहो, हरिभाई! आहाहा!

डॉक्टर इंजेक्शन देता है न, इंजेक्शन। वह इंजेक्शन शरीर को छूता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। यह तो बहुत स्थूल बात रह गयी परन्तु यहाँ अन्दर आत्मा जो है... आहाहा! विज्ञानघन द्रव्यस्वभाव सच्चिदानन्द प्रभु! 'सिद्ध समान सदा पद मेरो...' ऐसा जो सिद्धस्वरूप ध्रुव है, उसकी श्रद्धा करनेवाली पर्याय, उसे माननेवाली पर्याय, उसे जाननेवाली पर्याय ऐसी जो वर्तमान अवस्था, उसे द्रव्य स्पर्श नहीं करता। आहाहा! यह १९वाँ बोल है। यह अलिंगग्रहण का १९वाँ बोल है। आहाहा! है?

पर्याय विशेष से नहीं आलिंगित... आहाहा! कितना भेद पड़ा! आहाहा! आत्मा अरूपी भगवान, वह रूपी कर्म को, शरीर को कभी स्पर्शा नहीं है। अज्ञानभाव में भी वह पर को स्पर्शा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! परन्तु यहाँ तो कहते हैं ज्ञानभाव में... आहाहा! वह वस्तु भगवान पूर्ण अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द का कन्द आत्मा है, उसे जिस पर्याय ने जाना, उसकी जिस पर्याय में श्रद्धा की, उस पर्याय को वह द्रव्य स्पर्श नहीं करता। आहाहा! न्यालभाई! कभी वहाँ सुना नहीं। मजदूरी कर-करके ऐसा का ऐसा मर गये सब। मजदूरी, हों! सब बड़े मजदूर हैं, ऐसा हमें तो लगता है।

बात तो ऐसी है, बापू! अरे..रे..! मजदूर तो अच्छा है। मजदूर तो ८ से १२ चार घण्टे काम करे और दोपहर में २ से ६ चार घण्टे। यह तो सवेरे के ०९ बजे से रात के १० बजे तक। इसको यह... इसको यह... इसको यह... यह उथल-पुथल। पाप की उथल-पुथल। बड़ा मजदूर है।

यहाँ तो परमात्मा त्रिलोकनाथ ऐसा फरमाते हैं, जिनेन्द्रदेव ने दिव्यध्वनि द्वारा जो कहा, उसका यह प्रवचनसार है। प्रवचन-विशेष दिव्यध्वनि-आवाज, उसका यह सार है। भगवान! एक बार सुन, आहाहा! भगवानरूप से बुलाते हैं। आत्मा को भगवानरूप से बुलाते हैं। प्रभु ऐसा बुलाते हैं। आहाहा! आहाहा! तेरा भगवान-देव-जो स्वरूप, शुद्ध चिद्घन आनन्द, वह द्रव्य है, वस्तु है, तत्त्व है, महासत्ता है। उसकी वर्तमान एक समय की पर्याय की सत्ता, उसे वह महासत्ता स्पर्श नहीं करती। ऐसी बात कहीं सुनने को नहीं मिलती। कहीं मिले ऐसा नहीं

होता अभी। आहाहा! अभी तो कहते हैं, यह व्रत पालो, अपवास करो, भक्ति करो। आहाहा! बापू! मार्ग बहुत अलग है, भाई! आहाहा! जन्म-मरण के परिभ्रमण के चक्कर मिटाने का मार्ग कोई अलौकिक है। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु कहते हैं... आहाहा! जिस पर्याय ने द्रव्य-सन्मुख ढलकर द्रव्य की श्रद्धा की... आहाहा! पर्याय समझते हो? वर्तमान अवस्था, वर्तमान हालत, वर्तमान दशा। अरे! यह क्या? यह आत्मा की वर्तमान पर्यायरूपी दशा... आहाहा! यह वस्तु जो त्रिकाली है, उसका आश्रय करके, उसके सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन किया, यह धर्म की पहली श्रेणी। यह सम्यग्दर्शन हुआ, उस पर्याय को द्रव्य स्पर्श नहीं करता। आहाहा! तथा उस पर्याय में द्रव्य आता नहीं। यह क्या कहा? यह तो भगवान का लॉजिक का मार्ग, न्यायमार्ग अलग प्रकार का है।

सम्यग्दर्शन अर्थात् सच्चा सत् वस्तु त्रिकाली ध्रुव आनन्द का नाथ प्रभु, उसके सन्मुख होकर ज्ञान के अनुभव में उसकी प्रतीति करना.. आहाहा! इसका नाम सम्यग्दर्शन, धर्म की पहली (सीढ़ी), मोक्षमहल की पहली सीढ़ी, यह छहढाला में आता है। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन की पर्याय, उसने भगवान त्रिलोकनाथ निर्विकल्पस्वरूप प्रभु आत्मा की उसने प्रतीति की, जो अनन्त काल में नहीं हुई थी, ऐसी प्रतीति की। आहाहा! अनन्त काल में इसके ज्ञान की पर्याय में वह (प्रतीति नहीं की थी)। ज्ञेय अधिकार है न? यह क्या अधिकार है? ज्ञेय अधिकार। तो ज्ञान की पर्याय में पूरा ज्ञेय तत्त्व कभी ज्ञान में आया नहीं था। ज्ञान में ज्ञात नहीं हुआ था। आहाहा! उसे जिसने ज्ञान की पर्याय में ज्ञेयवस्तु, सम्यग्दर्शन का विषय और यह ज्ञेयतत्त्व अधिकार है। प्रवचनसार का दूसरा भाग है। आहाहा!

यह वस्तु जो है, अनन्त चैतन्य के रत्नाकर का समुद्र अन्दर भगवान है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, जिसने ज्ञान की पर्याय में उसका ज्ञान किया, उस पर्याय में उसका ज्ञान हुआ, परन्तु उस पर्याय में वह ज्ञेय आया नहीं। अरेरे! ऐसी बातें हैं। उस पर्याय में वस्तु अखण्ड पूर्णानन्द सच्चिदानन्द आत्मा है, ऐसा ज्ञान किया - निर्विकल्प ज्ञान किया। राग के अभाव-स्वभावरूप पूरे चैतन्यतत्त्व को जिसने सम्यग्दर्शन और ज्ञान में जाना, आहाहा! तो भी उस पर्याय में वह द्रव्य आता नहीं। पर्याय द्रव्य में आती नहीं, यह बाद में कहेंगे। आहाहा! यह क्या? किस प्रकार का उपदेश यह? वे तो कहें, व्रत पालो, व्रत करो, अपवास करो, तप करो, भक्ति करो, पूजा करो। अरे! भगवान! सुन न, बापू! यह तो सब विकल्प की, राग की, क्रिया की बातें हैं। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा का स्वरूप जो अन्दर अखण्ड पूर्ण द्रव्य वस्तु, उसकी जो प्रतीति

और ज्ञान (हुआ), निर्विकल्परूप से स्व के आश्रय से जो दृष्टि की, उस पर्याय को भी वह ज्ञेय, ज्ञान की पर्याय में उस ज्ञेयवस्तु को जाने परन्तु उस ज्ञान की पर्याय में वह ज्ञेय द्रव्य आता नहीं है। तथा वह ज्ञेय द्रव्य है, वह ज्ञान की पर्याय को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अनजाने लोगों को तो पागल जैसा लगता है। यह क्या कहते हैं? यह क्या है? भगवान! एक बार सुन, भाई! आहाहा! जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर की वाणी में यह आया है। आहाहा! वह यह प्रवचनसार है।

यहाँ कहते हैं **लिंग अर्थात् पर्याय ऐसा जो ग्रहण अर्थात् अर्थावबोध...** अर्थावबोध तो एक शब्द लिया है। पदार्थ का विशेष बोध। परन्तु अनन्त गुण हैं, पूरे द्रव्य की जो अनन्त गुण की पर्याय है, ऐसी जो पर्याय विशेष। **वह जिसके नहीं है...** आहाहा! आत्मा में वह पर्याय नहीं है। धर्मी ऐसा भगवान आत्मा, उसे पर्याय में धर्मदशा में प्रगट जाना। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह धर्म पर्याय है। वह निर्विकारी वीतरागी पर्याय है। उस पर्याय में द्रव्य ज्ञात हुआ, श्रद्धा हुई और उसमें स्थिर हुआ परन्तु उन तीन पर्यायों को... तीन पर्याय / अवस्था है, उन्हें यह द्रव्य छूता नहीं। आहाहा! क्या कहते हैं? उथल-पुथल की बातें हैं बापू यह तो। आहाहा!

भगवान त्रिलोकनाथ की यह दिव्यध्वनि की आवाज है। आहाहा! समझ में आया? हरिभाई! आहाहा! यह तो जितना डाले, उतना निकले ऐसी सब चीज़ है। बीस बोल तो ऐसे हैं कोई... आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने भगवान का-केवली का (अभिप्राय) खोला है अन्दर। आहाहा! ऐसी बात अन्यत्र कहीं नहीं है। आहाहा! इसमें जन्में, उन्हें भी अभी खबर नहीं कि क्या यह द्रव्य और क्या पर्याय और यह क्या है? आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **अर्थावबोधविशेष...** अर्थात् पदार्थ की विशेष दशा। वह आत्मा में नहीं है। **वह अलिंगग्रहण है; इस प्रकार आत्मा पर्यायविशेष से नहीं आलिंगित...** उसकी दशाएँ निर्मल है, उन्हें आत्मा स्पर्श नहीं करता, आलिंगन नहीं करता, उसकी पर्याय को वह द्रव्य स्पर्श नहीं करता। उस पर्याय को वह द्रव्य नहीं चूमता। आहाहा! उस निर्मल पर्याय को द्रव्य स्पर्श नहीं करता। आहाहा! यह क्या कहते हैं? समझ में आया? यह तो भगवान की वाणी है। उसमें दिगम्बर सन्त अन्तर के आनन्द के अनुभवी आनन्द के वेदन में स्थित हैं। यह स्वयं को विकल्प उठा और यह शास्त्र रच गया है। समझ में आया? आहाहा!

नहीं आलिंगित ऐसा शुद्ध द्रव्य है... ऐसा भगवान शुद्ध द्रव्य है। आहाहा! जो सम्यग्दर्शन का विषय है, जो सम्यग्ज्ञान निश्चय पर्याय का विषय है—ऐसा वह शुद्ध द्रव्य है, जो पर्याय को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! यह बात हो गयी थी। आज फिर वापस आधे घण्टे चला।

कल बात हो गयी थी। अब २०वाँ अन्तिम बोल है आज।

एक अलिंगग्रहण। छह अक्षर हैं। उसके बीस अर्थ निकाले। अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त हजार वर्ष पहले हुए। उनके पहले (आज से) दो हजार वर्ष पहले भगवान कुन्दकुन्दाचार्य हुए, उनका श्लोक है। और उसकी टीका अमृतचन्द्राचार्य ने की है तो अलिंगग्रहण में से बीस अर्थ निकाले। अपने यह बीसवाँ बोल अब शुरु करते हैं। १९ बोल चले हैं। यह तो चौदह दिन से चलता है। बीस बोल चौदह दिन से चलते हैं। बुधवार से शुरु किया है। आहाहा! बीच में तो बहुत सूक्ष्म अधिकार आ गया था। भाई! मार्ग ऐसा सूक्ष्म है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं। बीसवाँ बोल। **लिंग अर्थात् प्रत्यभिज्ञान का कारण...** ऐसी भाषा भी पहले कान में न पड़ी हो। संसार के चतुर, संसार के होशियार वे संसार में गहरे जानेवाले हैं। न्यालभाई! यहाँ तो ऐसी बात है, बापू! यह तो आत्मा के चतुर हों, उनकी यह बात है। आहाहा! क्या हो? कहते हैं, **लिंग अर्थात् प्रत्यभिज्ञान का...** उसका कारण अर्थात्? कि यह कल था वह आज है, आज था वह कल है। ऐसा भगवान आत्मा। एक व्यक्ति को देखा हो कि मैंने कल देखा था, वह यह है, वह यह है। कल था, वह यह है। ऐसे आत्मा कल था, वह आज अभी है। **प्रत्यभिज्ञान का कारण...** अर्थात् है, वह है। जो है, कल था, वह अभी है। ध्रुव। आहाहा! समझ में आया? ऐसा जो प्रत्यभिज्ञान। प्रत्यभिज्ञान अर्थात्... जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में आता है। जैन सिद्धान्त प्रवेशिका है न? गोपालदास बरैया (कृत)। उसमें स्पष्टीकरण आता है। यहाँ तो अध्यात्म में प्रत्यभिज्ञान अर्थात् यह आत्मा कल था, वह आज है, और आज है, वह अभी कल रहेगा, ऐसे अनन्त काल रहेगा। आहाहा!

लिंग अर्थात् प्रत्यभिज्ञान का कारण ऐसा जो ग्रहण अर्थात् अर्थावबोध सामान्य... आहाहा! गजब बात है। अर्थ अर्थात् पदार्थ जो सामान्य त्रिकाली द्रव्य, भगवान त्रिकाली द्रव्य... आहाहा! है? **वह जिसके नहीं है...** वह त्रिकाली द्रव्य आत्मा में नहीं है। क्या कहते हैं यह? सुनो! इसका स्पष्टीकरण धीरे-धीरे आयेगा। आहाहा! यह कोई वार्ता-कथा नहीं है। यह तो भागवत कथा, आत्मा के भगवत्स्वरूप की कथा है। आहाहा!

कहते हैं, **लिंग अर्थात् प्रत्यभिज्ञान का कारण...** अर्थात्? यह था, वह यह है, कल था वह यह है—ऐसा जो त्रिकाली ध्रुव, त्रिकाली सामान्य। एक समय की पर्यायरहित त्रिकाली सामान्य। एक समय की वर्तमान दशारहित त्रिकाली सामान्य। आहाहा! **ऐसा जो ग्रहण अर्थात् अर्थावबोध सामान्य जिसके नहीं है...** इस आत्मा में वह द्रव्य नहीं है। ध्यान रखना। यह बात किस अपेक्षा से है? कि **वह अलिंगग्रहण है...** आहाहा!

अर्थावबोध सामान्य जिसके नहीं है... यहाँ क्या कहना है ? कि सामान्य जो ध्रुव है, उसका भान हुआ, सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, शान्ति-आनन्द का वेदन हुआ। सम्यग्दर्शन होने पर अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन हुआ। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन होने पर अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन हुआ। सम्यग्दर्शन होने पर अनन्त गुण अंशतः व्यक्तरूप प्रगट हुए, वह 'सर्व गुणांश, वह समकित'। उन सब गुण का अंश जो प्रगट हुआ, उसे प्रतीति में लिया और... लिया उसका नाम सम्यग्दर्शन। ऐसी जो सम्यग्दर्शन की पर्याय में आनन्द का जो वेदन आया, वह आनन्द का वेदन आत्मा को स्पर्श नहीं करता। पहले में ऐसा आया था कि द्रव्य पर्याय को स्पर्श नहीं करता। अब यहाँ पर्याय द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! क्या कहते हैं ? आहाहा!

भगवान शुद्ध चैतन्यवस्तु, 'जिन सो ही आत्मा' यह आ गया न ? समयसार नाटक में आता है। 'घट घट अन्तर जिन बसे अरु घट घट अन्तर जैन, मत मदिरा के पान सो, मतवाला समझे न।' 'घट घट अन्तर जिन बसे..' भगवान पूर्णानाथ का प्रभु जिनस्वरूप विराजमान है। आहाहा! शक्ति से, हों! शक्ति से-स्वभाव से जिनस्वरूप भगवान आत्मा का है। आहाहा! 'घट घट अन्तर जिन बसे अरु घट घट अन्तर जैन।' जैन कोई बाहर की क्रियाकाण्ड में नहीं है। आहाहा! राग की एकता तोड़कर, स्वभाव की एकता होना और आनन्द का अनुभव होना, इसका नाम जैन कहने में आता है। समझ में आया ?

अब यहाँ ऐसा कहते हैं कि **प्रत्यभिज्ञान का कारण ऐसा जो ग्रहण अर्थात्...** त्रिकाली द्रव्य **वह जिसके नहीं...** वेदन में नहीं वह, ऐसा कहते हैं। वेदन में तो पर्याय है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! भगवान! तेरी लीला अलौकिक। वे लोग कहते हैं, ईश्वर की लीला है। ईश्वर-फिश्वर कोई कर्ता-फर्ता है नहीं। यह तो प्रभु आत्मा की लीला की बातें करते हैं।

कहते हैं यह आत्मा जो द्रव्य शुद्ध चैतन्यघन, उसका श्रद्धा-ज्ञान और वेदन आया, चारित्र में आनन्द का वेदन है। सम्यग्दर्शन में अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव है। सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र में स्वसंवेदन की उग्र दशा है। आहाहा! वह पर्याय है। तो यहाँ कहते हैं कि उस पर्याय में जो वेदन है, वह पर्याय द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। यह तो पहले आया परन्तु पर्याय द्रव्य को स्पर्शती नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शान्ति से (समझना), बापू! यह तो वीतरागमार्ग है भाई! तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव ने कहा, वह अन्यत्र कहीं है नहीं। उनके मार्ग के अतिरिक्त कहीं मार्ग है नहीं। आहाहा! और उनका मार्ग क्या है, यह अभी वाड़ा में जन्मे, उन्हें भी खबर नहीं होती।

यहाँ कहते हैं, **लिंग अर्थात् प्रत्यभिज्ञान का कारण ऐसा जो ग्रहण अर्थात् अर्थावबोध सामान्य, वह जिसके नहीं...** अर्थात्? वेदन में तो द्रव्य नहीं आता, कहते हैं। वेदन में तो पर्याय आती है। अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय शान्ति, स्वच्छता, ईश्वरता, प्रभुता - ऐसी अनन्त गुण की वर्तमान पर्याय प्रगट, वह पर्याय वेदन में आती है। वह वेदन में आयी हुई पर्याय, वह आत्मा अपनी शुद्ध पर्याय को वेदता है, वह द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। ऐसा सूक्ष्म है, भाई! मार्ग... क्या कहें? आहाहा! क्या कहा सुना? फिर से...

लिंग अर्थात् प्रत्यभिज्ञान का कारण... ग्रहण अर्थात् त्रिकाली वस्तु। त्रिकाली ध्रुव सामान्य वस्तु, जो वर्तमान पर्याय के अतिरिक्त की वस्तु। आहाहा! अभी तो पर्याय क्या और द्रव्य क्या, सब थोथा जैसे सुनते हों और कुछ भान नहीं होता। ऐई! न्यालभाई! क्या कहा?

आये हैं। यह तो बापू! दूसरी बातें हैं, भगवान! क्या कहा? आहाहा! भगवान होने की बात और भगवान... उसमें भी यहाँ तो कहते हैं कि जो भगवान पूर्ण स्वरूप है, वह जो वेदन में आया, वह सामान्य वेदन में नहीं आता। आहाहा! जो ध्रुव चीज़ है, नित्यानन्द प्रभु, वह ध्रुव है, वह वेदन में नहीं आता। वेदन में पर्याय आती है। आहाहा! यह क्या कहते हैं? ओहो! सर्वज्ञ परमेश्वर के कहे हुए मार्ग को सन्त दिगम्बर मुनि आड़तिया होकर जगत को माल बाँटते हैं। आहाहा!

एक बार सुन तो सही प्रभु! यह आत्मा जो है, उसमें द्रव्य है और पर्याय है, दो है। द्रव्य जो है, वह त्रिकाल है और पर्याय है, वह वर्तमान है। वह आत्मा, वर्तमान पर्याय को वेदता है, वह द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। यह सब भाषा ही अलग प्रकार की है, न्यालभाई! वहाँ तुम्हारी पुस्तकों में कहीं आयी नहीं। यह तो निहाल होने की बातें हैं, बापू! सच्चा निहाल, हों! खोटा निहाल नहीं। आहाहा! क्या कहते हैं?

फिर से कहते हैं। अपने यहाँ कोई एकदम कहीं बात को छोड़ नहीं देते। जो आत्मा है, उसके दो भाग। एक त्रिकाली द्रव्य ध्रुव और एक वर्तमान पर्याय, यह दो होकर पूरा द्रव्य—प्रमाण का विषय। पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं; पर तो पर में है। अब यह त्रिकाली जो द्रव्य वस्तु है, उसका जो वेदन हुआ, उसे जानने पर, उसे श्रद्धा करने पर, उसमें स्थिर होने पर उसमें चारित्र आदि से वेदन में जो आनन्द आया, उस आनन्द का वेदन पर्याय में है। उस आनन्द के वेदन में द्रव्य नहीं आता। अरेरे! ऐसी भाषा।

श्रोता : ज्ञान में आता है परन्तु वेदन में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पहले कहा था कि ज्ञान की पर्याय में। सम्यग्ज्ञान, हों! अन्दर

सन्मुख होकर (हुआ ज्ञान)। यह शास्त्र-बास्त्र पढ़े, वह ज्ञान नहीं। आहाहा! ज्ञान तो भगवान चैतन्यमूर्ति का प्रकाश नित्य अर्थात् ध्रुव, उसका जो अन्तर्मुख होकर ज्ञान हो, उसे यहाँ सम्यग्ज्ञान की पर्याय कहने में आता है। आहाहा! उस ज्ञान की पर्याय में वेदन है, वह आनन्द का और शान्ति का और पर्याय का वेदन है। उस पर्याय के वेदन में द्रव्य नहीं आता। ध्रुव उस वेदन में नहीं आता। पर्याय के वेदन में वह द्रव्य नहीं आता। आहाहा! पर्याय का वेदन उस द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। आहाहा!

पहले १९वें बोल में ऐसा था, द्रव्य, उस पर्याय को स्पर्श नहीं करता। निर्मल वेदन की, हों! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन है वह तो। धर्म तो अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन को धर्म कहते हैं। आहाहा! वह धर्म, वह पर्याय है। उस पर्याय को द्रव्य स्पर्श नहीं करता, ऐसा यहाँ तो कहते हैं, पर्याय में वेदन में द्रव्य नहीं आता। आहाहा! समझ में आये ऐसा है, हों! न समझ में आये ऐसा नहीं, भाई!

भगवान का मार्ग न्याय से है। न्याय... न्याय... नि धातु है। जैसा वस्तु का स्वरूप है, इसमें ज्ञान को ले जाना, इसका नाम न्याय है। तो भगवान न्याय से ऐसा कहते हैं... आहाहा! कि जो प्रभु आत्मा है... आहाहा! उसे जिसने सम्यग्दर्शन - ज्ञान में जाना और श्रद्धा की और उसमें जो अनन्त गुण की व्यक्त अवस्था, प्रगट अवस्था का वेदन हुआ, वह वेदन आत्मा। उस वेदन को द्रव्य स्पर्श नहीं करता, इसलिए यह वेदन, वह आत्मा। आहाहा! अरे.. अरे..! ऐसी बातें हैं। हरिभाई! आहाहा!

आत्मा को हरि कहने में आता है। पंचाध्यायी में सुना है न? राग को, द्वेष को, अज्ञान को हरे, वह हरि। पंचाध्यायी में है। यह भगवान हरि है। यह लोग हरि कहते हैं, वह नहीं, हों! यह तो अखण्डानन्द का नाथ प्रभु ध्रुव अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा है। शुद्ध ज्ञानघन अनन्त आनन्द का कन्द... आहाहा! उसकी दृष्टि होने पर वह आत्मा राग और अज्ञान का नाश करता है, इसलिए उस आत्मा को हरि कहने में आता है। हरि को तो हरि वे कहते हैं और सिंह को भी हरि कहा जाता है। परन्तु यह तो प्रभु अन्दर... आहाहा! जिसमें अनन्त गुण की राशि का ढ़ेर पड़ा है। आकाश के प्रदेश जो अनन्त हैं। आकाश के प्रदेश अनन्त हैं न? यह लोक और अलोक होकर आकाश अन्तरहित... अन्तरहित... अन्तरहित आकाश है। उसके जितने प्रदेश हैं, अर्थात् एक रजकण रोके, उसे प्रदेश कहते हैं। उसके जितने अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... चारों दिशाओं में अनन्त प्रदेश हैं, उससे अनन्तगुने तो एक जीव में गुण हैं। आहाहा!

इतनी बड़ी संख्या, बापू! क्या हो? आत्मा में तो इतने अनन्त गुण कहे हैं। परन्तु प्रभु ने तो एक परमाणु में आकाश के प्रदेश से अनन्त गुणा गुण कहे हैं। एक जड़ परमाणु में जड़ के गुण, हों! आहाहा! जितने गुण एक आकाश में हैं, उतनी संख्या में गुण एक आत्मा में है और उतनी ही संख्या में गुण एक परमाणु में है। आहाहा! ऐसा जो त्रिकाली गुण और त्रिकाली द्रव्य, उसका अनुभव होने पर वेदन में आनन्द और ज्ञान और शान्ति का वेदन आवे, उस पर्याय का वेदन, वह आत्मा। मुझे तो वेदन में आया, वह मैं। ध्रुव तो वेदन में आता नहीं। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बातें, बापू! प्रभु! भगवान! तू इतना बड़ा, इसकी तुझे खबर नहीं। आहाहा! यह धूल कहीं पाँच, पचास लाख, करोड़, दो करोड़ मिले तो मानो बड़ा हो गया और कुछ पुण्य करे तो लो न। दया, दान, व्रत वहाँ बड़ा हो गया। वह तो सब विकार है। आहाहा!

अनन्त गुण का नाथ अन्दर प्रभु सच्चिदानन्द आत्मा जिनस्वरूप विराजमान है। उसके जिनस्वरूप का जो ज्ञान और वेदन किया सम्यग्दर्शन में... आहाहा! मुनि को स्वसंवेदन अतीन्द्रिय आनन्द की उग्र दशा होती है। सच्चे सन्त जिन्हें कहते हैं। समझ में आया? आता है न पाँचवीं गाथा में? प्रचुर स्वसंवेदन। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, मुझे प्रचुर स्वसंवेदन है, उससे मैं यह समयसार कहूँगा। आनन्द की उग्रता का मुझे वेदन है। आहाहा! वह मेरा वैभव है। आहाहा! मेरे वैभव से मैं समयसार कहूँगा। वह वैभव यह। इस धूल का और तुम्हारे क्या कहलाता है? घर प्रयोग की चीज़ें, फर्नीचर। पाँच-पाँच, दस-दस लाख का फर्नीचर और ऐसी होली सुलगती हो। धूल भी नहीं तेरा फर्नीचर, सुन न! यह बात नहीं की थी? मैंने एक बार की थी। न्यालभाई नहीं जानते होंगे। एक अपने मणिभाई हैं, वहाँ उस ओर। मुम्बई में पाँच-छह करोड़वाला है। मणिभाई है। यह रसिकभाई राजकोटवाले हैं न? रसिकभाई के बहनोई।

नाम अपने को... पाँच-छह करोड़ रुपये। एक बार आहार करने गये थे। उसने प्रार्थना की थी इसलिए। टाटा का है न? टाटा का, रहने का स्थान। उसके इस ओर है। वहाँ हम गये थे। टाटा में गये थे। एक लड़का बहुत बीमार बेचारा, बहुत होशियार था। विजय (नाम था)। उसे किडनी का दर्द हुआ। फिर उसे दर्शन करने थे। यहाँ महीने-महीने रह गया था बेचारा। बारह महीने का विवाहित। किडनी का दर्द। मर गया। होशियार बहुत। आहाहा! यहाँ तो मणिभाई के घर हम गये थे, तो मणिभाई ने सबमें चरण कराये। यह तुम्हारे क्या कहलाते हैं? ब्लॉक। ब्लॉक। कितने ही ब्लॉक और मखमल के वे बिछाये हुए। पाँच लाख का तो

फर्नीचर... क्या कहलाता है तुम्हारे ? फर्नीचर होगा। पाँच लाख का। मुझे तो उस समय ऐसा विचार आवे कि अरर्र ! इसमें से निकलना इसे कठिन पड़ेगा। ऐई ! न्यालभाई ! मणिभाई आते हैं। अपने शान्ताबेन की बहिन है न ? शान्ताबेन है न। उनकी बहिन राजकोट में है। क्या कहलाती हैं वह ? (सविताबेन रसिकलाल) हाँ वह। वह रसिक है। रसिक का बहनोई है। कहीं बड़ी दुकान है बाहर अरबस्तान में कहीं। बड़ी दुकान है। बहुत पैसा है। यह सब मखमल... मखमल... बिछाया हुआ। चरण कराये। बाहर की ऐसी महिमा है न जरा कि महाराज के चरण हों तो अपने को ऐसा होगा... ऐसा होगा... और ऐसा होगा। सब मिथ्या-झूठी भ्रमणा। ऐसे चारों ओर मखमल बिछाया हुआ। पाँच लाख की तो एक हॉल में घर प्रयोग की चीज़ें थीं। अरेरे ! इसे निकलना कठिन पड़ेगा।

यहाँ तो प्रभु कहते हैं कि राग में से निकलना इसे अनन्त काल से कठिन पड़ता है। राग, दया, दान, व्रत, भक्ति का भी विकल्प है, राग है। उस राग से भगवान अन्दर भिन्न है। आहाहा ! क्योंकि राग, वह पुण्यतत्त्व है और भगवान आत्मा ज्ञायकतत्त्व है। आहाहा ! वह ज्ञायकतत्त्व जो है, उसमें पुण्यतत्त्व का अभाव है। ऐसे आत्मा को जिसने जाना, उसे जिसने अनुभव किया, उसे जिसने पर्याय में उसके वेदन में अनन्त आनन्द आदि आया, तो कहते हैं कि वह पर्याय है, वह आत्मा है। क्योंकि पर्याय ध्रुव को स्पर्शती नहीं, वेदन ध्रुव को स्पर्शता नहीं, ध्रुव का वेदन आता नहीं। आहाहा ! क्या है यह बात ? ऐसी कैसी यह बात ? यह तो पूरे दिन बेचारा करे। व्रत करो, अपवास करो, मन्दिर बनाओ, भक्ति करो, सब बातें, बापू ! वह तो पर की क्रिया है और उसमें तुझे भाव होवे तो वह राग है, विकल्प है, वह पुण्य है। वह धर्म नहीं। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि जिसमें आत्मा के पूर्णानन्द के नाथ का अवलम्बन-आश्रय लेकर जिसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान धर्म की निर्मल वीतरागी पर्याय प्रगट हुई, वह पर्याय द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। १९वें में ऐसा कहा कि द्रव्य पर्याय को स्पर्श नहीं करता। आहाहा ! अब इस सब उपाधि में यह बात कहाँ जँचे ? आहाहा ! यहाँ तो सच्चे सन्त और सच्ची सम्यग्दर्शन दशा। उस दशा को भी द्रव्य स्पर्श नहीं करता। वह दशा द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। आहाहा ! उन दोनों भिन्न-भिन्न सत्ता का स्वीकार यहाँ तो करना। समझ में आया ? राग का वेदन, उसका अभी प्रश्न नहीं है। समझ में आया ? वह राग तो धर्मी को पर्याय में भी नहीं है। वह तो सम्यग्दर्शन में शुद्ध चैतन्य भगवान का आनन्द का वेदन है। आहाहा ! राग है, वह पृथक् रहता है। परन्तु यहाँ जो सम्यग्दर्शन में पूर्ण परमात्मा जिनस्वरूप प्रभु है, उसका जानने का आया, उसका

वेदन आया। जैसा जिनस्वरूप वीतराग है, ऐसी ही पर्याय में वीतरागता की पर्याय का वेदन आया। आहाहा!

कहते हैं, उस वेदन में... आहाहा! **सामान्य जिसको नहीं है...** उस वेदन में सामान्य नहीं है। आहाहा! क्या बात आयी! अरेरे! इसने अनन्त काल में दरकार नहीं की। बाहर ही बाहर में अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया। द्रव्यलिंग धारण करके, पंच महाव्रत, पाँच समिति, गुप्ति, व्यवहार ऐसा चुस्त (पालन किया), शुक्ललेश्या - ऐसा व्यवहार अनन्त बार किया परन्तु बापू! इसके भव का अन्त नहीं आया।

'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो
पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो।'

आहाहा! इसे आत्मा का ज्ञान, वस्तु जो है चिदानन्द प्रभु, उसका ज्ञान, उसकी श्रद्धा, उसकी स्थिरता, उसके आनन्द का वेदन, वह पर्याय द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। उस पर्याय में द्रव्य नहीं है। द्रव्य में पर्याय नहीं है, ऐसे यहाँ पर्याय में द्रव्य नहीं है। अरे रे! अब ऐसी बातें!

यह ऐसा कहते हैं, है? **अर्थावबोध सामान्य जिसके नहीं है...** वेदन में सामान्य नहीं हैं। आहाहा! वेदन की पर्याय द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! इसलिए **इस प्रकार आत्मा द्रव्य से नहीं आलिंगित...** आहाहा! भगवान आत्मा द्रव्य को नहीं छूता, नहीं स्पर्शता, वेदन को स्पर्शता है और वेदता है। ऐसी बात है। आहाहा! है या नहीं अन्दर? पाठ है या नहीं अन्दर? देखो न! यह कहते हैं लोग। बापू! भाई! भगवान! तेरी ऋद्धि... आहाहा! वस्तु है वह तो द्रव्यरूप से सत्ता है। द्रव्य है, वह पर्याय को छूता नहीं, एक समय की दशा में द्रव्य आता नहीं और वेदन में भी द्रव्य आता नहीं, इसलिए शुद्ध वेदन की पर्याय वह आत्मा है।

श्रोता : किस नय का विषय है?

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चयनय। निश्चय है यह? है आश्रय द्रव्य का, परन्तु वेदन हुआ वह निश्चय है अपना। परन्तु निश्चय पर्याय वह निश्चय है न उसका? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य (ने) गजब काम किया है! आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ का मार्ग स्पष्ट करके रखा है। अरे रे! जिसे सुनने को भी न मिले, वह कहाँ जाए? क्या करेगा? आहाहा!

यहाँ तो प्रभु कहते हैं... आहाहा! इस प्रकार... जिसे नहीं कहा, समझ में आया? ग्रहण अर्थात् द्रव्य को नहीं है। आहाहा! द्रव्य में वेदन नहीं है, द्रव्य का वेदन नहीं है।

आहाहा! परिपूर्ण द्रव्य है, वह तो ध्रुव है। उसका वेदन नहीं होता। वेदन तो पर्याय का होता है। मोक्षमार्ग, वह पर्याय है, मोक्षमार्ग वह द्रव्य नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः - यह पर्याय है। परन्तु किसकी श्रद्धा और ज्ञान? कि त्रिकाली द्रव्य की श्रद्धा और ज्ञान और रमणता। तथापि उस मोक्षमार्ग की पर्याय में द्रव्य नहीं आता। आहाहा! विशेष दशा में सामान्य नहीं आता। १९वें (बोल) में सामान्य में विशेष नहीं आता (ऐसा आया)। समझ में आया? ऐसी बातें हैं। निश्चय.. निश्चय.. करके लोग उड़ा देते हैं। परन्तु निश्चय वस्तु ही ऐसी है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि हमको आनन्द का जो वेदन आया, उसे हम आत्मा कहते हैं। वह आत्मा। आहाहा! उस आत्मा का वेदन है। द्रव्य का वेदन नहीं। वेदन में आत्मा का द्रव्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया? पर्याय द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। पहले ऐसा कहा कि द्रव्य पर्याय को नहीं छूता। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि वेदन की पर्याय आयी, सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान होने पर जो आनन्द का वेदन आया, उसमें अनन्त गुण की शक्ति, जितने संख्या में गुण हैं, उन सबका एक अंश सम्यग्दर्शन में प्रगट हुआ। ज्ञानादि अनन्त गुण जितने हैं, उनका एक अंश सम्यग्दर्शन होने पर प्रगट हुआ। 'सर्वगुणांश, वह समकित।' आहाहा! परन्तु यह गुणांश, वह समकित है, वह गुणांश द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। अरे रे! ऐसी बातें हैं। समझ में आया? ऐसी इसकी लीला है। आहाहा! क्या हो, बापू! मार्ग तो यह है। लोगों ने गड़बड़ कर डाली है। आहाहा!

श्रोता : इसमें गड़बड़ नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें गड़बड़ हो, ऐसा है ही नहीं।

आत्मा द्रव्य से नहीं आलिंगित... आत्मा द्रव्य को स्पर्शता नहीं। **ऐसा शुद्धपर्याय है...** 'ऐसा' कहा है। 'ऐसी' नहीं ली। पर्याय। **ऐसा शुद्धपर्याय है...** आहाहा! राग की यहाँ बात ही नहीं। राग तो विकृत अवस्था, व्यवहाररत्नत्रय है, वह तो राग विकृत अवस्था है। यहाँ तो त्रिकाली भगवान के आश्रय से जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई, ऐसा शुद्धपर्याय, वह आत्मा है। विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१६ **श्री समयसार, गाथा - ७९, प्रवचन - १५१**
दिनांक - २९-०५-१९६९

'कर्ताकर्म अधिकार' ७९ गाथा। प्रश्न ऐसा है। प्रश्नकर्ता का ऐसा आया न? यह आत्मा के जो परिणाम हैं... भेदज्ञान हुआ - राग से और पर से भिन्न ज्ञान हुआ। आत्मा का परिणाम तो भेदज्ञान अर्थात् राग-द्वेषरहित परिणाम होते हैं। राग और कर्म आदि, उसके ऊपर दृष्टि और जब तक एकत्व था, तब तक तो अज्ञानी का राग-द्वेष का कार्य और राग-द्वेष का कर्ता था। राग और पुण्य आदि, शरीरादि से भिन्न अपना शुद्धस्वरूप, विकार से भिन्न अविकारी का अन्तरभान हुआ, उस समय अपने परिणाम तो वीतरागी निर्दोष परिणाम होते हैं। उसे जीव के परिणाम कहते हैं। उस जीव के परिणाम को पुद्गल जानता नहीं और अपना पुण्य-पाप का विकल्प तथा हर्ष-शोक का भाव, उसे भी पुद्गल अपने परिणाम को, अपने फल को जानता नहीं। समझ में आया? यह पुद्गल कर्म अथवा पुद्गलद्रव्य जीव के परिणाम को नहीं जानता, अपना परिणाम और अपने फल को नहीं जानता, ऐसे पुद्गल कर्म के साथ आत्मा को कर्ताकर्म सम्बन्ध है या नहीं? यह पुद्गल कर्ता और जीव का परिणाम कर्म, ऐसा कोई सम्बन्ध है? ऐसा प्रश्न ७९ गाथा में चला।

अन्त में कहा कि **जैसे मिट्टी स्वयं घड़े में अन्तर्व्यापक होकर, आदि-मध्य-अन्त में व्याप्त होकर घड़े को ग्रहण करती है।** परिणमन करके उसी पर्याय का परिणमन मिट्टी में अपनी पर्याय में होता है और उत्पन्न हुई घड़े की पर्याय अपने में घड़े की पर्याय उत्पन्न हुई। मिट्टी अपनी पर्याय में प्राप्य, विकार्य, निर्वृत्त्य को प्राप्त करता है। उसी प्रकार पुद्गल, जीव परिणाम, अपने परिणाम और उसके फल परिणाम को नहीं जाननेवाला पुद्गलद्रव्य, वह स्वयं परद्रव्य के परिणाम में व्याप्त नहीं होता। राग-द्वेष और सुख-दुःख की कल्पना का भाव और कर्म के फलरूप संयोगीभाव, वह पुद्गलद्रव्य स्वयं, आत्मा की निर्दोष धर्मरूपी पर्याय को ग्रहण नहीं करता। धर्मरूपी पर्याय को पुद्गल परिणाम और फल ग्रहण नहीं करता। क्योंकि वह वस्तु भिन्न है। समझ में आया?

भेदज्ञानी की बात चलती है। भिन्न है, ऐसा भिन्न हो गया। धर्मी के परिणाम सम्यग्दर्शन,

ज्ञान, शान्ति, आनन्द आदि जो परिणाम हैं, उन परिणाम को पुद्गलद्रव्य के परिणाम – राग-द्वेष, हर्ष-शोक, वे आनन्द के परिणाम को ग्रहण नहीं करते। आनन्दरूपी परिणाम को प्राप्य करे, ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म भाव! एकदम अनजाने को अटपटा जैसा लगता है। क्या है यह? समझ में आया?

वह पुद्गल, जीव के परिणाम में अथवा आत्मा के ज्ञान और आनन्दरूपी दशा को पुद्गलपरिणाम अर्थात् राग-द्वेष और सुख-दुःख के परिणाम, वे पुद्गलपरिणाम हैं, वे पुद्गल हैं; तो वह पुद्गल जीव के परिणाम को प्राप्त नहीं करता, जीव के परिणाम में परिणमन नहीं करता और जीव के परिणाम में वह पुद्गल उत्पन्न नहीं होता। समझ में आया? तो क्या है अब? **परन्तु...** अपने आज यहाँ आया है। कल वहाँ तक आया था। **उत्पन्न नहीं होता परन्तु...** है? **प्राप्य विकार्य और निर्वृत्य ऐसा जो व्याप्य लक्षणवाला अपना स्वभावरूप कर्म...** भाषा देखो! पुद्गल का स्वभाविक कार्य सहज स्वभाव का कार्य, यह व्यवहार शुभाशुभ परिणाम का होना और हर्ष-शोक, सुख-दुःख की कल्पना का होना और संयोगी परमाणु की पर्याय का होना, यह पुद्गल का स्वभाविक कार्य है। समझ में आया? शुभयोगरूपी जो भाव शुभराग – प्रशस्तराग हुआ, वह पुद्गल का स्वभाविक कार्य है।

स्वभाविक पुद्गल का कार्य है। क्योंकि पुद्गल राग से भिन्न पड़ा, आत्मा अपने वीतरागी परिणाम को आत्मा प्राप्य, विकार्य और निर्वृत्य करता है; और अपने प्राप्य, विकार्य और निर्वृत्य परिणाम को पुद्गल प्राप्त नहीं करता। पुद्गल अपने दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि के भाव, वह पुद्गल का स्वभाविक कार्य है, वह परिणाम। देह की क्रिया तो दूसरी। ऐसे-ऐसे होना, वह तो जड़ की (क्रिया है)।

क्योंकि भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप अपने घर में आया तो उसमें से विकार परिणाम किस प्रकार उत्पन्न हों? समझ में आया? क्योंकि भगवान चैतन्यस्वरूप ज्ञानानन्द भाव ऐसी जो अपनी चीज़, उस पर दृष्टि करने से शुद्ध, पवित्र, आनन्द, ज्ञातादृष्टा के परिणाम अपने में उत्पन्न होते हैं। यह धर्मी का कार्य और धर्मी के परिणाम हैं। और उस समय में जो हर्ष-शोक और राग-द्वेष के परिणाम हुए, वे स्वभाविक पुद्गल का कार्य है, ऐसा कहा। समझ में आया? इतना स्वभाव यहाँ लगाया।

अपने स्वभावरूप कर्म... ऐसा शब्द पहले पाँच गाथा में कहीं नहीं आया था। आत्मा अपना शुद्धस्वरूप परमानन्द की मूर्ति है, उस पर दृष्टि लगाने से अपने सब परिणाम, निर्मल

परिणाम – ऐसा वहाँ कहा। समझ में आया? परन्तु यहाँ तो राग से और पर से भिन्न हुआ ऐसा प्रभु, उसमें जो रागादि हुए, वह तो पुद्गल का स्वभाविक कार्य है, वह आत्मा का कार्य नहीं। आहाहा! समझ में आया?

प्राप्य—जिस समय में जो दया, दान, विकल्प आदि आनेवाला है, वह आया, इसका नाम प्राप्य। और उस समय पूर्व की पर्याय बदलकर वह परिणमन होना था, वह विकार्य। वही पर्याय उत्पन्न होने की थी, वह निर्वर्त्य, ऐसा पुण्य-पाप और हर्ष-शोक का विकल्प, देहादि की क्रिया का उस समय में प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य परमाणु की पर्याय में पुद्गलद्रव्य स्वयं व्याप्य होकर यह स्वभाविक कार्य पुद्गल का है। समझ में आया?

प्राप्य विकार्य और निर्वर्त्य ऐसा जो व्याप्य लक्षणवाला... ओहोहो! क्या चीज़ है यह? उसी समय में वह राग आनेवाला था, वह आया। ऐसा कोई कहे कि अशुभ से बचने के लिये शुभभाव आया, तो वह कथन भी व्यवहार है। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? ज्ञानी को शुभभाव हुआ, ऐसा कहना, वह व्यवहार है, उसे शुभभाव है ही नहीं, और अशुभ से बचने को शुभभाव होता है, ऐसा कहना भी सत्य नहीं है। यह सब कथन व्यवहार से है।

यहाँ तो क्या कहा? देखो! उस समय में शुभरागरूपी प्राप्य होनेवाला पुद्गलकर्म का स्वभाविक कार्य है। पश्चात् और (ऐसा कहे कि) अशुभ से बचने को (शुभभाव) आया, यह भाषा तो जरा लोगों को सन्तोष हो, इसलिए कहा कि अशुभ से बचने को ऐसा भाव आता है। समझ में आया? तो कहे, हाँ! ठीक.. ठीक.. ठीक.. भाव तो आता है न? परन्तु उस समय अशुभभाव होनेवाला था और शुभभाव हुआ, ऐसा है! (नहीं है।) समझ में आया? यह कहते हैं कि वह तो शुभराग जिस समय में होनेवाला हो, उसी समय में वह प्राप्य है। उसी समय का वह परिणमन शुभ विकार्य है। उसी समय में शुभपरिणमन उत्पन्न होनेवाला था, वह निर्वृत्य है। आहाहा! क्या बात करते हैं! समझ में आया?

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बचाने का लिये व्यवहार का कथन है।

श्रोता : परन्तु एक के एक आचार्य...

पूज्य गुरुदेवश्री : एक के एक आचार्य नहीं कहते? व्यवहारनय से कथन होता है। निश्चय से जैसा है वैसा है। व्यवहार से ऐसा कहते हैं, परन्तु ऐसा नहीं है। परन्तु निमित्त का ज्ञान कराने के लिये कथन किया है। समझ में आया? देखो! वहाँ आता है – पंचास्तिकाय में

नहीं आता? आता है। अशुभ वंचनार्थ, कुस्थान से निषेधार्थ। ज्ञानी को भी कुस्थान से निषेध... यह सब व्यवहार की शैली ही ऐसी है।

हाँ, यह व्यवहार शब्द है। वास्तविक तो उस समय का राग, पुद्गल का स्वाभाविक कार्य आये बिना रहता नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

श्रोता : प्रायश्चित्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रायश्चित्त... यह सब बातें हैं। प्रायश्चित्त क्या? यह सब व्यवहार की बातें हैं। ऐसे विकल्प का काल था, तो पुद्गल का कार्य हुआ। गुरु के पास गये तो भी वह पुद्गल का कार्य राग है। वाणी निकली कि मुझे ऐसा हुआ, वह सब पुद्गल का कार्य है।

श्रोता : गुरु कृपा वह पुद्गल का कार्य है?

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु कृपा पुद्गल का ही कार्य है।

श्रोता : प्रायश्चित्त...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अपने स्वभाव में अपनी स्थिरता, अपना प्राप्य उस समय में शुद्ध को प्राप्त करे, वही अपना प्रायश्चित्त है। आहाहा! शुभ को प्राप्य करे, वह कहीं प्रायश्चित्त है? शुभ तो स्वाभाविक उस समय में होनेवाला स्वाभाविक पुद्गल का कार्य है। ओहोहो! व्यवहार के कथन इतने आवे—प्रायश्चित्त ले, व्रत निरतिचार पाले। भाषा कैसी आवे? दोष लगे तो छेद आवे, गुरु के पास जाए, दीक्षा छेदन करे, वे सब कथन ऐसी शैली है।

पुद्गल अपना स्वभाव ही नहीं है। यहाँ तो राग से भिन्न हुए की बात है न? जो राग को अपने में मानता है, वहाँ तो राग उसका कार्य और अज्ञान उसका कर्ता। वह तो पुद्गल जड़ ही है, वह आत्मा हुआ नहीं। राग अपना कार्य और मैं कर्ता, वह अन्दर आत्मा रहा नहीं, वह तो अनात्मा हो गया, पुद्गल की दृष्टि हो गयी। ओहोहो! प्रायश्चित्त के इतने ग्रन्थ भरे हों। वह तो उस समय की भाषा की वर्गणा आनेवाली थी, उस पर्याय प्राप्य को पुद्गल प्राप्त करता है। आत्मा बोलता है? और वह शुभ का विकल्प आया कि महाराज! मुझे ऐसा दुःख होता है। उस समय भी ज्ञान में पर से विरक्त ही है, उस समय भी ज्ञान राग से विरक्त ही है। वह राग में एकमेक है ही नहीं। आहाहा! उस समय में जो राग आया, वह तो पुद्गल का स्वाभाविक कार्य है, परन्तु उस समय में उसी राग का ज्ञान हुआ, वह अपने आत्मा का प्राप्य है। समझ में आया? वही ज्ञान की पर्याय होनेवाली थी। वह राग के ज्ञान की पर्याय जो हुई, राग का ज्ञान हुआ, तो वही ज्ञान प्राप्य होकर उसी समय में आनेवाला था, उसे ज्ञानी प्राप्य

अर्थात् प्राप्त करता है। समझ में आया? कथन ऐसा है। कथन व्यवहार से बहुत आवे। उसका अर्थ न समझे तो परमार्थ का नाश हो जाए। समझ में आया?

कहते हैं कि धर्मी को, ज्ञानी को, मुनि को या समकिती को उस समय में जो राग आया, वह तो पुद्गल का कार्य है। उसका जानना वह अपने में राग को स्पर्श किये बिना अपना कार्य हुआ, उसका प्राप्यरूप कार्य आत्मा का है। राग का कार्य पुद्गल का है। समझ में आया? 'अगम्य प्याला पीओ मतवाला, चिन्हीं अध्यात्म वासा...' अध्यात्म वस्तु ऐसी है। ज्ञानानन्द भगवान चैतन्य प्याला, आनन्दस्वरूप का पिया, बस! क्षण-क्षण में जो ज्ञान और आनन्द की पर्याय, जिस प्रकार का व्यवहार उत्पन्न होनेवाला है, वह पुद्गल से स्वाभाविक कार्य होगा और उसका ज्ञान भी उस समय में उस प्रकार से अपना प्राप्य है। उसे आत्मा प्राप्त करता है परन्तु उस जीव के परिणाम को पुद्गल का परिणाम प्राप्य नहीं करता। यह यहाँ सिद्ध करना है न? समझ में आया? ओहोहो! बहुत धीर.. धीर.. धीर की बात है यहाँ। समझ में आया? धी—बुद्धि, र—प्रेरते। स्वरूप में धी—बुद्धि प्रेरे, वह धीर, बुद्धि कहने में आता है। राग में प्रेरे और राग में अपना (अस्तित्व माने), वह बुद्धि ही नहीं है, वह ज्ञान नहीं है, ऐसा कहते हैं। दुनिया से अलग बात है। वे कहते हैं व्यवहार करना, व्यवहार से शुद्धि होगी। **शनैः शनैः** पंचास्तिकाय में है। ऐई..! देवानुप्रिया! कहाँ है? तुम्हारे भाई ने लिखा है। **शनैः शनैः** व्यवहार से शुद्धि होती है, फिर उसका दण्ड भी लेते हैं। और फिर कहते हैं कि आत्मा उस क्रियाकाण्ड को स्पर्श नहीं करता।

श्रोता : यह कहने के बाद...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहने के बाद अर्थात् उस समय में ज्ञात हुआ, ऐसी बात हुई थी, इसलिए ज्ञात हुआ। आहाहा! ऐसा काम है, बापू! भगवान आत्मा 'जागकर देखूँ तो जगत दिखता नहीं'। भगवान आत्मा राग और पर से भिन्न जहाँ जागृत हुआ, वहाँ रागादि संसार अपने में है ही नहीं। कोई कहे कि यह तो वेदान्ती कहते हैं, परन्तु वेदान्त ऐसा कहते हैं कि जगत कुछ है ही नहीं - ऐसा नहीं है। जागकर देखा तो जगत अपने में नहीं है।

श्रोता : जगत में जगत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जगत में जगत है। दोनों में इतना अन्तर है। समझ में आया? इस जगत शब्द से शुभराग, विकल्प, कर्म, शरीर, वाणी सब पूरा जगत। 'जागकर देखूँ तो जगत दिखे नहीं'। स्वरूप में वह कुछ नहीं है। बाद में जो आया, वह संसारी जगत की चीज़,

पुद्गल की चीज़ है। आहाहा! भगवान! तेरे चैतन्य की लीला की क्रीड़ा ऐसी है। समझ में आया? ओहोहो!

कहते हैं कि **प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य ऐसा जो व्याप्यलक्षणवाला अपना स्वभावरूप...** यह अवस्था ही पुद्गल का स्वाभाविक कार्य है। भगवान आत्मा तो उसे जानने-देखने की पर्याय का कर्ता है। समझ में आया? और वह जानने-देखने की पर्याय को वह पुद्गल परिणाम नहीं करते। समझ में आया? अर्थात् शुभराग ऐसी चीज़ आयी तो उससे अपना निश्चय स्वभाव टिका है, रहा है और उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं है। क्या आया? समझ में आया? उस समय में ऐसा शुभराग आया, ऐसा शुभराग आया, प्रशस्त तीर्थंकरगोत्र बाँधने का (भाव हुआ)। वह भाव है तो यहाँ निश्चयभाव टिका है, निश्चय की उस कारण से प्राप्ति हुई है और वह है तो यहाँ निश्चय की उत्पत्ति हुई है, ऐसा नहीं है क्योंकि पुद्गल का कार्य प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य आत्मा का कर्ता है, ऐसा नहीं है। ओहोहो! समझ में आया?

प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य ऐसा जो व्याप्य... व्याप्य अर्थात् अवस्था। ऐसी अवस्था लक्षणवाला पुद्गलद्रव्य, पुद्गल का स्वाभाविक कार्य... आहाहा! पूरा जगत और राग से लेकर पुद्गल का स्वाभाविक कार्य, वह कर्ता का कार्य है। वह पुद्गल कर्ता और उसका वह कार्य है; आत्मा का कार्य नहीं।....भाई! यह शुभराग आत्मा का कार्य नहीं है, ऐसा कहते हैं। तीर्थंकरगोत्र जिस भाव से बाँधे, वह भाव पुद्गल का स्वाभाविक कार्य है।

खबर की बात कहाँ है? यह तो पहले में कहा। खबर है, वह पुद्गल है? जगत की चीज़ है? खबर न हो, वह चीज़ जगत में है ही नहीं? तब तो पाँच द्रव्य सिद्ध ही नहीं होंगे। खबरवाली चीज़ यदि सिद्ध हो तो एक ही चीज़ सिद्ध होगी। खबररहित चीज़ नहीं तो पाँच द्रव्य सिद्ध नहीं होंगे। राग भी खबररहित चीज़ है। ऐसी वस्तु है, भाई! ओहोहो! व्यवहार के पक्ष में पड़े हुए को यह बात ऐसी लगती है, एक बार कुन्दकुन्दाचार्य उड़ायेंगे, जब इसे ठीक नहीं बैठे तब। करते... करते... करते... नहीं, नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य वेदान्त में चले गये— किसी ने कहा था। नाथुराम, नाथुराम प्रेमी था न एक? नाथुराम प्रेमी मुम्बई में थे। वे कहते थे कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार वेदान्त के ढाले में ढाल दिया है। अरे! भगवान! तुझे खबर नहीं, बापू! जैनदर्शन, वीतरागदर्शन क्या चीज़ है? समझ में आया?

कल एक 'काग' का पत्र आया है। कवि काग। बहुत प्रसन्न हुए न? ऐसा कि.. आहाहा! काग के पास गरुड़ आवे! मुझे तो कागज ... बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें दो पुस्तकें दी थी थोड़ा-थोड़ा पढ़ा होगा। फिर कहे, जैनधर्म की चाबी आपने खोल दी है, ऐसा कहा। दृष्टान्त

दिया है। कमरे जितना वारणुं नहीं होता। कमरे जितना वारणुं नहीं होता। वारणुं समझते हो? दरवाजा। बारसाख जितना ताला नहीं होता, ताले जितनी चाबी नहीं होती, परन्तु चाबी बिना कमरा नहीं खुलता। कवि है न, भाई! कल चिट्ठी आयी, फोटो माँगा है। मुझे एक फोटो भेजो। बड़ा कमरा होता है न, उस कमरे से दरवाजा छोटा होता है और दरवाजे से ताला बहुत छोटा होता है और ताले से चाबी बहुत छोटी होती है परन्तु उस चाबी के बिना कमरा नहीं खुलता। ऐसा लिखा है। इसी प्रकार आपने जैनधर्म की चाबी लोगों को दी, जैनधर्म की बात खोल दी। थोड़ा पढ़ा था न, दो पुस्तकें दी थीं। जीवनचरित्र और आत्मसिद्धि। थोड़ा-थोड़ा पढ़ा होगा।

जो स्वरूप... कहा था वहाँ। जो स्वरूप समझे बिना पायो (दुःख अनन्त)। वह वस्तु मूल है। स्वरूप चीज़ क्या है? अपनी वस्तु क्या है? समझ में आया? निजस्वरूप क्या है? स्वभाव क्या है? अपनी चीज़ में क्या-क्या पड़ा है? अनन्त-अनन्त अपरिमित आनन्द शक्ति, वीर्य बल आदि भरे हैं। ऐसा स्वरूप भगवान आत्मा, उसे नहीं जानना; इसलिए परिभ्रमण करता है। अमुक नहीं किया, ईश्वर ने नहीं किया, ऐसा नहीं है। समझ में आया? लो, आचार्यों ने पूरी जैनधर्म की चाबी लगा दी है। अलमारी खोल दी है। यह मार्ग है, भाई! आहाहा!

तेरे चैतन्यसूर्य में भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान की पर्याय का प्राप्य और कार्य करे, वह राग का कार्य कैसे करे? उसमें है ही नहीं न! उसके द्रव्य, गुण, पर्याय में राग है ही नहीं। आहाहा! क्योंकि जो स्वभाव से शुद्ध अकषायभाव है, उसका विस्तार होकर पर्याय में अकषायभाव आता है; तो अकषायभाव कहो, वीतरागभाव कहो, 'जिन सो ही आत्मा' कहो। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म'। रागादि पुद्गल का कार्य। देखो! इसमें यह आ गया। 'जिन सो ही है आत्मा' चारित्रस्वरूप, अकषायस्वरूप, जिनस्वरूप वह आत्मा। उसका वीतरागभाव... जब दृष्टि हुई तो वीतरागभाव पर्याय में व्याप्त हुआ। वीतरागभाव का विकास हुआ। द्रव्य में और गुण में, वीतरागपना पड़ा है और उसकी प्रतीति और पूरे द्रव्य का अधिकार लिया, तो पर्याय में वीतरागता आ गयी। समझ में आया? तो वीतराग की पर्याय वीतरागी, वह अपना कार्य और अपना प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य है। आहाहा! परन्तु वह पुद्गल जो अपने राग, पुण्य-पाप के परिणाम में प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य... स्वभाविक कर्म करता है, वह अपने आत्मा के परिणाम में प्राप्य हो, ऐसा नहीं है। ओहोहो! कर्ता-कर्म की व्याख्या अलौकिक बात है।

कहते हैं कि उस कर्ता का कर्म है। वह पुद्गल का परिणमन है, पुद्गल का परिणमन

है। व्यवहाररत्नत्रय शुभयोग, वह पुद्गल का परिणमन है, पुद्गल का कार्य है, पुद्गल का प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य है, तो उस पुद्गल का प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य क्या आत्मा का सम्यग्दर्शन प्राप्य पर्याय में आ जाता है ? वह तो भिन्न है, अत्यन्त भिन्न है। जगत और चैतन्य अत्यन्त भिन्न है। समझ में आया ? वह पुद्गलद्रव्य। ऊपर से लेना है, पहली लाईन। **(वह पुद्गल द्रव्य) स्वयं अन्तरव्यापक होकर, आदि-मध्य-अन्त में व्याप्त होकर...** उसे ग्रहण नहीं करता। **ऐसा पुद्गलद्रव्य प्राप्य, विकार और निर्वर्त्य ऐसा जो व्याप्यलक्षणवाला परद्रव्यपरिणामस्वरूप कर्म...** को करता है। लो। आहाहा!

(वह पुद्गलद्रव्य) स्वयं अन्तरव्यापक होकर,... स्वयं अन्तरव्यापक पसर कर। **आदि-मध्य-अन्त में व्याप्त होकर...** यह शुभराग, अशुभराग, हर्ष-शोक की कल्पना, संयोगी अनुकूल-प्रतिकूल पर्याय, पर्याय में पुद्गल स्वयं आत्मा की पर्याय की अपेक्षा रखे बिना, उसकी निश्चयदशा है, तो उसमें ऐसा व्यवहार हो, उसकी अपेक्षा रखे बिना। समझ में आया ? देखो!

प्रवचनसार में चरणानुयोग की पहली गाथा में आया है। चरणानुसारी द्रव्यम्, द्रव्यानुसारी चरणम्। ऐसा श्लोक है। उसका अर्थ कि जो शुद्धि है, उस प्रकार में वहाँ राग की मन्दता, उतने प्रमाण में वहाँ आती है। जितनी शुद्धि है... द्रव्यानुसार अर्थात् शुद्धि। वह द्रव्यानुसारी चरणम् अथवा जितनी शुद्धि है, उस प्रमाण में वहाँ राग की मन्दता का भाव होता है और चरणानुसारी द्रव्यम्। राग की जितनी मन्दता का भाव, उस प्रमाण यहाँ शुद्धि की पर्याय इस ओर होती है। अपने-अपने कारण से। समझ में आया ?

वहाँ तो ऐसा भी लिया है कि द्रव्य का अनुसरण करके या चरण का अनुसारण करके... करो। इसका अर्थ (यह कि) राग की कितनी मन्दता है, उसका ज्ञान करके, शुद्धि कितनी उत्पन्न होती है, उसका ज्ञान करके आत्मा का आश्रय करो। आहाहा! समझ में आया ? चरणानुयोग की पहली गाथा है, प्रवचनसार। यह क्या है ? समयसार। समझ में आया ? तो कहते हैं कि पुद्गलद्रव्य स्वयं, यह पुण्य-पाप का जितना व्यवहार... देखो! वहाँ चरणानुयोग में तो ऐसा कहा कि पाँच प्रकार का ज्ञानाचार व्यवहार; दर्शनाचार, चारित्रचार, तपाचार, वीर्याचार। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य। हे ज्ञानाचार! मैं जानता हूँ कि तू मेरी चीज़ नहीं है परन्तु तेरे प्रसाद से जब तक मैं शुद्धता न प्राप्त करूँ... ऐसा शब्द है। चरणानुयोग। यह सब व्यवहार के कथन हैं।

श्रोता : प्रसाद...

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रसाद-फ्रसाद कुछ है नहीं। समझ में आया?

प्रवचनसार चरणानुयोग की पहली गाथा में (कहा), हे ज्ञानाचार! समयानुसार उस काल में स्वाध्याय करना, ऐसा आता है न? दर्शनाचार-समकित में शंकादि नहीं लगाना। चारित्र में पाँच समिति, तीन गुप्ति में दोष नहीं लगाना। वीर्याचार - वीर्य की स्फुरणा अर्थात् विकल्प यह पाँच। हे ज्ञानाचार! इसलिए मैं जानता हूँ कि तू मेरी चीज़ नहीं है, मेरा स्वरूप नहीं है। ऐसा तो पहले लिया है। परन्तु तेरे प्रसाद से जब तक मैं पूर्ण सिद्धता को न प्राप्त करूँ, तब तक मैं तेरा आश्रय लेता हूँ। ऐई! गजब व्याख्या। यहाँ तो कहते हैं आश्रय-फाश्रय मुझे है ही नहीं। आश्रय कैसा? उसका मुझे आश्रय कहाँ है और मेरा उसे आश्रय नहीं है। भिन्न चीज़ है उसमें आश्रय कैसा? समझ में आया?

श्रोता : कहनेवाले एक ही हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहनेवाले एक, परन्तु किस अपेक्षा से कहा, उसे समझना चाहिए। कहनेवाले तो एक ही हैं। वे ही आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य। चरणानुयोग की पद्धति में व्यवहार प्रधान सब कथन विशेष आता है। निश्चय भी उसमें है। समझ में आया? द्रव्यानुयोग में खास अकेला स्वत: स्वभाव का कथन मुख्यरूप से आता है। चारों अनुयोग का न्याय मिलाना चाहिए न! यह कहीं विरुद्ध है? एक आचार्य इस न्याय से वहाँ कहे, वे नय वहाँ कहे तो उसमें विरोध है? वीतराग का वचन विरुद्ध नहीं होता। सन्तों के वचन में विरोध होता ही नहीं। समझ में आया?

वहाँ कहते हैं तेरे प्रसाद से... यहाँ कहते हैं तेरा कुछ भी मुझे लेना-देना नहीं है। ठीक। ज्ञान व्यवहार आचार पंच, ज्ञेय करना... आता है न ऐसा? वह तो सब पुद्गल के परिणाम हैं। व्यवहार ज्ञानाचार पुद्गल के परिणाम हैं। पुद्गल के स्वभाव का कार्य है। मेरा है ही नहीं न! तेरे प्रसाद से मैं सिद्धता प्राप्त करूँ, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

प्रसाद का अर्थ (यह है कि) 'है', बस। वह जब तक है तो उसका प्रसाद ऐसा कहने में आया है। प्रसाद-फ्रसाद। तेरा प्रसाद मुझे क्या काम आयेगा? हमारी पर्याय में प्राप्त करने का हमसे है। तेरे राग से हमारे में प्राप्त करने का है? समझ में आया? आहाहा! व्यवहार से अभाव करके... तब तो पुद्गल का अभाव करके उत्पन्न होता है। इतनी भी अपेक्षा नहीं, भाई! क्या कहा समझे? व्यवहार का अभाव करते-करते आगे बढ़ते हैं, यह सब कथनशैली ऐसी है। ओहोहो! पुद्गल का अभाव तो पुद्गल से होता है। आत्मा क्या उसका अभाव करे? अपने में शुद्धि की वृद्धि होती है, वह तो अपने स्वद्रव्य के आश्रय से होती है। वह समय-

समय का जो परिणाम प्राप्य, विकार्य, निर्वत्य आत्मा उसरूप से प्राप्त करता है। वहाँ पर के अभाव की अपेक्षा से, व्यवहार के अभाव की अपेक्षा से आगे बढ़ता है? आहाहा! ज्ञानचन्दजी! गजब बात, भाई! वीतरागमार्ग समझे पूरा हो गया, संसार नहीं रहता। ऐसी गूढ़ गम्भीर चीज़ है। उसे निश्चय और व्यवहार की भिन्नता को बराबर जानना, वह अलौकिक पुरुषार्थ है। समझ में आया?

कहते हैं कि **(वह पुद्गलद्रव्य) स्वयं अन्तर व्यापक होकर...** किसमें? उस व्यवहार में-राग में। **आदि-मध्य-अन्त में...** ऐसा। कोई भी निश्चय की अपेक्षा नहीं और निश्चय में व्यवहार की अपेक्षा नहीं। यह तो पहले में आ गया। अपने निर्मल परिणाम के प्राप्य में आदि में आत्मा है। आदि में व्यवहार है, पुद्गल का परिणाम, ऐसा नहीं। यह तो पहले आ गया है। समझ में आया? आहाहा! **उसे ही ग्रहण करता है...** पुद्गल शुभभाव को प्राप्त करता है। अचेतन पुद्गल स्वयं का प्राप्य, उस समय का शुभभाव, उसे अचेतन पुद्गल ग्रहण अर्थात् प्राप्य करता है। आत्मा उसे ग्रहण नहीं करता। वह अचेतन का प्राप्य है। वह जीव की निर्मल पर्याय को प्राप्त नहीं करता। दोनों भिन्न-भिन्न द्रव्य काम करते हैं।

उसे ही ग्रहण करता है, उसरूप परिणमित होता है... वह पुद्गल शुभरागरूप परिणमन करता है। पहले अशुभ था और फिर शुभ हुआ, अथवा पहले मन्द शुभ था और विशेष शुभ हुआ, वह पुद्गल ही इस प्रकार से विकाररूप परिणमन करता है। आत्मा में कुछ पुरुषार्थ मन्द हुआ, इसलिए ऐसा हुआ, ऐसी कोई अपेक्षा यहाँ नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उस अशुभ के काल में स्व का आश्रय थोड़ा है, शुभ के काल में स्व का आश्रय विशेष है। शुद्ध की पर्याय जब प्रगट होती है, तब स्व का आश्रय विशेष है। सोगानी में आता है। यह सब अपेक्षा से कथन है। अशुभभाव होवे, तब स्व का आश्रय थोड़ा है; शुभ होवे, तब विशेष आश्रय है; शुद्ध होवे तब - शुद्धोपयोग जब परिणमे, तब तो विशेष आश्रय होता है। यह तो एक स्थिति का वर्णन है। शुभ और अशुभ के कारण से ऐसा है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? ओहोहो!

उसे पुद्गल पुण्य-शुभभाव को, अशुभभाव को, इस बाह्य की पर्याय को ग्रहण करता है। **उसरूप परिणमित होता है और उसरूप ही उत्पन्न होता है; इसलिए जीव के परिणाम को...** इस कारण से जीव के परिणाम को अर्थात् वीतरागी पर्याय को पुद्गल जानते नहीं। स्वाभाविक पुद्गल का कार्य उस धर्म की पर्याय को जानते नहीं। जीव के परिणाम कहो, अथवा वीतरागी पर्याय / धर्म पर्याय, वह जीव के परिणाम हैं। जीव के परिणाम को, अपने

परिणाम को; जो रागादि हुआ, उसे राग नहीं जानता। **अपने परिणाम के फल को...** हर्ष-शोक के विकल्प को वे नहीं जानते। **नहीं जानता ऐसा पुद्गलद्रव्य...** ऐसा पुद्गलद्रव्य। भगवान आत्मा के परिणाम को नहीं जाननेवाला, अपने रागादि के परिणाम को नहीं जाननेवाला, अपने हर्ष-शोक के भाव को नहीं जाननेवाला, ऐसा अचेतन पुद्गलद्रव्य **प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य ऐसा जो व्याप्य लक्षणवाला परद्रव्य परिणामस्वरूप कर्म...** क्या कहते हैं? **प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य ऐसा जो व्याप्य लक्षणवाला परद्रव्य परिणामस्वरूप कर्म...** परद्रव्य अर्थात् पुद्गल से परद्रव्य आत्मा भिन्न। पुद्गल से परद्रव्य अर्थात् आत्मा। परद्रव्य परिणाम। उस परद्रव्य का परिणाम अर्थात् आत्मा के अपने में जो वीतरागी पर्याय हुई, वह प्राप्य, उसमें परिणमन हुआ, उस अपेक्षा से उसे विकार्य (कहते हैं) और उत्पन्न हुआ, ऐसा प्राप्य, विकार्य, निर्वृत्य ऐसी जीव की धर्म की पर्याय, मोक्षमार्ग की पर्याय, शुद्ध निर्दोष पर्याय, वह पर्याय व्याप्य लक्षण - उस जीव के लक्षणवाली अवस्था वह जीव के परिणाम, वह जीव के परिणाम हैं। वह पुद्गल की अपेक्षा से परद्रव्य के परिणाम हैं। समझ में आया? क्या है? पण्डितजी! परद्रव्य के परिणाम क्या कहा? देखो! है? अन्तिम लाइन पढ़ो। **प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य ऐसा जो व्याप्य लक्षणवाला परद्रव्य परिणामस्वरूप कर्म...** है? बराबर आया नहीं।

श्रोता : कर्म के परिणाम हैं वे...

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म के परिणाम की अपेक्षा से आत्मा के परिणाम परद्रव्य परिणाम हैं। राग-द्वेष, सुख-दुःख, दया, दान के परिणाम वे पुद्गल के परिणाम हैं। इस अपेक्षा से आत्मा के वीतरागी परिणाम, वे परद्रव्य परिणाम हैं। समझ में आया? अरे! इसमें कौन सिरपच्ची करे? आहाहा!

श्रोता : महाराज! सरल मार्ग बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सरल में सरल तो बताया न! यह ख्याल में, विचार में नहीं, इसलिए लगता है। बात तो एकदम स्पष्ट है। रात्रि में कहा था न कि अजीव से भिन्न है, आस्रव से भिन्न है। एक समय की पर्याय रही। तो वास्तव में एक समय की पर्याय, वह व्यवहार आत्मा है, वह निश्चय आत्मा नहीं है। उस पर्याय का द्रव्य में अभाव है, वह निश्चय आत्मा है।

भगवान आत्मा में अजीव तो नहीं, आस्रव भी नहीं। यहाँ तो आस्रव को पुद्गल में डाल दिया। यहाँ तो आस्रव के परिणाम पुद्गल में डाल दिये अर्थात् अजीव और आस्रव सब

होकर पुद्गल है, इसलिए (आत्मा में) है ही नहीं। समाप्त हो गया। अब आत्मा में रहा परिणाम और परिणामी। तो परिणाम एक समय की अवस्था है, वह तो व्यवहार आत्मा हुआ। एक समय का अंश है, वह तो व्यवहार हुआ, अभूतार्थ हुआ, असत्यार्थ हुआ। तो उसे सत्यार्थ बनाना, वह पर्याय सत्यार्थ त्रिकाल बनानी हो तो निश्चय आत्मा वह है। रात्रि में जरा पर्याय सो द्रव्य। यह तो पर्याय में व्यवहार आत्मा लगा दिया। अभूतार्थ कहा न? **व्यवहारोअभूदत्थो** त्रिकाल की अपेक्षा से एक समय की पर्याय भी असत्यार्थ है। समझ में आया? परन्तु वह असत्यार्थ भी द्रव्य का आश्रय करती है। आहाहा! गजब बात!

वस्तु महा चैतन्य भगवान अनन्त शक्ति का रसकन्द ऐसा निश्चय स्वभाव, एक समय की पर्याय में नहीं आता और एक समय की पर्याय उसमें एकाकार नहीं होती। एकाकार का अर्थ कि द्रव्य में घुस नहीं जाती। बस, आस्रव और अजीव नाम दोनों को यहाँ तो पुद्गल का कार्य कहा। वे दोनों आत्मा में नहीं हैं। एक समय की पर्याय रही, तो एक समय का अंश वह तो अभूतार्थ, त्रिकाल टिकनेवाली चीज़ नहीं है। त्रिकाली निश्चय ज्ञायकभाव का आश्रय करना, क्योंकि वह त्रिकाली निश्चय सत्यार्थ आत्मा है। बस, इसका नाम सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र है। समझ में आया? यह हो गया। ऐसा हो गया। इतनी मेहनत हमें करनी पड़ती है। अरे! प्रभु! मेहनत होती नहीं। चारित्र में दुःख नहीं होता। दुःख, वह चारित्र नहीं है। समझ में आया? हमें कितना कष्ट भोगना पड़े, तब चारित्र होता है। कहते हैं...

श्रोता : कष्ट भोगना पड़ता है। मूल गाथा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, बिल्कुल कष्ट नहीं। मूल गाथा ऐसी नहीं। वह तो पुरुषार्थ करके वीतरागता प्रगट करना, वह महा पुरुषार्थ है, ऐसा कहते हैं। इस कष्ट का अर्थ पुरुषार्थ है। समझ में आया? महा पुरुषार्थ है। कहीं हल्का पुरुषार्थ है? आहाहा! अनादि एक समय की पर्याय का परसन्मुख का लक्ष्य अन्तर में झुकाना, वह कहीं अल्प पुरुषार्थ (नहीं है)। नट का पूरा नाटक बदल गया।

वस्तु है न, वस्तु, ध्रुव है और एक समय की पर्याय है। पूरे द्रव्य की व्याख्या में दोनों उसके हैं। प्रमाण के द्रव्य की व्याख्या में दोनों हैं। अब वह एक समय की अवस्था है, वह कहीं पूरी चीज़ नहीं है और उसमें पूरी चीज़ आती नहीं है। पूरी चीज़ तो द्रव्य है, ध्रुव है, त्रिकाल एकरूप है। उसमें पर्याय को झुकाना, वह भी झुकाना कहना, यह पद्धति है। यह पर्याय ऐसी (बहिर्मुख में) ढली हुई है तो ऐसे (अन्तर्मुख) ढले। समझ में आया? आहाहा! ध्रुव पर जहाँ दृष्टि पड़ी, पर्याय उस ओर ढल गयी, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

श्रोता : सामान्य...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सामान्य कहो या ध्रुव कहो, एक ही बात है। सामान्य कहो, ध्रुव कहो। दर्शन-ज्ञान, वह सामान्य ऐसा नहीं। वह तो दर्शन का व्यापार सामान्य का भेद बिना है। उसकी अभी बात नहीं है। ज्ञान का स्वभाव स्व-पर को जानना, वह स्व विकल्प है। यह बात यहाँ नहीं है। वह तो गुणभेद है। यहाँ तो एकरूप ध्रुवस्वरूप। ध्रुव में ज्ञान, दर्शन गुण पड़े हैं। परन्तु कहीं भिन्न हैं? द्रव्य अनन्त गुण का पिण्ड है और एक समय की पर्याय में भी सब गुण की अवस्था तो है। परन्तु एक समय की अवस्था है, वह कहीं पूर्ण वस्तु पूरी पूर्ण नहीं है। समझ में आया?

वह पूर्ण वस्तु भगवान आत्मा, ऐसी दृष्टि को पूर्ण आत्मा प्राप्य, विकार्य, निर्वृत्यरूप करता है, ऐसे परद्रव्य परिणाम पुद्गल की अपेक्षा से, ऐसे परद्रव्य परिणाम पुद्गल की अपेक्षा से। **कर्म, उसे नहीं करता होने से...** लो, यह पुद्गल उसे नहीं करता। वीतरागी परिणाम; जो पुद्गल के परिणाम-राग के परिणाम की अपेक्षा से परद्रव्य परिणाम हैं। उस परद्रव्य परिणाम को राग नहीं करता। वह राग निश्चय की पर्याय को नहीं रखता। वह उस समय का प्राप्य नहीं। वह राग उस रूप परिणमता नहीं और राग वहाँ उत्पन्न नहीं होता। ओहोहो! गजब गाथा। ७५ से ७९। अपने ७४ से शुरु की है। यह ७९ में पूरी। समझ में आया?

उसे नहीं करता होने से... कौन? पुद्गल। **उस पुद्गलद्रव्य को जीव के साथ कर्ता-कर्मभाव नहीं है।** भगवान आत्मा के निर्मल परिणामरूप कार्य में रागादि व्यवहार का उसमें कुछ हाथ है, ऐसा नहीं है। इसलिए मन्द कषाय कर्ता है और निर्मल अवस्था कार्य है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? बहुत अलौकिक गाथायें गयीं। अलिंगग्रहण की बातें और यह अन्तिम पाँच गाथायें। यह ७४ से शुरुआत की थी। शनिवार से शुरु की है। शनि, रवि, सोम, मंगल, बुध और गुरुवार। छह दिन हुए। इक्कीस दिन हुए। इक्कीस दिन में ऐसी गाथायें हुईं। ७४, ७५, ७६, ७७, ७८ और ७९ - छह गाथा।

यह तो मस्तिष्क ठिकाने रखकर समझे तो समझ में आये ऐसी चीज़ है, भाई! ओहोहो! चैतन्य का दरबार - खजाना खोल दिया। ओहोहो! आचार्य कहते हैं, अरे! परमात्मा! आपने चैतन्य का खजाना जगत के समक्ष खोलकर बताया। अरे! जगत का खजाना छोड़कर यह खजाना क्यों नहीं खोलता। समझ में आया? उस पर दृष्टि है तो इस पर दृष्टि क्यों नहीं लगाते? ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा अपने शुद्ध स्वभाव का खजाना पड़ा है। वह अपने से अपनी

निर्मल पर्याय को प्राप्य, विकार्य, निर्वृत्य करता है। कोई व्यवहार की अपेक्षा उसमें नहीं है। तब कहते हैं कि निरपेक्ष एकान्त होता है, और ऐसा कहते हैं। निश्चय से तो निरपेक्ष ही है। व्यवहार से विकल्प था, ऐसी अपेक्षा से व्यवहार से कहने में आया है। समझ में आया? यहाँ तो निश्चय की बात है। निरपेक्ष, व्यवहार की अपेक्षारहित यहाँ निश्चय है, उसकी बात है। वह सम्यक् एकान्त है, तो फिर व्यवहार क्या था, उसका सापेक्ष ज्ञान होता है, इसका नाम अनेकान्त कहा जाता है।

भावार्थ—कोई ऐसा जाने कि पुद्गल जो कि जड़ है... साधारण भाषा पुद्गल लेनी है, परन्तु यह रागादि, पुण्यादि सब जड़ है **और किसी को जानता नहीं...** रागादि, पुण्य, दया, दान का विकल्प, वह किसी को नहीं जानता। वह तो विकल्प राग है। राग ने जानने की शक्ति कहाँ है? भगवान चैतन्य में जानने की शक्ति आत्मा में है। राग **पुद्गल कि जो जड़ है और किसी को जानता नहीं, उसे जीव के साथ कर्ता-कर्मपना होगा।** नहीं जानता अर्थात् बेचारा बालक होवे तो किसी का काम कर दे, ऐसा कहते हैं न? दुश्मन का भी काम कर दे। उसी तरह अचेतन को खबर नहीं होवे तो आत्मा का कर दे, ऐसा नहीं। **परन्तु ऐसा भी नहीं है।** अचेतन, आत्मा का कार्य करे - ऐसा बिल्कुल नहीं है। आहाहा!

पुद्गलद्रव्य जीव को उत्पन्न नहीं कर सकता... जीव को अर्थात् जीव की निर्मल पर्याय। यह पाठ में आया न? प्राप्य, विकार्य, निर्वृत्य। जीव अर्थात् पूरा द्रव्य यहाँ नहीं लेना। पुद्गलद्रव्य जीव की वर्तमान प्राप्य, विकार्य, निर्वृत्य वीतरागी अवस्था, उसे उत्पन्न नहीं करता। समझ में आया? **परिणमित नहीं कर सकता...** भगवान आत्मा की वीतरागी पर्याय को पुद्गल परिणमित-बदला नहीं सकता। ओहोहो! जीव को उत्पन्न नहीं कर सकता, यह निर्वृत्य लिया, परिणमन नहीं कर सकता, यह विकार्य लिया, ग्रहण नहीं करता, यह प्राप्य में लिया, ऐसा लिया। निर्वृत्य, विकार्य और प्राप्य, ऐसा शब्द लिया था अपने हिम्मतभाई ने। यह इनका होगा न? भाई का होगा या? है? पण्डित जयचन्दजी... वह लिखा था यह नहीं था। यह पढ़कर इन्होंने किया। ७९।

भावार्थ है न? कोई जानेगा कि पुद्गल जड़ है तो किसी को जानता नहीं, उसका जीव के साथ... भाव होगा—तो ऐसा नहीं है। परमार्थ से परद्रव्य के साथ किसी का कर्तृत्वभाव नहीं है। बस इतना है। यह भाई ने डाला है। उसमें डाला न? ऐसा नहीं, यह तो शैली की रचना कैसे... पहले में इन्होंने निर्वृत्य डाला था, तब कहा था कि पाठ में नहीं जयसेनाचार्यदेव के अर्थ में नहीं। इसमें भी नहीं। ७९ में भी भावार्थ में नहीं। भावार्थ में तो ऐसे शब्द भी नहीं।

कोई जानेगा कि पुद्गल जड़ है तो किसी को जानता नहीं, उसका जीव के साथ... भाव होगा तो ऐसा नहीं है। परमार्थ से परद्रव्य के साथ किसी का कर्तृत्वभाव नहीं है। बस, इतना पूरा। समझ में आया? इसलिए यह निर्वृत्य पहले क्यों लिया? अर्थात् इन्होंने ऐसा का ऐसा। उत्पन्न हुआ, बदला, विकार्य, प्राप्य ऐसा। उत्पन्न हुआ, परिणमा और है - ऐसा लिया। वास्तव में तो है, परिणमित हुआ और उत्पन्न हुआ। वास्तव में ऐसा है। अमृतचन्द्राचार्य ने कहा है। बहुत सरस! अलौकिक टीका!

इसलिए उसे जीव के साथ कर्ता-कर्मपना नहीं है। किसका? पुद्गल का, राग का, पुण्य-पाप, दया-दान, विकल्प का आत्मा की धर्म की पर्याय के साथ कर्ता-कर्म नहीं है। वह है, इसलिए यहाँ कार्य हुआ; शुभपरिणाम बहुत हैं, इसलिए कर्म की पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। समझ में आया? **परमार्थ से किसी भी द्रव्य को किसी अन्य द्रव्य के साथ कर्ता-कर्म भाव नहीं है।** जीव की निर्विकारी पर्याय, वह जीव; जीव की निर्विकारी धर्म पर्याय, वह जीव। उसकी पर्याय के साथ अजीव रागादि शुभराग-अजीव। दोनों के बीच निमित्त-निमित्त सम्बन्ध कहो, कर्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं है। समझ में आया? उसे निमित्त सम्बन्ध कहा न? भाई! उस सम्बन्धी का ज्ञान, वह नैमित्तिक है। वह निमित्त है, वह दूसरी चीज़ है। निमित्त-नैमित्तिक दूसरी चीज़। यह तो पृथक्पना बतलाता है। समझ में आया? ९२ में आया। ७५ में। उस सम्बन्धी का ज्ञान है, वह ज्ञेय है, यह ज्ञान है। ज्ञान-ज्ञेय व्यवहारमात्र होने पर भी कर्ता-कर्म नहीं है। समझ में आया? लोग निमित्त-नैमित्तिक को ही कर्ता-कर्म बनाते हैं। निमित्त है या नहीं? परन्तु निमित्त है तो निमित्तपना दूसरी चीज़ है। उससे ज्ञान भी हुआ नहीं और ज्ञान उसका कार्य भी नहीं। समझ में आया? उसे निमित्त-नैमित्तिक कहते हैं।

श्रोता : निमित्त बिना होता नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त बिना ही होता है। निमित्त उससे (स्वयं से) होता है। कहीं उसके कारण यहाँ होता है? आरोपित कारण का ज्ञान कराया है। भावार्थ है, अब इसका कलश लेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१७ **श्री समयसार, गाथा - १७-१८, प्रवचन - २५ (राजकोट)**

समयसार १७-१८ गाथा चलती है। पहला और दूसरा दो पेराग्राफ चले हैं। तीसरा बाकी है न? तीसरे का थोड़ा चला है।

पहले ऐसा कहा कि धन का अर्थी पहले राजा को जाने कि यह राजा है। उस राजा को जानकर पश्चात् उस राजा की श्रद्धा करे कि यह ही राजा है। यह जानने के बाद उसकी श्रद्धा करे और श्रद्धा में ऐसा आवे कि इस राजा की आज्ञा और पालन करूँगा तो मुझे पैसा मिलेगा। यह दृष्टान्त हुआ।

इसका सिद्धान्त। प्रथम आत्म-राजा भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दघन है, उसे पहले जानना। धनार्थी को राजा को जानना, इसी प्रकार मोक्षार्थी को आत्मा को जानना। शर्त इतनी है कि जिसे मोक्ष की आवश्यकता हो उसे। समझ में आया? जिसे आत्मा के स्वतन्त्र परम आनन्द की पूर्ण शुद्धता, जिसे दृष्टि में मोक्ष का प्रयोजन है। संसार का प्रयोजन तो अनादि से कर रहा है। वह तो दु:खी है। जिसे आत्मा की पूर्ण आनन्ददशा का प्रयोजन है, उसे तो पहले आत्मा अनुभव करना, ऐसी सीधी बात यहाँ तो ली है।

इसका अर्थ यह हुआ कि पहले यह आत्मा कैसा है? सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा, ऐसा इसके ज्ञान में जानने में साधारण रीति से आवे, फिर उसे आत्मा को अनुभव करे, यह यहाँ तो सीधी बात ली है। उसे अनुभव करे कि यह आत्मा आनन्द और ज्ञान की मूर्ति है। उसकी इसे श्रद्धा हो। जाना, उसकी श्रद्धा होती है। यह चैतन्यस्वरूप पूर्ण आनन्द है, वह यह—ऐसा स्वसंवेदन अनुभव में आवे, तब श्रद्धा होती है कि यह आत्मा। तब श्रद्धा में यह आता है कि इस स्वरूप में मैं भ्रमण करूँगा और इसका आचरण करूँगा तो कर्म से छूटा जा सकेगा। आहाहा! यह भगवान आत्मा जो ज्ञान में ज्ञात हुआ और उसकी जो प्रतीति हुई कि इस आत्मा में मैं रमूँगा और स्थिर होऊँगा तो कर्म से छूटकर मुक्ति प्राप्त करूँगा। ऐसा आचरण। आहाहा! आत्मा का आचरण उदय होगा। ऐसा कहा न? आहाहा! यह बात पहले पेराग्राफ में आ गयी।

अब दूसरा पेराग्राफ। और इस प्रकार ही आत्मा का साध्य का साधन इस प्रकार से ही

हो सकता है। साध्य जो मुक्ति, उसका साधन-उपाय वह आत्मा का अनुभव, श्रद्धा और आचरण, वह इसका साधन है, इससे मुक्ति और साध्य की प्राप्ति होती है। इस प्रकार ही प्राप्ति है, अन्य प्रकार से (प्राप्ति) नहीं।

अब कहते हैं कि ऐसा होने पर भी, **परन्तु जब ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा...** जाननेवाला ज्ञान की पर्याय में ज्ञात होता है, ऐसा होने पर भी, ऐसा ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा **आबालगोपाल सबके सदाकला...** आबाल इस बालक से लेकर वृद्ध को और सदाकाल। दो (बातें और) **अनुभव में सदा स्वयं ही आने पर...** आहाहा! इस आत्मा की जो ज्ञान की वर्तमान पर्याय है, वास्तव में तो वही अनुभव में आती है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। आबाल-गोपाल को ज्ञान की पर्याय अर्थात् जाननेवाले का ज्ञान ही अनुभव में आता है।

जाननेवाले का ज्ञान। राग का, विकल्प का, निमित्त का नहीं। यह जाननेवाला चैतन्यबिम्ब प्रभु, उसका ज्ञान, उस ज्ञान में जाननेवाला आता है अथवा जाननेवाला पर्याय में अनुभव में आता है। है न?

ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा... यह आते अन्तर की बातें हैं। इसने कभी अन्तर्मुख क्या चीज़ है, इसकी दृष्टि नहीं की और उसका ज्ञान नहीं किया। क्रियाकाण्ड करके वहीं का वहीं रुक गया। कहते हैं कि दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा—जो क्रियाकाण्ड के परिणाम हैं, उनकी ओर का यह ज्ञान करता है कि यह इसका ज्ञान है, यह इसका ज्ञान है, परन्तु वह ज्ञान आत्मा का है—ऐसी यह दृष्टि नहीं करता। समझ में आया?

मार्ग तो अपूर्व होता है न! जिसका फल अपूर्व अनन्त आनन्द और ज्ञान की प्राप्ति! जब से अनन्त आनन्द प्रगटे, वह अनन्त काल—सादि अनन्त (रहे)। 'सादि अनन्त-अनन्त समाधि सुख में'। आत्मा की शान्ति का सुख अनन्त काल रहता है, अनन्त भव का अभाव करके अनन्त-अनन्त पर्याय प्रगट होती है... आहाहा! उसका उपाय तो अपूर्व ही होगा न!

यह कहते हैं कि हमें तो ऐसा ही लगता है कि आत्मा जाननेवाला ही जानने में आता है। तो भी **अनुभव में सदा स्वयं ही आने पर...** उस जाननेवाले का जो ज्ञान, वह ज्ञान ही अनुभव में आता है। आहाहा! समझ में आया? ऊर्ध्वता का आता है न? श्रीमद् में ऊर्ध्वता की व्याख्या (आती है) कि किसी भी पर चीज़ को जानने से पहले जाननेवाला न हो तो जाननेवाले के बिना जाने कौन? भले अन्दर दया, दान, व्रत आदि के विकल्प-राग आवे या अशुभ (राग आवे) परन्तु यह ज्ञान उसके पहले अर्थात् उसके पीछे, ज्ञान यदि मुख्य न हो तो

यह राग है, यह है, ऐसा जाने कौन ? इसलिए उसे जानता है, ऐसा न कहकर अभी अब, यह जाननेवाला भगवान आत्मा, इसमें से द्रवित जो ज्ञान, अनुभव ऐसे सब आत्माओं को वह अनुभव में आता है।

पर भी अनादि बंध के वश... परन्तु अनादि राग और विकल्प उठता है, उसके ज्ञान वश हुआ है। यह ज्ञान की पर्याय है आत्मा की और ज्ञान की दशा में जाननेवाला अनुभव में आता है। परन्तु वह अनुभव में आता है, ऐसा ख्याल न करके, उस ज्ञान में राग ज्ञात होता है, (ऐसा जानने पर) आत्मा पड़ा रहा। आहाहा! ज्ञान की भूमिका में यह राग ज्ञात होता है, शरीर ज्ञात होता है, यह ज्ञात होता है, यह ज्ञात होता है, ऐसी उसकी दृष्टि पर के वश पड़ी हुई, मिथ्यात्व के कारण पर के साथ एकपने के निश्चय से। क्योंकि जो व्यवहार, दया, दान का विकल्प उठता है, उससे भिन्न पड़ा हुआ ज्ञान आत्मा को जानता है, तो भी राग के आधीन हुआ प्राणी उस परद्रव्य के साथ एकता अनुभव करता है। वह पर्याय में द्रव्य के साथ एकता अनुभव करनी चाहिए। समझ में आया ? सूक्ष्म है, भाई! यह तो सर्वज्ञ से सिद्ध हुआ और अनुभव में आवे ऐसा है। आहाहा!

चैतन्य का बिम्ब प्रभु! उसमें से आनेवाली पर्याय, वह पर्याय जाननेवाले की है। परन्तु उसे ऐसा न जानकर, वह पर्याय इसकी है, ऐसे उसकी सन्मुखता न देखकर, अनादि से बहिर्मुख राग और पुण्य-पाप के भाव, उन्हें करता हूँ ऐसा नहीं, ऐसा तो नहीं। आहाहा! व्रत, तप और इच्छा वृत्ति उत्पन्न होती है न, उसे करता हूँ, यह तो नहीं परन्तु, उसे मैं जानता हूँ, यह मिथ्याभ्रम अज्ञान है। स्व को छोड़कर अकेले उसे ही जानता हूँ, यह भ्रम अज्ञान है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

कहते हैं, अनादि राग के वश से एकपने के निश्चय से यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा या काम-क्रोध का जो विकल्प उठता है, उसका ज्ञान करता हूँ, उसके साथ एकत्वबुद्धि है, ऐसा मानकर। आहाहा! है पर—पृथक्। राग, दया, दान, व्रत, भक्ति का भी राग है, ज्ञान की पर्याय से पृथक्। पृथक् होने पर भी यह एकत्व मानता है। दृष्टि जाननेवाले को जानता हूँ, ऐसा नहीं मानता और इसे जानता हूँ, ऐसे एकत्वबुद्धि के कारण ऐसा हो गया है। समझ में आया ? आहाहा!

यह तो चैतन्य के स्वरूप का घर है। इसने कभी इसके ख्याल में यह बात ली नहीं। जैन साधु दिगम्बर मुनि अनन्त बार हुआ, क्रियाकाण्ड, अट्ठाईस मूलगुण पालन करे, पंच महाव्रत पाले परन्तु बात यह कि जो ज्ञान जिसका है, उसकी दृष्टि नहीं करके, जिसका ज्ञान

नहीं है, मात्र उसका यहाँ ज्ञान होता है, ऐसा मानता है, यह भी मिथ्यादृष्टि का भ्रम है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं **अनादि बंध के वश पर (द्रव्यों) के साथ एकत्व के निश्चय से...** वास्तव में तो यह शुभराग का विकल्प, वह पृथक् है। द्रव्य-गुण से तो पृथक् है, परन्तु ज्ञान की दशा से पृथक् है। परन्तु यह अनुभव करनेवाला, वह मैं। इस जाननेवाला का यह ज्ञान, ऐसी दृष्टि नहीं होने से, उसकी राग के साथ एकत्वबुद्धि के कारण, इस राग का ज्ञान है, ऐसा अज्ञानी अनादि से मानता है। आहाहा! सूक्ष्म है, भाई! यहाँ राजकोट में तो सूक्ष्म आता है, ऐसा बाहर कहा जाता है। सही है या नहीं? कल कहा गया कि भाई! यह सूक्ष्म पड़ता है। परन्तु बहुत सूक्ष्म नहीं लेते। राजकोट में आवे ऐसा यहाँ नहीं लेते - ऐसा वहाँ मुम्बई में कहा गया था। वहाँ तो कहा, हमारे लालचन्दभाई आदि हैं, वे बहुत सूक्ष्म ज्ञान की अन्दर पाचक हैं। कहो, समझ में आया? आहाहा! कल अभी साढ़े आठ से साढ़े नौ वहाँ चलता था। यह नजदीक हो गया। घड़ीक में यहाँ और घड़ीक में वहाँ। परन्तु वह सब मौके से जब ज्ञात होता है उस समय का ज्ञान आत्मा का है परन्तु ऐसा न जानकर जो ज्ञान में चीज़ें ज्ञात होती हैं, ऐसी इसकी बुद्धि हो जाती है। आहाहा! परन्तु यह तो बहुत कठिन काम।

यहाँ पर्यायबुद्धि स्थापित की है। वह जाननेवाला अनुभव में आता है, यह द्रव्यबुद्धि है। ऐसा न जानकर, उस राग में एकपने के निश्चय से, वास्तव में तो राग भिन्न है, उस राग सम्बन्धी का ज्ञान उस राग के कारण नहीं है। समझ में आया? यह व्यवहाररत्नत्रय का— देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत का विकल्प, उसका वह ज्ञान नहीं है; ज्ञान तो आत्मा का स्व-परप्रकाशक, अपने अस्तित्व का अपने में अपना है। समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म है न। मूल चीज़ ही इसे भूल क्या है, कैसे है, यह अभी पकड़ना कठिन पड़ता है।

कहते हैं कि यह राग का भाग, यह व्रत और तप की इच्छा, यह राग और उसके साथ मानो एक हो, इससे उसे जानता हूँ, ऐसी ज्ञान की पर्याय, भ्रम से मिथ्याश्रद्धा में ऐसा मानता है। आहाहा! समझ में आया? मूढ़ जो अज्ञानी, उसे यह अनुभूति है, वही मैं हूँ, यह राग का ज्ञान नहीं परन्तु ज्ञान का ज्ञान है, वह मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानस्वरूपी भगवान का यह ज्ञान है, जो अनुभव में आता है वह। ऐसा न मानकर, यह अनुभूति वह मैं हूँ, ऐसा न मानकर, यह राग का अनुभव है, वह मैं हूँ। ऐसा मानता है। आहाहा! परन्तु यह राग का ज्ञान नहीं, ज्ञान की पर्याय ज्ञाता का ज्ञान यह है। ऐसा इसे भान नहीं होने से, **ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता...** इसे आत्मज्ञान प्रगट नहीं होता। मात्र राग और पुण्य का ज्ञान करता हूँ और

उसमें हूँ, ऐसा मानकर उसे यह आत्मज्ञान उदय नहीं होता, यह कारण है। आहाहा! समझ में आया? भारी सूक्ष्म ऐसा, भाई! अरे! आत्मा में इसका यह स्वभाव ही ऐसा है। अपने स्वभाव से ज्ञात होता है और प्रत्यक्ष ज्ञात होता है, ऐसी ही इसकी चीज़ है। पर को जानता है और परचीज़ है; इसलिए ज्ञात होती है, ऐसा इसका स्वभाव नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

अज्ञानी जन को 'जो यह अनुभूति है, वही मैं हूँ'... यह ज्ञान है, वह मैं हूँ, मेरा यह स्वरूप है—ऐसा न जानने से इसे आत्मज्ञान उदय नहीं होता, उसे आत्मा का ज्ञान प्रगट नहीं होता। उसे राग का ज्ञान है, ऐसा मानकर आत्मा का ज्ञान इसे उदित नहीं होता। आहाहा! धीरे-धीरे कहा जाता है परन्तु अब यह तो समझना तो इसे पड़ेगा या नहीं? आहाहा! नवरंगभाई! ऐसा सूक्ष्म बहुत भाई। आहाहा!

कहते हैं चैतन्य का बिम्ब प्रभु स्वयं, जैसे यह क्या कहलाता है तुम्हारे? सर्चलाइट? हजार बोल्ट की होती है न बड़ी! बाहुबलीजी में है न? बड़ी एक-एक हजार (बोल्ट की) ऐसी, यह उसका प्रकाश है, परन्तु तो भी वह प्रकाश दूसरे को प्रकाशित करता है, ऐसा यह मानता है। समझ में आया? उसी प्रकार भगवान अनन्त ज्ञान के लाइट से भरपूर प्रकाश है। उसमें से जो ज्ञान की किरण आवे, वह जाननेवाले का ज्ञान है, जाननेवाले का ज्ञान अनुभव में आता है। ऐसा न मानकर इस राग का ज्ञान अनुभव में आता है, इसलिए इसे आत्मज्ञान उदय नहीं होता। आहाहा! सब गाथायें सूक्ष्म हैं। राजकोट में तो चले या नहीं? अन्यत्र कहाँ चले? या सोनगढ़ चले। बाहर तो जरा मुश्किल पड़े। आहाहा!

कहते हैं, यह ज्ञान अनुभव में आवे, वह आत्मा, ऐसा इसे आत्मा का ज्ञान प्रकट नहीं होता। राग के वश हो गया और राग के साथ एकत्वबुद्धि के कारण इस राग को जानता हूँ, यह राग ज्ञान को जाननेवाला है, ऐसी बुद्धि होने से वह ज्ञान को आत्मा को जाननेवाला है, ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता। आहाहा! गजब बात, भाई! यह तो अन्तर के प्रयोग की वस्तु की स्थिति है। समझ में आया?

यह ज्ञात होता है, जाननेवाला ज्ञात होता है, ऐसा ज्ञान न होने से अर्थात् आत्मज्ञान न होने से यह रागादि ज्ञात होते हैं, इस प्रकार राग के साथ एकत्वबुद्धि के कारण पृथक् ज्ञान अपना करता है, उसकी इसे खबर नहीं रहती। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? बसन्तभाई! यह सब मुम्बई से सुनने आये हैं कि राजकोट में बहुत सूक्ष्म चलेगा, चलो सुनने। प्लेन में बहुत सब साथ में थे। कहो, समझ में आया इसमें? सूक्ष्म बात तो है परन्तु इसके घर की है न, भगवान! उसका इसने प्रयोग नहीं किया, उस ओर का झुकाव नहीं

किया। अनादि का झुकाव पर्यायबुद्धि में (रहा)। आत्मबुद्धि नहीं होने से रागबुद्धि में इसकी बुद्धि घुस गयी है।

कहते हैं, ऐसा आत्मज्ञान जो ज्ञान इसका है, ऐसा न प्रगट होने से यह ज्ञान राग का है, यह राग को प्रगट करता है। इस मिथ्यादृष्टि को यह ज्ञान आत्मा का है, अनुभव में आता है, यह जाननेवाला आता है, ऐसा आत्मज्ञान उसे प्रगट उदय नहीं होता। आहाहा! अर्थात् कि जाननेवाला यह है, ऐसा उसे ज्ञात नहीं होता। समझ में आया? आहाहा!

और उसके अभाव से,... यह ज्ञान आत्मा का है, ऐसा अनुभव नहीं होने से इस ज्ञान में आत्मा ज्ञेयरूप से नहीं आया होने से, इस ज्ञान में राग ही अकेला आया होने से... कहते हैं कि ज्ञान आत्मा का उदय नहीं हुआ। ज्ञात नहीं हुआ, इसलिए उसके अभाव, आत्मज्ञान के ज्ञानपने के अभाव के कारण **अज्ञात का श्रद्धान गधे के सींग के श्रद्धान समान है...** है। हम आत्मा मानते हैं, परन्तु माने कहाँ? जाना नहीं और माने किस प्रकार? ज्ञान की पर्याय में जाननेवाला ज्ञात होता है, ऐसा ज्ञान द्वारा आत्मा का ज्ञान नहीं किया और ज्ञान में आत्मा यह है, ऐसा आया नहीं, उसकी श्रद्धा (हुई नहीं और कहते हैं कि) हमें आत्मा की श्रद्धा है, वह गधे के सींग जैसी है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि वे सींग होते नहीं, इसलिए ज्ञान में आवे नहीं और इसलिए उसकी श्रद्धा हो सकती नहीं। आहाहा! समझ में आया? वजन देते हैं न यहाँ? यह श्रद्धा। यह श्रद्धा बराबर, परन्तु श्रद्धा को जाननेवाला कौन? इस आत्मा को जाननेवाली श्रद्धा है या ज्ञान? श्रद्धा में तो जानने की शक्ति नहीं है। समझ में आया? कहो, शशिभाई! वहाँ हमारे बड़ी चर्चा चलती है। यह थोड़ी कहते हैं। थोड़ी नहीं परन्तु कान में नहीं आयी। कोई कहता था कि ऐसा फेरफार हो गया। होगा, कहा।

अरे..! आत्मा! जिसकी जो ज्ञान पर्याय है, उसमें वह ज्ञात होता है। वह ज्ञात हुए बिना उसे श्रद्धा किसकी? यह वस्तु है, ऐसा ज्ञेयरूप से ज्ञान में न आवे और अकेला ज्ञेय रागादि ही आवे, उसे तो आत्मज्ञान नहीं है, उसका ज्ञान नहीं। यह वस्तु का ज्ञान नहीं; और वस्तु के ज्ञान बिना श्रद्धा किसकी? समझ में आया? आहाहा! **अज्ञात का (ज्ञान) श्रद्धान गधे के सींग के श्रद्धान समान है...** आहाहा! अर्थात् कि उसे श्रद्धा नहीं होती, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **श्रद्धान भी उदित नहीं होता...** उसे समकित नहीं होता। ज्ञान की दशा में ज्ञायक अन्तर्मुख चीज़ पूरी न आवे, तब तक उसे आत्मज्ञान नहीं, और आत्मज्ञान नहीं इसलिए श्रद्धा भी नहीं। जाने बिना की श्रद्धा किसकी करना? आहाहा!

श्रोता : श्रद्धा तो जानती नहीं। ज्ञान ही जानता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है ही। श्रद्धा को ज्ञान जानता है। दोनों स्वतन्त्र गुण हैं परन्तु जाना तब श्रद्धा हुई। यह श्रद्धा हुई, वह स्वतन्त्र गुण की पर्याय है परन्तु यह जाना, इसलिए श्रद्धा हुई, ऐसी ज्ञान की प्रधानता से बात कही जाती है। यह सूक्ष्म है, भाई!

श्रोता : ज्ञान की गौणता की क्या.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : गौणता तो जब श्रद्धा का विषय चलता हो, अभेद की श्रद्धा, तब श्रद्धा, वह कारण और ज्ञान, वह कार्य—ऐसा कहने में आता है। दीपक, वह कारण और प्रकाश, वह कार्य। इस अपेक्षा से वहाँ कहने में आता है। इस अपेक्षा से। अभेद त्रिकाली श्रद्धा हुई, परन्तु वह जानकर हुई है न? जाने बिना किसकी हुई? इसलिए वहाँ दर्शन को प्रधानरूप से रखकर और दर्शन कारण तथा ज्ञान कार्य, ऐसा कहने में आता है। वस्तु की दशा होने पर तो ऐसा है पहला। आहाहा!

यह चीज़ जो आत्मा है, अनन्त-अनन्त ज्ञान और आनन्द की अस्ति, सत्ता, मौजूदगीवाला, ऐसा ज्ञान न आवे, वहाँ यह है - ऐसे ज्ञेयरूप से ज्ञात नहीं होता। किसकी श्रद्धा? विश्वास करो, परन्तु किसका? ज्ञान में चीज़ आयी नहीं और विश्वास करना किसका? समझ में आया? बापू! मार्ग जरा ऐसा है। अरे! जन्म-मरण छूटने का मार्ग अलौकिक है। अभी तो भूल क्या हुई है, उसकी इसे खबर नहीं है और मिथ्यात्व की भूल कहाँ होती है और कैसे होती है? उसकी इसे खबर नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि जो आत्मा भगवान, अकेला ज्ञान का नूर और तेज, जिसमें से नूर तेज प्रगट होता है उसमें से, और उस ज्ञान का अनुभव आत्मा का है - ऐसा न जानने से वह ज्ञान राग का और पर का है, इसलिए मैं पर का ज्ञान करता हूँ, ऐसा। पर का कर्ता तो नहीं। आहाहा! यह अस्तित्व की बात है न इसमें तो? अस्तित्व की बात है न? यह रागादि दया, दान, व्रतादि का विकल्प है, उसका ज्ञान कर्ता है, ऐसा तो नहीं परन्तु उसे ज्ञान जानता है, ऐसा ज्ञान का झुकाव वहाँ रहता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! और ऐसा ही उसका स्वरूप है। आहाहा! परन्तु सुनने को मिलता नहीं, विचारने को मिलता नहीं तो रुचि कहाँ से करे और ऐसा ज्ञान कहाँ से हो? आहाहा!

कहते हैं, यह पहले जानने का आया था। वह कोई फिर ऐसा कहता है कि जानना तो वह परतरफ का जानना, वह तो साधारण हुआ, सम्यग्ज्ञान नहीं। ऐसा नहीं है। वह सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! आत्मा को जानना, वह ज्ञान अनुभव का ज्ञान है। अनुभव करना, उसका नाम यहाँ जानना, ऐसा कहने में आया है। आत्मा को जानना अर्थात् यह आत्मा है, असंख्य प्रदेशी

और अनन्त गुण और यह पर्याय - ऐसा नहीं। समझ में आया? यह तो मार्ग अनन्त काल का निकालकर दूसरा मार्ग है, यह तो अलौकिक मार्ग है, भाई! आहाहा!

कहते हैं, जिसे ज्ञान की दशा में यह आत्मा हूँ, ऐसा जिसके ज्ञान में आया नहीं, उसकी श्रद्धा, हमें आत्मा की श्रद्धा है, (वह) गधे के सींग जैसी है, कहते हैं। समझ में आया? धीरे-धीरे कहा जाता है। थोड़ा-थोड़ा विचार भी करता जाए तो समझ में आये ऐसा है। आहाहा! ऐसा होने से यह भी सिद्ध किया कि आत्मा, उसका ज्ञान, उसकी पर्याय और पर्याय में दूसरा ज्ञात हुआ, वह दूसरी चीज़ भी सिद्ध की। समझ में आया? आहाहा! कोई एक ही आत्मा माने तो वह बात एकदम झूठी है। उसे आत्मा जानने में आया नहीं, इसलिए उसने सब एक व्यापकरूप से माना है। वह मिथ्याभ्रम है। यहाँ तो राग है, आत्मा है, पर है परन्तु उस ज्ञान में ज्ञान ज्ञात हुआ, वह आत्मा जानना चाहिए, ऐसा न जानते हुए दूसरी चीज़ जो पृथक् है, उसे जानता है, उसे यहाँ भ्रम कहा है। समझ में आया? आहाहा! बहुत सूक्ष्म। कहते है कि वस्तु स्वयं एक ही होवे तो उसे जाननेवाला ज्ञान पर को जाने, ऐसा तो रहा नहीं। तो वह जाननेवाला अपने को जानता है। एक ही बात रही। तो भूल है, वह तो सिद्ध हुआ नहीं। आहाहा! और जब तक दशा में भूल सिद्ध नहीं हो, तो वह भूल पलट कैसे सकेगी, उसका भी इसे ख्याल नहीं हो सकेगा। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, जिसने आत्मा ज्ञानस्वभावी, उसकी किरण तो ज्ञान की है और उस ज्ञान में जाननेवाला ज्ञात होता है, ऐसा न जानकर... एक बात वहाँ कही थी, एक व्यक्ति ऐसा बोला था, कि देखो! अमुक में ऐसा आता है कि वह पर को जानता है, वह परसम्बन्धी का ज्ञान स्वयं ही है। क्योंकि ज्ञान में यह ज्ञात होता है तो वह ज्ञानस्वरूप है तो ज्ञान में ज्ञात होता है। यह प्रश्न वहाँ किया था। समझ में आया? ऐसा नहीं। समझ में आया? वहाँ कहाँ उतरे थे? 'वडिया'। नहीं, 'वडिया' नहीं। 'जेतपुर'। 'जेतपुर' आया था। 'जेतपुर... जेतपुर'। उसमें व्याख्यान हुआ था न? 'जेतपुर' नहीं, 'गोंडल'। 'गोंडल... गोंडल'... हुआ था और बहुत लोग आये थे। मैंने कहा, भाई! ज्ञात होता है, वह ज्ञान ज्ञात होता है। तब कहे वह ज्ञेय नहीं? वह ज्ञायक ज्ञात होता है, ऐसा कहा। जाननेवाला ज्ञात होता है। तब कहे कि दूसरी चीज़ ही नहीं। वह दूसरी चीज़ ज्ञात होती है, परन्तु वह (स्वयं) ज्ञानस्वरूप ही है, इसलिए ज्ञान जानता है। ऐई! 'गोंडल-गोंडल'। वह वापिस रात्रि में आया था, नहीं? अपने उतरे थे वहाँ। 'गोंडल'। आहाहा! बड़ा भ्रम।

इसलिए तो यहाँ यह स्पष्ट किया है कि जाननेवाला भगवान आत्मा का ज्ञान, वह ज्ञान

जाननेवाले का है, ऐसा न जानकर, उस पर दृष्टि नहीं होने से वह जाननेवाला यह राग और पर का अस्तित्व है; इसका है अस्तित्व है—ऐसा न जानकर, यह अस्तित्व है, ऐसा वह ज्ञान करता है, इसका नाम मिथ्यादृष्टि और भ्रम है। समझ में आया? जो दूसरी चीज़ ही न माने, उसे दूसरी चीज़ सम्बन्धी का अपने कारण से स्व-परप्रकाशक ज्ञान होता है, इसकी उसे स्वीकृति है नहीं। समझ में आया? यहाँ तो मात्र पर को जाने, ऐसा परप्रकाशक ज्ञान इतना मानकर, पर के साथ एकत्वबुद्धि करता है। आहाहा! भारी सूक्ष्म, भाई! समझ में आया? ऐसा आया न वहाँ? देखो न!

बन्ध के वश पर (द्रव्यों) के साथ एकत्व के निश्चय से... आया या नहीं? उसमें यह डाला है। विकल्प राग, वह परचीज़ है। अपने आनन्दस्वभाव से भिन्न एक राग और विकल्प, वह परचीज है। और उस विकल्प का निमित्त भी परचीज़ अस्ति है। वह सब अस्ति है परन्तु उस अस्ति में ज्ञान की पर्याय स्व को जानने पर, दूसरा उसमें ज्ञात होता है, कहना यह व्यवहार है। वह स्व को जानते हुए स्व-परप्रकाशक ज्ञान की पर्याय वहाँ ज्ञात होती है, पर नहीं। समझ में आया?

स्व-परप्रकाशक इसके ज्ञान के गुण का अस्तित्व और इतना सामर्थ्य इसका है। वह पर के कारण नहीं। पर है, इसलिए पर का ज्ञान होता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा! वह पर है पर में, स्व है स्व में, परन्तु स्व जाननेवाला अनुभव में आता है, ऐसी दृष्टि स्व के ऊपर नहीं होने से उसकी दृष्टि पर में गयी है। पर का अस्तित्व है। उस अस्तित्व को जानने में ज्ञान रुक गया है। समझ में आया? और वह रूका, इसलिए उसे परम आनन्द का स्वाद नहीं आता। इसलिए उसे दुःख का ही अनुभव है।

कहते हैं कि यह जाननेवाले का अनुभव नहीं होने से, यह ज्ञान पर के ऊपर झुक गया है। इसलिए इस मूढ़ को दो की एकता का ज्ञान होने से, राग से पृथक् ऐसा भगवान आत्मा ज्ञान में जानने में ज्ञात नहीं हुआ और ज्ञात हुए बिना की श्रद्धा गधे के सींग जैसी है, कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? यह तो अकेला न्याय का-लॉजिक का विषय है। तत्त्व का ज्ञान, ज्ञान में जो वस्तु है, वैसे ले जायें, उसे यहाँ न्याय कहने में आता है।

कहते हैं, **अज्ञात का श्रद्धान गधे के सींग के श्रद्धान समान है इसलिए, श्रद्धान भी उदित नहीं होता...** अर्थात् उसे सम्यग्दर्शन भी नहीं होता। आहाहा! **तब समस्त अन्यभावों के भेद से...** जब अन्य भावों को जानने में रुका हुआ ज्ञान, वह ज्ञान स्व को जानने में नहीं आया, स्व को नहीं जाना, इसलिए नहीं जाने हुए की श्रद्धा भी उसे नहीं होती; और श्रद्धान नहीं होने

से वस्तु की श्रद्धा यह चिदानन्द भगवान पूर्णानन्द स्वरूप है, ऐसा ज्ञेयरूप से ज्ञान में आया नहीं; आया नहीं, इसलिए श्रद्धा हुई नहीं।

समस्त अन्यभावों के भेद से... इसलिए अब चारित्र नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्योंकि अन्य जो विकल्प आदि, शरीर आदि परपदार्थ, उसके भेद द्वारा **अन्यभावों के भेद से आत्मा में निःशंक स्थिर होने की असमर्थता के कारण...** जब आत्मा ज्ञात नहीं हुआ, प्रतीति नहीं हुई, इसलिए राग और पुण्य में विकल्प में स्थित ज्ञान, पर से भिन्न करके स्व में स्थिर होने को असमर्थ हो गया। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन और ज्ञान बिना पर से भिन्न नहीं पड़ता। तो स्थिर किसमें होना? इसकी उसे समर्थ-शक्ति आयी नहीं। आहाहा! समझ में आया? समझ में आया तो विश्राम का वाक्य है। समझ करे तो विश्राम मिले ऐसा है। कहते हैं,... आहाहा! टीका तो टीका है न, भाई कहते हैं न, नवरंगभाई। क्या? जमा था, ऐसा कुछ कहते हैं। यह इनकी भाषा है। नवरंगभाई! यह जमा है, देखो! आहाहा!

एक-एक शब्द और एक-एक न्याय से पूरा पर से भिन्न और पर की एकता की बात यहाँ करते हैं। कहते हैं, जब वस्तु रागादि पर से भिन्न पड़ी हुई चीज़, उसके अनुभव में वह वस्तु आयी नहीं, इसलिए उसे श्रद्धा प्रगट हुई नहीं, इसलिए उसे पर से—अन्य भावों से भिन्न होकर स्वरूप में स्थिर होने की शक्ति उसे प्रगट नहीं होती, उसे चारित्र नहीं होता। यह ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो बहुत सीधी बात है। परन्तु अब लोगों को अभ्यास नहीं है। बाहर के अज्ञान के अभ्यास के कारण अनादि से यह बात भूल गया। आहाहा! और या कहीं थोड़े भंग भेद सीखा हो तो मानो हमें कुछ आता है। इस मान में और मान में पड़ा। आहाहा! कहते हैं, यह क्या कहा और? यह शास्त्र का और पर का ज्ञान हुआ, इसलिए इसे ऐसा हो गया कि हमें आत्मा का ज्ञान हुआ, यह तो यहाँ इनकार करते हैं। आहाहा! शास्त्र जाने और पढ़े और उनका ज्ञान, वह तो पर का ज्ञान हुआ। यहाँ निषेध है। आहाहा! यह भगवान आत्मा पर के सम्बन्धी में रुका हुआ, ज्ञान करने रुका हुआ, हों! अस्तित्व है न? उसे स्व को जानने के लिये ज्ञान अन्तर में आया नहीं, इसलिए स्व को नहीं जाना। स्व को न जानने से जाने, बिना की श्रद्धा क्या?

हमने उस दिन दृष्टान्त दिया था, नहीं? भाई! वह 'कुवाडवा' का, मच्छर का। दिया था या नहीं? उस दिन दिया था। गुरुवार सवेरे। 'कुवाडवा' है न? यहाँ पाँच कोस। नौ मील, दस मील। 'वढवाण' जाते हुए। उस 'कुवाडवा' में पाठशाला में एक बार उतरे थे। कहा न अन्दर मास्टर ने लड़कों को मच्छर बताया। मच्छर चित्रित करके और लम्बा पैर करके

(बताया)। उसके पैर इतने लम्बे नहीं होते परन्तु लड़कों को पैर लम्बे में उसे सूक्ष्म संरचना जैसा होवे न ? वैसा बताने के लिये चार पैर जरा लम्बे किये हुए। इसलिए यह भाग यह है, इतना यह भाग यह है, इतने भाग में जरा ऐसे तीन भाग पड़े हुए। अपने नख जैसा होवे न ? उसे नख जैसा दूसरे प्रकार का हो। ऐसा बताने के लिये लम्बे पैर करके बताया था। मच्छर को। वहाँ कागज में था। हम उतरे थे, तब देखा। वहाँ एक बार हाथी गाँव में आया और लड़का कहे—मास्टर साहेब! आपने मच्छर बताया, देखो यह आया। क्योंकि हाथी देखा नहीं था। देखे बिना किसे माने ? मच्छर के लम्बे पैर किये हुए। कागज में था। परन्तु लम्बे पैर तो समझाने के लिये हैं, ऐसे लम्बे पैर उसे नहीं होते, उसके बहुत बारीक होते हैं। परन्तु उसमें पैर के अन्दर भी फेरफार, अन्तिम भाग, बीच का भाग, जहाँ से पैर निकले उसका भाग, पहले कैसा चौड़ा होता है, फिर पतला होता जाता है, ऐसा बताने के लिये (बड़ा चित्रित किया था)। कैसे ऐसे से ऐसे होता है ? लम्बे किये हुए। तो वह कहे साहेब! आपने मच्छर बताया था, देखो! यह मच्छर आया। मास्टर कहे, यह मच्छर नहीं है, यह तो हाथी है। तो तुमने तो लम्बे पैर करके बताया था न ? जिसने जाना नहीं हाथी, वह हाथी किसे माने ? समझ में आया ?

इसी प्रकार आत्मा अन्दर ज्ञानस्वरूपी भगवान है। उसकी ज्ञान की दशा में ज्ञात नहीं हुआ, उसे श्रद्धा कहाँ से होगी ? और श्रद्धा हुए बिना अन्य भाव से भिन्न पड़कर स्वरूप में स्थिर होने की शक्ति उसे कहाँ से आयेगी ? आहाहा! समझ में आया ? है ? यह तो पेराग्राफ बहुत ऊँचा है। आहाहा! कहते हैं, अरे..! जिसे आत्मज्ञान नहीं। उस आत्मा का ज्ञान नहीं, उसे आत्मा की श्रद्धा नहीं। उसकी श्रद्धा नहीं; इसलिए उसे अन्य भावों-विकल्पों से भिन्न पड़कर, स्वरूप में स्थिर होना, ऐसा चारित्र उसे नहीं हो सकता। आहाहा! यह सब चारित्र... चारित्र... बातें करते हैं न ? व्रत पाले और अमुक करे, वह चारित्र। धूल में भी चारित्र नहीं। भाई! समझ में आया ?

बापू! चारित्र का मुख अलग है। आहाहा! चारित्र हुआ, वह तो परमेश्वर हुआ। वह तो पंच परमेष्ठी में सम्मिलित हो गया। आहाहा! जिसे गणधर नमस्कार करते हैं, ऐसा जो चारित्र। वह आत्मज्ञान होकर श्रद्धा हो, उसमें स्थिर होने की शक्ति हो, उसे चारित्र कहने में आता है। समझ में आया ? यह वस्त्र छोड़े, अमुक बदला और हुआ, चारित्र हो गया, हमने व्रत ले लिये, संसार छोड़ा। किसे संसार कहना, इसकी तुझे खबर नहीं। समझ में आया ? स्त्री, पुत्र, शरीर, संसार नहीं है। वह संसार होवे तो जब मरे, तब सब छूट कर जाता है तो

संसार पड़ा रहा और इसकी मुक्ति होनी चाहिए, वह संसार होवे तो। वह संसार नहीं है। चिदानन्दस्वरूप भगवान पूर्णानन्द का नाथ है, वहाँ से संसरण—हटकर एक समय की पर्याय और राग का ज्ञान करनेवाला जो भाव, वह मिथ्यात्वभाव वह संसार है। समझ में आया? वह संसार छोड़ा नहीं और बाहर का छोड़ा वहाँ (मानता है कि) हमने संसार छोड़ा, दीक्षा ली। सब हजारों लोग एकत्रित हुए और आहाहा! धन्य भाग्य... धन्य भाग्य। धूल में भी नहीं है। सुन न! समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा ऐसे चारित्रादि अनंत गुण का पिण्ड वह तो है। ऐसे गुण का धारक तत्त्व, उसका ज्ञान नहीं तो उसकी श्रद्धा नहीं और श्रद्धा नहीं तो उसमें स्थिरता की चारित्रदशा उसे नहीं हो सकती। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! जब श्रद्धा नहीं होती, **तब समस्त अन्यभावों के भेद से...** बाकी वह तो ऐसा कहते हैं कि हमें श्रद्धा है, परन्तु किसकी? हमें भगवान की सच्ची श्रद्धा है, आत्मा की सच्ची श्रद्धा है। वह श्रद्धा नहीं। आत्मा के ज्ञान की दशा में पूरा आत्मा ज्ञात होता है और ज्ञेयरूप से अनुभव में आता है और उसकी प्रतीति (करे), उसे श्रद्धा कहते हैं। समझ में आया? और तब उसे... जब तत्त्व का, वस्तु का ज्ञान हुआ नहीं, शक्ति से श्रद्धा हुई नहीं, नहीं जाने हुए की और इसलिए पर से, अन्य भावों से, विकल्प से पृथक् पड़कर स्वरूप में स्थिर होने की श्रद्धा में तो वह ताकत आयी कि अब इसमें स्थिर होऊँगा तो मेरी मुक्ति होगी। यह पहले आ गया है। पर किसमें स्थिर होना? आत्मा तो जाना नहीं। श्रद्धा में आया नहीं तो स्थिर किसमें होना? वह तो राग में स्थिर होता है। समझ में आया?

कहते हैं, **अन्यभावों के भेद से आत्मा में निःशंक स्थिर होने की...** ऐसा कहा न? **असमर्थता के कारण...** स्वरूप को जाना नहीं, स्वरूप को माना नहीं, स्वरूप में स्थिर होने की शक्ति उसे नहीं होती। **आत्मा का आचरण उदित न होने से...** उसे आत्मा का चारित्र प्रगट नहीं होता। आहाहा! गजब ऐसी बातें, भाई! ऐसी धर्म कथा! **आत्मा को नहीं साध सकता।** लो अब, आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, सर्वज्ञ ने कहा हुआ, असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का धाम एकरूप है। ऐसा ज्ञान हुए बिना उसे श्रद्धा नहीं होती। श्रद्धा नहीं होती, इसलिए स्थिर होने की शक्ति इसे प्रगट नहीं होती। इसलिए वह आत्मा को नहीं साधता, वह राग को साधता है। आहाहा! समझ में आया? यह तो पुण्य के भाव दया, दान, व्रत, तप, ऐसे राग को साधता है, संसार को साधता है, वह आत्मा को नहीं साधता।

इस प्रकार साध्य आत्मा की सिद्धि की अन्यथा अनुपपत्ति है। लो। पहले उत्पत्ति

कही थी। इस प्रकार से मुक्ति की जो दशा—भाव, ऐसा जो साध्य आत्मा, उसकी सिद्धि, उसकी प्राप्ति, आत्मा के ज्ञान और श्रद्धा, स्थिरता बिना अन्यथा उसकी प्राप्ति नहीं होती। समझ में आया? पहले प्राप्ति है, ऐसा कहा। **इस प्रकार साध्य आत्मा की सिद्धि की...** उत्पत्ति है, ऐसा पहले, दूसरे पेराग्राफ में कहा था। तीसरे में ऐसा कहा, **इस प्रकार साध्य आत्मा की...** मुक्तिदशा, परम आनन्द ऐसी जो आत्मा की मुक्ति उसे ऐसे आत्मा के ज्ञान बिना, आत्मा की श्रद्धा बिना, स्वरूप में स्थिर होने की क्रिया बिना मुक्ति की सिद्धि नहीं होती। बहुत सरस बात है, बहुत सरस बात। अरे..रे..! इसे कान में नहीं पड़ती। परम सत् के न्याय, परम सत्य क्या है और असत्य क्या मानता हूँ, इसकी जिसे खबर नहीं है, वह किस ओर जाकर संसार में रहेगा? कहाँ अवतरित होगा, उसका मेल नहीं है। आहाहा! समझ में आया? लो, एक पेराग्राफ हुआ।

भावार्थ : साध्य आत्मा की सिद्धि... साध्य अर्थात् साधन करके पूर्ण दशा प्रगट हो, उसे साध्य कहते हैं। आहाहा! साध्य में है न वह? ऐसा कहते हैं न? वह बीमार-वीमार होवे तब कहते हैं न? साध्य में है। उसी प्रकार जिसे साध्य मुक्ति है, वह साध्य में है। आहाहा! जिसके साध्य में राग और संसार है, वे सब असाध्य हैं। समझ में आया? यह नहीं कहते? साध्य है या नहीं? साध्य अभी चली गयी है। दो घण्टे पहले कुछ थी। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि साध्य तो इसे कहते हैं, साध्यवाला उसे कहते हैं कि जिसे मुक्ति की दशा प्रगट करनी है, उसे साध्यवाला कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म है, मोहनभाई! मोहनभाई बराबर सुनते हैं। ऐसा सूक्ष्म है।

कहते हैं, **साध्य आत्मा की सिद्धि...** साध्य में पूर्णानन्द दशा प्रगट करनी है। 'मोक्ष कहा निज शुद्धता, वह पावे सो पंथ।' श्रीमद् में आता है न? 'समझाया संक्षेप में सकल मार्ग निर्ग्रन्थ।' राग और अज्ञान की गाँठ तोड़कर जिसने ज्ञान और वीतरागता प्रगट की, ऐसे परमात्मा ने यह मार्ग बतलाया है। आहाहा! उन्होंने मोक्ष का मार्ग बतलाया और मोक्ष भी कैसा है, यह उन्होंने बतलाया। आहाहा!

कहते हैं, **साध्य आत्मा की सिद्धि (प्राप्ति) दर्शन-ज्ञान-चारित्र से ही है,...** यहाँ दर्शन पहले लिया, भाई! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणिमोक्षमार्ग है न? यह शब्द लिया। साध्य की सिद्धि मोक्ष के मार्ग से; मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। **अन्य प्रकार से नहीं। क्योंकि—पहले तो आत्मा को जाने...** देखो! यहाँ प्रथम कहा, यह यहाँ पहले आया। **कि यह जाननेवाला अनुभव में आता है सो मैं हूँ।** यह जाननेवाले का ज्ञान अनुभव में आवे वह

मैं हूँ। आहाहा! यह तो धीरज की बातें हैं, भाई! यह कहीं बाहर के कुदक्के मारने से, बाहर की प्रवृत्ति के परिणाम करने से धर्म नहीं होता। आहाहा!

तब और एक व्यक्ति ने प्रश्न किया। कल और परसों मुम्बई में तो बहुत लोग थे न? आठ-आठ, दस-दस हजार लोग। ....लेकर सामने खड़े हों। इतने लोग। तब वह कहे, महाराज! यह सब प्रवृत्ति किसकी? धर्म के लिये यह होता है या नहीं? बड़ी प्रतिमा पधराई है न? कहा, देखो, भाई! जब ऐसा शुभभाव हो, तब सामने चीज़ उसके कारण से होती है, तो उसका लक्ष्य वहाँ जाता है, इतनी बात है। परन्तु इससे धर्म होता है और मुक्ति होती है, यह बात नहीं है। अशुभ से बचने के लिये ऐसा व्यवहार से कहा जाता है, अशुभ से बचने के लिये। वह अशुभ भी दो प्रकार के हैं। एक मिथ्यात्व का अशुभ और एक बाह्य चारित्र का अशुभ। यह चारित्र के अशुभ से बचने की बात है।

पंचास्तिकाय में आता है न? योग वह बाह्य है और चारित्र वह अभ्यन्तर है। योग-योग। कम्पन, वह बाह्य है और कषाय, यह अभ्यन्तर है। और नियमसार की ५३ गाथा में ऐसा आता है, ज्ञानी की वाणी, वह बाह्य निमित्त है और ज्ञानी का अभिप्राय अभ्यन्तर है। उसे मिथ्यात्व के परिणाम, ये अभ्यन्तर के अशुभ हैं और चारित्र के अशुभ से बचने के लिये शुभ, वह बाह्य का शुभ है। कहो, समझ में आया इसमें? अरे..रे..! गजब। यह जाननेवाला अनुभव में आता है, बापू! कहा, मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा!

जानने के अनुभव में आता है सो मैं हूँ। ऐसा है न? **इसके बाद उसकी प्रतीतिरूप श्रद्धान होता है;...** यह संक्षिप्त में आ गया। **जाने बिना किसका श्रद्धान करेगा? तत्पश्चात् समस्त अन्यभावों से भेद करके अपने में स्थिर हो।—इस प्रकार सिद्धि होती है। किन्तु यदि जाने ही नहीं,...** आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप ज्ञेय में आवे ही नहीं तो श्रद्धान भी नहीं हो सकता। तो **स्थिरता कहाँ करेगा?** (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(१८) **श्री समयसार, गाथा - ४९, प्रवचन - ४७ (राजकोट)**
दिनांक - १५-०५-१९८०

समयसार ४९ वीं गाथा। अव्यक्त का बोल चलता है। पहला बोल यह आया कि छह द्रव्यस्वरूप लोक जो ज्ञेय है... ऐसा आया न ? छह द्रव्यस्वरूप लोक है। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल, (पुदगल) और जीव यह छह द्रव्यस्वरूप लोक जो ज्ञेयरूप से है, ज्ञेयरूप से है। आहाहा! और वह इस आत्मा की अपेक्षा से बाह्य-व्यक्त है और उसकी अपेक्षा से आत्मा अव्यक्त है। आहाहा! अर्थात् कि छह द्रव्य से यह ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। छह द्रव्य के ज्ञान से वह आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। यह बात आ गयी है। आज सामान्य और विशेष में जरा सूक्ष्म बात आ गयी। आती है, देखो! क्या आता है ?

एक बोल यह कहा कि जगत में छह द्रव्यस्वरूप जगत है, परन्तु उससे यह भगवान आत्मा जानने में नहीं आ सकता क्योंकि इस चीज़ से वह चीज़ अलग है। यह बात हो गयी है। यह कषायों का समूह। अब जो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध के भाव जो कषाय है, उसका जो समूह, असंख्य प्रकार के शुभराग और असंख्य प्रकार के अशुभराग, वह भावकभाव है। वह तो कर्म जो भावक है, उसका भाव है। है तो इसकी पर्याय में इससे, परन्तु यहाँ तो द्रव्यदृष्टि समझानी है। त्रिकाल द्रव्य वस्तु जो है, वह भगवान पूर्णानन्द का नाथ अनादि अनन्त जो वस्तु है, इस अपेक्षा से तो पुण्य और पाप के दया, दान, व्रत, आदि के भाव, वह भावक जो कर्म है, उसका वह भाव है; वह आत्मा का भाव नहीं। आहाहा! जो कहना है, सूक्ष्म बात है, वह तीसरे बोल में आयेगी। यह तो सवेरे अन्दर से मस्तिष्क में आया है। वह तीसरे बोल में (आयेगी)।

यहाँ तो जो भावक अर्थात् कर्म के भाव से हुआ, यहाँ यह विकार उसका नहीं है, ऐसा बताने के लिये विकार निमित्त से हुआ है, वह उसका है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया ? चाहे तो परमात्मा की भक्ति के परिणाम हो या चाहे तो दया, दान, व्रत और पच्चखाण के भाव, वह सब विकल्प और राग हैं। यह भावक कर्म का भाव है, द्रव्यस्वभाव का भाव नहीं। भगवान आत्मा... आहाहा! द्रव्यस्वभाव का वह भाव नहीं है, वह भावक का भाव है; इसलिए आत्मा उससे भिन्न होने से अव्यक्त है। आहाहा!

यहाँ तो अभी दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा यह सब भाव करो तो कल्याण होगा, यह प्रवृत्ति चली है। आहाहा! किसे पड़ी है कि मेरा क्या होगा? यह देह छूटने के पश्चात् जानेवाला हूँ। आहाहा! भाई! आज समाचार आया है। सेठ शोभालाल गुजर गये हैं। सागर... सागरवाले। बहुत प्रेम था। करोड़पति थे। विचारे को बहुत प्रेम था। बहुत वर्ष से, बहुत महीनों से और वर्ष होगा पलंग पर पड़े हुए, उसमें अच्छा भी हो गया था। ठीक। आज कुछ तार आया है। 'पवन सेठ' उनसे छोटे भाई। दूसरे के व्यापारी बड़े करोड़पति। अपने से बाहर उनका मकान है न? यह देह की स्थिति पूरी हो... ऐसा उनका लठ्ठ जैसा शरीर था। हाथ में लकड़ी रखते थे। चाँदी का ऊपर पकड़ने का। आहाहा! वह तो नाशवान चीज़ है, उससे तो प्रभु हाथ आवे, ऐसा नहीं है। परन्तु यहाँ तो उसमें होनेवाले पुण्य और पाप, वे भी उसकी शाश्वत् चीज़ नहीं होने से और उसका शाश्वत स्वरूप भी नहीं होने से वह विकार भाव कर्म अर्थात् भावक से हुआ, उस भाव की अपेक्षा से भगवान आत्मा अव्यक्त है। उससे ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! तथापि जान तो कहा है न? वह विकार से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। तब वह निर्विकारी परिणति से ज्ञात हो ऐसा है। आहाहा! जाण शब्द है न? समझ में आया?

पुण्य के भाव असंख्य प्रकार के। यह दूसरी की व्यवस्था करते हैं, यह गौशाला की अमुक की और घर के लड़कों की और गरीबों और... यह सब विकल्प है। प्रभु! सूक्ष्म बात है। दुनिया से भिन्न चीज़ है। यह राग है, यह भावक का भाव है। कर्म जो भावक है, उसका यह भाव है और प्रभु तो उससे भिन्न है। आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु उससे भिन्न है, इसलिए उसे अव्यक्त कहने में आता है। इसे जान। जान आया न? पुण्य और पाप के भाव से भिन्न है, उसे जान, तो तुझे उसके कल्याण का रास्ता हाथ आयेगा। आहाहा! जन्म-मरण का अन्त तब आयेगा। नहीं तो अन्त नहीं आयेगा, प्रभु! आहाहा! वहाँ किसी की सिफारिश लागू पड़े, ऐसा नहीं है।

जीव वस्तु का स्वभाव और विभाव स्वतन्त्र है। परन्तु इस विभाव से स्वभाव ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। वह भी स्वतन्त्र है। आहाहा! समझ में आया? यह कषायों का समूह लिया है न? असंख्य प्रकार के शुभभाव—दया, दान, व्रत, भक्ति आदि असंख्य प्रकार के शुभभाव का समूह जो भावकभाव, कर्मरूपी भावक भाव का करनेवाला कर्म अभी कहा है। भावक। वह विकार का करनेवाला कर्म है, तेरा स्वरूप नहीं। वह द्रव्य आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु, उसके अनन्त गुण होने पर भी कोई गुण विकाररूप परिणमे, ऐसा एक भी गुण नहीं है।

अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण का पिण्ड प्रभु है परन्तु उन

अनन्त गुणों में कोई एक भी गुण ऐसा नहीं है कि दया से परिणाम को उत्पन्न करे। आहाहा! यह तो भावक का भाव है। कर्म का भावक, उसका वह भाव। गजब बात है। समझ में आया?

यह दया का और भक्ति का भाव, वह कहीं आत्मा की चीज़ में ऐसी कोई शक्ति नहीं है कि स्वयं शक्ति विकाररूप परिणमे। उस पर्याय में-अंश में विकार होता है। उसका निमित्त जो साधन निमित्त कर्म है, उसे यहाँ भावकभाव कहकर उसका वह भाव है, उससे प्रभु भिन्न है, तो उसे जान। विकार के लक्ष्य को छोड़कर... जान तो कहा न? तो विकार से ज्ञात नहीं होता। तब तू निर्विकार दशा से जान कि यह भगवान शुद्ध चैतन्य है। इसमें एक भी गुण विकार को (करे), ऐसा नहीं है।

कलश टीका में एक प्रश्न उठा है कि आत्मा में अनन्त शक्ति है, तो एक ऐसी भी शक्ति इसमें होवे तो आपत्ति क्या? कि पर का करे और राग करे, ऐसी एक शक्ति होवे तो आपत्ति क्या? ऐसा एक प्रश्न उठा है। नहीं, नहीं। उसमें एक भी गुण ऐसा नहीं है। प्रभु! क्या करे? अनन्त-अनन्त संख्यावाले गुण का पिण्ड प्रभु, परन्तु एक भी गुण ऐसा नहीं कि जो दया पालने का विकार करे, ऐसा उसमें एक भी गुण नहीं है। आहाहा! यह तो भावक का भाव है। आहाहा! क्योंकि उसके गुण में नहीं, तब पर्याय में जो अवस्था होती है, वह तो विकृत दशा है। इसलिए उस विकृत का करनेवाला, अविकृत अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु नहीं है। आहाहा!

जिसे कल्याण करना है, जन्म-मरणरहित (होना है), बापू! अनन्त काल हुआ। आहाहा! करोड़पति चले जाते हैं। आहाहा! शोभालाल को बेचारे को कितना प्रेम था। सागर, करोड़पति थे। देह छूट गया। आज तार आया है। आहाहा! करोड़पति कहो या धूलपति सब (चले जाते हैं)। आहाहा! करोड़ अर्थात् पैसा, उसका पति तो जड़ है। भैंस का पति पाड़ा होता है; इसी प्रकार यदि लक्ष्मीपति होना हो तो लक्ष्मी जड़ है, उसका पति हो तो जड़ है। आहाहा! जगत को बहुत कठिन काम, बापू! आहाहा!

कषायों का समूह... लिया है न? क्योंकि असंख्य प्रकार के दया, दान और अहिंसा आदि के परिणाम हैं, उन किसी परिणाम से तुझे तेरी चीज़ ज्ञात हो, ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं है। आहाहा! यह दो बोल (हुए)। अब तीसरा।

तीसरे बोल में आज सवेरे जरा ऐसा एक विचार आया कि चित्सामान्य में चैतन्य की सर्व व्यक्तियाँ निमग्न है। अर्थात् क्या कहते हैं? यह चैतन्य जो प्रभु है, सामान्य त्रिकाली है, उसमें भूतकाल और भविष्य की पर्यायें निमग्न हैं। तो उस पर्याय से ज्ञात हो, ऐसी वह चीज़

नहीं है। क्योंकि वह तो उसमें बाह्य है नहीं। बाह्य होवे तो उसे जान सके। बात समझ में आती है। यह कहीं अन्दर आत्मा की पर्यायें भूतकाल में अनन्त अवस्थायें हो गयीं और भविष्य में अनन्त होंगी परन्तु इस वर्तमान में पर्याय में उनकी गैरहाजिरी है। वे होंगी और हो गयीं, वह सामान्य में है। तो अन्दर में है तो उसके द्वारा अब आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह तो ध्रुव हो गयी। क्या कहा? जरा सूक्ष्म बात है।

चित् सामान्य में चैतन्य की सर्व व्यक्तियाँ अन्तर्मग्न है, तब उसका यह अर्थ हुआ, कि जो अन्तर्मग्न नहीं, ऐसी जो निर्मल बाह्य पर्याय है, उस पर्याय से तू आत्मा को जान। समझ में आया? जो अवस्थायें वर्तमान में पर्याय में नहीं और सामान्य में है तो उस सामान्य में कहीं सामान्य, सामान्य से ज्ञात हो, ऐसी वह चीज़ नहीं है। आहाहा! जरा थोड़ी सूक्ष्म बात है। उस सामान्य में सब भूत और भविष्य की पर्यायें समाहित हो गयी। पानी की तरंगें पानी में समाहित है, वे तरंगें अब पीने में काम नहीं आतीं। समझ में आया?

यह भगवान सामान्य चैतन्य प्रभु, सामान्य अर्थात् एकरूप रहनेवाला, उसमें भूत और भविष्य की पर्यायें अन्दर में गयीं, वह सामान्य एकरूप हुई। अब उस द्वारा आत्मा जाना जा सके, ऐसा नहीं है। समझ में आया? मात्र व्यक्त जो प्रगट बाह्य है, वह भी निर्मल पर्याय जो है, उससे तू जान। आहाहा!

क्योंकि भावभाव तो ऊपर आ गया। विकार से तो ज्ञात नहीं होता, यह बात तो आ गयी। अब जो पर्यायें अन्दर में गयीं, उनसे भी ज्ञात नहीं होता। चन्दुभाई! क्या कहा समझ में आया? भावकभाव से तो ज्ञात नहीं होता, यह बात तो आ गयी। कोई भी दया, दान, व्रत आदि के विकल्प से वह ज्ञात हो ऐसा नहीं है। जब इसकी भूतकाल की और भविष्य की पर्याय वर्तमान नहीं, यह तो सामान्य में गयी है। अब इसे जाननेवाला कौन? वह तो अव्यक्त रहा। अव्यक्त क्यों? – कि उसके द्वारा वह ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। ध्रुव द्वारा ध्रुव ज्ञात हो, ऐसा वह नहीं है। आहाहा! जरा शान्ति से विचार करके करने का, बापू! यह तो अलौकिक मार्ग है। यहाँ तो भव के अभाव की बातें हैं। जिससे एक भी भव मिलेगा, उस भव में अनन्त भव करने की ताकत है और वह भव है, वह कलंक है। भगवान सच्चिदानन्द प्रभु में यह भव और भव का भाव कलंक है।

यहाँ कहते हैं कि जो भूत और भविष्य की, गत काल की और भविष्य की पर्यायें तो सामान्य में गयी। अन्तर्भूत वहाँ हुई। इसलिए उनसे ज्ञात हो, ऐसा तो रहा नहीं और 'जान' तो कहा, समझ में आया? यह निर्मल पर्यायें वर्तमान है, उससे जान। सामान्य से सामान्य नहीं

जाना जाता; त्रिकाली, त्रिकाली से नहीं जाना जाता; त्रिकाली, विकार से नहीं जाना जाता, त्रिकाली, निर्मल पर्याय से जाना जाता है, वहाँ से जान। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

सामान्य-चित् ज्ञानसामान्य। ज्ञान अर्थात् आत्मा। यहाँ ज्ञान अर्थात् आत्मा। चित् अर्थात् ज्ञानसामान्य में चैतन्य की भूतकाल और भविष्यकाल की जितनी पर्यायें हैं, वे सब पर्यायें-सर्व व्यक्तियाँ निमग्न हैं। वह तो सामान्य में मग्न है। आहाहा! जिससे तुझे जानने का कार्य लेना है, काम लेना है, वह अकेले सामान्य से नहीं होगा तथा सामान्य में भविष्य और भूत की पर्यायें गयीं, उनसे भी नहीं होगा। आहाहा! समझ में आया? लालचन्दभाई! थोड़ी सूक्ष्म बात है। भाई! यह ऐसा कैसे कहा? इसका अर्थ यह कि भूत और भविष्य की पर्यायें सामान्य में समा गयी तो उनसे, जैसे द्रव्य से द्रव्य ज्ञात नहीं होता, वैसे वह पर्याय अन्दर गयी, उनसे नहीं ज्ञात होता। जान, ऐसा तो कहा। समझ में आया?

भले प्रगट पर्याय एक समय है, परन्तु उसका उपयोग अनन्त समय में काम करता है। परन्तु यहाँ तो एक समय का ज्ञान, वह निर्मल प्रगट है, उसका द्वारा उसे जान। भले जानने में एक समय में ही ज्ञात हो जाता है। इसके उपयोग में असंख्य समय में आता है। क्योंकि छद्मस्थ है, कषाय के साथ उपयोग है अर्थात् एक उपयोग उस समय की अवधिवाला नहीं रह सकता। काम तो एक समय में होता है। एकदम रूपान्तर, सम्यग्दर्शन तो एक समय में होता है।

व्यक्त जो भावकभाव, उससे ज्ञात नहीं होता; त्रिकाली सामानय जो वस्तु है, उसमें भूत और भविष्य की पर्याय समाहित हो गयी, इसलिए उससे नहीं ज्ञात होता। आहाहा! यह भूत और भविष्य की पर्याय अन्दर गयी, उसे अव्यक्त क्यों कहा? जैसे सामान्य वस्तु को अव्यक्त कहा, एकरूप रहनेवाली चीज़, वैसे भूत भविष्य की पर्याय अन्दर गयी, इसलिए वह भी अव्यक्त हुई। आहाहा! वह बाहर नहीं रही, प्रगट नहीं रही और प्रगट बिना वह ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! प्रगट में कषाय से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है, यह बात तो सिद्ध (की है) पहले कह गये हैं। तब अब प्रगट से किस प्रगट से ज्ञात होता है? आहाहा! निर्मल सम्यग्ज्ञान की पर्याय से यह आत्मा ज्ञात होता है, इसलिए उस आत्मा के भूत-भविष्य की पर्याय अन्दर गयी, उन सबको अव्यक्त कहने में आता है। समझ में आया? ऐसी बातें अब! आहाहा!

निवृत्ति कहाँ? पाप के धन्धे के कारण निवृत्ति कहाँ है? पूरे दिन पाप, स्त्री-पुत्र का ध्यान रखने में पाप, छह-सात घण्टे सोने में पाप... आहाहा! अब इसे समय कब निकालना? इसमें सच्चा सुनने को मिले नहीं। इसे कब समय निकालना? यह मनुष्यभव चला जाता है।

आहाहा! और जो समय जाता है, यह मृत्यु का निर्णय है, जो काल, उसके सन्मुख जाता है। मृत्यु का समय निश्चित है। आगे-पीछे नहीं होता, जिस समय, जिस काल में, जिस प्रकार से देह छूटनेवाला है, देह छूटेगा... छूटेगा... छूटेगा। जो काल जाता है, वह सब मृत्यु के समय के समीप जाता है, अब इससे पहले यदि काम नहीं किया... आहाहा! तो मृत्यु के पश्चात् कहाँ जाऊँगा, इसकी कुछ मुद्दत (नहीं) है। भव की खबर नहीं है, क्योंकि अकेला विकारी भाव का सेवन है। अनादि अनन्त काल से सादि—अभी तक यदि वेदन होवे तो राग का, भले शुभ हो, परन्तु राग का वेदन है, उसे भगवान आत्मा का वेदन है ही नहीं। आहाहा!

साधु होकर पाँच महाव्रत पाले, हजारों रानी छोड़े, दिगम्बर नग्न मुनि हो तो भी वह राग को ही सेवन करता है क्योंकि पंच महाव्रत के परिणाम, वह भावक का भाव—विकार है। आहाहा! उससे वह आत्मा हाथ आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! तब उसे अव्यक्त को जान, ऐसा आया न? भाई! पाठ में तो ऐसा है। भले अन्वयार्थ में इन्द्रियाँ ली हैं अन्वयार्थ में, और टीका में भी ऐसा आया है। अन्वयार्थ है न? **अव्यक्त अर्थात् इन्द्रियों के गोचर नहीं...** इतना किया है। परन्तु इसका अर्थ यह कि इन्द्रियों के जितने प्रकार हैं, उनसे तो बन्ध नहीं, वे इसके नहीं; परन्तु जो व्यक्त पर्याय है, वह विकारी जो है, उससे ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। वह तो दूसरे में कहा।

अब अविकारी पर्याय है, कोई भविष्य की और अविकारी होने की ही है और किसी के तो वर्तमान सम्यग्दर्शन वर्तता हो, उसे कितने ही पर्याय निर्मल हो गयी हो, तो वह हुई और होगी, वह सब अन्दर में है। परन्तु उस सामान्य के कारण सामान्य ज्ञात हो (ऐसा नहीं है)। जानना, वह तो पर्याय है। जानना, वह कार्य है और सामान्य है, वह कारण है। आहाहा! ऐसा जो आत्मा, गत काल की और भविष्य की भले कोई समकिती हो, वह निर्मल पर्याय कितनी ही हो गयी, वह सब अन्दर में समाहित हो गयी। समझ में आया? आहाहा! आनन्द को वेदन करनेवाले सच्चे सन्त हों, उन्हें भी जब से उत्पन्न हुआ, बाद की आनन्द की सब पर्यायें अन्तर में चली गयीं। आहाहा! वह अन्तर में गयी, उसके द्वारा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। उसके द्वारा वेदन में आवे, ऐसा नहीं है।

दूसरे में कहा न? कषाय का समूह जो भावकभाव व्यक्त है। कषाय वेदन में है। आहाहा! उससे जो भिन्न है। आहाहा! राग, पुण्य, विकारभाव का वेदन वह तो (भिन्न है)। भूत और भविष्य की (पर्याय) वह तो अन्तर में गयी। अब क्या? चन्दुभाई! जरा सूक्ष्म है। आहाहा! सूक्ष्म पड़े, प्रभु! तेरी महिमा का पार नहीं, प्रभु! क्या कहें? आहाहा!

अमृतचन्द्राचार्य तो कहते हैं, प्रवचनसार पूरा वर्णन किया। ओहो..! दिव्यध्वनि वर्णन की। वर्णन करके पूरा किया, तब कहते हैं, सन्त हैं, एकावतारी हैं, आत्मध्यानी आनन्द में मस्त हैं, वे मुनि ऐसा कहते हैं कि हमने तेज आवाज से बहुत कहा, प्रभु! बहुत कहा। आत्मा की बात स्पष्ट आवाज में अर्थात् कि गुप्त नहीं रखी। हमने प्रसिद्ध किया है - ऐसा कहते हैं। मोटी आवाज का अर्थ यह। मोटी आवाज कहीं... ऐसा कि हमने तो सभा में इतनी स्पष्ट बात की है। बात गुप्त रखी है, एक व्यक्ति को कुछ समझाया, बाहर को कुछ समझाया, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! प्रवचनसार के अन्तिम भाग में है। वह भावलिंगी सन्त-मुनि आनन्द का वेदन करनेवाले अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभवी भोगी और अतीन्द्रिय आनन्द के रस के भोगी जीव... आहाहा! ऐसा कहते हैं, अभी छद्मस्थ हैं, इसलिए विकल्प उठा है। बहुत कहा, प्रभु! स्पष्ट आवाज में मैंने तुझसे बहुत कहा। आहाहा! परन्तु वह सब स्वाहा हो गया। यह चैतन्य की महिमा के समक्ष चाहे जितने कथन करें, वे स्वाहा, अग्नि में स्वाहा हो जाये, वैसे स्वाहा हो गये। ऐसा प्रवचनसार में अन्त में कहते हैं।

यह क्या कहा? हमने चाहे जितना स्पष्टीकरण करके, प्रभु! आत्मा की बात की और वह बात भी गुप्त में नहीं की। स्पष्ट आवाज का अर्थ यह है। सभा में भी स्पष्ट रीति से बात की है कि यह मार्ग है। यह कहा, वह भी महात्म्य प्रभु उसका है और वह इतना प्रभु है कि इतना सब कहा वह स्वाहा हो गया। आहाहा! रह गया आत्मा अकेला। वे सब कथन और सुनने का विकल्प, सब स्वाहा हो गया। जैसे अग्नि में स्वाहा हो जाता है, वैसे स्वाहा (हो गया)। बाकी अनुभव उसका हुआ, वह रह गया। अनुभवी को अनुभव रह गया। बाकी सुननेवाले को विकल्प और कहनेवाले के विकल्प सब स्वाहा हो गये। आहाहा! अब ऐसी बातें।

यहाँ तो ठीक। सामान्य में। आत्मा-चित् सामान्य है न? उसकी चैतन्य की सर्व व्यक्त प्रगटताएँ, व्यक्तियाँ भूतकाल और भविष्य में जितनी अनन्त पर्यायें होंगी और हो गयीं, वह वर्तमान में प्रगट नहीं, वह तो अन्तर में समा गयीं। पानी की तरंग पानी में समा गयी। उस तरंग द्वारा अब वह पानी नहीं ज्ञात होगा। जो तरंग समा गयी, उससे पानी नहीं ज्ञात होगा। एकरूपी दल। इसी प्रकार यह आत्मा एकरूपी दल है, वह सामान्य से स्वयं ज्ञात नहीं होता, अर्थात् ध्रुवस्वरूप है, वह पर्यायें भूत-भविष्य की समाहित हो गयीं, वह ध्रुवस्वरूप है, तो ध्रुव से ध्रुव नहीं ज्ञात होता। ध्रुव में भूत और भविष्य की पर्याय गयी वह भी ध्रुव हो गयी। आहाहा!

अब जब ध्रुव हो गयी, उससे तो नहीं ज्ञात होता। एक बात। दया, दान का विकार आदि है, उससे नहीं ज्ञात होता क्योंकि उसका कोई भाव नहीं है। उसका कोई गुण नहीं कि विकाररूप हो, वह तो पर के कारण हुआ है वह निकल जाता है, इसलिए उससे भी ज्ञात नहीं होता। अब ज्ञात होना बाकी रह गया। तू जान, ऐसा आया न? आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात है प्रभु! परन्तु है तेरे घर की। आहाहा!

भगवान आत्मा... अव्यक्त क्यों कहा? कि सभी **व्यक्तियाँ (अन्तर्भूत) है, इसलिए अव्यक्त है।** तब वे सब शक्ति में जो वर्तमान... कहनेवाला और जाननेवाला ऐसा ही माने कि मेरी यह पर्याय अन्दर में गयी, तो जाने कौन? समझ में आया? आहाहा! और तू जानना, ऐसा पाठ में कहा है। यह सब बोल के लिये कहा है न? अरस, अरूप, अव्यक्त जान। प्रभु! तू ज्ञाता है न? उस ज्ञाता को वर्तमान ज्ञान की निर्मल पर्याय से जान। इसके बिना वह ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। सामान्य का पंथ सामान्य से नहीं ज्ञात होता, विकार से नहीं ज्ञात होता। यह भूत-भविष्य की पर्याय से नहीं ज्ञात होता क्योंकि वह तो अन्दर समा गयी। आहाहा! एक वर्तमान प्रगट निर्मल पर्याय रही। आहाहा! विशेष स्पष्ट इतना पहले नहीं आया इसमें। यहाँ आया, तुम्हारे यहाँ आया।

सवेरे मस्तिष्क में प्रश्न उठा कि यह क्या कहते हैं यह? कि सामान्य में सभी व्यक्तियाँ भूत, भविष्य की अन्दर गयी। विकार से ज्ञात होता नहीं; अन्तर में गयी, उससे ज्ञात नहीं होता, तब जान-इसमें रहा क्या? प्रवीणभाई! ऐसा भगवान ऐसा है। आहाहा! तू प्रभु! तेरी वर्तमान जानने की शक्ति द्वारा ज्ञात हो, ऐसा है। गुरु द्वारा भी नहीं, देव द्वारा भी नहीं। आहाहा! क्योंकि गुरु और देव पर लक्ष्य जाएगा तो राग होगा, वह भावक का भाव होगा। आहाहा! थोड़ा परन्तु सत्य को सत्यरूप से रखना, प्रभु! थोड़ा भी सत्य वह सत्यरूप से रहना चाहिए। बड़ी-बड़ी लम्बी बातें करके वास्तविक सत्य का नाश करे, वह कहीं वस्तु है? आहाहा!

विकार के भाव मेरे हैं, ऐसा जो मानता है, वह चैतन्य की शुद्धता का मरण करता है। शुद्धता है ही नहीं। मैं अनन्त गुण का पिण्ड हूँ नहीं, मैं तो यह राग हूँ—ऐसा माननेवाला त्रिकाली का अनादर कहो या त्रिकाली का नकार कहो या त्रिकाली जीवन्त, वह नहीं (-ऐसा) कहो। आहाहा! समझ में आया? यह तो वीतराग की वाणी, बापू! सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ... आहाहा! उनकी एक-एक बात में गहराई का पार नहीं। परन्तु इतनी दरकार कहाँ की है? आहाहा! कमाने के कारण कमाने में हमेशा दो-पाँच हजार की आमदनी (होवे तो)... आहाहा! प्याला फट जाए (अभिमान चढ़ जाए)। पाँच-पाँच हजार की आमदनी हो। उसमें क्या? अभी

दस-दस हजार की, पन्द्रह हजार की आमदनीवाले अभी अपने हैं। पूनमचन्द, नहीं? पूनमचन्द। मलूकचन्दभाई के पुत्र। अपने चन्दुभाई के बड़े बापू के पुत्र। पूनमचन्द मुम्बई। पाँच-छह करोड़ रुपये। अपना पूनमचन्द। इन चन्दुभाई के बड़े बापू के पुत्र। दूसरे नम्बर के, पहले नम्बर का सिविल लाईन में है। उसके लड़का नहीं है, एक ही लड़की है और रुपये चार करोड़ हैं। इसके लड़का है। अभी एक लड़का बीस लाख की मोटर लाया, बीस लाख की। यह खबर कैसे पड़ी? हमें भावनगर से सोनगढ़ आना था न, तो प्लेन में जाना पड़े तो उसमें वह मोटर लाया। गाँव में से स्टेशन जाना था तो बीस लाख की मोटर में बैठाया। मैंने कहा ऐई! यह मोटर कितनी कीमत की है? कि बीस लाख की। धूल में है। अर..र..! मर जाएगा व्यक्ति। तब और दूसरा साथ में था वह कहे, क्या कहा? न्यालभाई वहाँ कहे पचास लाख की है।

श्रोता : गुरुदेव को विशिष्टता लगती है कि यह बीस लाख की है...

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ ऐसा कहा। यह बीस लाख की है, यह विशिष्टता नहीं। वहाँ तो पचास लाख की है। अरे! एक पोप है, उसके पास अभी पाँच करोड़ की मोटर है। पोप। ईसाई का गुरु। पाँच करोड़ की मोटर कैसी होगी? हीरा और माणिक जड़े होंगे। धूल में। आहाहा! पाँच करोड़ की एक मोटर। मार डाले... उसमें बैठा तो... आहाहा!

श्रोता : मजा आता है। मार क्या डाले, मजा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मजा आता है, मजा पचाकर मार डालता है। इससे मजा आता है, मजा आता है, वही आत्मा को मार डालता है। आनन्द का नाथ ज्ञाता-दृष्टा, वह मैं नहीं, यह मजा, वह मैं (इस प्रकार मानकर) विद्यमान चीज़ का नकार करनेवाला आत्मा का मरण कर डालता है। आहाहा! मार डालता है। नहीं, तू नहीं। मुझे तो मजा आवे वह मैं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

अभी अफ्रीका गये थे न? वहाँ साढ़े चार सौ तो करोड़पति हैं। एक गाँव में साढ़े चार सौ करोड़पति। छब्बीस दिन रहे न हम। व्याख्यान में सब आते थे। यहाँ तो सब आते हैं। एक करोड़पति है। चन्दरिया (नाम है) वह आया था। वहाँ मुम्बई आया था, वापस वहाँ भी आया। एक अरब रुपये। धूल में मर जाएगा। आहाहा! सौ हजार का लाख, सौ लाख का करोड़, सौ करोड़ का अरब। वह तो अभी यह चलता है। हमारे समय में तो अरब के पश्चात् खर्ब और निखर्ब... ऐसे बोल थे। सौ अरब का खर्ब होता और सौ खर्ब का निखर्ब होता। हमारे समय में ऐसे बोल थे। पिचहत्तर वर्ष पहले खर्ब.. निखर्ब, महापद्म... और प्राप्त। तब

इतने बोल थे। अब यहाँ और अरब आया। यह अरब पूरी दुनिया की रकम... पार नहीं होता। यह कहीं आत्मा को शरणभूत नहीं है।

यहाँ तो भावक का भाव शरणभूत नहीं है। तुझे दया का भाव आवे, प्रभु! वह शरणभूत नहीं है। वह तो कर्मभाव नाम कारण से विकार आया है। तुझमें अनन्त गुणों में एक-एक शक्ति, एक-एक गुण, एक-एक स्वभाव, पर्याय में विकार करे, ऐसा कोई गुण ही नहीं। आहाहा! क्या कहा यह? अनन्त गुण का पार नहीं होता। आकाश के प्रदेश जो हैं, जिनका माप नहीं होता। आकाश कहाँ हो गया? यह जगत-ब्रह्माण्ड तो असंख्य योजन में यह है। यह चौदह ब्रह्माण्ड जो जड़-चैतन्य से भरपूर है, वह तो असंख्य योजन में है। पश्चात् अनन्त... अनन्त... अनन्त... आकाश खाली है। इस जगत के पश्चात् चारों ओर खाली आकाश है। कहीं आकाश का अन्त है? कि आकाश अब हो गया। आहाहा!

ऐसे आकाश की अस्ति के जो प्रदेश हैं अर्थात् उसमें एक परमाणु रोके, उतने भाग को प्रदेश कहते हैं। एक परमाणु, ऐसे अनन्त प्रदेश से अनन्त गुणे जीव में गुण हैं। एक आत्मा में उस आकाश के प्रदेश की संख्या की अपेक्षा अनन्त गुणे गुण हैं परन्तु इसमें एक भी गुण ऐसा नहीं कि दया के भाव करे। आहाहा! एक भी गुण ऐसा नहीं कि परमात्मा की भक्ति का भाव वह गुण करे। आहाहा! इस पर्याय में व्यवहार से पर के लक्ष्य से भाव उत्पन्न होता है, तो ज्ञानी को भी वह परलक्ष्यी भाव आता है। आहाहा! उसे तो यहाँ निकाल दिया। परन्तु इसकी निर्मल पर्याय भविष्य में होगी, जिसे होना है, केवल (ज्ञान) लेना है, अल्प काल में केवलज्ञान होना है, उस केवलज्ञान की अनन्त पर्यायें (होंगी)। भविष्य काल का अन्त नहीं है, भूतकाल का अन्त आ गया। भूत का अभी यहाँ तक अन्त आ गया। अब यहाँ से अब भविष्य, उसका अन्त है कहीं कि हो गया भविष्य काल? आहाहा!

उस भूतकाल के काल से भविष्य काल अनन्तगुणा है। भविष्य में जो केवलज्ञान होनेवाला है, उसकी जो पर्याय अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... (होनेवाली है), वह अनन्त आनन्द की पर्याय अनन्त... अनन्त... अनन्त... परन्तु वह वर्तमान यहाँ नहीं है। सामान्य में अभी है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा धर्म का उपदेश अब किस प्रकार का?

भाई! प्रभु! तू बड़ा है। तेरी बातें... कहा न आचार्यों ने। हम चाहे जितना कहें परन्तु प्रभु! तेरी महिमा के समक्ष तो अग्नि में स्वाहा हो जाए ऐसी भाषा और प्ररूपणा है। आहाहा! तेरी महत्ता की महिमा का क्या पार कहें नाथ! तुझे खबर नहीं। आहाहा! अनन्त तीर्थंकर और केवली हो गये, वे तुझे एक समय में ज्ञात हो जाए, इतनी तो ताकतवाला तू है। उन्हें मेरा

मानना, ऐसा तेरे में कोई गुण है नहीं परन्तु वे अनन्त तीर्थंकर हुए, अनन्त केवली हुए, अनन्त धर्मात्मा हुए, उन्हें एक समय की पर्याय में जाने, तब तो तेरी पर्याय की मान्यता सत्य कहलाये। इस एक पर्याय में इतने को जानने की ताकत है। इतनी पर्याय को उस रीति से जाने तब उसने पर्याय मानी कहा जाए। आहाहा! यद्यपि कलश टीका में पर्याय में जीव नहीं लिया। परन्तु एक समय की पर्याय में धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल और पुद्गल। इस पर्याय को माना तब कहलाये कि ये सब माने जाते हैं, तब पर्याय मानी कहलाती है। कलश टीका में है। इसमें है। समझ में आया? यह कलश टीका है न? उसमें है।

पर्याय को मानी, तब कहलाये कि उस पर्याय में जो ज्ञात होनेयोग्य जितने द्रव्य हैं, उन्हें जानने की ताकतवाली पर्याय है। तो पर्याय कब मानी कहलाये? कि उसकी जानने की जितनी ताकत है, उसे माने तो। अकेला मैं पर्याय हूँ और राग को जानता हूँ, अमुक को जानता हूँ, इसलिए नहीं। समझ में आया? आहाहा! इसमें है। पर्याय की बात है न? कितने में होगी वह? २४९ कलश है। **कोई मिथ्यादृष्टि ऐसा है कि ज्ञान को द्रव्यरूप मानता है, पर्यायरूप नहीं मानता; इसलिए जैसे जीवद्रव्य को ज्ञान वस्तुरूप से मानता है, वैसे ज्ञेय जो पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश-कालद्रव्य, उन्हें भी ज्ञेयवस्तु नहीं मानता...** उस पर्याय को नहीं मानता। पर्याय की इतनी ताकत है कि सब द्रव्य को जान सके। तो इतनी पर्याय सबको जान सके, ऐसा नहीं मानता, वह पर्याय को ही नहीं मानता। वह अकेले द्रव्य को मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। २४९ में है। दूसरा बोल। वह पहला बोल कहा था। वह पहला बोल तत् का है, यह अतत् का है। अतत्। उसरूप नहीं, उसरूप नहीं। पर्याय भी उस रूप नहीं। तथापि पर्याय जानने की इतनी ताकत है। आहाहा!

क्या कहा यह? इस भगवान में दो प्रकार हैं। एक सामान्य अर्थात् कायम रहना और एक समय की अवस्था। अवधि तो एक समय की ही है। दो पर्याय दो समय में एकत्रित नहीं होती। दो समय की दो पर्याय कभी किसी की इकट्ठी नहीं होती। अब यहाँ क्या कहते हैं? प्रभु! भूतकाल की-गत काल की पर्यायें, भले तू समकिती हो या ज्ञानी हो, उसमें से कितनी ही निर्मल पर्यायें भूत (काल) में हो गयी, परन्तु वे सब सामान्य में गयी, इसलिए वे अव्यक्त में गयीं। इसलिए जो निर्मल पर्याय गयी, उसके द्वारा वर्तमान तू ज्ञात हो, ऐसा तू नहीं है। अब भविष्य में जो ज्ञान की और आनन्द की पर्याय होगी, अरे! अभी केवलज्ञान होगा। वह पर्याय वर्तमान में सामान्य में है। इसलिए वह पर्याय वर्तमान में नहीं है, इसलिए उससे त्रिकाली आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

अब तू छद्मस्थ है और केवलज्ञान भले नहीं है तथा राग से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है तथा सामान्य से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। अब विशेष से ज्ञात हो ऐसा है। तो विशेष कौन? कि वर्तमान जो निर्मल पर्याय है, उससे तू ज्ञात हो, ऐसा है, उसे जान। आहाहा! भाग्यशाली के तो कान में पड़े, ऐसा है। आहाहा! बापू! दुनिया के पैसेवाले भाग्यशाली नहीं हैं; वे तो सब अभाग्यशाली हैं। आहाहा! धूल के स्वामी होकर रहेंगे तो मरकर जो संयोग पर प्रेम रखेंगे, उसे संयोग छोड़ेगा नहीं। इसलिए परिभ्रमण छूटेगा नहीं। आहाहा! बात समझ में आती है?

जिसे आत्मा के अतिरिक्त संयोगी चीज़ में किसी में भी प्रेम और रुचि रही, अरे! राग की रुचि रही, दया के राग की (रुचि रही)... आहाहा! उसे भविष्य में संयोग छोड़ेगा नहीं। वह भवभ्रमण उसे हुआ ही करेगा। आहाहा! अब ऐसी बातें। ऐ.. वजुभाई! वहाँ वाडा में कहीं कभी सुना नहीं। आहाहा! यह दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो... आहाहा! प्रभु! एक बार तेरी महत्ता कितनी और कैसी है, वह सुन तो सही! एक बार सुन न, भाई! आहाहा! यह दया, दान के लाख परिणाम से तू बादशाह जाना जा सके, ऐसा तू नहीं है। वे तो रंक हैं। आहाहा! वह भावक का भाव, प्रभु! तेरा भाव नहीं। गजब बात है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, प्रभु! यह भावक अर्थात् कर्म है, उसका भाव है। आहाहा! तेरा भाव होवे तो भिन्न नहीं हो सकता प्रभु! गुड़ में से मिठास कभी भिन्न पड़ेगी?

जो जिसका स्वभाव है, वह भिन्न नहीं होता और भिन्न पड़ता है, वह उसका स्वभाव नहीं है, तो दया, दान आदि के परिणाम तो भिन्न भावक का भाव विकार है। यह तो कहा। एक ओर ऐसे देखो तो अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु में एक भी गुण विकार करे, ऐसा कोई गुण ही नहीं है तो भी विकार कैसे होता है? इसलिए यहाँ भावक का भाव कहा है। नहीं तो है तो पर्याय अपनी अपने में अपने कारण से। परन्तु उसके अनन्त गुण में पर्याय में विकार होना, ऐसा कोई गुण नहीं है। इसलिए वह विकारी भाव, भावक का भाव है। भावक त्रिकाली प्रभु का यह भाव नहीं है। आहाहा!

ऐसा जो भगवान आत्मा, उसमें जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि शुद्ध निर्मल पर्याय हुई परन्तु जो पर्याय गयी, वह अन्दर में गयी है। वह पर्याय वर्तमान रही नहीं तो उससे ज्ञात हो, ऐसा आत्मा नहीं। आहाहा! और भविष्य में सब पर्यायें बड़ी होंगी। वह पर्याय भी अन्दर में समा गयी। तो उसके द्वारा भी ज्ञात हो, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। चैतन्य सामान्य में चैतन्य की विशेष व्यक्तियाँ भूत-भविष्य की अन्दर में समा गयी है। अन्दर में समायी, इसलिए उनसे कैसे ज्ञात हो? और दया, दान, विकार जो उसका भाव नहीं है तो उससे कैसे

ज्ञात हो ? वह तो भावक का भाव है, ज्ञायक का भाव नहीं। ज्ञायक का नहीं, भावक का भाव है। आहाहा! गजब बात है, भाई! प्रवीणभाई! यह अलग प्रकार की प्रवीणता है। आहाहा!

भगवान! तुझमें स्वरूप की महिमा का पार नहीं है, प्रभु! आहाहा! आचार्यों ने कहा है न कि चाहे जितना कहा, स्वाहा हो जाए, बापू! हमें शोभता नहीं। इतनी बड़ी चीज़ को हमने इतनी हद में समझा दी। आहाहा! ऐसा महाप्रभु चैतन्य अन्दर, कितनी द्वारा (कहें)। सामधिशतक में यहाँ तक कहा है कि जो यह समझाने का विकल्प उठता है... आहाहा! वह पागलपन है, क्योंकि राग है, वह भावक का भाव है, अपना नहीं। आहाहा! समाधिशतक है न ? उसमें यह पाठ है। आहाहा! तुझे समझाने का भाव हमें उठे, वह भाव भी पागलपन है। अरे रे! क्योंकि तीन लोक के नाथ के समक्ष इस राग की बात द्वारा राग में से कुछ समझेगा, राग से कुछ उसे समझेगा और तुझे ऐसा हो जाए कि राग से कुछ दूसरा समझेगा... आहाहा! यह तो आचार्य ने कहा कि भाई! मैंने तो कुछ कहा नहीं। टीका मैंने नहीं की। मैं तो ज्ञान में गुप्त हूँ। इतनी बड़ी यह टीका की, वे अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं – मैं तो ज्ञान में गुप्त हूँ। बाहर आया नहीं और बाहर आये बिना टीका करे कौन ? आहाहा! यह तो सब विकल्प की क्रियाएँ, प्रभु! यह हमारी नहीं। आहाहा! टीका के एक-एक शब्द की पर्याय उससे हुई है। हम आत्मा उसके कर्ता हैं, ऐसा हे नाथ! हे प्रभु! तू मत मान। हम तो वहाँ तक कहते हैं, आचार्य कहते हैं कि यह हमने किया है, इससे तुझे ज्ञान हुआ, ऐसे मोह से मत नाच। आहाहा!

श्रोता : स्पष्ट आवाज में कहा...

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्ट आवाज में कहा, परन्तु समा गया, कहा न वापस। इसके समक्ष कुछ गिनती नहीं आयी, ऐसा कहा। ऐसी इतनी व्याख्या की, प्रभु के समक्ष उसकी बात... आहाहा! तुच्छ हो गयी, ऐसा कहा और यहाँ कहा कि विकल्प उठा, वह तो पागलपन है। आहाहा! क्योंकि स्वभाव में वह विकल्प नहीं है। तथा वह विकल्प कोई गुण करनेवाला नहीं है, वह विकल्प किया, इसलिए दूसरे को लाभ होगा, ऐसा नहीं है। स्वयं ने विकल्प किया, इसलिए दूसरे को समझ में आया, इसलिए कुछ लाभ होगा। दूसरे को समझाऊँ तो मुझे लाभ होगा। यह समझेगा, उसका कुछ लाभ होगा। इस बात में कुछ दम नहीं है। आहाहा! ऐसा है।

यह तो तीसरे बोल का जरा सवेरे आया तो कहा यह क्या कहते हैं यह ? भूत-भविष्य की पर्याय अन्दर में समा गयी और वापस जानने को तो कहते हैं। आहाहा! बात थोड़ी सूक्ष्म पड़े, प्रभु! परन्तु धीमे-धीमे बात समझनी है। आहाहा! लोग भी लौकिक पढ़ने में सात

कक्षा... पहले तो सात कक्षा थी। अभी तो कुछ दस होगी। पहले तो सात थी। अब मेट्रिक ९-१० तक मेट्रिक होती है। सब बढ़ गया। वहाँ तक पढ़ा करे। इसमें मर जाए। आहाहा! छोटी उम्र के लड़के मर जाते हैं न? अभी दस वर्ष का लड़का... कुछ नहीं होता। हम हीराभाई के जिस मकान में उतरे थे न? उनके लड़के का लड़का। उसका दस वर्ष का लड़का। कुछ नहीं था। यहाँ मुझे होता है, ऐसा जरा कुछ हुआ वहाँ आधे घण्टे में श्वास उड़ गया। यहाँ कुछ होता है। डॉक्टर जानते होंगे क्या होगा यह या नहीं जानते, क्या खबर। यहाँ कुछ हुआ। आधे घण्टे में उड़ गया। मर गया, देह छूट गयी। वहाँ सब आये थे। कुछ नहीं होता अभी। बेचारा बैठा था। अन्दर कुछ हुआ होगा। आहाहा! देह और आत्मा एक कहाँ है, वे इकट्ठे रहें, प्रभु! इकट्ठे तो द्रव्य और गुण इकट्ठे रहते हैं। यहाँ तो पर्याय भी इकट्ठी नहीं रहती, ऐसा कहा न? इसकी निर्मल पर्याय भी द्रव्य में समा जाती है और इकट्ठी यह द्रव्य और पर्याय, ऐसे दो इकट्ठे नहीं रहते। आहाहा!

चित्सामान्य में... आहाहा! **चैतन्य की...** उसकी अपनी प्रगटतायें। उसके भावकभाव थे, वे तो कर्म के थे। अब यह तो अपनी जो प्रगट पर्याय, वह भी अन्दर समाहित हो गयी। समझ में आया? वे दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वह तो भावक का भाव। वह तो अन्दर जाता नहीं। यद्यपि उसकी योग्यता जाती है, परन्तु वह वस्तु-विकार नहीं जाती और यह तो निर्मल पर्याय हो गयी हो, होगी और अंगीकार हुआ। वे सब पर्यायें वर्तमान में तो अन्दर समा गयी है। अब समा गयी है, उससे तेरा कार्य किस प्रकार होगा? तथा विकार तेरे एक भी गुण में नहीं है और विकार से तेरा काम किस प्रकार होगा? दया, दान, व्रत के परिणाम से तेरा कल्याण किस प्रकार होगा? अब रहा वह क्या कल्याण का कारण?

वर्तमान निर्मल पर्याय द्वारा जान, ऐसा आचार्य ने कहा। आहाहा! राग का लक्ष्य छोड़ दे। सामान्य में पर्यायें मिल गयी, ऐसा भेद भी छोड़ दे। वर्तमान अकेला सामान्य रहा। आहाहा! उसके ऊपर सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन द्वारा वहाँ दृष्टि कर तो जितनी चीज़ है, उतनी तुझे प्रतीति में आने पर उस प्रतीति के साथ तुझे आनन्द आयेगा, तुझे मजा आयेगा, वहाँ मजा आयेगा। आहाहा! यहाँ मजा नहीं आयेगा, प्रभु! इस मजा के पीछे तो नरक है। आहाहा! संसार के मजा के पीछे तो प्रभु! नरक और निगोद है, भाई! आहाहा! और इस आत्मा के ज्ञान के अनुभव के पीछे प्रभु! केवलज्ञान है। तो ऐसे ज्ञान द्वारा वर्तमान केवलज्ञान भले न हो, परन्तु विकाररहित त्रिकाल में भूत भविष्य की समाहित, उसे जानने में वर्तमान में निर्मल ज्ञान द्वारा जान। निर्मल ज्ञान द्वारा जान, उसका नाम समकित और ज्ञान कहने में आता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(१९) **श्री प्रवचनसार, गाथा-११२, प्रवचन - १२२**
दिनांक - ०२-०७-१९७९

प्रवचनसार गाथा ११२, १११ हो गयी है। **अब (सर्व पर्यायों में द्रव्य अनन्य है....)** चाहे जो पर्याय हो — नारकी (हो), देव (हो उसमें) द्रव्य तो अनन्य है (अर्थात्) द्रव्य तो वह का वही है। आहा...हा...! द्रव्य तो वह का वही है परन्तु ज्ञानगुण भी वह का वही है। आहा...हा...! ऐसे आनन्दगुण, श्रद्धागुण अनन्य है, वहाँ सदा है, चाहे जिस पर्याय में हो परन्तु वस्तु है, वह स्वयं अनन्त गुण से अनन्यमयी त्रिकाल है। (टीका में) 'त्रिकोटी' कहेंगे। (अर्थात् कि) त्रिकाल है। आहा...हा...! **(अर्थात् वह का वही है,...)** जो द्रव्य है, वह भले मनुष्यरूप पर्यायपने हुआ, देवपने हुआ। अरे...! मतिज्ञान की पर्यायपने हुआ परन्तु द्रव्य तो वह वस्तु है, वह है; उसमें कहीं हीनाधिकता नहीं हुई, पूरी वस्तु ऐसी है। जिसे कारणपरमात्मा कहो, कारणजीव कहो, सहज स्पष्ट, त्रिकाली स्पष्ट ज्ञान (कहो)। क्या कहा ज्ञान में? ज्ञान में कहा न? स्वरूपप्रत्यक्ष! आहा...हा...! स्वरूपप्रत्यक्ष ज्ञान त्रिकाल है। किसी भी पर्याय में हो... आहा...हा...! परन्तु वस्तु तो वस्तु में है। दृष्टि तो वहाँ रखने जैसी है — ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! उसे स्वरूपप्रत्यक्ष कहा, स्वरूपदृष्टि कहा। स्वरूपदृष्टि त्रिकाल है। आहा...हा...!

जैसे द्रव्य वह का वही है, वैसे उसकी दृष्टि भी वह की वही है। त्रिकाली श्रद्धा, हाँ! (श्रद्धा भी) वह की वही है, चाहे जो अवस्था हो - मिथ्यात्व अवस्था में हो (तो भी श्रद्धा वह की वही है) आहा...हा...! परन्तु वह श्रद्धा, ज्ञान, आनन्द (आदि) अन्वयशक्तिसहित लेना है न? देखो! है? **(उसके सत्-उत्पाद है — इस प्रकार) सत्-उत्पाद को अनन्यत्व के द्वारा निश्चित करते हैं।)** सत्-उत्पाद है, वह अनन्य है। भले पर्याय हो परन्तु वस्तु तो अनन्य-है वह है। वस्तु अन्य नहीं हुई, पर्याय अन्य होती है। यह ११२ (गाथा)

जीवो भवं भविस्सदि णरोऽमरो वा परो भवीय पुणो।
किं दव्वत्तं पजहदि ण जहं अण्णो कहं होदि॥११२॥

नीचे हरीगीत

आत्मा मनुज हो, देव हो या अन्य कुछ ही रूप हो।
क्या छोड़ता द्रव्यत्व को?, नहीं छोड़े तो अन्य कैसे हो?

आहा...हा...! टीका—**प्रथम तो द्रव्य...** वस्तु **द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्ति...** देखो आया! आहा...हा...! द्रव्य-वस्तु जो है, उसका द्रव्यपना, भाव जो है उसका भावपना—ऐसी **अन्वयशक्ति को कभी भी न छोड़ता हुआ....** आहा...हा...! प्रथम तो यह कहना है, कहते हैं... आहा...हा...! कि **द्रव्य द्रव्यत्वभूत....** आहा...हा...! वस्तु है, उसका भाव-उसका भावपना, आहा...हा...! वह बात हुई है, अभी उस दिन बात हुई थी। भाव और भाववान् वस्तु एक ही है, नाम भले दो (कहे हैं), वस्तुस्वरूप यह है—ऐसा द्रव्यत्व।

द्रव्य द्रव्यत्वभूत.... वस्तु—द्रव्य है, वह द्रव्यत्वभूत अर्थात् उसका भावपना—अन्वयशक्तियाँ। जैसे कायम रहनेवाला द्रव्य अन्वय है... आहा...हा...! वैसे उसकी **अन्वयशक्ति को कभी भी न छोड़ता हुआ....** आहा...हा...! द्रव्य जो है, वह द्रव्य स्वयं तो द्रव्य को नहीं छोड़ता परन्तु द्रव्य है, उसकी द्रव्यत्व (भूत) अन्वय शक्तियाँ भाववान—भाव का भाववानपना उसे कभी नहीं छोड़ता। आहा...हा...! इस प्रकार है। एक लाईन में कितना भरा है। दूसरे के साथ तुझे क्या सम्बन्ध है—ऐसा कहना है। भले वह द्रव्य, द्रव्यत्वभूत ऐसी अन्वयशक्तियों को नहीं छोड़ता, चाहे जिस पर्याय में हो... आहा...हा...! पर को और उसे कोई सम्बन्ध नहीं है। त्रिकाली द्रव्य का द्रव्यत्वपना अर्थात् उसकी अन्वयशक्तियाँ तो कायम एकरूप त्रिकाल है, परन्तु उसकी होनेवाली पर्यायें, अन्वयशक्ति को छोड़कर नहीं होती; द्रव्य को छोड़कर पर्याय नहीं होती। पर्याय में तो उसका वह अन्वय द्रव्य और उसका वैसा गुण है; वैसा का वैसा गुण और वैसा का वैसा द्रव्य रहता है। आहा...हा...! समझ में आया?

सत् द्रव्य! सत् उत्पाद सिद्ध करते हैं। सत् वस्तु है, उसका जो द्रव्यपना है - द्रव्य का द्रव्यपना... आहा...हा...! अन्वयशक्ति! वस्तु को तो अन्वय कहा... आहा...हा...! परन्तु उसकी शक्तियाँ—सत्व जो है, सत् का सत्वपना—द्रव्य का द्रव्यपना—भाव का भाववानपना—ऐसी अन्वयशक्ति को कभी नहीं छोड़ता (—ऐसा कहते हैं)। आहा...हा...! चाहे जिस पर्याय में हो परन्तु द्रव्य अपनी द्रव्यत्व (भूत) ऐसी जो अन्वयशक्तियाँ—त्रिकाल एकरूप गुण हैं, उन्हें वह कभी भी नहीं छोड़ता। आहा...हा...! ऐसी दृष्टि कराने को यह बात करते हैं। आहा...हा...! द्रव्यत्व लिया परन्तु द्रव्य का द्रव्यत्व (जो कहा, वह) द्रव्यत्व अर्थात् अन्वयशक्तियाँ.... **द्रव्यत्वभूत** लिया है न, भाई! द्रव्यत्वभूत! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहा...हा...!

द्रव्य जो वस्तु है, वह सत् है और सत् का जो सत्पना—द्रव्यत्वपना, अन्वयशक्तिपना,

वह द्रव्य स्वयं सदा ही अन्वयशक्ति को नहीं छोड़ता। आहा...हा...! जब देखो तब वह पूर्ण भण्डार भरा है—ऐसा कहते हैं। यह द्रव्य है, वह द्रव्यत्वपना अर्थात् अन्वयशक्तिपना अर्थात् भाव का भावपना... द्रव्य (को) जब भाव कहते हैं तो उसका सत्वपना भाववान-भावपने को कभी नहीं छोड़ता। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, भाई! मुद्दे के रकम की बात है। पर को और इसे कोई सम्बन्ध नहीं है—ऐसा कहते हैं। परमाणु हो या चाहे जो हो, यहाँ तो आत्मा के साथ सम्बन्ध है। आहा...हा...! यहाँ तो आत्मा की बात कहनी है न? नरपने-मनुष्यपने (आत्मा होता है)। यहाँ उस परमाणु की बात नहीं करनी है। आहा...हा...!

प्रथम तो.... (संस्कृत टीका में) '**तावद्**' शब्द है। '**द्रव्यं हि तावद्**' संस्कृत है। मूल बात यह है कि ऐसा। '**तावद्**' अर्थात् मूल बात यह है कि '**तावद्**' पहली लाईन में संस्कृत शब्द है। आहा...हा...! प्रभु! तू कौन है? (तो) कहते हैं कि अन्वयशक्तियाँ द्रव्यत्वपना नहीं छोड़ती—ऐसा तू है। आहा...हा...! पर्यायरूप से भले नरक-पर्याय, नर-पर्याय—मनुष्य-पर्याय, देव-पर्याय (होवे) परन्तु मेरी चीज जो है तथा चीज का चीजपना जो है (उसे नहीं छोड़ता ऐसा मैं हूँ)। आहा...हा...! उसकी अन्वयशक्ति ली है न? (तो) अन्वयशक्ति कहो या अन्वय सामर्थ्य (कहो), उस स्वभाव का सामर्थ्य (कहो)। आहा...हा...!

यह अधिकार 'ज्ञेय अधिकार' है। आत्मज्ञेय! ज्ञेय अधिकार में यहाँ आत्मा को दृष्टान्तरूप से लिया है, वरना सभी ज्ञेय ऐसे ही हैं। वे ज्ञेय (जो) प्रत्येक द्रव्य है, उसका द्रव्यत्व अन्वयशक्तियों को वह द्रव्य नहीं छोड़ता, वह भले ही चाहे जिस पर्यायरूप होओ। आहा...हा...! यहाँ तो आत्मा का दृष्टान्त लिया है। प्रभु! तू पर्याय में किसी भी स्थिति में हो परन्तु वह द्रव्य है, वह द्रव्यत्व को-अन्वयशक्ति को (नहीं छोड़ता)। आहा...हा...! यह भाववान् है, वह भाव को कभी नहीं छोड़ता। आहा...हा...! है? एक लाईन है। आहा...हा...!

मूल—**तावद्** अर्थात् मूल बात ऐसी की है कि ऐसा। **तावद्** अर्थात् प्रथम अर्थात् मुख्य बात है (वह) यह है। आहा...हा...! दो भाषा ली है न? **द्रव्य द्रव्यत्वभूत....** आहा...हा...! भाववान उसके भाव को कभी नहीं छोड़ता। आहा...हा...! द्रव्य द्रव्यत्व ऐसा भाव—ऐसी अन्वयशक्तियाँ - गुण.... आहा...हा...! जितनी अनन्त शक्तियाँ हैं, उन भाव को भाववान् कभी नहीं छोड़ता। आहा...हा...! पहली लाईन (में इतना भरा है!) इसे (परमागम मन्दिर को) चार महीने हुए, पाँच वर्ष और चार महीने का आज दिन है न? फाल्गुन शुक्ल तेरस। चेत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ पाँच वर्ष और चार महीने हुए परमागम (मन्दिर)। आहा...हा...!

मुमुक्षु : आपने खजाना खोला।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं कि तू द्रव्य है या नहीं? तो उसका द्रव्यपना है या नहीं? द्रव्यपना अर्थात् अन्वयशक्तियाँ हैं या नहीं? अन्वय अर्थात् कायम रहनेवाला सामर्थ्यवाला तत्त्व है या नहीं? आहा...हा...! कायम सामर्थ्य को—सत्व को (धारण कर) रहनेवाला सत्। सत् कहो या द्रव्य कहो। सत्व—अन्वयशक्तियाँ! उन्हें—सत्व को वह सत् कभी छोड़ता है? आहा...हा...! चाहे तो निगोद की पर्याय में हो, मनुष्य की पर्याय में हो। आहा...हा...! प्रभु! तू द्रव्य है न? और तेरा द्रव्यत्वपना जो अन्वयशक्तियाँ—गुण हैं—भाव हैं, वे भाववान् को (नहीं छोड़ती)। पर्याय में अक्षर के अनन्तवें भाग में निगोद पर्याय हीन हो गयी परन्तु उसने—द्रव्य ने द्रव्यत्व—अन्वयशक्तियों को नहीं छोड़ा। आहा...हा...! समझ में आया? भाषा तो सादी है परन्तु अब भाव तो (जो है वह है) आहा...हा...!

कभी भी न छोड़ता हुआ.... आहा...हा...! सत् मौजूद ही है, वह तो कायम मौजूद ही है। चाहे जो पर्याय में हो परन्तु वह कायम अस्ति ही है। आहा...हा...! संयोग के कारण तो (अस्ति) नहीं परन्तु एक समय की पर्याय हो, उसके कारण (नहीं)। वह तो सत् ही है—कायम अस्तिवाला तत्त्व है। आहा...हा...! यह ज्ञेय अधिकार! आत्मज्ञेय! आहा...हा...! ज्ञेय का ज्ञेयपना ज्ञेय ने कभी नहीं छोड़ा है। आहा...हा...! ऐसा भगवान आत्मा! इसने भगवानपना कभी नहीं छोड़ा। आहा...हा...!

नियमसार में तो यह आता है न? कारणज्ञान! कारणद्रव्य (कहा वह) तो ठीक; कारणपरमात्मा वह तो द्रव्य (कहा)। (वह तो) ठीक परन्तु (यह तो) कारणज्ञान (कहा)। त्रिकाली कारण अन्वय ज्ञान जो है (वह कारणज्ञान) ज्ञानी ऐसे आत्मा का ज्ञान—कायमी ज्ञान, कारणद्रव्य—कारणज्ञान... केवलज्ञान है, वह कार्यज्ञान है।

आहा...हा...! भगवान आत्मा! उसकी अन्वयशक्तियाँ-द्रव्यत्वपना, उसे कभी नहीं छोड़ता। आहा...हा...! एक धारा से सदा ही चलता है, कहते हैं। आहा...हा...! **और द्रव्य के जो पर्यायभूत व्यतिरेकव्यक्ति का उत्पाद होता है....** अब कहते हैं कि यह द्रव्य जो है, इसे जो पर्यायभूत व्यतिरेक भिन्न-भिन्न प्रगटता—उत्पाद-व्यक्तियाँ होती हैं; अन्वय के सामने व्यतिरेक लिया। समझ में आया? पहले द्रव्य के सामने द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्ति ली थी और (यहाँ पर) द्रव्य को पर्यायभूत व्यतिरेकव्यक्ति ली है। आहा...हा...!

द्रव्य के.... (अर्थात्) जो अन्वयशक्ति को सदा नहीं छोड़ता उसे। **पर्यायभूत व्यतिरेकव्यक्ति का उत्पाद होता है....** पर्यायभूत व्यतिरेक अर्थात् भिन्न-भिन्न (और) अन्वय

एकरूप त्रिकाल (रहता है)। भिन्न-भिन्न प्रगटता उत्पन्न होती है **उसमें भी द्रव्यत्वभूत....** आहा...हा...! **अन्वयशक्ति का अच्युतपना होने से....** द्रव्य को पर्यायभूत व्यतिरेक (अर्थात्) भिन्न प्रगटता-उत्पाद होता है। **उसमें भी द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्ति का....** द्रव्य के.... ऐसा है न? **और द्रव्य के जो पर्यायभूत व्यतिरेकव्यक्ति का उत्पाद होता है उसमें भी द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्ति का अच्युतपना होने से द्रव्य अनन्य ही है,....** आहा...हा...! यह सिद्धान्त कहलाता है! आहा...हा...! यह भगवान की वार्ता है।

भगवत्स्वरूप! अन्वयशक्तियाँ भगवत्स्वरूप है। आहा...हा...! **पर्यायभूत व्यतिरेकव्यक्ति का उत्पाद होता है उसमें भी....** उसमें भी **द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्ति का अच्युतपना होने से....** द्रव्य की द्रव्यत्वभूत ऐसी अन्वयशक्ति—अन्वयसामर्थ्य—एकरूप रहनेवाली सामर्थ्य है, (उसका) अच्युतपना है; उसमें जरा भी च्युत नहीं हुआ है। आहा...हा...! चाहे तो लहसुन, प्याज (की) निगोद की पर्याय हो—एक पर्याय (भले) अक्षर के अनन्तवें भाग उघाड़ हो, वह पर्याय भले हो, तथापि उस द्रव्य ने द्रव्यत्व को—अन्वयशक्तियों को छोड़ा नहीं है। आहा...हा...! यह (मात्र) बात नहीं है, बापू! आहा...हा...! सत् को प्रसिद्ध करनेवाली यह टीका.... वह टीका कहलाती है! आहा...हा...! अमृतचन्द्राचार्य!

प्रभु! तू द्रव्य है न! और द्रव्य में द्रव्यत्वपना—अन्वयशक्तियाँ हैं न! वह अन्वयशक्तिवाला द्रव्य व्यतिरेक—भिन्न-भिन्न पर्याय को प्राप्त होता (होने) पर भी, उस अन्वयद्रव्य का द्रव्यपना—अन्वयपना कभी नहीं छूटता। आहा...हा...! उसमें कभी मिलावट नहीं होती। अंगुल के अक्षर के अनन्तवें भाग में निगोद की पर्याय होने पर भी द्रव्य का द्रव्यत्व-अन्वयपने में कुछ कमी नहीं हुई है। आहा...हा...! और केवलज्ञान की पर्याय हुई तो भी द्रव्य की द्रव्यत्व अन्वयशक्ति में कुछ भी कमी नहीं हुई तथा वृद्धि नहीं हुई। आहा...हा...! समझ में आया?

'अनन्त काल से भटक रहा बिना भान भगवान...' आहा...हा...! (फाल्गुन शुक्ल) तेरस की आज तिथि है। परमागम मन्दिर की मासिक तिथि है, आज यहाँ भक्ति होगी, हाँ! तेरस है न?

तेरहवाँ गुणस्थान केवल (ज्ञान) पाये तो भी द्रव्य का द्रव्यत्व—अन्वयशक्ति तो ऐसी की ऐसी है। आहा...हा...! और अक्षर के अनन्तवें भाग में निगोद की पर्याय होवे तो द्रव्य का द्रव्यत्व—अन्वयशक्तिपना तो सदा इतना और वैसा ही है। **कभी भी नहीं छोड़ता हुआ....** आहा...हा...! अरे! अधिक टीका—शब्दों की क्या आवश्यकता है? आहा...हा...! 'थोड़ा

लिखा बहुत जानना'—ऐसी बात है यह तो! आहा...हा...! थोड़ा कहा कि द्रव्य का द्रव्यत्वपना—अन्वयशक्तियाँ कभी भी त्रिकाल कहीं नहीं छोड़ता। आहा...हा...! पर्याय में चाहे जैसी हीनाधिक दशा होओ, तथापि द्रव्य का द्रव्यत्व—अन्वयशक्तिपना उसे कभी नहीं छोड़ता, उसमें कभी हीनाधिकता नहीं होती—ऐसा उपदेश लोगों को कठिन लगता है! फिर (ऐसा कहते हैं कि) निश्चय है... निश्चय है... बापू! सत्य यह है। निश्चय करके एकान्त कर डाले (ऐसा नहीं चलता)। पर्याय हो, वह तो कहते हैं परन्तु पर्याय होने पर भी द्रव्य की पूर्णता, द्रव्य की द्रव्यत्वता की पूर्णता की सब अन्वयशक्तियाँ ऐसी की ऐसी हैं। ज्ञान ऐसा का ऐसा, दर्शन ऐसा का ऐसा, आनन्द ऐसा का ऐसा, श्रद्धा ऐसी की ऐसी है। श्रद्धा अर्थात् पर्याय नहीं, शक्ति (की बात है)। आहा...हा...! सत्ता ऐसी की ऐसी, वस्तुत्व ऐसा का ऐसा, प्रमेयत्व ऐसा का ऐसा, जीवत्व शक्ति ऐसी की ऐसी, शक्तियों का शक्तिपना ऐसा का ऐसा है। आहा...हा...!

उसमें भी द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्ति का अच्युतपना होने से.... आहा...हा...! पहले में ऐसा कहा था कि **अन्वयशक्ति को कभी भी न छोड़ता हुआ....** द्रव्य, हाँ! ऐसे यहाँ (कहते हैं कि) **द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्ति का अच्युतपना होने से द्रव्य अनन्य ही है,....** द्रव्य तो अनन्य वह का वही है। आहा...हा...! कहाँ तिर्यंच की—निगोद की पर्याय और कहाँ सर्वार्थसिद्धि के देव की पर्याय! तीन ज्ञान क्षायिक समकितसहित... आहा...हा...! तथापि द्रव्य का द्रव्यत्व तो ऐसा का ऐसा है। अन्वयशक्ति ऐसी की ऐसी है। आहा...हा...! उस महासत्ता को पकड़ना है। आहा...हा...! ऐसी महासत्ता प्रभु है। अन्वयशक्ति का भरपूर तत्त्व अर्थात् भाव से भरा हुआ भगवान है। ऐसा। आहा...हा...!

(अर्थात् उस उत्पाद में भी....) (अर्थात्) पर्याय में नयी-नयी व्यतिरेक (व्यक्तियाँ) उत्पाद में भी आहा...हा...! कहाँ एक चक्रवर्ती राजा हो और वह मरकर नरक में जाये या बड़ा राजा हो, वह मरकर निगोद में जाये! आहा...हा...! यहाँ देखो तो कितना उघाड़ दिखता हो! और मरकर निगोद में जाये, तथापि कहते हैं कि वह तो पर्याय में अन्तर है, वस्तु तो है वह है। आहा...हा...! **(उस उत्पाद में भी अन्वयशक्ति तो अपतित-अविनष्ट-निश्चल होने से द्रव्य वह का वही है,....)** वस्तु तो वह की वही है। आहा...हा...! समझ में आयो इसमें? **(अन्य नहीं।) इसलिए अनन्यपने के द्वारा द्रव्य का सत्-उत्पाद निश्चित होता है,....** आहा...हा...! इसलिए अन्वयपने द्वारा द्रव्य का (सत्-उत्पाद) निश्चित होता है। सत् है उसमें से हुआ ऐसा उत्पाद निश्चित होता है, यह कहते हैं। आहा...हा...! 'है' उसमें से आया

है। वह है, कहते हैं। आहा...हा...! वह पर्याय जो हुई है, वह सत् में से हुई है। 'है' उसमें से हुई है। आहा...हा...! सत्-उत्पाद कहना है न? 'है' उसमें से हुई है, (इसलिए) सत्-उत्पाद है। आहा...हा...! **(द्रव्य का द्रव्यापेक्षा से अनन्यपना होने से, उसके सत्-उत्पाद है—ऐसा अनन्यपने द्वारा सिद्ध होता है।)** आहा...हा...!

इसी बात को (उदाहरण से) स्पष्ट किया जाता है—जीव द्रव्य होने से और द्रव्य पर्यायों में वर्तने से.... फिर क्या कहा यह? द्रव्य अन्वयशक्तियों को नहीं छोड़ता, यह रखा परन्तु वह द्रव्य पर्यायों में वर्तता होने से—(ऐसा कहा)। आहा...हा...! जो भगवान आत्मा द्रव्य है, उसमें अनन्त द्रव्यत्व की अन्वयशक्तियाँ जो हैं—ऐसा जो द्रव्य है... आहा...हा...! वह पर्यायों में वर्तता होने से (—ऐसा कहा)। एक ओर कहना कि पर्याय षट्गुण—षट् कारक से स्वतन्त्र परिणमती है, जिसे द्रव्य की भी अपेक्षा नहीं है। आहा...हा...! जो पर्याय है, वह सत् है। 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' है, व्यय भी सत् है, उत्पाद भी सत् है, ध्रुव भी सत् है, वह तो है। आहा...हा...! इसलिए उस उत्पाद को **द्रव्य पर्यायों में वर्तने से....** द्रव्य तो त्रिकालरूप अन्वयशक्तियों में वर्तता है, अब वह द्रव्य पर्यायों में वर्तने से — (ऐसा कहते हैं)। आहा...हा...!

जीव द्रव्य होने से... ऐसे यहाँ तो जीव पर उतारना है न? (इसलिए ऐसा कहा कि) जीव भी द्रव्य होने से **और द्रव्य पर्यायों में वर्तने से....** द्रव्य पर्यायों में वर्तता होने से। लो! एक ओर ऐसा कहना कि पर्याय षट्गुण हानि-वृद्धि षटकारक से परिणमित हो रही है। आहा...! एक ओर ऐसा कहना—जीव द्रव्य, मोक्ष और मोक्ष की पर्याय को नहीं करता। सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार! मोक्ष और मोक्ष की पर्याय को द्रव्य नहीं करता। यहाँ कहते हैं कि द्रव्य, पर्याय में वर्तता हुआ! भेद साथ में समझाना है न? आहा....हा...!

जीव द्रव्य होने से.... ऐसा। जीव, द्रव्य होने से! आहा...हा...! वह सिद्धान्त कहा। अब (जीव द्रव्य में) उतारते हैं। **जीव द्रव्य होने से और द्रव्य पर्यायों में वर्तने से....** आहा...हा...! **जीव नारकत्व,....** जीव नारकीपना, तिर्यंचपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्ध—पाँचों पर्यायें, हाँ! चार गति की चार ही (पर्याय) ऐसा नहीं। आहा...हा...! **सिद्धत्व में से किसी एक पर्याय में अवश्यमेव (परिणमित) होगा।....** इन पाँच में से किसी एक पर्याय में अवश्य होगा। आहा...हा...! चार गति और सिद्ध पर्याय, पर्याय है न? वह जीव पर्याय में वर्तता हुआ। आहा...हा...! **परन्तु वह जीव उस पर्यायरूप होकर क्या द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्ति को छोड़ता है ?....** आहा...हा...! वह सिद्ध की पर्याय हुई... आहा...हा...! तथापि वह जीवद्रव्य,

पर्यायरूप होकर क्या, द्रव्यभूत अन्वयशक्ति को छोड़ता है ? भले सिद्ध पर्याय हुई, तथापि द्रव्य अपनी द्रव्यत्व (भूत) अन्वयशक्ति को छोड़ता है ? आहा...हा... ! ऐसी द्रव्यानुयोग की बात है।

नारकीपने (हुआ यह) तो ठीक, चार गति की पर्यायरूप जीव वर्तता हुआ, जीवद्रव्य वर्तता हुआ अपने अन्वय त्रिकाली गुणों को नहीं छोड़ता। ऐसे सिद्धत्व की पर्याय में वर्तता हुआ जीवद्रव्य अपनी द्रव्यत्व (भूत) अन्वयशक्तियों को नहीं छोड़ता। आहा...हा... ! अन्दर ऐसा है न ? युवकों को तो यह सब नया लगेगा। युवा कौन है इसमें ? बापू ! वह तो जड़ की अवस्था है। भगवान तो अन्दर... यह कहते हैं न ? पर्याय में परिणमित हुआ तो भी वस्तु तो ऐसी की ऐसी वह की वही रही है। आहा...हा... ! वह वस्तु पर्याय में प्रवर्तती है — ऐसा व्यवहार से कहना है। आहा...हा... !

मुमुक्षु : आप सबेरे इनकार करते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से पर्याय में (प्रवर्तती है—ऐसा कहा जाता है)। द्रव्य का पर्याय में प्रवर्तना (है—ऐसा कहकर) परिणमन उसका है, यह बतलाना है न ? द्रव्यत्व से बतलाना है न ? द्रव्यत्वगुण है न ? द्रव्यत्वगुण है न ? द्रव्यत्वगुण का अर्थ द्रवता है। तब सिद्ध होता है न ? आहा...हा... ! इसलिए (यहाँ पर) द्रव्यत्व लिया है न ? **द्रव्यभूत!** आहा...हा... ! उसका जो 'पना' है, वह 'पना' वापस पर्याय में जब परिणमता है, तथापि वह अन्वयशक्ति को नहीं छोड़ता। आहा...हा... ! अरे... ! ऐसा विचार करने को कब मिले ? सुनने को कब मिले ? निर्णय कर कब करे ? करना तो यह है। आहा...हा... !

(कान्तिभाई के) समाचार आये थे कि रात्रि में दस बजे तक तो बातें करते थे, सबेरे उठे और हार्टफेल हो गया, सबेरे ! छोटाभाई के दामाद, ६३ वर्ष की उम्र, लड़की, लड़की... दस बजे तक मित्रों के साथ बातचीत की, साढ़े ग्यारह बजे सो गये, सबेरे उठे, उठे और एकदम हार्टफेल ! बन्द हो गया, उठे और (हृदय) बन्द हो गया ! आहा...हा... ! जड़ की अवस्था जिस समय जो (होनेवाली हो उसे) कौन रोके ? और कौन करे ? आहा...हा... ! उस पर्याय का कर्ता द्रव्य है, हाँ ! ऐसा सिद्ध करना है।

कलश-टीका में आता है न ? पर्याय का कर्ता द्रव्य है। करण भी द्रव्य है, कर्ता भी द्रव्य है। आहा...हा... ! (जिस) अपेक्षा से जो बात (होवे, वह समझनी चाहिए) आहा...हा... ! उसकी पर्याय (होना, उसका) अपना स्वभाव है और यहाँ वह सिद्ध करके, परद्रव्यों के कारण उसमें कुछ नहीं होता—ऐसा सिद्ध करना है।

वह स्वयं द्रव्य इतनी द्रव्यत्व की शक्तियों से भरा हुआ होने पर भी वह द्रव्य पर्याय में वर्तता हुआ, उसे दूसरा द्रव्य कुछ भी नहीं कर सकता। कर्म, शरीर, वाणी, मन, देह, कुटुम्ब (आदि) कोई चीज उसे (कुछ नहीं कर सकती)। वह द्रव्य स्वयं पर्याय में वर्तता है, वहाँ दूसरा द्रव्य उसे (पर्याय में) प्रवर्ताता है (—ऐसा है नहीं)। आहा...हा...! ऐसा समय कहाँ मिले? सुनना भी कठिन पड़ता है। यह तो (कहते हैं) दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो, तप करो... लो! आहा...हा...! एक व्याख्यान में पूरा है! आहा...हा...!

(यहाँ कहते हैं कि) **किसी एक पर्याय में अवश्यमेव (परिणमित) होगा।....** देखा? द्रव्य, द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्तियों को नहीं छोड़ता, तथापि वह द्रव्य पर्याय में वर्तता है, इसलिए किसी भी पर्याय में अवश्य परिणमेगा। किसी भी पर्याय में अवश्य होगा। आहा...हा...! ऐसा कहकर (यह कहना है कि) उस पर्याय का उसका काल उससे है। वह पर्याय कोई अमुक द्रव्य एकदम अकस्मात् आया और ऐसी हो गयी, एकदम परद्रव्य में फेरफार हो गया... परद्रव्य का संयोग एकदम कठोर आया, इस बात में कुछ दम नहीं है। वह द्रव्य स्वयं ही उस काल में पर्याय में वर्तता है, इसलिए पर्याय हुई है। आहा...हा...! कर्म के कारण नहीं, संयोग के कारण नहीं, अकस्मात् कुछ नहीं। आहा...हा...! अकस्मात् नहीं, वह द्रव्य स्वयं ही उस समय में उस प्रकार वर्तता है। आहा...हा...! समझ में आया?

परन्तु वह जीव उस पर्यायरूप होकर क्या द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्ति को छोड़ता है ?.... ऐसा कहा। भले नरक की पर्याय हुई या सिद्ध की पर्याय हो, वह जीव उस पर्यायरूप होकर, पर्यायरूप (द्रव्य) हुआ, तथापि क्या (वह) द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्ति को छोड़ता है? आहा...हा...! आहा...हा...! उसके भाव को भाववान, वह पर्याय भले हुई परन्तु इससे पूर्ण भाववानपना है, वह कभी उसने छोड़ा है? आहा...हा...! वस्तु है न? तत्त्व है न तत्त्व! अस्ति है न! सत् है न! सत् को सत्पना है न! सत्पना रखकर पर्याय में प्रवर्तता है न? या सत्पना छोड़कर पर्याय में प्रवर्तता है? आहा...हा...! क्या शैली! आचार्य की टीका!!

परन्तु वह जीव उस पर्यायरूप होकर.... पर्यायरूप भले हुआ, (तथापि) **क्या द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्ति को छोड़ता है ?....** सिद्धपर्याय हुई, उससे क्या गुण की अन्वयशक्ति, द्रव्य की द्रव्यत्व (शक्ति) जो है, उसे छोड़ता है? आहा...हा...! नरक में जाकर सातवें नरक में उत्पन्न हुआ... आहा...हा...! परन्तु वह पर्याय में वर्तता द्रव्य, उस द्रव्य का द्रव्यपना जो अन्वयशक्तियाँ हैं, उसे वहाँ छोड़ता है? आहा...हा...! यह टीका कहलाती है! देखा? यह सिद्धान्त! थोड़े

में बहुत भरा होता है! आहा...हा...! अमृतचन्द्राचार्य! दिगम्बर सन्त! चलते सिद्ध!! आहा...हा...! उनकी यह टीका है।

मुमुक्षु : अभव्य तो अनादि से मिथ्यात्वरूप ही परिणमित होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भले परिणमा परन्तु द्रव्य का द्रव्यत्वपना छूटा है? भले मिथ्यात्वरूप परिणमा परन्तु द्रव्य का द्रव्यत्व—अन्वयशक्तिपना जो गुण है, उसमें से कुछ कमी हुई है? छूटा है? आहा...हा...!

मुमुक्षु : अनन्त काल से ऐसा का ऐसा ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा का ऐसा है और ऐसा का ऐसा रहेगा। सिद्ध होगा तो भी ऐसा का ऐसा है। आहा...हा...! और वह भी पर्याय में द्रव्य वर्तता है—ऐसी भाषा ली है, तथापि द्रव्य ऐसा का ऐसा है। (यहाँ तो) उसकी पर्याय सिद्ध करनी है न? पर के कारण कुछ हुआ नहीं—ऐसा (बतलाना है)। आहा...हा...! अन्दर कितनी सादी वस्तु है! सादी वस्तु है। आहा...हा...!

ऐसा द्रव्य—द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्तियोंवाला द्रव्य, पर्यायों में वर्तने पर भी... आहाहा! भले सातवें नरक की पर्याय में वर्तता हो या निगोद की पर्याय में वर्तता हो या सिद्ध की पर्याय में वर्तता हो। आहा...हा...! सर्वार्थसिद्धि के देव तीन ज्ञान के स्वामी, एकावतारी हैं, उस पर्यायरूप प्रवर्तता... आहा...हा...! क्या द्रव्य का द्रव्यत्वपना छूटा है? है? **उस पर्यायरूप होकर....** पर्यायरूप होकर! **क्या द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्ति को छोड़ता है?....** आहा...हा...! नहीं छोड़ता।

भगवान आत्मा! पर्याय के अंश की किसी भी पर्याय में हो परन्तु भगवान ने स्वयं अन्वयशक्तियों को कभी नहीं छोड़ा है। ज्ञान की पूर्णता, दर्शन की पूर्णता, आनन्द की पूर्णता, स्वच्छता की पूर्णता, प्रभुता की पूर्णता... आहा...हा...! उस पर्याय में वर्तता होने पर भी, इस प्रभुता को छोड़ा नहीं है। आहा...हा...! कहो भाई! ऐसा सुना है कभी? तेरी नजर के आड़ से (देखने का) रह गया है, कहते हैं। वस्तु तो ऐसी की ऐसी रही है। पर्याय में वर्तती है, तथापि वस्तु तो ऐसी की ऐसी रही है। आहा...हा...! सिद्धपने परिणमे तो भी वस्तु तो ऐसी की ऐसी रही है तो दूसरे की बात क्या करना?

अनन्त... अनन्त... पर्याय, जहाँ अनन्त... अनन्त... पर्यायों की व्यक्तता अनन्त पूर्ण हो गयी। अनन्त शक्तियाँ हैं, अनन्त सामर्थ्यवाला द्रव्य स्वभाव, उसमें से पूर्ण अनन्त केवलज्ञान

(केवलज्ञानदर्शन) पूर्ण शक्ति प्रगट हुई, तथापि उस वस्तु ने अन्वयपना छोड़ा है ? आहा...हा... ! वह वस्तु है, वह एकरूप ही है, द्रव्य और द्रव्यगुण (एकरूप ही है)। द्रव्य और द्रव्यगुण—द्रव्यत्व-अन्वयशक्ति कहो। आहा...हा... ! क्या कथन पद्धति ! आहा...हा... ! एक गाथा में निहाल कर दे — ऐसा है ! आहा...हा... ! तकरार, वाद-विवाद से यह पार नहीं पड़ता।

यह तो वस्तु की स्थिति की मर्यादा है। भगवान तो इसे वर्णन करते हैं। आहा...हा... ! चाहे जिस पर्याय में परिणमे, केवलज्ञानपने परिणमे—ऐसा कहा तो भी क्या ? ऐसा केवलज्ञान या एक समय में केवली, अनन्त केवलियों को जाने ! तथापि वहाँ अन्वयशक्ति को कुछ न्यूनता हुई है ? आहा...हा... ! ज्ञानशक्ति, दर्शनशक्ति, आनन्दशक्ति सब पूर्ण कारण शक्तियाँ हैं। कारणद्रव्य है उसमें कारणशक्तियाँ पूर्ण हैं। उसमें कहीं हीनता हुई है ? आहा...हा... ! यह दृष्टि में लेना कठिन बात है, बापू ! आहा...हा... ! ऐसी बात है। बाहर का क्रियाकाण्ड और यह और यह और यह... उस समय भी कहते हैं कि क्रियाकाण्ड की तेरी राग की पर्याय में प्रवर्तता (होने) पर भी द्रव्य और गुण तो ऐसे के ऐसे रहे हैं। आहा...हा... !

गृहीत मिथ्यात्वरूप परिणमित हुआ, अगृहीत तो अनादि से है... आहा...हा... ! और वह द्रव्य, उस पर्याय में प्रवर्तता है... आहा...हा... ! उस पर्याय में प्रवर्तता है, तथापि वह द्रव्य और गुण तो वैसे के वैसे उतने हैं। आहा...हा... ! उनकी महत्ता को कहीं आँच नहीं ! प्रगट दशा होवे तो भी उसे आँच (आती है) घट जाते हैं—ऐसा नहीं है। महाप्रभु केवल (ज्ञान) हुआ, अनन्त... अनन्त... केवलज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य (प्रगट हुआ)... आहा...हा... ! जितने गुण हैं, उतनी पर्यायें—व्यक्तपर्यायें पूर्ण प्रगट हुई... तथापि यहाँ जो पूर्ण द्रव्यत्वगुण है, जीव द्रव्य का द्रव्यत्व—अन्वयशक्तियाँ ऐसी की ऐसी हैं। आहा...हा... ! यह बात बैठाना कोई कम बात है ? आहा...हा... !

यदि नहीं छोड़ता तो वह अन्य कैसे हो सकता है.... ? आहा...हा... ! वह प्रभु छोड़ता नहीं... अपने अनन्त गुण जो ध्रुव हैं, द्रव्यत्व (भूत) अन्वय (शक्तियाँ) हैं... आहा...हा... ! द्रव्यत्व (कहा) तो वह द्रव्यत्व जो पर्याय द्रवती है, वह यहाँ नहीं लेना, हाँ ! भाई द्रव्य—गुण में द्रवे... द्रवे... यह पंचास्तिकाय में आता है न ? नौवीं गाथा ! द्रवता है। विभावरूप परिणमता है। यहाँ द्रव्यत्व अर्थात् उसका भावपना लेना है। पर्याय द्रवती है—ऐसा अभी नहीं लेना है। समझ में आया ? आहा...हा... ! यहाँ तो द्रव्य का द्रव्यपना जो कायमी है—अन्वयशक्तियाँ (जो है) क्या उन्हें कुछ घिसावट लगी है ? सिद्ध हुआ वहाँ अन्दर कुछ हीन हो गया है ? ज्ञान प्रगट हुआ तो कुछ कम हुआ है ? गुण में—पूर्णता में कुछ-कुछ कमी आयी है ? यह तो

क्या बात है ?! आहा...हा...! यह तो भाई! मध्यस्थ की बात है। आग्रह छोड़कर, स्वयं ने माना हो, उस प्रकार कुछ हो—ऐसा नहीं होता। वस्तु जैसी है, वैसी रहेगी। मान्यता कल्पित हो, तदनुसार उसमें से निकले—ऐसा नहीं है।

तो वह अन्य कैसे हो सकता है कि जिससे त्रिकोटि सत्ता.... देखा ? त्रिकोटि सत्ता अर्थात् **(तीन प्रकार की सत्ता, त्रिकालिक अस्ति)....** त्रिकोटि सत्ता! आहा...हा...! त्रिकाल अस्ति। द्रव्य और अन्वयशक्तियों की त्रिकाल अस्ति। आहा...हा...! द्रव्य की द्रव्यत्व—अन्वयशक्तियों की त्रिकाल अस्ति! एकरूप त्रिकाल की अस्ति। आहा...हा...! त्रिकोटि सत्ता! देखा ? तीन प्रकार की सत्ता—भूत, भविष्य और वर्तमान ऐसी। **(तीन प्रकार की सत्ता त्रिकालिक अस्ति) जिसके प्रगट है....** जिसे प्रगट है। **ऐसा वह (जीव) वही न हो ?....** वही न हो ? चाहे जो पर्याय हो परन्तु वस्तु तो वही न होगी ? अर्थात् वस्तु तो वही है। आहा...हा...!

बड़ा कसाईखाना लगाये, लाखों गाय-भैसें काटे ऐसा भाव! आहा...हा...! उस पर्याय में वर्तता द्रव्य, क्या (उस) द्रव्य ने द्रव्यत्वपना छोड़ा है ? (ऐसा) कहते हैं। आहा...हा...! (कोई) नहीं—ऐसा कहे, (वहाँ) आत्मा है नहीं—ऐसा कहे (परन्तु) ऐसी पर्याय से परिणमा है। आहा...हा...! तथापि उसके द्रव्यत्वपने में कुछ कमी है ? वह भले ही इनकार करे। आहा...हा...! त्रिकोटि सत्ता! त्रिकोटि सत्ता (अर्थात्) तीन प्रकार की सत्ता—भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों काल एकरूप सत्ता है। आहा...हा...! वहाँ देखने का है। पर्याय चाहे जिस प्रकार की हो, वहाँ इसे देखना नहीं है। आहा...हा...! द्रव्य और द्रव्यत्व की अन्वयशक्तियाँ हैं, वे देखने की हैं। आहा...हा...! और वह देखने से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान और मोक्ष—केवलज्ञान प्राप्त होता है। आहा...हा...! क्योंकि सत् में से सत् आता है—ऐसा कहना है। आहा...हा...! सत् में से सत् आया तथापि, प्रवर्तित हुआ तथापि वहाँ सत् में जरा भी कमी हुई है (ऐसा नहीं है)। आहा...हा...!

क्षायिक सम्यक्त्व हुआ, केवलज्ञान हुआ... आहा...हा...! और गृहीत मिथ्यात्व हुआ, नास्तिक हुआ, (तब ऐसा माना कि) आत्मा नहीं—मैं नहीं ऐसा पर्याय में प्रवर्तित हुआ तथापि द्रव्य ने क्या द्रव्यत्वपना—अन्वयशक्ति छोड़ी है ? आहा...हा...! भाषा तो सादी है परन्तु भाव जरा कठोर है।

(त्रिकोटि सत्ता) **जिसके प्रगट है ऐसा वह (जीव) वही न हो ? अर्थात् तीनों काल में अस्ति ऐसा जीव अन्य नहीं।** अन्य नहीं ऐसा। **(वह का वही है)** वह का वही है। आहा...हा...! क्या वस्तु की स्थिति! समयसार में भी है और यह प्रवचनसार! अरे! नियमसार

(होवे तो भी यही वस्तुस्थिति है)। आहा...हा...! स्वरूपप्रत्यक्ष वह त्रिकाल है। आहा...हा...! स्वरूपदृष्टि त्रिकाल ध्रुव है। अरे...! उपयोग में तो ऐसा लिया है न भाई! कि ज्ञान और दर्शन है, उसे स्वयं त्रिकाल को स्वयं जानते हैं, वे गुण जानते हैं। गुण ऐसा पूर्ण स्वरूप है, उसे जानते हैं—ऐसी उसकी सामर्थ्य है, पर्याय की बात नहीं। आहा...हा...! उपयोग में (यह बात आती है)। पहले शुरुआत में आती है। वह वस्तु स्वयं जो है, उसमें जो ज्ञान और दर्शन का गुण है, ऐसे जो अनन्त गुण अनन्त अन्वयरूप है, उसे वह ज्ञान और दर्शन जानता और देखता है—ऐसी ताकतवाला है! पर्याय नहीं, अन्वयशक्ति का स्वरूप इतना है! आहा...हा...! इसमें तो धीरज चाहिए बापू! तब तो मुश्किल से (पकड़ में आये ऐसा है) पूर्व के सब आग्रह किये हों (उस पर तो) शून्य रखे, तब यह जमे ऐसा है। आहा...हा...! ऐसी वस्तु की स्थिति ही है।

भगवान त्रिलोकनाथ ने कहा, वह सन्त कहते हैं। आहा...हा...! जिनेश्वर ऐसा कहते हैं, सन्त ऐसा बोलते हैं न? जिनेश्वर ऐसा कहते हैं। बाकी तुम कहते हो, प्रभु! वह कहाँ मिथ्या है? परन्तु आधार देते हैं प्रभु का! त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमेश्वर ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! चाहे जिस पर्याय में द्रव्य प्रवर्ते, तथापि द्रव्य में द्रव्यपना कम हुआ है? आहा...हा...! तीनों काल में वह एक की एक चीज इस प्रकार रही है। आहा...हा...! ऐसी अन्तर्दृष्टि होना, चाहे जिस पर्याय में हो परन्तु यह दृष्टि होना... आहा...हा...! अर्थात् 'है', उसकी दृष्टि होना। इतना वह है। है उसे उतना मानना, वह कहीं साधारण बात नहीं है। आहा...हा...! महापुरुषार्थ है। आहा...हा...! वह (यहाँ कहते हैं)। **तीनों काल अस्ति ऐसा जीव अन्य नहीं वह का वही है।** भावार्थ कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२०

श्री नियमसार, गाथा - २६-२७, श्लोक ३९-४०, प्रवचन - २९
दिनांक - ३१-०३-१९७१

नियमसार अजीव अधिकार। कारणपरमाणु और कार्यपरमाणु, जघन्य परमाणु और उत्कृष्ट परमाणु ऐसे चार का वर्णन किया है। कारणपरमाणु वह कि जो स्कन्ध है उसका कारण है, इसलिए उसे कारणपरमाणु कहा। उसी कारणपरमाणु को दोनों लागू पड़ते हैं। ऐसा है न पाठ में? **वही परमाणु...** ऐसा। जो परमाणु है, यह रजकण, पाईन्ट ऐसा एक वस्तु का स्वभाव। भले छाटा है परन्तु द्रव्य है। स्वभाव को किसी क्षेत्र की विशालता की आवश्यकता नहीं है। एक परमाणु ऐसा स्वभाव है कि जो स्कन्ध का कारण होता है, उसी परमाणु में एक गुण आदि स्निग्धता हो तो बन्ध के अयोग्य है। उसी परमाणु को जघन्य परमाणु कहा जाता है। एक, दो, तीन आदि हों, दो-तीन, चार आदि, दो और दो चार या तीन और दो पाँच, वह आदि हो तो उसे-परमाणु को बन्ध के योग्य के कारण उत्कृष्ट कहा जाता है। देखो! यह एक वस्तु का - जड़ का स्वत: स्वभाव। उसे तो कुछ खबर भी नहीं। खबर तो आत्मा को है कि ऐसा इसमें होता है। ऐसा परमाणु है। स्कन्ध का अन्तिम टुकड़ा। टुकड़े करते-करते बाकी रह जाये उसे कार्य परमाणु कहते हैं। ये चार प्रकार हुए। है तुम्हारे यहाँ उसमें?

मुमुक्षु : श्वेताम्बर में कहाँ से होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं? क्यों कहाँ से होगा? **इसी प्रकार (श्रीमद्भगवत्-कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री प्रवचनसार में (१६५वीं तथा १६६वीं गाथा द्वारा) कहा है कि —**

'णिद्धा वा लुक्खा वा अणुपरिणामा समा व विसमा वा।
समदो दुराधिगा जदि वज्झन्ति हि आदिपरिहीणा॥
णिद्धत्तणेण दुगुणो चदुगुणणिद्धेण बन्धमणुभवदि।
लुक्खेण वा तिगुणिदो अणु बज्झदि पंचगुणजुत्तो॥'

इस ओर है, ५६ पृष्ठ। इसका अर्थ। **परमाणु के-परिणाम...** परमाणु जो एक रजकण, पाईण्ट है, उसके परिणाम अर्थात् पर्याय **स्निग्ध हों या रूक्ष हों,..** स्निग्ध हो या रूक्ष हो। **सम**

अंशवाले हों या विषम अंशवाले हों,... दो अंशवाले, चार वाले, छह वाले हों या तीन, पाँच और सात वाले हों। **यदि समान की अपेक्षा दो अधिक अंशवाले हों,...** दो और दो चार, तीन और दो पाँच, सात और दो नौ, आठ और दो दस। इस प्रकार दो अधिकवाले हों तो **तो बँधते हैं;...** एक में नहीं बँधते। एक अंश परमाणु बन्ध के योग्य नहीं है।

इसी प्रकार आत्मा में भी अन्तिम गुण, अवगुण का जो अन्ति अंश है, वह उसके बन्ध का कारण नहीं है। समझ में आया? यह क्या कहा? मोह का, राग का, अन्तिम अंश है, वह स्वयं अपने बन्ध का कारण नहीं है। दूसरे के बन्ध का कारण हो। राग का अंश राग को बाँधे, ऐसा नहीं होता। समझ में आया? हीराभाई!

यहाँ जैसे परमाणु में एक स्निग्धता या एक रूक्षता की पर्याय है, वह बन्ध के योग्य है नहीं। इसी प्रकार आत्मा में भी जो क्रोध, मान, माया, दर्शन, मोह, दर्शन में समकित मोह का भी उसका अन्तिम अंश है लो न, तो समकित मोह का अंश भी दर्शनमोह को नहीं बाँधता। अन्तिम अंश है न? इसी प्रकार रागादि का अन्तिम अंश है वह उसके रागादि को नहीं मानता। वह राग का अंश छह कर्म का बन्धन भले हो। ऐसा ही वस्तु का स्वतः स्वभाव है। आहा..हा..! यह गाथा कही। दूसरी गाथा। यह नहीं दूसरी गाथा। इसी और इसी की दूसरी।

स्निग्धरूप से दो अंशवाला परमाणु, चार अंशवाले स्निग्ध (अथवा रूक्ष) परमाणु के साथ बन्ध का अनुभव करता है... देखा, अनुभव करता है शब्द है। उसे अनुभव करना है कहाँ? परन्तु होता है। अनुसरण कर होता है। समझ में आया? **अथवा रूक्षता से तीन अंशवाला परमाणु,...** यह तो दृष्टान्त दिये हैं, हों! रूक्ष तीन वाला और यह तो स्निग्धता भी तीन वाला, पाँच वाला हो तो वह बन्ध का पाता है। **परमाणु, पाँच अंशवाले के साथ जुड़ा हुआ बँधता है।'** क्या कहा पण्डितजी! तीन रूक्षवाला, पाँच रूक्षवाले के साथ बँधता है तो दृष्टान्त। परन्तु तीन स्निग्धतावाला, पाँच स्निग्धतावाले के साथ बँधता है। दो और दो चार वाला, तीन और दो पाँच वाला, ऐसे रूक्ष या स्निग्ध चाहे जो हों, तद्नुसार बँधते हैं। एक नहीं बँधता। एकडे एक, बगड़े बे। एक अंशवाला नहीं बँधता। दो अंशवाला बँधता है। देखो, पुद्गल का भी ऐसा स्वभाव है। एक नहीं बँधता।

और (२५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज, श्लोक द्वारा पुद्गल की उपेक्षा करके, शुद्ध आत्मा की भावना करते हैं) :—

स्कन्धैस्तैः षट्प्रकारैः किं चतुर्भिरणुभिर्मम।
आत्मान-मक्षयं शुद्धं भावयामि मुहुर्मुहुः ॥३९॥

श्लोकार्थ : उन छह प्रकार के स्कन्धों या चार प्रकार के अणुओं के साथ मुझे क्या है ?... पर चीज़ है। मैं तो उसका जाननेवाला हूँ। वह भी मुझमें रहकर मेरे से जाननेवाला हूँ। आहा..हा..! **मैं तो अक्षय शुद्ध आत्मा को पुनः पुनः भाता हूँ।** मुझे आनन्द का प्रयोजन है तो मेरा आनन्द आत्मा सच्चिदानन्द है। उस आनन्द के अक्षयसुख। अक्षय शुद्ध आत्मा को मैं पुनः पुनः भाता हूँ। मेरा आनन्द का प्रयोजन है तो आनन्द तो मेरे पास है। ऐसे अक्षय-क्षय न हो ऐसा शुद्ध आत्मा, द्रव्यस्वभाव परिपूर्ण, उसे मैं भाता हूँ। भाता हूँ, इसका अर्थ क्या हुआ? **पुनः पुनः भाता हूँ।** ऐसा पाठ है, लो। **भावयामि** और चिन्तयामि। विकल्प है यह?

मुमुक्षु : एकाग्रता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकाग्रता की बात ली है। प्रत्येक अर्थ में फेरफार। शुद्ध आत्मा अक्षय, त्रिकाल ध्रुवस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा, उसमें मैं एकाग्रता करता हूँ। मेरा तो यह काम है। परमाणु के प्रकार चार हो तो हो। मुझे उसके साथ प्रयोजन नहीं है। आहा..हा..! मेरा भगवान अनन्त आनन्द और अनन्त स्वच्छता, शान्ति, स्थिरता इत्यादि शक्तियों से अक्षय शुद्ध आत्मा है। ऐसे आत्मा को मैं अन्तर्मुख होकर **पुनः पुनः भाता हूँ।** बारम्बार उसमें एकाग्रता करता हूँ। यह करना है। आहा..हा..!

देखो! यह सारांश कहा। अजीव जाननेयोग्य है परन्तु जानकर उसके ऊपर से लक्ष्य छोड़कर स्वरूप का ध्यान, स्वरूप की भावना करनी है। समझ में आया?

२६, परमाणु का विशेष कथन।

अत्तादि अत्तमज्झं अत्तंतं णेव इंदियग्गेज्झं।
अविभागी जं दव्वं परमाणू तं वियाणीहि॥२६॥

आचार्य कहते हैं,

जो आदि में भी आप है मध्यान्त में भी आप ही।
अविभाग, इन्द्रिय ग्राह्य नहिं, परमाणु सत् जानो वही॥२६॥

आहा..हा..! इस परमाणु में भी छोटा क्षेत्र अनन्त गुण में असंख्यवें भाग का, तथापि जीव के अनन्त गुण की जितनी संख्या है, उतने गुण उसमें हैं। यह तो कैसे (जँचे)! जितने जीव के गुण की संख्या, उतने ही गुण की संख्या (परमाणु में है)। भले उसमें चैतन्य न हो, परन्तु जड़ की पर्याय-गुण की संख्या उतनी ही अनन्त उसमें है। क्या कहा? लो, दो बार कहा तो भी? हीरा में ऐसा कहते होंगे? एक आत्मा में जितने गुण हैं, उतने ही गुण परमाणु

के-जड़ के हैं। वे नहीं परन्तु उतने। क्या कहा ? पण्डितजी ! जितने एक आत्मा में अनन्त गुण की संख्या, उतने ही गुण एक परमाणु में है। वैसे नहीं परन्तु उतने - संख्या से उतने ही हैं। क्या कहा ? पण्डितजी !

मुमुक्षु : एक आत्मा में परमाणु जितने गुण हैं उतनी संख्या....

पूज्य गुरुदेवश्री : उतनी संख्या से। वे गुण नहीं। आत्मा में तो ज्ञान, आनन्द आदि है। समझ में आया ? आहा..हा.. ! यह (आत्मा) तो असंख्य प्रदेशी, वह (परमाणु) एक प्रदेशी। वस्तुस्वभाव है, वह वस्तुस्वभाव है। ऐसा माहात्म्य आने पर वह तेरा स्वभाव, तेरा स्वभाव असंख्यप्रदेशी क्षेत्र है, उसके गुणस्वभाव की चौड़ाई असंख्य प्रदेशी है। उस परमाणु के गुण की तो एक प्रदेशी चौड़ाई है। तेरे गुण की असंख्य प्रदेशी चौड़ाई है। ऐसा अन्तरस्वभाव। अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द पड़ा है, उसका आश्रय कर, उसकी भावना कर। बस, यह करना है। कर-करके, पढ़-पढ़कर, बहुत जानकर भी यह करना है। सुखी होना होवे तो (यह करना है)।

यह, परमाणु का विशेष कथन है।

जिस प्रकार सहज परम पारिणामिकभाव की विवक्षा का आश्रय करनेवाले... क्या कहते हैं ? देखो ! आत्मा का त्रिकाल सहज स्वाभाविक परमपारिणामिकभाव की विवक्षा का आश्रय करनेवाले उसके कथन का और उसके भाव का आश्रय करनेवाले, **सहज निश्चयनय की अपेक्षा से,...** भगवान आत्मा स्वाभाविक परमपारिणामिक भाव की जिसमें विवक्षा करनी है। जिसमें उदय की, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक की (अपेक्षा) नहीं। त्रिकाली ज्ञायकभाव, परमस्वभावभाव। वह जिसमें कहना है, ऐसा सहज निश्चयनय। स्वाभाविक निश्चयनय। देखो ! उस **निश्चयनय की अपेक्षा से,...** भगवान नित्य है। वह नित्य से कभी च्युत नहीं हुआ। परमपारिणामिकभाव स्वभाव से कभी च्युत हुआ ही नहीं। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

(नित्य) और अनित्य निगोद से लेकर सिद्धक्षेत्र पर्यन्त विद्यमान जीवों का... निगोद से लेकर यह सब पर्याय है न ? वह सिद्ध तक। **जीवों का निजस्वरूप से अच्युतपना कहा गया है;...** उस निगोद से लेकर सिद्ध की पर्याय तक में, सब उसके द्रव्य जो परमस्वभावभाव हैं, उनसे कभी च्युत नहीं हुए। आहा..हा.. ! समझ में आया ? फिर से। हमारे सेठी ! फिर फिर से कहते हैं न ! फिर।

जो यह आत्मा नित्य वस्तु है। कैसी ? स्वाभाविक परमपारिणामिकभाव का कथन

करनेवाला जो नय, उस नय की अपेक्षा से आत्मा त्रिकाली नित्य.. नित्य.. नित्य.. ध्रुव है। अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, प्रभुता ऐसी शक्तियों से भरपूर सहज तत्त्व पारिणामिक स्वभाव से नित्य है। वह आत्मा, इस अपेक्षा से सहज पारिणामिकभाव की - निश्चयनय की अपेक्षा से निगोद से लेकर सिद्ध तक की जो पर्यायवाले हैं, वे जीव भी ऐसे नित्य त्रिकाल हैं। वे नित्य से कभी च्युत नहीं हुए। आहा..हा..! वस्तु के स्वभाव की कथन करने की दिगम्बर सन्तों की शैली (अन्यत्र) कहीं है नहीं।

मुमुक्षु : अलौकिक।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलौकिक वस्तुस्वभाव वर्णन करते हैं। आहा..हा..! ऐसी बात सुनने को दूसरे सम्प्रदाय में मिले, ऐसा नहीं है। ऐसी यह चीज़ है। क्योंकि वहाँ है नहीं। यह तो था उसमें से आया है। समझ में आया? क्या कहते हैं?

परमाणु की व्याख्या करते हुए (कहते हैं) जैसे परमाणु स्वयं अपने से आदि, मध्य और अन्त है, वैसे आत्मा भी वस्तुस्वभाव से परमस्वभाव निश्चय से, निश्चयनय की अपेक्षा से वह स्वयं अपने से कभी च्युत हुआ नहीं। स्वयं ही अपनी आदि में, स्वयं ही अपने मध्य में, स्वयं ही अपने अन्त में वह वस्तु ध्रुव है, वह ऐसी की ऐसी है। समझ में आया?

(नित्य) और अनित्य निगोद से लेकर... पर्याय की बात है न? **सिद्धक्षेत्र पर्यन्त...** उस सिद्ध की पर्याय में भी, परमस्वभावभाव जो ध्रुव है, वह पर्याय में आया नहीं? वह ध्रुवरूप से च्युत हुआ नहीं। आहा..हा..! वह चैतन्य महाहीरा, उसकी कीमत क्या? जिसका मूल्यांकन करने से अपनी बुद्धि में मूल्यवाला हो जाता है। अमूल्य रहता नहीं। ऐसी यह चीज़ है। आहा..हा..! भगवान आत्मा परम सहज परमपारिणामिकभाव, सहज स्वाभाविक परमपारिणामिक (भाव), जिसे किसी पर्याय की, उदय की अपेक्षा नहीं, ऐसा जो स्वभाव है। ऐसा सहज निश्चय परमपारिणामिकभाव को कहनेवाला ऐसा सहज और निश्चय, ऐसा। ऐसा जो आत्मा, जैसे परमाणु की आदि, मध्य और अन्त में स्वयं ही है। वैसे आत्मा के परमपारिणामिकभाव में-नित्यता में स्वयं ही कायम है। उसमें से कभी हटा नहीं। आहा..हा..! **निजस्वरूप से अच्युतपना कहा गया है;...** किस नय से?

मुमुक्षु : व्यवहारनय से।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह निश्चय आया।

सहज परम पारिणामिकभाव की विवक्षा का आश्रय करनेवाले... इसे कहने का

आश्रय करनेवाला ऐसा निश्चयनय, उसकी अपेक्षा से वह स्वयं नित्य है। अनन्त जीव पर्याय में निगोद हो या पर्याय में त्रस हो या पर्याय में सिद्ध हो, तथापि उन जीवों का निज स्वरूप से अच्युतपना निश्चय से, नित्य से अच्युत है ऐसा कहने में आया है। आहा..हा..! देखो तो एक टीका! समझ में आया? कहते हैं कि निगोद की पर्यायें, सातवीं नरक के नारकी की पर्याय हो, अन्तिम ग्रैवेयक के मिथ्यादृष्टि की पर्याय हो, या क्षायिक समकिती की पर्याय हो या सिद्ध की पर्याय हो, आहा..हा..! जिसमें अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति प्रगट हुई है, ऐसी पर्याय हो, तथापि वस्तु जो नित्य है, उसमें से कभी च्युत नहीं हुई। आहा..हा..! समझ में आया?

उन रहे हुए जीवों का... वापिस बहुत अधिक अनन्त जीव हैं न? एक जीव नहीं। अनन्त आत्मायें हैं। निगोद से लेकर सिद्ध। वहाँ तक लिया न? निगोद के अनन्त आत्मायें और सिद्ध के अनन्त आत्मायें और बीच के साधक और बाधक ऐसे अनन्त आत्मायें। समझ में आया? अक्षर के अनन्तवें भाग की ज्ञान की पर्याय निगोद को खुली हुई बाकी है और केवलज्ञान की पर्याय पूर्ण विकसित है और बीच में साधक जीव को मोक्षमार्ग की पर्याय खुली हुई है और मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय आदि में सब आ गये। उनकी पर्याय में तीव्र मिथ्यात्व, गृहीत मिथ्यात्व की पर्याय परिणमित हुई है। या सिद्ध अनन्त केवलज्ञानरूप हुए हैं। आहा..हा..! तथापि वे जीव अपने नित्य ध्रुवस्वरूप से कभी च्युत नहीं हुए हैं। आहा..हा..! समझ में आया? पण्डितजी! वाह! दो लाईन में तो कितना समा दिया है!!

परमाणु जैसे अजीव पदार्थ को रहने के लिये किसी की आवश्यकता नहीं। वह स्वयं ही अपने से है। स्वयं स्वयं से आदि में, मध्य में और अन्त में है। इसी प्रकार भगवान आत्मा निगोद से लेकर सिद्ध तक सब आ गये बीच में? बाघ और भालू, माँस के भक्षण करनेवाले की पर्याय। पर्याय उनकी है। बाकी माँस दूसरी भिन्न (पर्याय है)। ऐसी पर्याय में भी, सिद्ध की पर्याय में, तीव्र गृहीतमिथ्यात्व की पर्याय में भी... समझ में आया? आहा..हा..! वस्तु नित्य ध्रुव तो स्वयं से कभी हटी ही नहीं है, कभी वह पर्याय में आयी नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? कहो, यह बात थी? देखो! बात है परमाणु की, उसमें आत्मा डाला।

उसी प्रकार पंचम भाव की अपेक्षा से... देखो! **परमाणु, द्रव्य का परमस्वभाव होने से,...** पंचम भाव की अपेक्षा से, हों! **परमाणु, द्रव्य का परमस्वभाव होने से, परमाणु स्वयं ही अपनी परिणति...** परिणति शब्द से यहाँ पर्याय नहीं लेना। क्योंकि यहाँ पंचम भाव की-त्रिकाल की अपेक्षा है। समझ में आया? परमाणु का जो त्रिकाली पंचम भाव है उसकी यहाँ

बात है। नहीं तो उसकी पर्याय, वह पारिणामिकभाव की पर्याय है, परन्तु यहाँ वह सिद्ध नहीं करना है। पाठ में तो आदि स्वयं वस्तु है, परमाणु सूक्ष्म, वह स्वयं अपनी आदि, स्वयं स्वयं का मध्य और स्वयं स्वयं का अन्त। समय कहने के लिये, दूसरा कुछ भेद है नहीं।

उसी प्रकार पंचम भाव की अपेक्षा से... यह किसका पंचम भाव? परमाणु का। **परमाणु, द्रव्य का परमस्वभाव होने से,...** देखो! फिर ऐसा लिया न वहाँ? उसका परमस्वभाव है अर्थात् द्रव्य लिया। **परमाणु स्वयं ही अपनी परिणति का आदि है,...** अर्थात् कि परमाणु स्वयं अपने भाव की आदि है, ऐसा। परिणति शब्द से यहाँ पर्याय नहीं, परन्तु उसका भाव। समझ में आया? **स्वयं ही अपनी परिणति का मध्य है...** अर्थात् स्वयं ही अपने स्वभाव का भी स्वयं ही मध्य है। वस्तु ध्रुव... ध्रुव... द्रव्य। आहा..हा..! **और स्वयं ही अपना अन्त भी है (अर्थात्, आदि में भी स्वयं ही,...)** ऐसा लिया है। देखो! साराँश। परिणति में यहाँ पंचम भाव है न यहाँ तो। और परमस्वभाव लिया है न? पंचम भाव में परमस्वभाव साथ में न लेकर बाद में लिया। अर्थात् वह द्रव्य ही सिद्ध करना है यहाँ तो। वस्तु परमाणु द्रव्य। आहा..हा..! अतीन्द्रिय वस्तु एक परमाणु, एक आकाश के प्रदेश में ऐसे अनन्त परमाणु के अनन्त स्कन्ध समाहित होते हैं, ऐसा एक परमाणु ऐसा है, कहते हैं। आहा..हा..! जिसकी आदि, अन्त और मध्य में वस्तु स्वयं ही है, बस। कहो, समझ में आया? स्वयं ही है।

(कभी भी निजस्वरूप से च्युत नहीं है)। क्या कहा? वह परमाणु जो द्रव्य है, वह कभी स्निग्धता-रूक्षता की पर्याय में नहीं आता। एक स्निग्ध गुण हो, दो हो या तीन हो; बन्धयोग्य हो या बन्ध के अयोग्य हो। वस्तु द्रव्य जो है, वस्तु पंचम भाववाला तत्त्व, वह कभी पर्याय में नहीं आता। ओहो..हो..! नहीं तो उसकी परमाणु की जो पर्याय है वह तो पारिणामिकभाव की ही पर्याय है, क्योंकि उसे कोई उदय या ऐसा कुछ है नहीं। परन्तु वह वस्तु जो त्रिकाल पंचम भाव है, वस्तु शक्ति, भाव-शक्ति। अरे! देखो तो सही! वस्तु छोटी-बड़ी ऐसा नहीं देखना। उसका स्वभाव (देखना)। अरे! ऐसे परमाणु का ऐसा स्वभाव है कि एक गुण की स्निग्धता हो, अनन्त गुण की स्निग्धता हो, एक गुण की रूक्षता हो, अनन्त गुण की रूक्षता हो। भारी रूप परिणमित हुआ हो या हल्के रूप परिणमित हुआ हो। तथापि परमाणु तो वह का वही है। वह भारी-हल्के में आया नहीं। समझ में आया? कहो, प्रकाशदासजी!! कभी आया था? तीन वर्ष में कभी सुना था? आहा..हा..!

(कभी भी निजस्वरूप से च्युत नहीं है)। अर्थात्? पंचम भाववाला अजीव परमाणु तत्त्व कभी अपनी पर्याय में नहीं आया। दुर्गन्ध पर्याय हो या सुगन्ध हो; स्निग्धता हो या

रूक्षता की हो; शीत की हो या गर्म की हो या भारी की हो या हल्की की हो। परमाणु में भारी पर्याय होती है? है परमाणु की। भारी और हल्की पर्याय हुई है। देखो विशिष्टता! इसमें हल्की-भारी हुई है। परमाणु एक की, हों! और उसमें भिन्न है तथापि उस हल्की-भारी की पर्याय में वह पंचम भाव का द्रव्य नहीं आया। आहा..हा..! देखो न! कितना लॉजिक है या नहीं यह सब? कि तुम्हारा वकालात का लॉजिक होगा अकेला? वस्तुविज्ञान है। यह वस्तुविज्ञान है। आहा..हा..!

इसमें परमाणु भारी है या ऐसा का ऐसा रहा है? यह देखो इतने स्कन्ध में आने पर स्थिर हुआ या नहीं इतना? पर्याय स्कन्ध में आया तब होकर। पर के कारण हुई है? वह भी खोटी बात है। स्कन्ध में आया इसलिए परमाणु धारी हुई पर्यायरूप परिणमित हुआ है, यह मिथ्या बात है और भारी रूप पर्याय परिणमे तथापि द्रव्य उसमें पर्याय में आया है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? वजुभाई! भाई! यह अभी पढ़ना हुआ। उस बार नहीं पड़ा था-पाँच वर्ष पहले यह अजीव का छोड़ दिया था। अजीव, व्यवहार और अन्तिम उपयोग, ये तीन छोड़ दिये थे। इस समय कहें, सब समान पढ़ना।

मुमुक्षु : क्या कहा? महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले वाँचन किया था, तब अधिकार छोड़ दिये थे। यह व्यवहार अधिकार है न? तो छोड़ दिया था। व्यवहार का अधिकार, यह अधिकार और अन्तिम उपयोग का (शुद्धोपयोग) अधिकार है। इस समय धारावाही लिया है। अच्छा किया, लो, हमारे वजुभाई कहते हैं।

मुमुक्षु : महाराज! व्यवहार तो निश्चय को बताता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर ऐसा है। व्यवहार निश्चय को बताता है। समझ में आया? आहा..हा..! ऐसा न मानना कि यह फिर परमाणु की ऐसी व्याख्या क्या? इस व्याख्या में भगवान समाहित हो जाता है। कहते हैं कि ऐसे परमाणु उसकी चाहे जो पर्यायरूप हुआ हो, भारी-हल्का। क्या कहलाता है फिर? दो, चार स्निग्धता-रूक्षता तो है। शीत-उष्ण तो उसमें आया? कठोर और कोमल। कठोर और कोमल पर्याय, भारी और हल्की पर्याय। वह स्थूल में होती है। परमाणु में होती है। उस समय में भी वह परमाणु उसमें नहीं आया, द्रव्य उसमें नहीं आया। आहा..हा..! पर्याय पर्यायरूप से हुई, द्रव्य पर्यायरूप से आया नहीं।

मुमुक्षु : द्रव्य पर्यायरूप से आ जाये तो द्रव्य का नाश हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाश हो जाये। परन्तु आता ही नहीं। दो अंश भिन्न हैं। आहा..हा..! समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा निगोद से लेकर कितने जीव लिये हैं। एक शरीर में अनन्त जीव, एक अंगुल के असंख्य भाग, शकरकन्द में, आलू में असंख्य शरीर, एक शरीर में अनन्त जीव, सिद्ध की अपेक्षा अनन्त गुने (जीव)। उन सबकी पर्याय भले अभव्य की पर्याय हो, कहते हैं। आहा..हा..! गृहीतमिथ्यात्व के तीव्र रूप से कषाय खाने के कारखाने लगाकर (बैठा हो), भाव में, हों! यह तो भाव की पर्याय। गाय और भैंस रखते हैं न ऐसे? ऊपर पड़े एकदम। उस ओर अलग और इस ओर अलग। ऐसे मिथ्यात्व की जो तीव्र कषाय की अवस्था है, उसमें भी द्रव्य तो नित्य है। वह द्रव्य उसमें आया नहीं। समझ में आया? और जो सिद्धरूप से परिणमे.. आहा..हा..! उस पर्यायरूप भी द्रव्य तो आया नहीं, कहते हैं। अहो! ऐसा का ऐसा है, कहते हैं। उसमें भेद या खण्ड कुछ है नहीं। आहा..हा..! ऐसा भगवान आत्मा, उसके अन्तर में एकाग्रता कर, वह तेरे कल्याण का मार्ग है। आहा..हा..! यह तो सब बातें करके मर गया, यह व्रत और यह तप। हैरान.. हैरान.. (हो गया)। काय-क्लेश। समझ में आया?

सहजानन्द प्रभु! सहजपरमपारिणामिकभाव को कहनेवाले ऐसे सहज निश्चयनय से वह तो ऐसा का ऐसा है। **जो ऐसा होने से,...** वह परमाणु **इन्द्रियगोचर न होने से,...** इन्द्रियगोचर नहीं है। **और पवन, अग्नि इत्यादि द्वारा नाश को प्राप्त न होने से, अविभागी है, उसे हे शिष्य! तू परमाणु जान।** उसे तू परमाणु जान। आहा..हा..! योगसार में तो कहा है कि छह द्रव्य को प्रयत्न से जान। ऐसी गाथा आती है। छह द्रव्य का व्यवहार ज्ञान भी तू प्रयत्न से जान।

(अब, २६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:)

अप्यात्मनि स्थितिं बुद्ध्वा पुद्गलस्य जडात्मनः।
सिद्धास्ते किं न तिष्ठन्ति स्वस्वरूपे चिदात्मनि॥४०॥

आहाहा! **जड़ात्मक पुद्गल की स्थिति स्वयं में (पुद्गल में ही) जानकर...** जब परमाणु भी ऐसा जड़ अपने में रहता है.. आहा..हा..! ऐसा कहते हैं। जिसे कुछ भान नहीं, जिसमें ज्ञान नहीं, ऐसा परमाणु भी स्वयं अपने में द्रव्यरूप से कायम रहता है। **(अर्थात्, जड़स्वरूप पुद्गल, पुद्गल के निज स्वरूप में ही रहते हैं—ऐसा जानकर), वे सिद्धभगवन्त, अपने चैतन्यात्मक स्वरूप में क्यों नहीं रहेंगे?** जब परमाणु भी ऐसे द्रव्यस्वरूप में त्रिकाल रहता है तो सिद्धस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा, सिद्ध भगवन्तों की व्याख्या भाषा ली है, परन्तु

समस्त आत्माओं की बात है। अरे! यह आत्मा अपने द्रव्य में क्यों नहीं रहेगा। द्रव्य तो ऐसा का ऐसा रहता है, वहाँ क्यों नहीं जाये? आहा..हा..! समझ में आया? गजब बात, भाई! दिगम्बर सन्तों की कथनी! जड़ की हो तो भी अलग, चैतन्य की अलग, बातें अलग, भाई! लोग मानते हैं कि यह सम्प्रदाय है। वाड़ा है ऐसा नहीं भगवान! यह तो वस्तु की स्थिति की मर्यादा की बात है। समझ में आया?

मुमुक्षु : आपने स्पष्टीकरण करके बताया, नहीं तो हमें कौन बताता?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा..हा..! भगवान! जब परमाणु अपनी जड़ की स्थिति में से च्युत नहीं होता तो द्रव्यस्वभाव ऐसा भगवान अपने में अपने से कैसे हटे? और वहाँ दृष्टि लगाकर उसमें रहे, ऐसा कहते हैं। वापस पर्याय में, हों! ऐसा स्वरूप है, वह हटा नहीं। ऐसा जिसे ज्ञान होता है वह उसमें रहता है। रहा है ही। प्रत्येक का रहा है। समझ में आया? आहा..हा..! कहते हैं कि जड़स्वरूप पुद्गल जब अपनी जाति में रहता है, तो यह भगवान स्वयं द्रव्यस्वभाव जैसा है, उसमें क्यों न रहे अब? पर्याय से क्यों न रहे ऐसा कहते हैं, हों! समझ में आया? इसकी ज्ञान की पर्याय में ऐसा आवे कि यह तो ऐसा का ऐसा है। तब इसने ऐसा का ऐसा है जाना कहलाये। पोपटभाई! आहा..हा..!

पोपट है वह नलिनी को पकड़कर ऐसे (उल्टा) हो गया। उसमें उड़ने की शक्ति तो है परन्तु ऐसा हो गया है इसलिए मानो में उल्टा हूँ (ऐसा मानता है)। ऐसे छोड़े तो एकदम उड़ जाये, भले ऐसे नीचे सिर हो। अरे! ऐसा तेरा स्वभाव। परमाणु ने जब नित्यपना छोड़ा नहीं तो तेरा नित्य आनन्दकन्द प्रभु क्यों स्वयं को छोड़े? ऐसी दृष्टि कैसे न करे? और ऐसी स्थिरता क्यों न करे? ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आहा..हा..! ऐई! जेठालालभाई!

वह परमाणु नित्य है। ऐसा का ऐसा रहा है। ऐसा उसे उसकी पर्याय को खबर नहीं। परमाणु की पर्याय को खबर है? उसकी पर्याय की इसे (जीव को) खबर है कि परमाणु ऐसा का ऐसा नित्य रहा है। इस प्रकार जब परमाणु ऐसा उसमें रहता है और पर्याय में आता नहीं, तो मैं एक द्रव्यस्वभाव त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु, मैं कैसे पर्याय में आऊँ? ऐसा मानते हुए पर्याय को द्रव्य में स्थिर करता है। समझ में आया? वाडीभाई! ऐसी लहर है दिगम्बर सन्तों की। आहा..हा..! ये मुनि हैं, इसलिए इनकी टीका मान्य नहीं ऐसा (कुछ लोग) कहते हैं। अरे! भगवान! यह तू क्या करता है? भाई! तुझे खबर नहीं। आहा..हा..! इनने कहाँ लेकर छोड़ा, देखो तो सही! बात परमाणु की करते हैं और बात यहाँ कर डाली। भाई! परमाणु की आदि-अन्त में स्वयं है। उसे कोई अपेक्षा की आवश्यकता नहीं है। उसे तो खबर भी नहीं कि

आदि-मध्य में मैं का मैं हूँ या नहीं। उसके जाननेवाले की पर्याय में ऐसा आया कि यह तो ऐसा का ऐसा है। यह जाननेवाले की पर्याय, यह आत्मा ऐसा का ऐसा है, उसमें क्यों न स्थिर हो? ऐसा कहते हैं। हीराभाई!

(स्वरूप में ही रहते हैं — ऐसा जानकर)... जानकर कहा है न? **विहाण** था न? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं **विहाण,** ऐसा था न? विशेष जान परन्तु वापस इस जानने का प्रयोजन क्या? कि परमाणु ऐसा है... जिसने जिस ज्ञान की दशा ने एक-एक परमाणु ऐसे कितने? आत्मा की संख्या अपेक्षा अनन्तगुने। ऐसे परमाणु भी द्रव्य से ऐसे के ऐसे रहते हैं। ऐसी ही वस्तु की स्थिति है। इसकी तो उसे खबर नहीं। उसकी खबर करनेवाला यह ज्ञान, उसे जैसे द्रव्य को ऐसा का ऐसा है, ऐसा रहता है, ऐसा जानता है, तो तू भी ऐसा का ऐसा सहज पारिणामिकभाव से है। उसमें क्यों न स्थिर हो? उसमें क्यों न जाये? आहा..हा..! ऐ.. हीराभाई! ऊँचा किया है ऐसा।

अरे सिद्धभगवन्त। वे सिद्धभगवान ही यह आत्मा है। निश्चय से सिद्धभगवान ही है न। वस्तु स्वयं सिद्ध ही है। शुद्ध ध्रुव। वह **अपने चैतन्यात्मक...** चैतन्यरूप **स्वरूप में क्यों नहीं रहेंगे?** आहा..हा..! जब जिसके ज्ञान में ऐसा आया कि परमाणु द्रव्य, अनन्त-अनन्त जड़, जिन्हें कुछ ज्ञान नहीं, जिनकी कुछ खबर नहीं, हम जगत के तत्त्व है या नहीं ऐसी भी जिन्हें खबर नहीं। आहा..हा..! ऐसे तत्त्वों का, ऐसा का ऐसा द्रव्य रहता है-ऐसा जाननेवाला भगवान, वे अनन्त परमाणु द्रव्यरूप से तो ऐसे के ऐसे हैं। पर्याय में आये नहीं। ऐसा जाननेवाला पर्याय ज्ञान की, वह तेरा द्रव्य भी ऐसा का ऐसा है। बाहर आया नहीं। ऐसा स्वरूप सन्मुख निर्णय करके क्यों स्थिर न हो? आहा..!

(श्वेताम्बर के) ३२-४५ (सूत्र) पढ़ो तो यह मिले, ऐसा नहीं है। एक-एक लाईन में... आहा..हा..! यह दिगम्बर धर्म अर्थात् आत्मधर्म। छोटाभाई कहते थे कि अब यह दिगम्बर धर्म बाहर आया। नहीं तो छिप गया था। छोटाभाई कदोल रहते हैं न (वे कहते थे)। दिगम्बर धर्म कुछ गिनती में नहीं था। बाहर में श्वेताम्बर-श्वेताम्बर। अहमदाबाद में और सर्वत्र भाई दो-तीन दिन पहले कहते थे। भाई कहते थे छोटाभाई। अरे! दिगम्बर धर्म अर्थात् ऐसा आत्मा का सनातन स्वरूप। वह कोई पक्ष और वाड़ा नहीं है।

मुमुक्षु : समझानेवाला नहीं था, इसलिए कहाँ से बाहर आये?

पूज्य गुरुदेवश्री : जिस समय हो ऐसा आवे न। कहो, समझ में आया? आहा..हा..! गजब बात, भाई! कारण परमाणु, कार्य परमाणु... निकालकर फिर डाला कि वह परमाणु

पर्याय में नहीं आया, हों! एक गुणरूप परिणमे... भाई! गजब बात है। वस्तु की स्थिति तो प्रसिद्ध करने की पद्धति अलौकिक है। ओहो..हो..! जब परमाणु जैसे जड़ भी चाहे जितनी भारी हल्की, स्निग्धता-रूक्षतारूप द्रव्य नहीं होता। ओहो..हो..! तो ऐसा द्रव्य, भगवान आत्मा का द्रव्य, वह संसार की पर्यायरूप कैसे आवे और कैसे जाये? कैसे हो? इसलिए इसकी दृष्टि द्रव्य में जाने पर, वह सिद्धरूप परिणमने की योग्यता अन्दर हो जाये, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? लो, यह ४०वाँ श्लोक हुआ। २७वीं गाथा!

एयरसरूवगंधं दोफासं तं हवे सहावगुणं।
विहावगुणमिदि भणिदं जिणसमये सव्वपयडत्तं॥२७॥

गुण-गुण शब्द प्रयोग किया है, हों! तथापि यह पर्याय है।

दो स्पर्श इक रस गंध वर्ण स्वभावगुणमय है वही।
सर्वाक्षगम्य विभावगुणमय को प्रगट जिनवर कही॥२७॥

टीका : **—यह, स्वभावपुद्गल के स्वरूप का कथन है। चरपरा, कड़वा, कषायला, खट्टा और मीठा - इन पाँच रसों में का एक रस;....** परमाणु में होता है। समझ में आया? क्योंकि परमाणु का गुण रस है, वह तो त्रिकाल है। यह तो पर्यायें हैं, ये पर्यायें हैं। खट्टी-मीठी यह पर्याय है, गुण नहीं। क्या कहा? पण्डितजी! पर्याय है यह तो, रस गुण है। यह खट्टा-मीठा रस, यह तो पर्याय है। यह रस गुण भी पर्याय में आया नहीं।

सफेद, पीला, हरा, लाल और काला — इन (पाँच) वर्णों में का एक वर्ण;... है। वर्णों में से। वर्ण अर्थात् यह गुण का नहीं। वर्ण गुण तो त्रिकाली है, उसकी यह पर्याय है। यहाँ पर्याय को गुण कहने में आता है। समझ में आया? तथापि यह काली, लाल, आदि पर्याय में द्रव्य नहीं आया। नित्य रस से भरपूर तत्त्व ऐसी पर्यायरूप नहीं आता। आहा..हा..! यह वीतराग का विज्ञान ही अलग प्रकार का है। यह पहले अजीव का पढ़ा नहीं था न। अब कहते हैं यह पढ़ो।

सुगन्ध और दुर्गन्ध में की एक गंध;... सुगन्ध-दुर्गन्ध तो पर्याय है। गन्ध नाम का गुण त्रिकाल है। आहा..हा..! अरे! परमाणु का गुण, ध्रुव भी जहाँ पर्याय में नहीं आता, द्रव्य-पर्याय में नहीं आता इसका अर्थ कि द्रव्य के अनन्त गुण पर्याय में नहीं आते। आहा..हा..! वीतराग के कथन वीतरागभाव की प्रसिद्धि करते हैं। आहा..हा..! भगवान! चाहे जिस पर्यायरूप तेरी दशा हो, उसे न देख, ऐसा कहते हैं। तेरा त्रिकाल तत्त्व पर्याय में नहीं आया,

उसे देख। यह ऐसा आता है न? देखो न! चौदह मार्गणा में, भाई! मार्गणा न देख, मार्गणा, वह जीव द्रव्य में नहीं है। आहा..हा..! तू भव्य-अभव्य-ऐसा न देख। आहा..हा..!

मुमुक्षु : द्रव्य तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य को देखा तो यह समाप्त हो गया। आहा..हा..! चौदह मार्गणा में आता है न? गति-जाति मार्गणा आती है न? वह जीव में नहीं है ऐसा आयेगा। जीव अधिकार में। जीव में नहीं। तब वह जीव नहीं? कि नहीं। यह पर्याय जीव, वह व्यवहार जीव। आहा..हा..! गजब बात भाई! केवलज्ञान में जीव आया नहीं। एक अंश में पूरा अंशी नहीं आता, उसमें नहीं समाता। आहा..हा..! ज्ञान और आनन्द गुण का तत्त्व-सत्व प्रभु, उसकी पर्याय में नहीं आता। ऐसे ये परमाणु ऐसे रस में नहीं आते, पर्याय में है। आहा..हा..!

कठोर, कोमल, भारी, हलका,... देखो अब आया। **हलका, शीत, उष्ण, स्निग्ध (चिकना) और रूक्ष (रूखा) — इन आठ स्पर्शों में से अन्तिम चार स्पर्शों में के अविरुद्ध दो स्पर्श;...** एक परमाणु में लेना है न? एक परमाणु में दो अविरुद्ध दो स्पर्श। शीत हो तो उष्ण नहीं हो और उष्ण हो तो शीत नहीं हो। उष्ण, चिकना, शीत नहीं। **यह, जिनों के मत में...** ओहो..हो..! वीतराग भगवान के अभिप्राय में **परमाणु के स्वभावगुण हैं।** ये परमाणु द्रव्य की स्वभाव पर्यायें हैं। **विभावपुद्गल, विभावगुणात्मक होता है।** दो परमाणु से लेकर अनन्त परमाणु स्कन्ध, वह विभावगुण है। देखो! विभावगुण अर्थात् विभावपर्याय।

यह द्वि-अणुकादिस्कन्धरूप विभावपुद्गल के विभावगुण, सकल इन्द्रियसमूह द्वारा ग्राह्य (जानने में आनेयोग्य) है... वह परमाणु इन्द्रियग्राह्य नहीं कहा था। यह पर्याय इन्द्रियग्राह्य है। **विभावपुद्गल के विभावगुण, सकल इन्द्रियसमूह द्वारा ग्राह्य (जानने में आनेयोग्य) है — ऐसा (इस गाथा का) अर्थ है।** आहा..हा..!

इस प्रकार (श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री पंचास्तिकायसमय में (८१वीं गाथा द्वारा) कहा है कि — लो, यह कल कहा था वह।

'एयरसवण्णगंधं दोफासं सद्दकारणमसद्दं।
खंधंतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणाहि॥'

लो, एक यह स्कन्ध है, अंगुली का पिण्ड। इसमें एक-एक रजकण, अपने स्वचतुष्टय से रहा हुआ है। नित्य, पर्याय में तो आया नहीं, परन्तु पर्याय यहाँ दूसरे को स्पर्शित नहीं है, ऐसा कहते हैं। एक रस की पर्यायवाला परमाणु, एक रंग की पर्यायवाला परमाणु, एक

गन्धवाला परमाणु और दो स्पर्शवाला परमाणु। **शब्द का कारण है;...** परन्तु स्वयं **अशब्द है...** परमाणु स्वयं अशब्द है। एक रजकण इसमें चाहे जो, वह उसमें शब्द नहीं है परन्तु शब्द का कारण है। **स्कन्ध के भीतर हो, तथापि...** आहा..हा..! देखो तो सही! ये रजकण देह में हों। उसमें-स्कन्ध में हों **तथापि द्रव्य है (अर्थात्, सदैव सर्व से भिन्न, शुद्ध एक द्रव्य है)।** शुद्ध का अर्थ अकेला। वापस है तो विभाव ऊपर परिणमित हुआ, भाई! यह शुद्ध डाल दिया।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; परान्तु तथापि वह बन्ध पर्यायवाला कहा। पर्यायवाला भी... ऐसा है। पर्यायवाला कहा न। **परमाणु, शब्द का कारण है; अशब्द है और स्कन्ध के भीतर हो, तथापि द्रव्य है...** ऐसी पर्यायवाला। **(सदैव सर्व से भिन्न, शुद्ध एक द्रव्य है)।** वस्तुरूप से गिनो तो शुद्धद्रव्य है। पर्यायरूप से गिनो तो पर के सम्बन्धरहित भिन्न चीज़ है। समझ में आया? कहो, इतने में एक रहा हुआ है, परन्तु वह अपने स्वचतुष्टय में है। आहा..हा..! ऐसा ज्ञान सर्वज्ञ के अतिरिक्त और वह भी उनके ज्ञानगम्य हो सके इस प्रकार से... समझ में आया? एक-एक परमाणु के स्कन्ध में होने पर भी **(सदैव सर्व से भिन्न, शुद्ध एक द्रव्य है)।** लो, आहा..हा..!

और मार्गप्रकाश में (श्लोक द्वारा) कहा है कि — देखो, शब्द का कारण है। कौन? एक परमाणु, हों! शब्द का कारण आत्मा है ऐसा नहीं। यह होंठ शब्द का कारण हैं, ऐसा नहीं। शब्द का कारण परमाणु है। आहा..हा..! आत्मा शब्द का कारण नहीं। शब्द की उत्पत्ति आत्मा है, इसलिए होती है, ऐसा नहीं। आहा..हा..! भाई! गजब बात है।

मुमुक्षु : होंठ चले तो हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : होंठ है वह वर्गणा दूसरी है - आहारवर्गणा है। यह (शब्द) शब्दवर्गणा है। आहारवर्गणा, वह शब्दवर्गणा की उत्पत्ति नहीं है। आहा..हा..! भारी कठिन काम जगत को। अभी बाहर परद्रव्य का कर्ता न माने तो दिगम्बर जैन नहीं, ऐसा कहते हैं। अरर! क्या किया तूने भगवान? अरे! अकेला व्यवहार से भिन्न है इतना ख्याल में लेना तुझे कठिन पड़ता है। आत्मा शरीर में होने पर भी शरीर से अत्यन्त भिन्न है। राग के साथ दिखने पर भी राग से अत्यन्त भिन्न है। और पर्यायवाला दिखने पर भी द्रव्य, पर्याय से भिन्न है। ऐसी दृष्टि किये बिना इसे सम्यग्दर्शन नहीं होगा। कहो, समझ में आया? लो, विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२१ **श्री अष्टपाहुड़, भावपाहुड़, गाथा - ७८-७९, प्रवचन - १२३**
दिनांक - २५-१०-१९७०

अष्टपाहुड़, भावपाहुड़ की ७८वीं गाथा। **आगे कहते हैं कि जिनशासन का इस प्रकार माहात्म्य है—** जैनशासन अर्थात्? आत्मा वीतरागस्वरूप है, उसकी वीतरागी दृष्टि, ज्ञान और रमणता होना, वह जैनशासन है। वह जैनशासन मोक्ष का मार्ग है। मोक्ष का मार्ग अर्थात् अनन्त दुःख से मुक्त होने का और अनन्त आनन्द की प्राप्ति होने का यह एक उपाय है। यह जैनशासन अर्थात् वस्तु का स्वरूप। सच्चिदानन्द आत्मा जाननस्वरूप ज्ञान, उसकी अन्तर में रागादि से विकल्प से भिन्न पड़कर अधिकपने आत्मा को भिन्न अनुभव करना, इसका नाम दुःख से मुक्त होने का उपाय है। इस जैनशासन का माहात्म्य क्या है, वह कहते हैं।

पयलियमाणकसाओ पयलियमिच्छत्तमोहसमचित्तो।
पावइ तिहुवणसारं बोही जिणसासणे जीवो॥७८॥

यह जीव जो है, वह जैनशासन में वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्हें पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द था, उन्होंने जो मार्ग कहा, उस जिनशासन में तीन भुवन में वह मार्ग सार है। **ऐसी बोधि अर्थात् रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग...'** जिनशासन का सार बोधि। बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र। स्वभाव-अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव भगवान आत्मा का अन्तर विश्वास और अनुभव की प्रतीति, उसके सम्बन्धी का ज्ञान और उसमें लीनतारूप चारित्र, इस दर्शन-ज्ञान-चारित्र को बोधि कहने में आता है। यह जैनशासन में तीन भुवन में सार है।

बोधि अर्थात् रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग... उसे प्राप्त करता है। परन्तु कैसा होता हुआ प्राप्त करता है? आत्मा का दुःख से मुक्त होने का ऐसा मार्ग और परम आनन्द की प्राप्ति होने का मार्ग, जो रत्नत्रयरूप बोधि मोक्षमार्ग किस प्रकार प्राप्त करता है? **'प्रगलितमानकषायः' अर्थात् जिसका मान कषाय प्रकर्षता से गल गया है...** जिसे आनन्द के आनन्दस्वभाव के अतिरिक्त कोई भी पुण्य-पाप का विकल्प, शरीर, वाणी, मन, पुण्य-पाप के फल में से जिसका अहंपना टल गया है। समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दधाम के अतिरिक्त—आत्मा के स्वभाव के अतिरिक्त

कोई भी राग, दया, दान, व्रत, विकल्प उसका बन्धन पुण्य, उसका फल यह बाहर की चीज़े, कहीं भी आत्मा के स्वभाव के अतिरिक्त छोटी में छोटी चीज़ में विशेषता / अधिकता भासित हो तो वह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? क्योंकि भगवान आत्मा आनन्दस्वभाव के अतिरिक्त कोई इस जगत में उससे अधिकपना, विशेषपना कोई चीज़ है ही नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि जिसे प्रकर्ष मान गल गया। आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप के भान में जिसे चाहे जिस प्रकार का पुण्य का शुभराग हो, उससे लेकर यह मैं हूँ, यह पुण्यभाव मैं हूँ, शरीर की सुन्दरता आदि की अधिकता देखकर उसे ऐसा हो जाए कि यह भी मुझे ठीक है, वह सब मिथ्यात्व का अभिमान है। समझ में आया? वह अभिमान जिसके अन्दर से, अपने आनन्दस्वभाव के भान और राग और पर से भिन्न / अधिक / पृथक् जानने से परसमय का अभिमान, अहंकार, गर्व जिसे गल गया है। समझ में आया? आहाहा! एक आत्मा आनन्दस्वरूप उसके अतिरिक्त किसी चीज़ में उसे अधिकपना, मेरापना, अहंपना भासित नहीं होता। समझ में आया? उसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है।

श्रोता : यह अहं.....

पूज्य गुरुदेवश्री : मान का अर्थ पर मैं, ऐसा। राग मैं, पुण्य मैं, व्यवहार मैं—यह अभिमान, वह मिथ्यात्व का अभिमान है। आहाहा! समझ में आया? मान शब्द से यह मैं—अहं। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम भी मैं। यह मान-अभिमान है। अनन्तानुबन्धी का मान। आहाहा! समझ में आया? जो आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है, उसका अहंपना—यह मैं, ऐसा छोड़कर, उसके अतिरिक्त के किसी भी पुण्य के विकल्प से, राग से लेकर किसी भी चीज़ का अहं—यह मेरी है, ऐसा भासित हो, वह अनन्त संसार के कारण का मिथ्यात्व का मान है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि मोक्ष का मार्ग अर्थात् दुःख से मुक्त होने का उपाय। अनादि से अज्ञानी प्राणी दुःखी है। यह राग का विकल्प या शरीर, वाणी या पुण्य के फल के संयोगों की ठाठ-बाट जमी हो, उसमें कहीं भी मैं हूँ और उसके कारण मुझे ठीक पड़ता है, यह मिथ्यात्व सम्बन्धी का मान है। किरणभाई! सूक्ष्म बात तो है सब, परन्तु आये हो बराबर ठीक अब इसमें। यह सुने तो सही कि यह क्या कुछ कहते हैं। दुनिया की पढ़ाई से कहीं यह पढ़ाई अलग प्रकार की है। आहाहा!

भाई! तू कौन है और किससे तेरी चीज़ भरपूर है? तेरा स्वभाव तो आनन्द, ज्ञान,

दर्शन, वीर्य से भरपूर है। हीन नहीं, विपरीत नहीं। ऐसा तेरा अन्दर स्वभाव, तेरा वस्तुस्वरूप है, उसे छोड़कर, भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ ऐसी ही जिसकी चीज़ और ऐसा ही उसका स्वरूप और उसके भाव में वह भरपूर है, उसे छोड़कर किसी भी विकल्प से लेकर परचीज़ की सुन्दरता, कोमलता, विशेषता, स्वभाव से दूसरी कोई चीज़ अधिकरूप भासित हो, उसका नाम यहाँ अहंकार, मान, अनन्त संसार का कारण उसे मान कहा जाता है। आहाहा! गजब बात भाई! समझ में आया?

भगवान जिनेश्वरदेव ऐसा फरमाते हैं। ऊपर कहा था न? 'जिन' का उपदेश है। **'जिणवरिंदेहि' 'जिणवरिंहि भणियं'** ७७ में कहा था। यहाँ **'जिणसासणे'** जीव प्राप्त करते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहते हैं कि भगवान आत्मा में आनन्द और सुख है, इसके अतिरिक्त किसी भी चीज में कहीं भी पुण्यभाव में भी सुखपना, ठीकपना, अधिकपना, विशेषता अतिशयता लगे तो वह अनन्त संसार का मान है। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं। **किसी परद्रव्य से अहंकाररूप गर्व नहीं करता है... किसी परद्रव्य...** अर्थात् आत्मद्रव्य के अतिरिक्त भगवान आत्मा सच्चिदानन्द निर्मलानन्द शुद्धध्रुव अखण्डानन्द आत्मा, उसके अतिरिक्त परद्रव्य—दया, दान, व्रत, भक्ति परिणाम सब परद्रव्य हैं।

श्रोता : शरीर, मन, वाणी सब आ गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : मन, वाणी तो स्थूल है। वह स्थूल धूल है। यह तो अन्दर में पुण्य परिणाम—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा से लेकर सब परद्रव्य। आहाहा! भाई! तेरे द्रव्य के माहात्म्य की तुझे खबर नहीं है। अन्दर वह क्या चीज़ है, उसका माहात्म्य छोड़कर जिसे परवस्तु, रागादि, पुण्यादि और उसके फलादि में माहात्म्य दिखता है, वह मूढ़ जीव परवस्तु को मैं हूँ—ऐसा मानकर गर्व में वह गल गया है। वह आत्मा की शान्ति को गला देता है। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया? है? वजुभाई! पुस्तक है या नहीं? ठीक। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, किसकी स्त्री? किसका पुत्र? किसका राग? किसका शरीर? किसकी वाणी? किसका रंग? किसका रूप? आहाहा! यह सब जड़ के अथवा पर के। उस स्वद्रव्य को छोड़कर जिसका अभिमान-मान अर्थात् कि यह पर रागादि, दया, दान, व्रतादि से लेकर देव-शास्त्र-गुरु, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, सम्मेदशिखर और... क्या कहलाता है? सिद्धगिरि, पालीताणा, शत्रुंजय, कहीं भी मैं हूँ और इससे मुझे लाभ होगा, (यह मिथ्यात्व है।) आहाहा!

श्रोता : दादा थे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : दादा कौन देता था? धूल। तेरे पास कहाँ नहीं, वह दादा तुझे दे। उसी प्रकार पुण्य माँगता है। 'शिवपद हमको देना रे महाराज' ऐसा माँगता है वहाँ। कुछ भान नहीं होता। शिवपद कहीं वहाँ रहता होगा? आता है न? मणिभाई! वहाँ भगवान के पास माँगता है। 'शिवपद हमको देना रे महाराज, शिवपद हमको देना' भगवान कहते हैं। परन्तु तेरा शिवपद मेरे पास है या तेरे पास है? आहाहा! आहाहा!

श्रोता : भगवान को सम्हालने नहीं दिया हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान को सम्हालने दिया होगा? अपना शिवपद भगवान को दिया होगा? आहाहा! समझ में आया? एक पैसे से लेकर करोड़-अरबों और तीन लोक का बड़ा राज, परन्तु मुझे ठीक है, वह मेरा है, उससे मुझे हर्ष और सन्तोष होता है, ऐसा जिसने माना है, उसने आत्मा को गलाया है और गर्व में यह गिर गया है। भगवान आत्मा के अतिरिक्त किसी भी परद्रव्य में विकल्प से लेकर परचीज़ में मुझे ठीक है, मुझे मजा है, कुछ मुझे इसकी ओर से मेरा वीर्य उल्लसित होता है, मुझे इसमें मजा पड़ता है, ऐसी जिसकी मान्यता है, जिसने आत्मा आनन्दस्वरूप को गला डाला है, मार डाला है और वह गर्व में गिर गया है। आहाहा!

देखो न, आचार्य टीका में कितना कहते हैं! आहाहा! '**पयलियमाणकसायो**' इतना शब्द रखा है। उसे गल गया है। आहाहा! जिसे पर में मान है, उसे आत्मा गल गया है। समझ में आया? जिसे पर में मान नहीं, उसे मान गल गया है, जल गया है। आत्मा मैं... आत्मा हूँ। मैं सत् अस्तित्व, मेरी सत्ता आनन्द और ज्ञानवाली है। मेरे ज्ञान और आनन्द के लिये किसी चीज़ की मुझे अपेक्षा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! इस प्रकार जिसे आत्मा का स्वभाव, प्रभु आनन्द का सागर है, ज्ञान का समुद्र है, श्रद्धा से भरपूर है, शान्ति का स्वरूप ही आत्मा है। उसे छोड़कर जिसे पर में मान होता है, स्वभाव से कुछ भी दूसरी चीज अधिक भासित होती है, अधिक भासित हो - विशेष भासित हो, इसे अतिशयवाली लगे, कहते हैं कि अनन्तानुबन्धी मान है, हों! भाई! आहाहा! समझ में आया? ऐ भीखाभाई! यह तो आत्मा की क्रीड़ा है। आहाहा!

भगवान! तुझमें कहाँ कमी है कि जिससे पर से तुझे कुछ सन्तोष हो। राग से, पुण्य से, उसके फल से, उसकी सामग्री के दिखाव प्रदर्शन से! आहाहा! भगवान! तुझे उसके कारण सन्तोष हो, तू ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वह तो सब परद्रव्य ने

प्रदर्शन किया है। आहाहा! उसे देखकर उसमें मैं हूँ अथवा वह मुझे कुछ लाभदायी है और मुझे उससे कुछ सन्तोष होता है, मुझे मुझसे उसमें कुछ अधिकपना भासित होता है, उसे राग से पर अपना अधिक / भिन्न स्वभाव है, उससे घात डाला है। आहाहा! समझ में आया?

अन्तर की दृष्टि के ऊपर सब बात है। बाहर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! जिसकी दृष्टि में भगवान स्वयं भूल गया है और जिसकी दृष्टि के परिणाम में दूसरी चीज़, भगवान आत्मा के आनन्दस्वभाव, ज्ञानस्वभाव के अतिरिक्त किसी दूसरी चीज़ में कुछ भी उल्लसित वीर्य होकर ठीक (है, ऐसा लगता है), ऐसा जो उसे भगवान अनन्तानुबन्धी, अनन्त संसार के दुःख के पन्थ में पड़ा हुआ अनन्तानुबन्धी मानवाला है। नवनीतभाई! आहाहा! कहो, वजुभाई! आहाहा! ऐसा मार्ग, भगवान! तेरा है, परन्तु उसकी तुझे खबर नहीं है। एक बीड़ी ठीक से जहाँ आवे वहाँ... सिगरेट पीता हो। ऐसे पीता हो या ऐसे पीता हो कुछ खबर नहीं। हमने कभी पी नहीं है। हमने कभी सिगरेट क्या, बीड़ी भी नहीं पी है। तम्बाकू-बम्बाकू कभी सूंघी नहीं है। आहाहा! सवेरे उठे और दो-चार सिगरेट पीवे, तब तो इसे दस्त ठीक से आवे। अर..र..! तब यह पाखाने जाए। आहाहा! कितने व्यसनों की रुचि का प्रेम कहाँ अर्पित हो गया है, भाई! आहाहा!

यहाँ भगवान तो (कहते हैं) '**प्रगलितमानकषायः**' इसे बोधि प्रगट होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसे सम्यग्दर्शन अर्थात् सत्य आत्मा के स्वभाव की साक्षात्कार की प्रतीति, उसका ज्ञान और उसकी रमणता (कहते हैं)। जिसे पर का मान गल गया है, आत्मा के अतिरिक्त इन्द्र का राग भी जिसे सड़ा हुए तृण जैसा लगता है। यह शरीर तो धान का पिण्ड है। दो दिन धान न खावे वहाँ ऐसा और वैसा सूख जाता है। समझ में आया? आठ दिन ठीक से बुखार आया हो, जिसके साथ प्रियता करने जाता था तब उसे देखो तो शरीर सूख गया हो, मुँह गिर गया हो, पेट सिकुड़ गया हो, चमड़ी में फीकापन आ गया हो, आठ दिन पाँच-पाँच डिग्री ठीक से बुखार आया हो, डॉक्टर कहें कुछ लेना नहीं। एक उकाली लेना। हाय.. हाय.. आहाहा!

ऐसे में तो क्या है? परन्तु इन्द्र के इन्द्रासन, जिसे हजार-हजार वर्ष में तो आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। पन्द्रह-पन्द्रह दिन में तो जिसे ऊँच-नीची सांस की क्रिया होती है। श्वासोच्छ्वास एक पखवाड़े में लेते हैं, एक पखवाड़े में सांस ले। इतनी साता की अनुकूलता है, ऐसा कहना है। पन्द्रह दिन में तो एक सांस ऊँचा लेकर छोड़े इतना बस। हजार वर्ष में आहार की इच्छा उत्पन्न हो, हजार वर्ष में, एक सागरोपमवाले को। समझ में आया? उसमें

भी कुछ ठीक है, वह अभिमान मिथ्यात्व और मान का है, भाई! तेरे आनन्दस्वभाव के सागर के समक्ष दुनिया में कोई चीज़ अधिक है नहीं। समझ में आया? चमड़ी जरा रूपवान, कोमल देखकर इसे गलगलिया हो जाता है। अरे! भगवान! तू कहाँ गया? तू कहाँ खो गया? समझ में आया? तेरी चीज़ अन्दर ज्ञान और आनन्द से भरपूर और ऐसे चमड़े का जरा ऊपर लेप (होता है)। यह तो लेप है। गन्ने का छिलका जरा निकाल डाले। वह तो मोटा होता है, हों! गन्ने के ऊपर छाल होती है, वह मोटी होती है। शेरडी समझते हो? गन्ना। उसकी छाल होती है, वह बहुत मोटी होती है। यह तो बहुत पतली है। छह अंगुली निकालने लगे तो बहुत पतली निकले। फिर देखने जावे तो सूँघने को भी खड़ा न रहे, ऐसा है यह। आहाहा!

भगवान! तुझे यदि चीरे तो उसमें से आनन्द निकले, ऐसा तू है अर्थात् तू आत्मा के आनन्द सागर में एक बार डुबकी मार... वहाँ अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र उछलता है, आहाहा! ऐसा आत्मा कहाँ गया? तूने क्या किया? कहते हैं। प्रगलित मान। आहाहा! मान जिसने गला डाला है। मुझमें दूसरी कोई चीज़ नहीं है और दूसरी किसी चीज़ के कारण मैं हूँ या उसके कारण मुझे ठीक पड़ता है, ऐसे जिसे मान गल गया। आहाहा! यह अनन्तानुबन्धी। भाई, चन्दुभाई! आहाहा!

श्रोता : मान की ऐसी व्याख्या है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्याख्या ऐसी है। आहाहा!

किसी परद्रव्य से अहंकाररूप गर्व नहीं करता है... आहाहा! **किसी परद्रव्य से...** भगवान आत्मा के अतिरिक्त, चिदानन्द आनन्द के अतिरिक्त कोई भी द्रव्य, उसके ऊपर **किसी परद्रव्य से अहंकाररूप...** यह मैं, ऐसा मान नहीं करता। परन्तु जिसे खबर भी नहीं कि मैं क्या करता हूँ? क्या होता है? और कहाँ जाऊँगा? और इसके भाव के फल कहाँ जाएँगे, इसकी भी खबर नहीं होती। समझ में आया? और **जिसका मान कषाय प्रकर्षता से गल गया है, किसी परद्रव्य से अहंकाररूप गर्व नहीं करता है और जिसके मिथ्यात्व का उदयरूप मोह भी...** उसने ऐसा डाला '**मिच्छत्तमोह**' ऐसा साथ में डाल दिया। समझ में आया? दो ही लिया। मान गल गया है और मिथ्यात्व टल गया है। अनन्तानुबन्धी का मान और मिथ्यात्व – दो बातें ली हैं। आहाहा!

कहते हैं **कैसा भया सन्ता? कैसा होता हुआ? प्रगलित अर्थात् गल गया है, नष्ट हो गया है...** क्या? मिथ्यात्व का उदयरूप मोह। आनन्दस्वरूप के अनुभव में जिसे मिथ्या भ्रान्ति तो गलकर नाश हो गयी है। आहाहा! कहीं भ्रम नहीं होता कि यह मुझे अच्छा है, यह मुझे

ठीक है, यह मुझे लाभदायी, यह मुझे सहायक है, यह मुझे मददगार है, मैं दूसरों को मददगार हूँ। ऐसा जो मिथ्यात्वभाव... वीतराग का मार्ग ऐसा है। आहाहा! लोगों को सुनने को भी मिलता नहीं। इसे पूरे दिन धमाधम - यह करो... यह करो... यह करो... अरे! भगवान! जो कुछ करने का है, वह रह जाता है। जन्म-मरण गलाने का मार्ग वह कुछ रह जाता है। वातविया! ऐसा है यह, देखो!

यह मेरा भेष, कहते हैं कि यह मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। परद्रव्य में आया या नहीं वह? लो, रामजीभाई पहले इसमें थे। जवानी में सलाह दी थी कि चलो जेल। चलो। दो महीने नहीं? एक बार एक महीना और एक बार दो महीना। आहाहा! गजब दुनिया वह भी पागल है न? पागल के गाँव कहीं अलग होते हैं? पागल के गाँव अलग नहीं मिलते। हर गाँव में पागल (होते हैं)।

श्रोता : हर गाँव में पागल नहीं, हर घर में पागल। हर व्यक्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : हर व्यक्ति पागल, लो न! आहाहा! अरे! भगवान! तू कौन है, प्रभु! कहाँ है? कैसे है? इसकी तुझे खबर बिना जो तुझमें कभी है नहीं। पुण्य-पाप के विकल्प आदि तुझमें है ही नहीं। वे तो कृत्रिम खड़े करके मेरा मानता है। समझ में आया? आहाहा! यह बाहर की मिठास, उसमें दो-पाँच करोड़ की पूँजी हो। लड़के-बड़के लम्बे पाँच-पाँच हाथ के अच्छे पके हों, रूपवान और समधि रिश्तेदार अच्छे मिले हों। आहाहा! मैं चौड़ा और गली सकड़ी। अपने सबसे सुखी हैं। अपनी बादशाही है। मर गया है सुन न अब। बादशाही कहाँ से आयी तेरी? समझ में आया? उसमें यह है। है? ७८ (गाथा)। शब्द का बहुत अर्थ नहीं परन्तु पाठ है न पाठ? उसमें नहीं। यह पाठ है।

कैसा भया सन्ता... कैसा है भया सन्ता, वह दो प्रकार से कहा। पहले ऐसा कहा कैसा भया सन्ता कि प्रगलित मान प्रकर्ष करी गल्या। प्र अर्थात् विशेषण। विशेषकर जिसका मान गल गया है। और कैसा होता हुआ? '**जिसके मिथ्यात्व का उदयरूप मोह भी नष्ट हो गया है...**' ऐसा ले लिया। आहाहा! पर तरफ की सावधानी का मिथ्यात्वभाव गल गया है। भगवान आत्मा के स्वभाव-सन्मुख सावधान.. सावधान.. सावधान.. 'समयवर्ते सावधान' ऐसा नहीं कहते? यह विवाह करते हैं, तब कहते हैं या नहीं? समय अर्थात् आत्मा। आत्मा को समय कहते हैं न? समयसार। समयवर्ते सावधान। भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द की मूर्ति प्रभु तू समय है न! उसमें वर्तना, वह सावधानपना, वह सम्यक् है। अन्य तो और स्त्री से विवाह करने जाए तो समयवर्ते सावधान (बोले)। वह तो टाइम हुआ (तो कहते हैं), लाओ कन्या

को। आठ बज गये। टाइम हो गया। फिर टाइम निकल जाएगा। माँस की हड्डियाँ हैं, उसके साथ विवाह। अरे! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि जिसने राग में लगन लगायी, पुण्य के परिणाम में लगन लगायी, उसने आत्मा की लगन छोड़ दी है। बेचरभाई! भगवानजीभाई! आहाहा! अरे! तू कौन, कहाँ और कहाँ तो मानकर बैठा है? उसकी भ्रमणा गयी है। कहीं भी मेरापन है, ऐसा मिथ्यात्वभाव जिसे गल गया है। वह जैन शास्त्र का सार, बोधि, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त करता है। **'बोहि लाभं'** नहीं आता? लोगस्स में आता है। **'आरोग बोहि लाभं समाहि..., ''वरमुत्तमं'** अर्थ की खबर नहीं पड़ती, ऐसे के ऐसे बाहर में पहाड़े बोलते रहते हैं। अरे! अवतार चला जाता है, भगवान! समय-समय चला जाता है, भाई! यह समय अब वापस नहीं आयेगा। मरण की स्थिति के सन्मुख दौड़ा जाता है। काल तो मरण के सन्मुख ऐसे का ऐसा दौड़ा जाता है। आहाहा! विश्रामरहित। तुझे करना हो तो यह है। लाख दुनिया चाहे जो हो, उसके पास (रही)।

छहढाला में आता है न? 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो।' यह नवनीतभाई को पूरा कण्ठस्थ है। भाई को कण्ठस्थ है, इसलिए यह सब उन्हें ठीक से बैठ गया। पूरा कण्ठस्थ किया है। उसमें भी यह है। भाई! आता है न उसमें? 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो, छोड़ि जगत द्वंद्व-फन्द निश्चय आतम उर आणो।' अरे भगवान! महाप्रभु विराजता है न, भाई! जहाँ उसके दरबार में जा न! यह राग और बाग के वेश्याओं जैसे भाव, व्यभिचारी भाव है, ऐसा भगवान ने कहा है। पुण्य का भाव (भी) व्यभिचारी भाव है। आहाहा! उस व्यभिचार के साथ तुझे प्रेम करना कैसे सूझता है?

मिथ्यात्व का उदयरूप मोह भी नष्ट हो गया है...' क्या कहते हैं? मिथ्यात्व का मोह जिसका गल गया है। भ्रमणा भी नहीं होती। मैं भगवान हूँ। मेरा आनन्द और मेरी शान्ति से भरपूर मैं हूँ। मेरी शान्ति कहीं से मिले, ऐसी नहीं है। कहीं तीन लोक, तीन काल में मेरे अतिरिक्त कहीं शान्ति है नहीं। मुझमें शान्ति है, इस प्रकार जिसे सम्यग्दर्शन में भासित हुआ है, उसका मिथ्यात्व गल गया है। **इसीलिए 'समचित' है,...** देखो, ऐसा कहा है न **'पयलिय-मिच्छत्तमोहसमचित्तो'** अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा के परिणाम जिसे प्रगट हुए हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

यह मिथ्यात्व मोह जिसे गल गया है, **इसीलिए 'समचित्त' है, परद्रव्य में ममकाररूप मिथ्यात्व और इष्ट-अनिष्ट बुद्धिरूप रागद्वेष जिसके नहीं है,...** लो! परद्रव्य में मिथ्यात्व अर्थात् ममतारूप मिथ्यात्व, राग का विकल्प उठे, उसके प्रति अहंपना और वहाँ से इष्ट-अनिष्ट

पदार्थ। यह इष्ट है और अनिष्ट है, ऐसा जो राग-द्वेष है, वह सब छूट गया है। जगत में कोई इष्ट-अनिष्ट है ही नहीं। जगत की चीज़ें उनकी पर्यायरूप परिणम रही है। उसने कोई विष्टा अनिष्ट है, कस्तूरी इष्ट है, मित्र इष्ट है, दुश्मन अनिष्ट है—ऐसा कुछ है ही नहीं। सब ज्ञेय हैं। ज्ञान में जाननेयोग्य ज्ञेय हैं। इष्ट कौन? अनिष्ट कौन? बाहर में इष्ट-अनिष्टपना है ही कहाँ? तेरा विकारभाव, वह अनिष्ट है; स्वभावभाव, वह इष्ट है। समझ में आया? जयन्तीभाई आये हैं न? यह तो कहा, भावनगर के आये हैं और यह रविवार का अधिकार है न, इसलिए।

श्रोता : कमाने के साधन बराबर होवें तो ठीक।

पूज्य गुरुदेवश्री : कमाने के यह साधन हैं। अन्य मर जाने के साधन हैं। चक्रवर्ती छह खण्ड का धनी, वह रोटी माँगे, रे मुझे देना, मुझे रोटी देना। अर..र..! एक रोटी देना। परन्तु तेरे घर में पकवान पकते हैं न? सवेरे नौ बजे दाने होकर तेरे घर में रोटियाँ होती हैं। चक्रवर्ती के घर में सवेरे बोबे, सवेरे बोवे... नौ बजे तैयार गेहूँ। देव है न? उसके... फिर देव हैं। एक हजार देव सेवा करते हैं। यह सब शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, भरत चक्रवर्ती। सवेरे उठे और बोवे। तुम्हारे पुराने गेहूँ को। अमरेली से क्या कहलाता है वह? अमेरिका। पुरान आवे, साधारण... आवे, पतला आवे, अमुक आवे, ऐसा नहीं। वहाँ तो सवेरे उनके देव बोवे, घण्टे भर के लिये, नौ बजे गेहूँ की रोटी होकर तैयार। लाखों-करोड़ों रुपयों की भस्म उस रोटी में डाले। घी में भस्म तले। ऐसी औषधि होवे कि जिसमें पाँच सेर घी डाले और उसमें पचास-सौ दाने गेहूँ के डाले और उसमें भस्म डाले, सोना डाले, मोती डाले, वह पिघल जाए, गेहूँ पी जाए। उस गेहूँ की रोटी बनावे। वह गेहूँ खावे। आहाहा! धूल में भी नहीं, कहते हैं सुन न! क्या हो जाता है तुझे? समझ में आया? यह चक्रवर्ती जिसके घर में ऐसा, वह भीख माँगे, ऐ... मुझे देना यह। अरे! यह क्या है तुझे? तीन लोक का नाथ परमात्मा तू विराजमान है और भिखारी होकर कुछ मुझे मान दो, बड़ा कहो, मुझे कुछ गिनती में गिनो। मैं गिनती के लोगों में कुछ थोड़े हों, उनमें मैं आ जाऊँ तो ठीक। अरे रे! गजब भाई यह तो! गाँव में कोई मन्त्री के लोग गिने जाएँ और उनमें मैं आ जाऊँ। परन्तु क्या है तुझे? आहाहा! भाई! वीतराग की आज्ञा में गिनती में आ जा, फिर पूरा हो गया। भगवान ने गिना कि इतने-इतने समकिती भक्त हैं। उनमें तू आया तो पूरा हो गया, जाओ। समझ में आया?

कहते हैं **इष्ट-अनिष्ट बुद्धिरूप रागद्वेष जिसके नहीं है,...** समकित की व्याख्या की है। एक तो मिथ्यात्व नहीं, मान गल गया है और ज्ञेय पदार्थ के ज्ञेय की अनुकूलता-प्रतिकूलता देखकर ज्ञानी को राग-द्वेष नहीं होता। समझ में आया? चीज़ के कारण नहीं होता। ज्ञानी को

कोई कमजोरी के कारण होता है, वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। समझ में आया? परन्तु परवस्तु के कारण मुझे यह अनुकूल, इसलिए राग – यह मिथ्यात्वभाव का राग है। यह प्रतिकूलता, इसलिए दुश्मन है, इसलिए द्वेष। प्रतिकूलता का द्वेष मिथ्यात्व का द्वेष है। आहाहा! **रागद्वेष जिसके नहीं है,...**

भावार्थ - मिथ्यात्वभाव और कषायभाव का स्वरूप अन्यमतों में यथार्थ नहीं है। सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त-जिनेश्वरदेव वीतराग परमात्मा देवाधिदेव के अतिरिक्त जितने मार्ग हैं, उनमें ऐसा स्वरूप नहीं है। कहीं नहीं है, कहीं नहीं है, भाई! समझ में आया? **मिथ्यात्वभाव और कषायभाव का स्वरूप अन्यमतों में यथार्थ नहीं है। यह कथन इस वीतरागरूप जिनमत में ही है,...** आहाहा! ऐसी पद्धति की शैली वह वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर की मार्ग में ही होती है। समझ में आया? आहाहा!

जिन्होंने तीन काल, तीन लोक देखे और जिन्हें वीतरागभाव वर्तता है, उनकी वाणी में जो आया, ऐसा स्वरूप तीन काल में अन्यत्र नहीं हो सकता। आहाहा! कहो, जयन्तीभाई! सम्प्रदाय में पड़े हैं, उन्हें भी खबर नहीं है कि वीतराग क्या कहते हैं। आहाहा! देखा? एक तो मिथ्यात्वभाव का स्वरूप, कषायभाव का स्वरूप अन्यमत में कहीं यथार्थ है ही नहीं। सब नाम तो सब बहुत लें, भाई! नवनीतभाई! कबीर के भी शब्द बोले थे न सवेरे? कहीं वस्तु की यथार्थता है ही नहीं। यह भाषा ऊपर से लेकर ऐसा आत्मा और वैसा आत्मा, ऐसी सबने बात की है। समझ में आया?

इसलिए यह जीव मिथ्यात्व कषाय के अभावरूप मोक्षमार्ग तीन लोक में सार... मिथ्यात्व और कषाय के अभावरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप **तीन लोक में सार...** आता है न? छहढाला में आता है न पहले। 'तीन भुवन में सार वीतराग विज्ञानता' यह छहढाला में आता है। 'तीन भुवन में सार वीतराग विज्ञानता' **तीन लोक में सार जिनमत के सेवन ही से पाता है,....** वीतरागमार्ग में कथित मार्ग से आत्मा प्राप्त होता है। समझ में आया? देखा? जिनमत का सेवन। वीतराग का मत अर्थात् अभिप्राय। वीतराग का अभिप्राय रागादि परद्रव्य से छूटकर तेरे स्वचैतन्य की दृष्टि का अनुभव कर, यह वीतरागता अभिप्राय है। समझ में आया?

जिनमत के सेवन ही से पाता है, अन्यत्र नहीं है। अन्यत्र ऐसा मार्ग मिले, ऐसा नहीं है। सुनने का ठिकाना नहीं होता, सुनानेवाले का ठिकाना नहीं होता कि क्या चीज़ है? उस चीज़ को कहाँ से समझावे और कहाँ से प्राप्त करे? बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा! गजब गाथा, बहुत सरस गाथा आयी है।

आगे कहते हैं कि जिनशासन में ऐसा मुनि ही तीर्थंकर प्रकृति बाँधता है:- लो, कहते हैं कि ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव, जैनशासन में कोई शुभभाव आवे तो तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। दूसरे सम्यग्दर्शन के बिना, जैनशासन के बिना कहीं उसकी प्रकृति नहीं बाँधते। समझ में आया? इस प्रकार एक पुण्य की विशेषता बताते हैं। ऐसा पुण्य भी जैनशासन में होता है। मिथ्यादृष्टि—जिसकी विपरीत मान्यता है, उसमें तीर्थंकरगोत्र के परिणाम उसे हो ही नहीं सकते। सम्यग्दृष्टि आत्मज्ञानी को ऐसे परिणाम होते हैं।

श्रोता : अकेले मुनि ही बाँधते हैं? श्रावक नहीं बाँधते?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बाँधते ही हैं। यह तो मुनि की मुख्यता की बात है। समझ में आया? यह तो मुख्यता से बात है। चौथे गुणस्थान में बाँधते हैं। यह तो मुनि से शुरु करके सब बात की है। ये सब मुनि... द्रव्यलिंगी... समझ में आया?

विसयविरत्तो समणो छद्दसवरकारणाइं भाऊण।
तित्थयरणामकम्मं बंधइ अइरेण कालेण॥७९॥

आहाहा! देखो! मोक्षमार्ग बताया; उसके साथ तीर्थंकरप्रकृति भी ऐसे जीव को होती है, ऐसा कहते हैं। दूसरे अज्ञानी को नहीं होती, फिर चाहे जैसी कषाय मन्द हो, नग्न हो, बाबा हो, मिथ्यादृष्टि नग्न दिगम्बर मुनि हो, उसे तीर्थंकरप्रकृति के परिणाम हो ही नहीं सकते।

सम्यग्दर्शन, वह जैनमत में कहा वह। सम्यग्दर्शन नाम तो बौद्ध में भी आता है। समझ में आया? बौद्ध में भी सम्यग्दर्शन, समाधि, बोधिलाभ, ऐसा बहुत आता है। सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग देव ने अखण्ड परिपूर्ण मार्ग अनादि से केवली देखते आये हैं। अनादि के केवली होते आये हैं, कहीं नये नहीं हैं। ऐसे सर्वज्ञ ने जो मार्ग देखा, जाना और कहा, उसके अतिरिक्त कहीं सम्यक् मार्ग नहीं हो सकता। इसके बिना तीर्थंकरपना भी अन्यत्र नहीं हो सकता। आया न?

जिसका चित्त इन्द्रियों के विषयों से विरक्त है... अर्थात् यह भाव जब... समकिती को तीर्थंकरपने का शुभभाव है न! उस समय इन्द्रिय के विषय की आसक्ति नहीं है। अमुक समय समकिती को आसक्ति होती है परन्तु इस समय उसे नहीं है। वह इन्द्रिय के विषय से विरक्त हुआ है। समझ में आया? दूसरे प्रकार से कहें तो समकिती तो इन्द्रिय के विषय से विरक्त ही है क्योंकि इन्द्रिय परद्रव्य है न! और राग परद्रव्य है, उससे विरक्त ही है, दृष्टि में तो उससे भिन्न ही है। आहाहा!

श्रोता : आहार भी विषय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ विषय है। बाहर विषय है, बहिर विषय है। आहाहा! वीतरागमार्ग!

कहते हैं **इन्द्रियों के विषयों से विरक्त है...** परसन्मुख के विषयवाला भाव, उससे भिन्न पड़ा है चित्त जाका... जिसका चित्त। यह तो श्रमण मुनि की मुख्यता से बात की है। **अर्थात् मुनि है, वह सोलहकारण भावना को भाकर...** सोलहकारण के ऐसे विकल्प उसे आ जाते हैं, उसे 'भाय' ऐसा कहने में आता है। **'तीर्थंकर' नाम प्रकृति को थोड़े ही समय में बाँध लेता है।** आहाहा! थोड़े काल में सम्यग्दृष्टि तीर्थंकरप्रकृति बाँधकर, थोड़े काल में केवलज्ञान पाकर तीर्थंकरप्रकृति का फल समवसरण आदि आकर छूट जाएगा। समझ में आया? यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि तीन लोक की महाऋद्धिवाला तीर्थंकरपना। दूसरी तेरी ऋद्धि तो कहाँ रही, ऐसा कहते हैं। ऐसी जो ऋद्धि, जिसे उसकी रुचि नहीं। जिसे राग का भाव-आदर नहीं, उसे ऐसा राग होता है। समझ में आया?

जिसे इन्द्र के इन्द्रासन खिलें, भगवान जहाँ जन्मते हैं, इन्द्रासन डोलते। क्या है? ओहो! अवधिज्ञान से देखता है। भरतक्षेत्र में या महाविदेहक्षेत्र में तीर्थंकर का जन्म हुआ। एक बार सिंहासन से नीचे उतर जाता है। सिंहासन समझते हो। सिंह-सिंह। चारों ओर सिंह हों, ऐसा उसका आसन होता है। हीरे के सिंह होते हैं। सिंहासन कहते हैं न? सिंहासन। कल भक्ति में आया था। खबर है? हरिआसन। भाई! कल भक्ति में आया था। हरिआसन। हरि अर्थात् सिंह। सिंह का आसन। बैठने के ऐसे आसन होते हैं कि जिसके चारों कौनों में हीरे के सिंह होते हैं। हीरा के ऐसे पाट होते हैं, पाट। उस पर इन्द्र विराजते हैं। इन्द्र, इन्द्राणी। कहते हैं कि वह भी तुच्छ है। जिसमें सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकरपना है, ऐसी जो ऋद्धि, उसे इन्द्र नमते हैं। कल आया था। करोड़ों मनुष्य अंजुली अर्थात् हाथ जोड़ते हैं। ऐसे पुण्य प्रकृति के परिणाम समकिती को होते हैं। समझ में आया? है यह राग। तीर्थंकरगोत्र बाँधने का भाव है, वह राग है। परन्तु यहाँ यह कहना है कि भाव तो सम्यग्दृष्टि होवे, उसे ऐसा भाव होता है। जिसे राग का प्रेम है, रुचि है और पर का अहंकार है, उस मिथ्यादृष्टि को ऐसा भाव नहीं हो सकता। समझ में आया?

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सोलह बोल आते हैं न? सोलह बोल। सोलह बोल। सोलहकारण भावना। नीचे आते हैं। सोलह भावना। सम्यग्दर्शन के अनुभवसहित।

श्रोता : कौन सा भाव?

पूज्य गुरुदेवश्री : रागभाव।

श्रोता : उसका अर्थ कल्याण...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं; वह तो राग ऐसा आता है। वह राग यह सोलह भाव है, ऐसा राग आता है, बस। दुनिया का कल्याण होवे, ऐसा कहलाता है। कहलाता है कल्याण हो उसमें। मेरा पूर्ण हो उसका अर्थ ऐसा है, मेरा कल्याण पूर्ण हो, ऐसा विकल्प आता है। उस विकल्प में तीर्थंकरगोत्र बँध जाता है। समझ में आया? आहाहा!

यह भाव का माहात्म्य है। देखो! यह सम्यग्दर्शन के अनुभव में ऐसा भाव होता है।

श्रोता : पुण्य का माहात्म्य...

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य का माहात्म्य नहीं, सम्यग्दर्शन का माहात्म्य। उसके माहात्म्य में ऐसा भाव होता है। अज्ञानी को यह भाव नहीं होता। जिसे सौ इन्द्रों के सिर नमते हैं। प्रभु! धन्य अवतार। समझ में आया? जिसने तीर्थंकर को गर्भ में रखा, उसकी माँ को इन्द्र आकर पहले नमस्कार करता है। उस समकिती को ऐसा भाव होता है, यह यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? देखो, पाठ है न देखो! '**तित्थरनामकम्मं**' भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का स्पष्ट पाठ है।

यहाँ सिद्ध तो यह करना है कि जो तीर्थंकरगोत्र है, वह परिणाम सम्यग्दर्शन के बिना पूर्ण नहीं होते। चौथे में होते हैं, पाँचवें में होते हैं, छठवें में होते हैं, सातवें तक बँधते हैं। आठवें गुणस्थान से नहीं। परन्तु मिथ्यादृष्टि चाहे जैसा द्रव्यलिंगी मुनि हो, अट्ठाईस मूलगुण पालता हो और चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो भी क्रोध न करे, तो भी उसे सम्यग्दर्शन नहीं; इसलिए उसे ऐसे परिणाम नहीं हो सकते। आहाहा! ऐसा करके सिद्ध यह करना है।

यह भाव का माहात्म्य है, विषयों से विरक्तभाव होकर... विषय की रुचि ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आत्मा के आनन्द के समक्ष दूसरे विषय में रुचि किसकी हो? धूल की? आहाहा! **सोलहकारण भावना भावे तो, अचिंत्य है महिमा जिसकी, ऐसी तीन लोक से पूज्य...** तीन लोक से पूज्य, '**तीर्थंकर**' **नाम प्रकृति को बाँधता है और उसको भोगकर...** भोग कर अर्थात् मिलती है। वास्तव में तो तीर्थंकर प्रकृति का फल तो तेरहवें (गुणस्थान में) उदय में आता है।

श्रोता : तेरहवें गुणस्थान में...

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञान होता है, तब तीर्थंकरप्रकृति का उदय आता है। क्या भोगना? समझ में आया? तीर्थंकर के परिणाम चौथे-पाँचवें, छठवें गुणस्थान में आवें परन्तु

इस बाँधी हुई प्रकृति का फल तेरहवें (गुणस्थान) में आता है। केवलज्ञान होता है, तब प्रकृति का फल समवसरण आदि उदय में आता है। अब उन्हें कहाँ भोगना है ? आहाहा! ऐई!

और उसको भोगकर मोक्ष को प्राप्त होता है। तीर्थंकरपना जिसे प्राप्त है, उसे अल्प काल में केवलज्ञान होकर मोक्ष में जाता है। यह तो यहाँ शुभभाव की विशेषता बतायी। बाकी वह उसे रोक देता है। परन्तु यहाँ कहते हैं ऐसा भाव जैनशासन में सम्यग्दृष्टि जीव को ऐसा होता है। इतनी बात है। समझ में आया ?

दर्शनविशुद्धि... लो, पहला बोल सम्यग्दर्शन की विशुद्धि। यह दर्शनविशुद्धि विकल्पवाली है। शुभराग साथ में है। सम्यग्दर्शन है, आत्मा का भान है। आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, मेरे आनन्द के समक्ष सारी दुनिया, इन्द्र के इन्द्रासन, चक्रवर्ती के पद... उसमें नहीं आता है ?

चक्रवर्ती की सम्पदा इन्द्र सरीखा भोग,
काग वीट सम मानत है सम्यग्दृष्टि लोग॥

आहाहा! परन्तु उसे होवे और माने, ऐसा कहते हैं। अज्ञानी को ऐसा नहीं होता। आहाहा! काग वीट सम। कौवे की विष्टा खाने में भी काम नहीं आती। मनुष्य की विष्टा तो सूकर भी खाता है। कौवे की विष्टा है, वह खेत में भी नहीं डाली जाती। खातर समझते हो ? खाद, उसे खेत में नहीं डालते। बिगाड़ डालती है। 'चक्रवर्ती की सम्पदा इन्द्र सरीखा भोग,' पुण्य का फल। तथापि 'काग वीट सम मानत है सम्यग्दृष्टि लोग'

श्रोता : द्वेष नहीं किया जाता न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। द्वेष की बात नहीं। वह तो ज्ञेय है, ऐसा कहते हैं। वह तो ज्ञेय है, उसे कहीं उसकी महिमा नहीं है।

श्रोता : .....सम्यग्दर्शन की महिमा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बात यह है। और सम्यग्दर्शन में ऐसे बन्ध के परिणाम आते हैं, इतना यहाँ बतलाना है। अच्छे हैं और ठीक हैं, ऐसा यहाँ कहना नहीं है। समझ में आया ? परन्तु ऐसे जो परिणाम सर्वोत्कृष्ट पुण्य की प्रकृति, बियालीस प्रकृति, उसमें तीर्थंकरप्रकृति सर्वोत्कृष्ट है। यह सम्यग्दर्शन के आत्मा के भान की भूमिका में ऐसा भाव आ जाता है। ऐसी ऋद्धि होती है कि इन्द्रों को नहीं होती। इन्द्र भी उनके समक्ष पानी भरते हैं। खम्बा अन्नदाता – ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? जिनके मुकुट नम जाते हैं, जिनके चरणकमल में सौ-सौ इन्द्र आकर नमते हैं, बाघ और सिंह ऐसे नमते हैं।

श्रोता : थोड़े समय के लिये नारकियों को भी साता हो जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर की साता, आत्मा की नहीं, बाहर की। समझ में आया? आत्मा की साता एक समय मिल जाए तो हो गया, जन्म-मरण मिट जाते हैं। बाहर की मिलती है। दर्शनविशुद्धि यह है विकल्पवाली, हों! समकित में एक विकल्प होता है, उसे यहाँ दर्शनविशुद्धि कही है, क्योंकि दर्शनविशुद्धि बँधने के पश्चात् समकिती बँधता नहीं है परन्तु उसमें विकल्प-भाव होता है कि मैं पूर्ण होऊँ, मेरा स्वरूप पूर्ण हो। बाहर से कहते हैं कि जगत का कल्याण होओ, हित होओ। सर्व जीव करूँ शासन रचि... आता है न? सर्व जीव करूँ शासन रचि, ऐसी भाव दया मन उल्लसी। यह विकल्प-राग है। सर्व जीव करूँ शासन... सब जीव, पूरी दुनिया धर्म प्राप्त करो। सब भगवान—सर्व जीव सिद्धपद को प्राप्त करो। आहाहा! इस सिद्धपद से पीछे क्यों फिरते हो? सिद्धपद। आहाहा! सामूहिक आमन्त्रण देते हैं। सब जीमण में आना। सबको कहते हैं कि आना-आना, मेरा लाभ लेने। समझ में आया? तुम्हारा लाभ लेने, ऐसा इसका अर्थ है।

(२) विनयसम्पन्नता... दूसरा बोल। परन्तु यह सब दर्शन होवे तो विनय सम्पन्नता। नहीं तो इसके बिना कुछ नहीं। यह नीचे लिखेंगे। **इनमें सम्यग्दर्शन प्रधान है, यह न हो और पन्द्रह भावना का व्यवहार हो तो कार्यकारी नहीं है...** समझ में आया? **विनयसम्पन्न...** यह विकल्प है। देव-गुरु-शास्त्र का बहुमान होता है। विनय... विनय... विनय... विनय... दासानुदास हूँ। सर्वज्ञ तीर्थंकर सन्तों का दासानुदास हूँ। समझ में आया? ऐसा भाव, सम्यग्दृष्टि को ऐसी भूमिका में ऐसा शुभभाव होता है, इतना बतलाना है। ऐसा भाव मिथ्यादृष्टि को नहीं होता। नग्न मुनि नौवें ग्रैवेयक जाए, तो भी उसे यह भाव नहीं होता। उसका यह शुक्ललेश्या भाव हो और नौवें ग्रैवेयक जाए। वापस नीचे पड़ता है। आहाहा!

(३) शीलव्रत के अणअतिचार,... शीलव्रत अतिचाररहित पालन करता है। अतिचार न हो, ऐसा निर्दोष। ऐसा विकल्प होता है। **(४) अभीक्ष्णज्ञानोपयोग...** बारम्बार ज्ञान का उपयोग अन्दर... तथापि वह ज्ञान उपयोग है, वह बन्ध का कारण नहीं है। बारम्बार ज्ञान के उपयोग का विकल्प आता है। राग, वह तीर्थंकरगोत्र बाँधता है। ऐसा समकिती के अतिरिक्त ऐसा अभिक्षीण ज्ञानोपयोग का भाव नहीं होता, ऐसा कहते हैं। दूसरे भी कहते हैं। ओहो! क्या... सज्झाय! परन्तु दृष्टि की खबर बिना। समझ में आया? लो! चार बोल हुए। विशेष बोल कहेंगे। ऐसे भाव होवें तो तीर्थंकर गोत्र बँधती है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(२२) **श्री अष्टपाहुड़, भावपाहुड़, गाथा - ८८-८९, प्रवचन - १२७**
दिनांक - ३०-१०-१९७०

अष्टपाहुड़, भावपाहुड़ की ८८ गाथा। आज तो भगवान का मोक्ष का दिन है... है न? कार्तिक कृष्ण चौदह के पीछे के भाग में भगवान मोक्ष पधारे, यह कार्तिक... आसोज कृष्ण चौदह (गुजराती तिथि) और कार्तिक कृष्ण चौदह... के सवेरे के अन्तिम भाग में भगवान मोक्ष पधारे। अर्थात् आत्मा की पवित्रता पूर्ण प्राप्त हो गयी। मोक्ष की व्याख्या यह है। आत्मा का जो स्वभाव मोक्षस्वरूप ही त्रिकाल है, उसकी पर्याय में पूर्ण प्राप्ति हो गयी, इसका नाम व्यवहार बाह्य मोक्ष कहा जाता है। पर्याय में मोक्ष। द्रव्य मोक्ष त्रिकाल है। ऐसे भगवान अनादि जो संसार था, उसका अन्त आ गया और मोक्ष की पर्याय सादि होकर अनन्त रहेगी। अनन्त काल वह मोक्ष की पर्याय। अतीन्द्रिय आनन्द की दशा (रहेगी), उसका नाम मोक्ष कहने में आता है। यहाँ भाव भी यह आया है, देखो! '**भावह जिणभावणं**' चौथा पद है न। कौन सी गाथा चलती है? ....भाई! ८८वीं गाथा चलती है।

बाह्य, आगे कहते हैं, बाह्य सादिक किया हुआ, हिंसादि न करे तो भी **अशुद्धभाव के माहात्म्य से तन्दुल मत्स्य जैसा अल्पजीव भी...** अशुद्ध भाव से तन्दुल (चावल) जितना मत्स्य भी **सातवें नरक को गया तो अन्य बड़े जीव क्यों न नरक जावें,...** भावपाहुड़ है न इसलिए भाव की प्रधानता से कथन है। बाह्य क्रिया उसमें कुछ साधन हो नहीं।

मच्छो वि सालिसित्थो असुद्धभावो गओ महाणरयं।
इय णाउं अप्पाणं भावह जिणभावणं णिच्चं॥८८॥

हे भव्य जीव! तू देख शालिसिक्थ (तन्दुल नाम का मत्स्य)... चावल जितनी मछली। यह **अशुद्धभावस्वरूप होता हुआ महानरक (सातवें नरक) में गया, इसलिए तुझे उपदेश देते हैं...** इसलिए तुझे उपदेश करते हैं **कि अपनी आत्मा को जानने के लिये निरन्तर जिनभावना कर।** यह महासिद्धान्त। **अपने आत्मा को जानने के लिये निरन्तर जिनभावना कर।** एक शब्द के अन्दर अर्थ आ गया। समझ में आया? अनन्त तीर्थंकर, अनन्त वीतरागी, अनन्त केवली, उसका जो सार जिनभावना भा—ऐसा कहते हैं। उसका अर्थ यह हुआ कि

आत्मा जिनस्वरूप ही है, वीतरागस्वरूप, ध्रुवस्वरूप। उसकी भावना। श्रद्धा और ज्ञान में त्रिकाली ध्रुव को विषय बनाकर... समझ में आया? यह सवेरे ही कहा था। शशीभाई नहीं थे।

यह आत्मा है, वह एक समय में अन्दर नित्य ध्रुववस्तु है। नित्य भावना करना, कहते हैं न यहाँ? वह वस्तु स्वयं त्रिकाल नित्य ध्रुव है। इस ध्रुव की अपेक्षा से एक समय की पर्याय भी परद्रव्य कहने में आती है। देव-गुरु-शास्त्र और तीर्थंकर तो परद्रव्य पृथक् हैं परन्तु एक समय में भगवान आत्मा नित्यानन्द ध्रुव, जिसका नित्य स्वभाव पिण्ड ऐसा स्वभाव, वह स्वद्रव्य है; और उसकी एक समय की अवस्था है - रागरहित, निमित्तरहित, संयोगरहित अपने में हुई पर्याय—निर्मल पर्याय जो है, वह भी त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से उसे परद्रव्य कहने में आया है। आहाहा! सवेरे दूसरा कहा था। यह बाद में आयेगा। काल में आयेगा। समझ में आया?

इसी प्रकार आत्मा शुद्ध-बुद्ध चैतन्यघन, ऐसा कहा है न? वह चैतन्यघन, यह असंख्यात प्रदेशी ध्रुव है। शुद्ध-बुद्ध, यह भाव और चैतन्यघन जो है, वह असंख्यप्रदेशी ध्रुव। वह ध्रुव असंख्यप्रदेशी, यह स्वक्षेत्र है। स्वक्षेत्र अर्थात् अपना है और वह असंख्यप्रदेशी एक समय की क्षेत्र में अवस्था होती है, वह भी परक्षेत्र है। शरीर, वाणी, मन का तो परक्षेत्र भिन्न रह गया परन्तु आत्मा में असंख्य प्रदेश ध्रुव चैतन्य भगवान आत्मा के पवित्र प्रदेश का स्कन्ध-पिण्ड, वह स्वक्षेत्र है और उसकी एक समय की क्षेत्र की अवस्था के प्रदेशों का अंश, वह परक्षेत्र है। यह परद्रव्य और परक्षेत्र का आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

यह सर्वज्ञ परमात्मा अनन्त वीतरागी केवलियों का सार में सार यह भाव है। उसमें काल हो, उस काल की बात की। यह आत्मद्रव्य... है न? भगवान का काल पूर्ण सिद्ध हो गया। सर्वज्ञ पद प्राप्त करके मोक्ष तो पहले से पाये। आगे उनकी पर्याय का काल शुद्धता का पूर्ण हो गया। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा त्रिकाल ध्रुव, वह उसका स्वकाल है। त्रिकाल ध्रुव वस्तु, वह द्रव्य का स्वकाल है, वह स्वसमय है; और एक समय की जो पर्याय है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि की जो पर्याय, वह परकाल की अपेक्षा से पर्याय स्वकाल नहीं, परन्तु त्रिकाली द्रव्य के स्वकाल की अपेक्षा से एक समय की पर्याय परकाल है। आहाहा! अर्थात् कि परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल आश्रय करनेयोग्य नहीं है। गजब बात है। हिम्मतभाई! समझ में आया?

जिसे आत्मा वस्तु की भावना अर्थात् श्रद्धा ज्ञान, उसका विषय जो त्रिकाली ध्रुव, उसका आश्रय करनेयोग्य है। जो कुन्दकुन्दाचार्य समयसार की ११वीं गाथा में कहते हैं, **'भूदत्थ मस्सिदो खलु'**। भगवान एक समय में पूर्ण ध्रुव है, उसका आश्रय करना। उस आश्रय से जीव को धर्म की दशा प्रगट होती है। बाकी धर्म की दशा किसी पर के आश्रय से नहीं होती। त्रिकाल वस्तु भगवान आत्मा का उसे स्वकाल अर्थात् वस्तु जिस काल की वस्तु ही वैसी है। एक समय की वीतरागी पर्याय, वह भी स्वकाल में त्रिकाल की अपेक्षा से परकाल है, परद्रव्य है, परक्षेत्र है, इसलिए उसे परकाल का, परद्रव्य का... अपना, हों! सर्वक्षेत्र का ज्ञान, जिसे यथार्थ करना हो, उसे स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव जो त्रिकाली, उसका आश्रय करना पड़ेगा। नवरंगभाई! आहाहा!

उसी प्रकार आत्मा भावस्वरूप, आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप आदि त्रिकाल भाव (स्वरूप है)। त्रिकाल भाव है, वह अपना स्वभाव है और उसकी एक समय की वीतरागी पर्याय, वह भाव भी परभाव है। गजब बात, भाई! दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प तो परभाव है। वह तो कहीं बाहर गया। आहाहा! यह वीतरागमार्ग। कहते हैं कि जिसे एक समय में वीतरागी दशा क्षायिक समकित प्रकट हुआ हो और चारित्र की पर्याय प्रगट हुई हो, तो द्रव्य के (आश्रय से), तथापि वह प्रगट हुआ भाव त्रिकाल महापुंज भाव, आनन्द के त्रिकाली भाव की अपेक्षा से एक समय के भाव को परभाव कहने में आता है अर्थात् कि त्रिकाली द्रव्यस्वभाव, त्रिकाली क्षेत्रस्वभाव, त्रिकाली कालभाव और त्रिकाली भावभाव। उसमें पर्याय परद्रव्य, पर्याय परद्रव्य, क्षेत्र, एक समय की पर्याय परकाल और एक समय का भाव परभाव। इन चारों की त्रिकाली द्रव्य में नास्ति है। इसमें अधिक गहरे उतरे बिना समझ में आये ऐसा नहीं है। बाहर के सब पैसे झट मिल जाएँ, ऐसे मिल जाए, (ऐसा नहीं है।) वह तो पुण्य के परमाणु के कारण दिखते। मिलते कहाँ हैं? मिलते हैं।

श्रोता : मिलते नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिले किसे? धूल मिले। यहाँ परद्रव्य मिले किसे? यहाँ तो एक समय की पर्याय द्रव्य में मिलती नहीं। आहाहा! ऐई! ....भाई! एक समय की पर्याय भी द्रव्य में नहीं मिलती। तो फिर यह परवस्तु आवे और मिले, इस बात में कुछ दम नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा त्रिकाली द्रव्य, त्रिकाली क्षेत्र, त्रिकाली काल और त्रिकाली भाव। यह चार भेद किये, वह भी व्यवहार है। इसे-चार का एकरूप अभेद, उसका आश्रय करने से धर्म

की पर्याय सम्यक् प्रगट होती है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय तीन काल-तीन लोक में नहीं है। अमरचन्दभाई! वहाँ तो ऐसा नहीं चलता होगा। पौने तीन महीने भटकने में था कुछ?

श्रोता : वहाँ तो साहब हवा-पानी बहुत अच्छा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल में हवा-पानी नहीं। हवा-पानी कहाँ... ? आहाहा! उस हवा का वायरा, ध्रुव में पड़ा है। उसके वायराबावे, वह हवा-पानी है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि हे जीव! **अपने आत्मा को जानने के लिये निरन्तर जिनभावना कर।** उसमें यही बात है। **अपने आत्मा को जानने के लिये...** आत्मा जो वस्तु त्रिकाल है... जानने की पर्याय वर्तमान है। समझ में आया? परन्तु त्रिकाली द्रव्य जो है, उसे जानने का प्रयत्न कर। आहाहा! जो वस्तु एक समय की दशा में नहीं आती और जो एक समय की अवस्था त्रिकाली में नहीं मिलती, ऐसी जिनस्वभाव वस्तु आत्मा, उसे श्रद्धा-ज्ञान में विषय बना, उस त्रिकाली को श्रद्धा-ज्ञान में ध्येय बना, उसे जिनभावना कहने में आता है। ऐसी बात है। यह दया, दान और भगवान की भक्ति के जो विकल्प, वे तो कहीं विकार-मैल में गये। कहो, समझ में आया इसमें?

अपनी आत्मा को... इसमें यह आयेगा। **जानने के लिये निरन्तर जिनभावना कर।** अर्थात्? कि आत्मा की एक समय की पर्याय को, जिसे परद्रव्य, त्रिकाली की अपेक्षा से कहा, उसका ज्ञान भी स्वद्रव्य का ज्ञान करे तो उसका ज्ञान होता है। एक समय की क्षेत्र अवस्था असंख्य प्रदेश, जिसमें अनन्त आनन्द भरा है। ऐसा जो स्वक्षेत्र भगवान अस्तिरूप है, उसकी एक समय की क्षेत्र की दशा, जिसमें निर्मल पर्याय का रहना है, उस परक्षेत्र का ज्ञान भी स्वक्षेत्री आत्मा त्रिकाली का ज्ञान करे तो परक्षेत्र का ज्ञान होता है। अर्थ में आयेगा। अपना और पर का स्वरूप ज्ञान। इसमें अर्थ में आयेगा। **अपने और दूसरे के स्वरूप का ज्ञान जिनदेव की आज्ञा की भावना निरन्तर भाने से होता है,...** आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया?

कहते हैं कि एक समय की अवस्था जो है, उसका ज्ञान जिस समय, जो अवस्था वह काल उस काल में उस द्रव्य की होनेवाली उस पर्याय का स्वकाल स्वतन्त्र है। उस स्वकाल का ज्ञान भी त्रिकाली ज्ञायकभाव जिस काल वस्तु स्वयं ही पूरी वस्तु है, उसका ज्ञान और उसके आश्रय से ज्ञान होता है, तब पर्याय का ज्ञान, पर का ज्ञान होता है। स्व का ज्ञान होता है तब पर का ज्ञान होता है। आहाहा! भारी सूक्ष्म। समझ में आया? उसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त भावस्वरूप एकरूप... उसमें... किया थोड़ा। .... अष्टपाहुड़ पुस्तक में...

किया है।...उसमें अर्थ में है। शुद्धबुद्ध एक स्वभाव। संस्कृत है। शुद्धबुद्ध एक स्वभाव, एक स्वभाव, उसे विषय बनाकर जो धर्म पर्याय प्रगट हो, उसका भी आश्रय करने योग्य नहीं है। आहाहा! मगनभाई! बहुत आगे गया यह तो। ....यह तो .... यह तो पर्याय की बात है। इक्कीस वर्ष हो गये। आहा!

भगवान! यहाँ कहते हैं, ऐसे अशुद्ध भाव से जो तन्दुल जैसा ऐसा मत्स्य इतना, वह सातवें नरक में जाता है। हिंसा आदि की क्रिया कुछ नहीं है। जीव को मारने का नहीं है, झूठ बोलने का नहीं है, माँस खाने का नहीं है; मात्र अशुद्ध भाव। यह बड़ी कथा है। समझ में आया? यह कथा अन्दर में है।

रसोईया था और एक राजा था, तो रसोईया माँस खाने के लिये पकाता था और उसका राजा था, उसे माँस खाने की मनाही थी। परन्तु... भाव हुआ... इसलिए... कुछ मँगाकर रसोईया से पकाता था और रसोईया उसे माँस पकाकर देता था। वह रसोईया था, उसे सर्प ने काट खाया। समझ में आया? कल लड़के को काटा न, परसों गुजर गया न? एक दिन... लड़का कहे, उसमें हाथ डालता था। सब कहे डालो हाथ, डालो हाथ, हाथ डाला, उसमें वह नागिन ने काट खाया। काट खाया और इसे कुछ खबर नहीं। (उसे ऐसा कि) खून निकला है। मर गया बारह वर्ष का।

वह यहाँ कहते हैं कि उस रसोईया को सर्प ने काट लिया। वह मरकर स्वयंभूरमण समुद्र में महामत्स्य हजार योजन का हुआ। समझ में आया? और वह राजा जो था, वह भी मरकर सातवें नरक में गया। परन्तु वह सातवें नरक में क्यों गया यहाँ से? कि तन्दुल मत्स्य तन्दुल मत्स्य हुआ था। चावल जितना। कान में अन्दर मैल खाता था। हजार योजन में। और मुँह ऐसे फाड़े तो कितने ही मत्स्य अन्दर आवे। यह विचार करे कि यह मत्स्य आते हैं... यह निकाल क्यों डालता है? तन्दुल इतना हो, चावल जितना। मुझे है, वज्रनाराचसंहनन है। इतना मत्स्य है। पहला संहनन।

भावना ऐसी है कि यह हजार योजन का मत्स्य था। ऐसे वह मुँह फाड़े तो... ऐसे निकाल डाले। अरे! इतना मैं होऊँ तब तो एक को भी न जाने दूँ। यहाँ भाव की बात है। भावपाहुड़ है न? क्रिया के साथ उसे कुछ सम्बन्ध नहीं। यह तो जड़ की क्रिया है। पर के अस्तित्व में जड़ का यह सब है, उसके भाव में ऐसे भाव... समझ में आया? कि मरकर वापस दोनों सातवें नरक गये। आहाहा! वह मत्स्य तो जाए परन्तु वह तन्दुल मत्स्य ही गया। इस भावना का यहाँ भाव देकर। ऐसी अशुद्ध भावना से। अशुद्ध भावना का एक भाग

अशुभभाव। अशुद्ध भावना का एक भाग अशुद्धभाव और अशुद्ध भावना का दूसरा भाग अशुद्धभाव (शुभभाव) ये दोनों अशुद्धभाव, दोनों चार गति के कारणरूप साधन हैं। शुभ हो या अशुभ दो। आहाहा!

यह भावपाहुड़ है। शुद्धभाव, शुभभाव का अविकार नहीं। इस भाव से स्वर्ग मिले, यह शुभभाव की अशुद्ध है। जो भाव तीर्थंकर गोत्र बाँधने का है, वह भाव भी अशुद्ध और मलिन है। तीर्थंकर गोत्र का भाव भी अधर्म है, धर्म नहीं। ऐई! इन दो अशुद्धभाव की भावना छोड़, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिनभावना वीतरागमूर्ति, प्रभु! जिसमें वीतरागता भरी है, पड़ी है, सत्वरूप से सब सत् ही है, उसका आश्रय कर तो वीतरागता प्रगट होगी। निमित्त का, राग का और पर्याय का आश्रय करेगा तो राग उत्पन्न होगा और लाभ मानेगा तो मिथ्यादृष्टि होगा। समझ में आया? इसलिए जिनभावना, बस परमात्मा स्वयं शुद्ध आनन्द का धाम, जिसमें एक समय की पर्याय का भी अभाव, ऐसे भाव की भावना कर। आहाहा! ऐसी बात, भाई! यह वीतराग की आज्ञा है। अनन्त केवली, तीर्थंकर, परमात्मा हुए और होंगे, उनकी यह आज्ञा है। समझ में आया?

अपने आत्मा को जानने के लिये। आत्मा द्रव्य त्रिकाली है, उसे जानने की निरन्तर जिनभावना, वीतरागभाव में, शुद्धभाव में ध्येय बनाकर निरन्तर भावना प्रभु की कर। आहाहा! समझ में आया? यह आत्मा के पकवान हैं। बाकी सब पकवान विष्टा होकर निकल जाएँगे। आहाहा! यह तो हड्डियाँ-माँस के दिखाव, विष्टा बनाने की मशीन। चाहे जो डालो, मौसम्बी का पानी डालो, क्या कहलाता है, समझ में आया? मावा-मावा। घुघड़ा होता है न मावा का! ऐसे घी में तला हुआ घुघड़ा, अन्दर मावा और बादाम तथा पिस्ता ऊपर लौंग चिपकाया हो। ....है या नहीं? यह धूल भी नहीं, भाई! यह तो जड़ की अवस्था का रूप है। यह चैतन्य नहीं है, वह चैतन्य में नहीं है, यह चैतन्य से होता नहीं। चैतन्य से होनेवाला हो, तो यह जिनभावना कर सकता है। आहाहा! समझ में आया?

पुण्य-पाप का भाव, वह परद्रव्य के लक्ष्य से होता है, वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। आहाहा! भगवान की भक्ति और भगवान का स्मरण भी परद्रव्य के लक्ष्य से।

श्रोता : भगवान परद्रव्य है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो अभी पर्याय को परद्रव्य कहा। भगवान तो कहीं परद्रव्य रहे। यह वहाँ (संवत्) २०१० के वर्ष में कहते थे। ...वे कहते थे। २०१० के वर्ष में... व्याख्यान चलता था। तो कहे, देव-गुरु-शास्त्र पर? वे तो सिद्ध हैं। देव अरिहन्त परमात्मा

शुद्ध जो निर्ग्रन्थ मुनि नग्न दिगम्बर आत्मध्यानी-ज्ञानी, अमृत के रचनेवाले और शास्त्र! परन्तु देव-गुरु पर? वे तो शुद्ध हैं, कहते हैं। अरे! अनन्त बार पर। एक बार क्या? देव-गुरु पर हैं। यहाँ तो यह तो पर कहा परन्तु अपनी पर्याय पर है। आहाहा! क्योंकि जिसका आश्रय करने से जीव को लाभ नहीं, उसे यहाँ पर कहने में आता है। जयसिंहभाई! बहुत सूक्ष्म! प्रवीणभाई! पर्याय का आश्रय करने से कहीं लाभ नहीं होता, इसलिए इस अपेक्षा से परद्रव्य है। यह नियमसार की ५०वीं गाथा है न? मोक्ष का मार्ग निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र, वह परद्रव्य। आहाहा! समझ में आया? इसका आश्रय करने जाए तो लाभ कहाँ है? वह तो विकल्प उठा। प्रवीणभाई! यह सब सूक्ष्म है। ...जैसा नहीं है यह कुछ।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! मोटा थोर जैसा है। यह तो अमृत के चक्की की... बात है। आहाहा!

'आशा औरन की क्या कीजै? ज्ञान सुधारस पीजे, आशा औरन की क्या कीजै!' भगवान अनन्त आनन्द का नाथ, पूर्ण परब्रह्म परमात्मा स्वयं निजस्वरूप से द्रव्यरूप विराजता है, उसका आश्रय करने से आत्मा को आनन्द और समकित होता है। बाकी दूसरा किसी का भी आश्रय करने से आत्मा को समकित और आनन्द नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! कहो, शामजीभाई! बहुत कठिन मार्ग है। हम सामायिक करते हैं, प्रौषध करते हैं, प्रतिक्रमण करते हैं। रात्रिभोजन नहीं करते, वह कुछ धर्म होगा? धर्म धूल में भी नहीं है, सुन न! सामायिक कहाँ से आयी?

आत्मा ज्ञायकभाव आनन्द का नाथ पूर्णानन्द प्रभु, सच्चिदानन्दस्वरूप ध्रुवकन्द परमात्मा, उसका जहाँ सत् नहीं, स्पर्श किया नहीं, आश्रय लिया नहीं, जाना नहीं, उसे धर्म कहाँ से होगा? समझ में आया?

....आता है न... में। 'मोटा ने.. उछरंग बैठा ने शी चिन्ता? प्रभु चरण पसाय सेवक थया निश्चन्ता।' परन्तु यह तो पर की अपेक्षा की बात है। ऐसा भक्ति का विकल्प है। 'मोटा ने उत्संग...' उत्संग अर्थात् खोलो। खोलो कहते हैं न? गोद। 'मोटा ने उत्संग बैठा ने शी चिन्ता!' माता की गोद में बैठा हो, उसे चिन्ता नहीं होती कि... आयेगा तो मुझे... करेगा। मेरी माँ रक्षा करेगी। समझ में आया? 'परन्तु प्रभु...' प्रभु! तेरा आश्रय लिया। अर्थात् तुमने जो कहा, ऐसा द्रव्य का आश्रय लिया... हो जाए। समझ में आया? भगवान ने आज्ञा की है कि एक द्रव्यस्वभाव तेरा पूर्ण परमात्मा, वह तेरा स्वद्रव्य है। इसका आश्रय कर, इसमें दृष्टि लगा,

उसे ज्ञेय बना। पूरा हो जाएगा। ...संसार ही नहीं। भव ही नहीं न! भव का भाव जिसे नहीं न! अरे! इसके मोक्ष की पर्याय अथवा केवलज्ञान पर्याय ही जिसे नहीं न...!

केवलज्ञान वह सत् व्यवहार है, वह असद्भूतव्यवहार का विषय है, निश्चय का विषय नहीं। आहाहा! रवजीभाई! वह इस अपेक्षा से है... आहाहा! कारण प्रभु पूर्णानन्द विराजता है न! उसमें तो कहा है न? अलिंगग्रहण में। अलिंगग्रहण में। कारणद्रव्य पर्याय को स्पर्शता नहीं, आहाहा! आलिंगन करता नहीं। तेरी वीतरागी पर्याय धर्म जो हुआ, वह द्रव्य के आश्रय से हुआ, उस वीतरागी पर्याय को द्रव्य स्पर्श नहीं करता। आहाहा! गजब बात की है। वीतराग के पेट गहरे हैं। मूल वीतराग पुरुष का धर्म आत्मा के द्रव्य के आश्रय से प्रगट होता है, यह वीतरागी पुरुषों का धर्म है। कहो, समझ में आया? आहाहा! कायर का तो कलेजा काँप उठे, ऐसा है। हाय.. हाय.. अब तब मुझे करना क्या? यह सब... अन्दर में समझना। अन्दर में वस्तु है, उसे समझना, वह करना नहीं है? ऐई!

श्रोता : कोई देखता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई देखता नहीं। देखता नहीं, ऐसा यह निर्णय करनेवाला कौन? देखता नहीं, ऐसा निर्णय किस भूमिका में हुआ? किसकी भूमिका में? - देखनेवाले की भूमिका में है। समझ में आया? यह जयसुखभाई का भतीजा है। ....कर्ता ही है। परेश, सात वर्ष पहले। अभी चौदह वर्ष का हो गया। सात वर्ष पहले इसने पूछा था। तब तो यहाँ यह कोई सामने नहीं देखते थे।

श्रोता : भटकते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : भटकते थे। वीरजीभाई के कारण से गये और उसने... होता नहीं! वह परेश ने प्रश्न किया था। इनका भतीजा है तो होशियार। इसके घर में... हुए हैं। कहता है महाराज! तुम आत्मा देखो... आत्मा देखो... आत्मा देखो... किया करते हैं परन्तु हमें आत्मा कहाँ देखना? बाहर देखते हैं यह दिखता है, आँख बन्द करते हैं तो अन्धेरा दिखता है। भाई! सात वर्ष का लड़का प्रश्न करे। ऐसा देखते हैं तो यह दिखता है हमें आत्मा कहाँ देखना? देख, अन्धेरा देखनेवाला कौन है? अन्धेरा देखनेवाला अन्धेरास्वरूप नहीं है। अन्धेरा देखनेवाला प्रकाशस्वरूप है। अन्धेरे में अन्धेरे का ज्ञान नहीं होता, ज्ञान में अन्धेरे का ज्ञान होता है। यह... उस दिन तुम नहीं आते थे।....

सत्य को समझना हो और हित करना हो तो मार्ग ही यह है। बाकी तो सब इस जगत

में भटकने का चलता है। पैसेवाला हो या राजा हो, सब दुःखी के सरदार हैं। ऐसा होगा या नहीं... भाई! वहाँ देखा होगा या नहीं तुमने? ये बाग, बगीचे और सब। लड़के के बाग, बगीचे देखने गये थे। कैसा? वैभव। अरे! वैभव तो तेरा नाथ अन्दर में स्थित है, उसे देख न! यह तो हड्डियों का वैभव सब धूल का है। उसके सामने देखेगा तो राग और आकुलता होगी। तेरा अन्तरवैभव अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु महा वैभव। जिसे आत्मवैभव कहा है। आहाहा! ऐसे आत्मभावना के वैभव को तू जान और इसकी भावना कर, ऐसा कहते हैं। पैसे के लिए देखो न, वहाँ भटकते थे न! कहाँ गये थे? अफ्रीका और सर्वत्र। यह तो वहाँ गये। दूसरे बहुत भटकते हैं न। आहाहा! भाई! तेरी लक्ष्मी तो अन्दर में पड़ी है, भाई! तुझे कमाना नहीं आता, कमाना नहीं आता। बाहर में भटका करता है। 'भटकत द्वार-द्वार लोटन के कूकर आशा धारी' दस बजे तो इस कुत्ते की तरह घर-घर में... सामने डाले। ऐसे जहाँ-तहाँ भटके। ऐसे-ऐसे... आढ़तिया को बुलाना पड़े।... पीताम्बर... बहिन बा आओ आओ... बहिन बा को बुलावे। आहाहा! भिखारी है। तब कहते हैं, हों! ...आओ बहिन आओ बहिन जरा... परन्तु यह छह दूसरे एक-एक पूरे दिन बहुत ग्राहक आवे। अरे रे! भिखारी... भिखारी की जाति कोई अलग कहलाती होगी? चन्दुभाई!

यहाँ कहते हैं कि अरे! नाथ! **अशुद्धभाव के माहात्म्य से तन्दुल मत्स्य जैसा अल्पजीव....** इतना छोटा। **सातवें नरक को गया...**

श्रोता : अशुभभाव का भी माहात्म्य...

पूज्य गुरुदेवश्री : है न माहात्म्य। माहात्म्य अर्थात् कि अशुभभाव के फलरूप से सातवाँ नरक। इतना मत्स्य। कान में मत्स्य। हजार योजन के मस्त्य के कान का मैल खाये। कान का मैल खाये। ....जाना न पड़े। इसके इस माँस की... मोह में... .... हो चावल जितना। यहाँ तो चावल जितना क्या, चावल के असंख्यवें भाग जितना हो। अंगुल के असंख्यवें भाग जितना मत्स्य होता है। सातवें नरक में जाता है। .... पहले समझन हो। ऐसा भाव। क्रिया-फ्रिया कुछ नहीं होती। आहाहा! उसमें वह... न यह मोह ऐसा करे।... अरर! क्रिया तो है ऐसा कहते हैं। धूल भी क्रिया नहीं होती। इतना छोटा मस्त्य है। भाव अन्दर में इतनी मत्स्यहीनता आहाहा!

जिस सातवें नरक में ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती गया, वहाँ उस नरक में गया, वहाँ वह मस्त्य गया। शरीर का... आवश्यकता नहीं। साधक बहुत हों तो साथ बहुत हो ऐसा कुछ नहीं। यहाँ तो परिणाम की बात है। तो कहते हैं **अन्य बड़े जीव क्यों न नरक जावें, इसलिए भाव शुद्ध**

करने का उपदेश है। देखो! इसलिए भाव शुद्ध करने का उपदेश है, भाई! भगवान आत्मा परमात्मा शुद्ध चैतन्य है, उसका ज्ञान और श्रद्धा कर, वह शुद्ध कहने में आता है। इसके बिना शुद्धता प्रगट नहीं होगी और शुद्धता के बिना धर्म नहीं है। पुण्य-पाप के परिणाम, वे धर्म नहीं है, वह धर्म का कारण भी नहीं है। समझ में आया?

भाव शुद्ध होने पर... देखो! **इसलिए भाव शुद्ध करने का उपदेश है। भाव शुद्ध होने पर अपने और दूसरे के स्वरूप का जानना होता है।** भाव त्रिकाली ज्ञायकभाव की श्रद्धा-ज्ञान हो, तब उसे शुद्ध द्रव्य और पर्याय का सच्चा ज्ञान होता है। तब उसे राग था, उसका ज्ञान होता है, देव-गुरु यह है, इनका उसे ज्ञान होता है, परन्तु भावश्रुत स्व के आश्रय से प्रगट करे तो। समझ में आया? **भाव शुद्ध करने का उपदेश है।** पुण्य-पाप भाव अशुद्ध है, मलिन है। आहाहा! भगवान की भक्ति का भाव भी मलिन है, पंच महाव्रत के परिणाम भी मलिन है, अचेतन है, जड़ है। क्योंकि इनमें चैतन्य ज्ञानानन्दस्वभाव का अंश नहीं आता। आहाहा! समझ में आया?

भाव शुद्ध होने पर... यह... धर्मसत्य भगवान आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान होने पर... **अपने और दूसरे के स्वरूप का जानना होता है।** त्रिकाली आत्मा का ज्ञान हो, एक समय की अवस्था का ज्ञान हो, राग बाकी रहा, उसका ज्ञान हो, निमित्त कौन था, उसका ज्ञान स्वयं से स्वयं में हो, परन्तु स्व का ज्ञान करे तो। समझ में आया? यह अष्टपाहुड़ है न। **भाव शुद्ध होने पर अपने और दूसरे के स्वरूप का जानना होता है। अपने और दूसरे के स्वरूप का ज्ञान जिनदेव की आज्ञा की भावना निरन्तर भाने से होता है,...** जिनदेव की आज्ञा यह है कि ध्रुव का आश्रय ले। आहाहा! भगवान कहते हैं कि तू मेरे सामने देखना छोड़ दे। आहाहा!

भगवान की आज्ञा में ऐसा आया है कि तू मेरे सन्मुख देखना भूल जा। तेरे भगवान के सन्मुख जा तो तुझे ज्ञान होगा। आहाहा! सूक्ष्म शल्य होती है, इसकी इसे अनन्त काल की खबर पड़ गयी है। समझ में आया? ऐसा लगे अन्दर से। आहाहा! लगन कम हो जाए। अरे! कान्तिभाई! ....श्रीमद् कहते हैं न एक जगह 'वचनामृत वीतराग के परम शान्त रसमूल, औषध जो भवरोग के, परन्तु कायर को प्रतिकूल' कायर होवे तो चिल्ला उठे। अर.र.. ! हाय.. हाय.. यह तो सब व्यवहार का लोप... लोप...। लोप नहीं, है, वैसा जानने योग्य है। परन्तु उसे कब जाने? कि स्वद्रव्य का ज्ञान यथार्थ करे, वह पर को यथार्थ जाने। समझ में आया?

अपने और दूसरे के स्वरूप का ज्ञान जिनदेव की आज्ञा की भावना... आज्ञा की भावना। मर्यादा स्वरूप जो चैतन्य भगवान आत्मा का, उसकी श्रद्धा और ज्ञान करना, उसमें

स्व का आश्रय करना, ऐसी वीतराग की आज्ञा है। अनन्त तीर्थंकर, अनन्त वीतरागी, अनन्त केवलियों की ऐसी आज्ञा है कि तेरा पूर्ण द्रव्य ध्रुव है, उसका आश्रय ले। समझ में आया? यह अन्तिम में अन्तिम भगवान के घर का चुकारा है। **अपने और दूसरे के स्वरूप का ज्ञान जिनदेव की आज्ञा की...** वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने आज्ञा की है कि स्वरूप का आश्रय ले। **'भूदत्थमस्सिदो खलु'** (श्री समयसार की) ११वीं गाथा। भूतार्थ का आश्रय ले तो सम्यग्दर्शन होगा, त्रिकाल का आश्रय ले तो सम्यग्ज्ञान होगा, त्रिकाल का आश्रय सत् है तो चारित्र होगा। ऐसी वीतराग की आज्ञा... कहो जेठाभाई! इसमें बाहर का कुछ नहीं रहता।

अपने और दूसरे के स्वरूप का ज्ञान जिनदेव की... पहले ऐसा कहा कि **भाव शुद्ध होने पर अपने और दूसरे के स्वरूप का जानना होता है।** पहले ऐसा कहा। फिर ऐसा कहा कि **अपने और दूसरे के स्वरूप का ज्ञान जिनदेव की आज्ञा की भावना...** भगवान ने वीतरागस्वभाव आत्मा का, उस पर नजर लगा, उसे भेदना, उसका विषय कर यह भगवान की आज्ञा है। आहाहा! आचार्यों की... है। पश्चात् उसके तब विवाद उठे। ...ऐसा ...है। आचार्य में है। उस समय तो ऐसा कहते थे कि... मुनि .... कहते हैं। श्वेताम्बर शास्त्र की... है न? उनके आचार्य बना दिये। समझ में आया? ऐ... जयचन्दभाई! उसमें यह शब्द आता है,... आज्ञा में एक ऊपर सिद्ध... करते नहीं, और अणणा अर्थात् पुरुषार्थ। आज्ञा बिना का पुरुषार्थ जगत के प्राणी करते हैं... यह तुझे नहीं होता। तब अंगीकार करे। लो, उसमें भगवान ने ऐसा नहीं कहा कि पुरुषार्थ कर। अरे! भगवान! कहा उसका अर्थ क्या है? आज्ञा भगवान की है कि आत्मा त्रिकाली है, उसका आश्रय ले। उसका उद्यम करता नहीं, ऐसा तुझे न होओ। द्रव्य में उद्यम करता नहीं, वह तुझे न होओ और द्रव्य के आश्रय बिना का दूसरा सब उद्यम करता है, वह भी तुझे न होओ... यह तीर्थंकर का... है। आहाहा! यह तीर्थंकर का अभिप्राय है। अनन्त तीर्थंकरों का अभिप्राय है। समझ में आया? ...आते हों। जयसेनाचार्य टीका करते हों तब। ....आज्ञा बाहर का उद्यम और आज्ञा में आलस है... न कर। आज्ञा क्या? पहले पंच महाव्रत पालना और यह... समिति... यह आज्ञा नहीं है।

श्रोता : जिनभावना....

पूज्य गुरुदेवश्री : जिनभावना वह आज्ञा है। आहाहा! हमें भूल जा और तुझे सम्हाल, ऐसा कहते हैं, भगवान ऐसा कहते हैं। तू तुझे भूल गया है और हमें सम्हालता है, उसमें कुछ माल नहीं है। कहते हैं, **जिनदेव की आज्ञा की भावना...** है... है, देखो! नित्य अर्थात् क्या? कि ज्ञायकभाव त्रिकाली है, उसकी दृष्टि निरन्तर रहनी चाहिए। किसी समय भी पर्याय और

विकल्प का आश्रय हो, ऐसा नहीं होता। ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ....चन्दभाई! गजब भाई! आहाहा!

कहते हैं '**इति ज्ञात्वा आत्मानं भावय**' '**आत्मानं भावय**' भगवान आत्मा। उसे विश्वास में लेता नहीं। ऐसा बड़ा आत्मा है, ऐसा बैठता नहीं। रंक होकर पड़ा है न! बड़ा बादशाह है। तीन लोक का नाथ एक समय में मेरी पर्याय जाने, ऐसी तो अनन्त पर्याय का कन्द मैं हूँ। केवलज्ञान एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने, इतना मैं नहीं।

केवलज्ञान तो एक अंश है। एक समय की अवस्था है। वह अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अवस्था का सागर भगवान आत्मा... आहाहा! उसका आश्रय कर। यह **जिनदेव की आज्ञा की भावना निरन्तर भाने से होता है,...** लो, क्या कहते हैं? स्व-पर का ज्ञान यथार्थ, जिनाज्ञा की अर्थात् द्रव्य के स्वभाव के निरन्तर आश्रय से स्व-पर का सच्चा ज्ञान होता है। नहीं तो स्व-पर का सच्चा ज्ञान नहीं होता। **इसलिए जिनदेव की आज्ञा की भावना निरन्तर करना योग्य है।** लो। जिनदेव की आज्ञा वीतरागभाव प्रगट करने की और वीतरागभाव का प्रगटपना वीतरागस्वभाव के आश्रय से होता है। आहाहा! समझ में आया? फिर कथा कहते हैं। अभी कही न? वह कथा है। अन्तिम पैराग्राफ।

इसलिए आत्मज्ञान के बिना केवल पुण्य ही मोक्ष का साधन नहीं है। अन्तिम शब्द है। आत्मा के ज्ञान बिना केवल पुण्य, यह दया, दान, भक्ति, व्रत, विकल्प शुद्ध यह कोई मोक्ष का कारण नहीं है।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : आरूढ़ कहलाता है। है कहाँ? व्यवहार से कहलाता है। आरूढ़ कहलाता है। यह साधन किया हो, स्वभाव को साधन किया हो तो रागादि भक्ति के विकल्प को, व्रत के विकल्प को, व्यवहार साधन... कहने में है। साधन नहीं है उसे साधन कहने का नाम व्यवहार है। साधन है उसे साधन जानना, इसका नाम निश्चय है। मूलचन्दभाई! आहाहा!

कहते हैं **इसलिए आत्मज्ञान के बिना केवल पुण्य ही मोक्ष का साधन नहीं है।** ऐसे पुण्य तो अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक में गया तब किया। ग्यारह अंग का ज्ञान किया, नौ पूर्व पढ़ा और .... करे। लेने जाए तो... खाये। ...न खाये। चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो क्रोध न करे। ऐसी बाहर की जिनदीक्षा अनन्त बार ली है। वह कोई वस्तु नहीं है। समझ में आया?

आगे कहते हैं कि भावरहित के बाह्य परिग्रह का त्यागादिक सब निष्प्रयोजन है :- आहाहा!

बाहिरसंगच्चाओ गिरिसरिदरिकंदराइ आवासो।
सयलो णाणज्झयणो णिरत्थओ भावरहियाणं॥८९॥

यह ज्ञान और अध्ययन सब द्रव्य के शुद्धभाव की श्रद्धा और शुद्धभाव... यह सब निरर्थक-निरर्थक। शास्त्र के पठन निरर्थक, शास्त्र का अध्ययन निरर्थक, शास्त्र पढ़ना निरर्थक। सुजानमलजी!

श्रोता : .... गजब किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : गजब है।

श्रोता : ....मर गया बेचारा।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्वभाव में मर गया बेचारा। समझ में आया?

जो पुरुष भाव रहित... भाव शब्द से (आशय) शुद्ध। **शुद्ध आत्मा की भावना से रहित हैं...** देखो! जिसे भगवान आत्मा ध्रुव की भावना नहीं अर्थात्, श्रद्धा नहीं, उसका ज्ञान नहीं, उसमें एकाग्र नहीं, उसकी सन्मुखता नहीं। उसके बिना जीव **बाह्य आचरण से सन्तुष्ट हैं, उनके बाह्य परिग्रह का त्याग है, वह निरर्थक है।** नग्नपना धारण करे, हजारों रानियाँ छोड़े, वह सब निरर्थक है। मान्यता में है, मान्यता में तो अपना राग है और राग का आश्रय तो अन्दर पड़ा है। श्रद्धा में राग से लाभ हो, यह दृष्टि पड़ी है। राग का स्वामी, राग का मालिक और राग का ही कर्ता है। आहाहा! समझ में आया?

बाह्य परिग्रह का त्याग है, वह निरर्थक है। गिरि (पर्वत) दरी (पर्वत की गुफा) सरित् (नदी के पास)... नदी का तट... यह करते हैं न, महीने-महीने की तपस्या करे। ....ऐसा लगे... पुण्य करते हैं। धूल में भी नहीं कुछ। भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु का आश्रय लेकर शुद्धभावरूपी सम्यग्दर्शन और पर्याय प्रगट नहीं की, उसके लिये यह सब पर्वत गिरि और नदी। **कन्दर (पर्वत के जल से चीरा हुआ स्थान)...** कन्दर-कन्दर **(पर्वत के जल से चीरा हुआ स्थान)...** है न? पर्वत के जल से... नीचा स्थान। **इत्यादि स्थानों में आवास (रहना) निरर्थक है।** यह सब रण में शोर मचाने जैसा है। आहाहा!

ध्यान करना,... ध्यान करे दूसरे। परन्तु अब वस्तु की श्रद्धा की चीज़ जहाँ द्रव्य का आश्रय नहीं, वहाँ तेरा ध्यान कैसा? वह एक बिना की शून्य है। **ध्यान करना, आसन द्वारा**

मन को रोकना,... लो। आसन लगाकर मन को रोके **अध्ययन (पढ़ना)...** लो। '**ज्ञानाध्ययनम्**' ऐसा है न? ज्ञान अर्थात्... ज्ञान अध्ययन। ध्यान में मन को अशुद्ध से जरा रोके और **अध्ययन (पढ़ना) ये सब निरर्थक हैं।** वस्तु के-द्रव्यस्वभाव की श्रद्धा शुद्धता बिना यह सब निरर्थक-निरर्थक है। समझ में आया?

बाह्य क्रिया का फल आत्मज्ञान सहित हो तो सफल हो,... तो निमित्तरूप से ऐसा कहा जाता है। **अन्यथा सब निरर्थक है।** आत्मा का ज्ञान अर्थात् स्वभाव ज्ञान आत्मा, उसे स्पर्श किये बिना, स्पर्श किये बिना का ज्ञान, वह सब निरर्थक है, उसका पठन भी निरर्थक।

श्रोता : सफल है....

पूज्य गुरुदेवश्री : सफल.. सफल.. चार गति में भटकने के लिये है।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिटाने के लिये नहीं; चार गति में भटकने के लिये है।...किया था न? लंघन किया था न, इन्होंने लंघन किया था। अब भूल गये हो न... वर्षीतप किया था, ऐसे होशियार व्यक्ति।.... आहाहा!

कहते हैं, यह **पुण्य का फल हो तो भी संसार का ही कारण है,...** ठीक। राग की मन्दता हो वह संसार का कारण है। **मोक्षफल नहीं है।** मोक्ष नहीं। संसार छोड़ा वह तो अनादि से छोड़ा, वह पर है। उसमें कुछ नया है? शुद्ध भाव की श्रद्धा-ज्ञान बिना और शुद्ध भाव का प्रगट किये बिना यह सब निरर्थक... निरर्थक... निरर्थक है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२३ **श्री समयसार, गाथा - ८७-८९, प्रवचन - १६५**
दिनांक - १५-०६-१९६९

८७ गाथा का भावार्थ। भावार्थ है। क्या कहते हैं ? कि आत्मा अपना चैतन्य शुद्ध आनन्द स्वभाव ज्ञान है। तथापि कर्म का उदय जड़ है, जड़। इस निमित्त में लक्ष्य जाने से इसकी पर्याय में मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अविरति परिणाम उत्पन्न होते हैं। वह भाव जीव का है और उदय जड़ का भाव है। समझ में आया ? भगवान आत्मा अपने उपयोग शुद्धस्वरूप है, उपयोग शुद्ध स्वरूप। तो भी अनादि कर्म के संग से जो कर्म का उदय आता है, उसमें राग-द्वेषादि स्वाद जड़ का, हों ! जड़ का। उसमें अपनी स्वच्छता के कारण से उपयोग में वह राग-द्वेषादि झलकता है, अथवा उपयोग राग-द्वेषादि हो जाता है। समझ में आया ? वह जीव का भाव है और उदयादिक जो है, वह जड़ का (भाव है)। दोनों को भिन्न बतलाना है। समझ में आया ?

पुद्गल (कर्म) के परमाणु पौद्गलिक मिथ्यात्वादि कर्मरूप से परिणमित होते हैं। जड़। पुद्गल जड़ परमाणु उस कर्मरूप परिणमते हैं। कल प्रश्न किया था कि मिथ्यात्व जड़ में कैसे ? परन्तु उस दर्शनमोह की पर्याय को यहाँ मिथ्यात्व कहने में आया है। कर्म की दर्शनमोह की पर्याय, उस जड़ की पर्याय को जड़ मिथ्यात्व कहने में आता है। समझ में आया ? वे **पुद्गल के परमाणु पौद्गलिक मिथ्यात्वादि कर्मरूप से परिणमित होते हैं। उस कर्म का विपाक (उदय) होने पर...** वह कर्म सत्ता में है, उसका **विपाक (उदय) होने पर उसमें जो मिथ्यात्वादि स्वाद उत्पन्न होता है...** जड़ में। जड़ में मिथ्यात्व, अविरत, राग-द्वेष का स्वाद जड़ में उत्पन्न होता है। समझ में आया ? पण्डितजी ! सूक्ष्म पड़ता है। देखो न, परन्तु क्या कहते हैं ?

पुद्गल के परमाणु पौद्गलिक मिथ्यात्वादि कर्मरूप से परिणमित होते हैं। उस कर्म का विपाक (उदय) होने पर... उसमें अर्थात् कर्म में, जड़ में। **मिथ्यात्वादि स्वाद उत्पन्न होता है...** उस कर्म का स्वाद अर्थात् उदय / पाक, वह कर्म का स्वाद है, वह अजीव है। वह पर्याय अजीव है। दर्शनमोह का उदय, चारित्रमोह का उदय, वह सब जड़ की पर्याय है।

आहाहा! अजीव है न? अजीव के द्रव्य-गुण-पर्याय अजीव हैं। तीनों अजीव हैं, द्रव्य अजीव है गुण अजीव है, और पर्याय अजीव है।

वह मिथ्यात्वादि अजीव हैं;... देखो! यह दर्शनमोह जड़ है, जो मिथ्यात्वभाव में निमित्त होता है। मिथ्यात्वभाव जीव में (होनेवाला) जीवभाव है। उसमें कर्म का उदय/ पाक निमित्त होता है। वह अजीव है, जड़ है। **उसमें जो मिथ्यात्वादि स्वाद उत्पन्न होता है, वह मिथ्यात्वादि अजीव है; और कर्म के निमित्त से...** अब, जो अजीव है, उसके निमित्त से **जीव विभावरूप परिणमित होता है...** जीव अपने में मिथ्याश्रद्धा, राग-द्वेष, अव्रत, कषाय, प्रमादरूप -विभावरूप अपने में परिणमित होता है, वह जीव का भाव है, जीव का भाव है। यहाँ तो इतना सिद्ध करना है न! दो क्रिया भिन्न सिद्ध करनी है न? समझ में आया?

कर्म के निमित्त से जीव विभावरूप परिणमित होता है, वे विभाव परिणाम चेतन के विकार हैं, इसलिए वे जीव हैं। समझ में आया? मिथ्यात्वभाव—पर में सुख है, पुण्यभाव में सुख है—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह जीव की विकारी पर्याय है और कर्म का पाक, वह तो अजीव की पर्याय है। दोनों एक समय में, एक क्षेत्र में होने पर भी दोनों का भाव भिन्न है।

श्रोता : उदयरूप स्वाद वह अजीव का है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अजीव का है।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जीव की पर्याय है। समझ में आया? आहाहा! इतनी बात की है।

यहाँ यह समझना चाहिए कि—मिथ्यात्वादि कर्म की प्रकृतियाँ... जड़ परमाणु। **पुद्गलद्रव्य के परमाणु हैं।** इतनी बात एक ओर। जितनी मिथ्यात्वादि कर्म की प्रकृतियाँ हैं—दर्शनमोह, चारित्रमोह, ज्ञानावरणी, अन्तराय इत्यादि **प्रकृतियाँ पुद्गलद्रव्य के परमाणु हैं।** बस, एक तो यह बात। **जीव उपयोगस्वरूप है।** जीव जानन-देखन उपयोगस्वरूप है, बस इतना। समझ में आया? कर्म पुद्गलस्वरूप है, परमाणुरूप है, जीव उपयोगरूप है, यह दो चीज है।

श्रोता : अब विभाव सिद्ध करना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब विभाव सिद्ध करना है।

उसके उपयोग की ऐसी स्वच्छता है... जानन-देखन भगवान आत्मा की उपयोग

स्वच्छता ऐसी है कि **पौद्गलिक कर्म का उदय होने पर...** कर्म का पाक होने से **उसके उदय का जो स्वाद आवे...** वह जड़ है। वहाँ तक जड़ है। कर्म का पाक-स्वाद आवे, वहाँ तक तो वह अजीव है। दो बातें की है न? एक पुद्गल परमाणु है, एक जीव उपयोगमय है। बस, यह दो बात। अब, पुद्गलकर्म में पर्याय हुई, पाक (हुआ)। मिथ्यात्व, राग-द्वेष, अव्रत, वह जड़ की पर्याय जड़ में (हुई)। उसका स्वाद जड़ में, उसका स्वाद अजीव। **उसके आकार उपयोग हो जाता है।** वह जीव।

जानन-देखन उपयोग, राग-द्वेषादि कर्म का विपाक है, वह जड़ में है, परन्तु स्वच्छता के कारण, अपने में लक्ष्य नहीं है, पर में लक्ष्य है तो उपयोग राग-द्वेषादि, मिथ्यात्वादि (आकार) उपयोग हो जाता है। उसका आकार, वह जीव की पर्याय है। समझ में आया? उपयोग।

अज्ञानी को अज्ञान के कारण उस स्वाद का और उपयोग का भेदज्ञान नहीं है... वह जड़ का स्वाद है और अपने उपयोग की विकारी पर्याय, उनकी भिन्नता का भान नहीं है। बहुत धीरज की बात है। समझ में आया? भगवान आत्मा उपयोग जानन-देखन '**सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं**' वह तो जानन-देखन उपयोगस्वरूप त्रिकाल स्वरूप भगवान है, और कर्म परमाणु है। बस, दो बात। अब, कर्म परमाणु में कर्म का पाक जब उदय होता है, तब इसका स्वाद, मिठास मिथ्यात्व की, अव्रत की, जड़ की, स्वाद दशा है। उस जड़ की स्वाद दशा की ओर उपयोग जीव स्वरूप है, उसका लक्ष्य वहाँ है तो उपयोग उस आकार हो जाता है। मिथ्यात्व परिणाम, राग परिणाम, द्वेष परिणाम उसरूप उपयोग हो जाता है। वजुभाई! यहाँ तक तो दिक्कत नहीं है। जरा जीवभाव और अजीव वहाँ थोड़ा विवाद है। समझ में आया?

श्रोता : दृष्टान्त दीजिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दर्पण लो। इसका दृष्टान्त दिया था। सामने वस्तु है, तो वस्तु की पर्याय वस्तु में है। दर्पण में जो दिखता है, वह दर्पण की अवस्था है। सामने अग्नि है तो अग्नि दर्पण में दिखती है न? वह अग्नि नहीं है, वह तो दर्पण की अवस्था है परन्तु उपाधि है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा जानन-देखन उपयोगस्वरूपी प्रभु है और कर्म परमाणु अजीवरूप भिन्न है। देखो! कहाँ भूल होती है, इसकी बात करते हैं। अजीव कर्म का विपाक होता है, तो उसका स्वाद मिथ्यात्व का, अव्रत का, राग-द्वेष का जड़ का स्वाद जड़ में विपाक होकर आता है। तब आत्मा उपयोगस्वरूप होने से स्वच्छता ऐसी कोई है कि पर के ऊपर

लक्ष्य होने से जैसा जड़ का स्वाद है, जैसा आकार अपने में हो जाता है। जिस प्रकार अग्नि बाहर है, वैसे दर्पण में दिखती है। उसी प्रकार स्वच्छता की ऐसी शक्ति है कि सामने कर्म का पाक हुआ, उस ओर का लक्ष्य (है तो उस आकार उपयोग हो जाता है)। स्वरूप का तो लक्ष्य है नहीं। अज्ञानी की बात अनादि... नहीं। समझ में आया?

कर्ता-कर्म अधिकार है न? वह अज्ञानी का कर्म है। विकाररूप, पुण्य-पापरूप, दया-दानरूप, मिथ्यात्वरूप होना—उपयोग में उस आकार होना, वह जीव की अवस्था है। दुःखरूप दशा है, परन्तु है अपनी पर्याय। समझ में आया? **अज्ञानी को अज्ञान के कारण उस स्वाद का और उपयोग का भेदज्ञान नहीं है...** कर्म का पाक अजीव का और उपयोग में जो राग-द्वेष मिथ्यात्व की आकृति हुई, उसकी भिन्नता का भान नहीं है।

श्रोता : उपयोग तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : विकारी-विकारी आकृति। विकारी आकृति और जड़। समझ में आया? यहाँ दो भाव भिन्न बतलाना है न? जीवभाव और जड़भाव। इतना है न यहाँ तो? दोनों की पर्याय भिन्न-भिन्न है, ऐसा बतलाना है। समझ में आया? भगवान की बात थोड़ी अन्तर की है न! यह कोई पढ़ ले और पढ़ जाए तो समझ में आये, ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा!

आत्मा उपयोगस्वरूप होने पर भी स्वच्छता की कोई ऐसी स्थिति है कि कर्म का पाक कर्म में आने पर भी, अपने में उसका स्पर्श न होने पर भी और आत्मा का उपयोग उदय को स्पर्शता नहीं तो भी जैसा उदय आता है, वैसा अपना उपयोग इस आकार, विकार को धारण करता है। समझ में आया?

अज्ञानी को अज्ञान के कारण उस स्वाद का... जड़ का (स्वाद) **और उपयोग का...** आकार का। उपयोग में विकृत आकार हुआ वह और स्वाद जड़। दोनों का **भेदज्ञान नहीं है...** भिन्नता का भान नहीं है। **उपयोग का भेदज्ञान नहीं है, इसलिए वह स्वाद को ही अपना भाव समझता है।** समझ में आया? अपने में विकारी मिथ्यात्वादि होते हैं, उन्हें तो जानता नहीं, इसलिए जो जड़ का स्वाद है, उस पर इसका लक्ष्य है। यही अपना है, ऐसा मान लेता है। उस स्वाद अर्थात् जड़ के **स्वाद को ही अपना भाव समझता है।** वह अपनी दशा है, अपनी पर्याय है। इस प्रकार जड़ की अवस्था को मानता है। आहाहा! गजब बात, भाई!

श्रोता : .... परिणति ली, उस परिणति को अपनी मानता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी मानता है। आत्मा में-पर्याय में आकार होता है, तथापि वह

मैं हूँ—ऐसा मानता है। जड़ के परिणाम मैं हूँ—ऐसा मानता है। दो क्रिया भिन्न बतलानी है न यहाँ? दो क्रिया बतलानी है। समझ में आया? आहाहा! इतनी धीरज चाहिए। धीरज चाहिए।

इसलिए वह स्वाद को ही अपना भाव समझता है। जड़ के भाव को ही अपना भाव समझता है। **वह स्वाद को...** उस अर्थात् जड़ को। **अपना भाव समझता है। जब उनका भेदज्ञान होता है...** यहाँ जरा थोड़ा कठिन है। जड़ का स्वाद और विकारी पर्याय का भेदज्ञान होता है, ऐसा लेना। **जीवभाव को जीव जानता है...** अर्थात् विकारी पर्याय मुझमें है, ऐसा जानता है।

श्रोता : है तो आस्रव...

पूज्य गुरुदेवश्री : है भले। परन्तु मेरी पर्याय में है, इतना यहाँ सिद्ध करना है न? यहाँ तो जरा है, ऐसा जाने। मेरी पर्याय मुझसे है, ऐसा जाने तो उससे रहित द्रव्य पर दृष्टि होने से भेदज्ञान हो जाता है। आस्रव से भी भेदज्ञान हो जाता है। फिर से। क्या करे परन्तु इसमें जीव और अजीव के दो भाव भिन्न बतलाना है। इसलिए वास्तव में तो यहाँ... यहाँ भाषा भले ऐसी हो कि **जब उनका भेदज्ञान...** उसका अर्थ, विकारी जड़ अवस्था और विकारी चैतन्य अवस्था। दो का भेदज्ञान होने पर। बस, इतना। ऐई...!

जड़ है न जड़? कर्म का पाक होता है न? वह अजीव है। अजीव में होता है। और आत्मा का उपयोग है स्वच्छ है, तो उसका स्व के ऊपर लक्ष्य नहीं है, पर के ऊपर लक्ष्य है। तो मिथ्यात्व, राग-द्वेष के आकाररूप उपयोग हो जाता है तो मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूप उपयोग होता है वह, और कर्म का पाक स्वाद जड़—दोनों का भेदज्ञान नहीं होने से, दो के बीच की एकता मानता है। परन्तु दो का भेदज्ञान नहीं होने से... जरा सूक्ष्म है।

श्रोता : यह भेदज्ञान है, ऐसा किस प्रकार मानना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर की अवस्था मेरी नहीं है और यहाँ विकारी परिणाम होते हैं, वे क्षणिक हैं। मेरे द्रव्य में नहीं है, ऐसा भेदज्ञान होता है।

श्रोता : कर्ता-कर्म मानता है या व्याप्य-व्यापक मानता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्ता-कर्म मानता है कि मेरा कर्म है। मेरा कर्म विकारी पर्याय, ऐसा न मानकर जड़ की पर्याय मेरा कार्य है, ऐसा मानता है।

श्रोता : उसे अपना स्वभाव न माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने स्वभाव को नहीं परन्तु पर की पर्याय को अपनी मानता है।

अज्ञान में परभाव की पर्याय को अपनी मानता है। अब भेदज्ञान होता है, तो पर की पर्याय को अपनी न माने। अपनी विकारी पर्याय को अपनी माने, तब उसकी दृष्टि कहाँ होती है ? द्रव्य पर दृष्टि होती है, तब विकारी परिणाम अपना है, ऐसा भेदज्ञान (होता है)। पर से भेदज्ञान हुआ तो विकार से भी भेदज्ञान हो जाता है। समझ में आया ?

जब उनका भेदज्ञान होता है... उनका अर्थ क्या ? - कि विकारी परिणाम और जड़ की अवस्था। दोनों का भेदज्ञान होता है, तब **जीवभाव को जीव जानता है...** विकारी परिणाम मेरी पर्याय में है, मेरे हैं, ऐसा जानता है और अजीव को अजीव जानता है। इतनी सूक्ष्मता (हुई) कि जीव परिणाम मुझमें है, ऐसी सूक्ष्मता हुई, वहाँ पर से तो भिन्न हो गया परन्तु वे परिणाम मुझमें हैं, ऐसा सूक्ष्म लक्ष्य करता है, तब द्रव्य पर दृष्टि हो जाती है। समझ में आया ? आहाहा!

श्रोता : ....आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आ गया। मेरी पर्याय विकृत आदि मुझमें है। किसी पर के साथ सम्बन्ध नहीं है। ऐसा होने से पर से भिन्न हुआ तो अपने द्रव्य पर दृष्टि हुई। द्रव्य पर दृष्टि होने पर तो जीवभाव को जाना। तब जाना ऐसा कहने में आता है। विकारी पर्याय मुझमें है, जड़ की पर्याय मुझमें नहीं, जड़ से मुझमें कुछ हुआ नहीं, ऐसी पर्याय की सूक्ष्मता पर जहाँ लक्ष्य गया, उसका लक्ष्य द्रव्य पर जाता है। समझ में आया ? तो जैसे पर से भेद हुआ, वैसे राग से भी भेद हो जाता है। गजब बात! समझ में आया ?

जीवभाव। कहाँ यहाँ जीवभाव और कहाँ उसको जीवभाव। अभी आगे लेंगे कि जीवभाव को आत्मा राग-द्वेष जो विकारी पर्याय होती है, उसे जानना, अनुभव वह जीवभाव है। परन्तु वह तो बाद में। पहले ये समझने के पश्चात् राग-द्वेष से भिन्न अपना स्वभाव है। जितना विकारी आकार हुआ, वह भी मेरी पर्याय नहीं है, वह तो जड़ की है। ९१-९२ गाथा में यह लेंगे। आहाहा! जैसे शीत और उष्ण अवस्था पुद्गल से अभिन्न है, वैसे उपयोग आकार जो यहाँ कहते हैं, वह भी जड़ की अवस्था है, वह पर से भेदज्ञान कराकर बात की है। समझ में आया ? ओहोहो! बहुत अपेक्षाएँ, इसलिए लोगों को समझ में नहीं आती, (इसलिए) कठिन पड़ती है।

भगवान आत्मा अपने उपयोगस्वरूप शुद्ध चिदानन्द आत्मा अनादि से अपना स्वलक्ष्य नहीं होने से और परलक्ष्य होने से कर्म के पाक की दशा को अपनी मानता है। अपने जो विकारी परिणाम है, वे अपने हैं, ऐसा नहीं मानता। यदि ऐसा माने तो सूक्ष्म परिणाम समय के

या यह विकारी परिणाम मेरे हैं, ऐसी दृष्टि हो तो पर से तो भिन्न हुआ परन्तु राग से भी भिन्न होकर राग के परिणाम को जाननेवाला हुआ। समझ में आया?

इसलिए वह स्वाद को ही अपना भाव समझता है। जब उनका भेदज्ञान होता है... इनका अर्थ विकारी पर्याय और जड़ की पर्याय। विकारी पर्याय जीव का मिथ्यात्वभाव और दर्शनमोह का मिथ्यात्वभाव जड़ का। दो के बीच का भेदज्ञान होता है। **अर्थात् जीवभाव को जीव जानता है...** दोनों में भेद करना है न? **जीवभाव को जीव जानता है...** विकारी पर्याय जीव की जीव में है, जड़ की पर्याय मुझमें नहीं। **अजीव भाव को अजीव जानता है तब मिथ्यात्व का अभाव होकर...** तब अपनी दृष्टि पर से छूटकर अपने द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि होने से पर से भिन्न हुआ, वैसे विकार से भी भिन्न हुआ, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है और मिथ्यात्व का नाश होता है। आहाहा! अभी यह पहली चीज़ है। समझ में आया?

मिथ्यात्व का नाश हुए बिना और सम्यग्दर्शन हुए बिना कोई चीज़ सच्ची है ही नहीं। ज्ञान भी सच्चा नहीं, चारित्र नहीं, व्रत नहीं, तप नहीं। कोई वस्तु है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो अपने हित की बात है। समझ में आया? अपना अर्थात् सर्व जीवों का। समझ में आया? अ..हो..! ऐसा मनुष्य भव आया, अनन्त काल चला गया। अ..हो..! भविष्य का अनन्त काल सिर पर बाकी है। इस अनन्त काल के भ्रमण का कारण मिथ्यात्व है। समझ में आया? इस मिथ्यात्व में अनन्त काल के भ्रमण की शक्ति पड़ी है। है मिथ्यात्व अपनी पर्याय परन्तु इसमें अनन्त संसार, निगोद करने की शक्ति पड़ी है। भविष्य में कहाँ जाएगा? इस मिथ्यात्व का नाश करने के लिए स्वभाव का आश्रय करना, पर का लक्ष्य छोड़कर, जब पर का लक्ष्य छूटा कि यह मेरा नहीं है तो मैं कौन हूँ? मैं तो ज्ञायक हूँ, शुद्ध चैतन्य हूँ – ऐसी अन्तर्दृष्टि जम जाए, तब पर से भिन्न हुआ, वैसे राग से भी भिन्न हुआ, तब मिथ्यात्व का नाश होता है।

संसार नहीं। संसरण—संसार करना, वह ज्ञानी को नहीं है। समझ में आया? पूरा भविष्यकाल जानने-देखने में जाएगा। आहाहा! समझ में आया? अज्ञानी का भविष्य काल राग की एकता मान्यता में है। ऐसी मान्यता में कौन सा भव होगा, उसका ठिकाना नहीं रहेगा। ऐसा जाएगा। दुनिया-दुनिया की जाने। दुनिया क्या करती है? वस्तु की स्थिति यह है। समझ में आया? वह तो स्पष्टीकरण करने को कोई नाम लेकर कहे, ऐसी मान्यता है, परन्तु ऐसा वस्तुस्वरूप नहीं है। व्यक्ति के साथ क्या है? किसी के साथ कुछ काम नहीं। सबके परिणाम की जवाबदारी सबकी है। किसी का जोखिम किसी के ऊपर है? समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, अपने परिणाम के विकार अज्ञानभाव से भले कर्म माने परन्तु अज्ञानभावभाव से पर के कर्म अपने हैं और कर्ता यह है, ऐसा नहीं है। बस, इतनी बात है। मान्यता में पर का कर्तापना और कर्मपना छूट जाता है, तो अपने द्रव्य पर दृष्टि होने से राग और पर से भिन्न हो गया, तब सम्यग्दर्शन हुआ और मिथ्यात्व का नाश हुआ। मिथ्यात्व का अभाव होकर सम्यग्ज्ञान होता है। समझ में आया? यह गाथा पूरी हुई।

अब प्रश्न करता है कि मिथ्यात्वादि को जीव... मिथ्यात्वभाव को जीव, अव्रत-प्रमाद-कषाय को **जीव और अजीव कहा है...** दर्शनमोह की पर्याय आदि को अजीव कहा। **वे जीव मिथ्यात्वादि और अजीव मिथ्यात्वादि कौन हैं?** वे हैं कौन? वे किस प्रकार से हैं? इस ओर मिथ्यात्व, वह जीव का। उस ओर मिथ्यात्व, वह जड़ का। इस ओर अव्रत के परिणाम, वे जीव के। उस ओर चारित्रमोह उदय के अव्रत (परिणाम), वे जड़ के। यह है क्या? क्या है? आहाहा! **उसका उत्तर कहते हैं :—** जिसकी ऐसी जिज्ञासा (हुई है), अन्तर में समझने की धगश है, उसे यह गाथा उत्तररूप कहते हैं। वेठरूप नहीं। वेठ अर्थात् समझना, तुम कहो हम समझ लेंगे, सुन लेंगे, ऐसा नहीं। यह क्या वस्तु है? महाराज! क्या कहते हैं?

जड़ परिणाम क्या? जड़ का मिथ्यात्व क्या? चैतन्य का मिथ्यात्व क्या? जड़ का अव्रत क्या और जीव का अव्रत क्या? यह दो चीज़ क्या है? अव्रत-फव्रत तो जीव में होते हैं। परन्तु जड़ में एक अव्रत है, एक जीव में अव्रत है। एक जड़ में मिथ्यात्व है, एक जीव में मिथ्यात्व है। एक जड़ में कषाय है, एक जीव में कषाय है। एक जड़ का योग है, एक जीव का योग है। एक जड़ का मोह है, एक जीव का मोह है। यह क्या?

श्रोता : जड़ पदार्थ....

पूज्य गुरुदेवश्री : करे क्या? क्या उसमें अव्रत है?

पोग्गलकम्मं मिच्छं जोगो अविरदि अणाणमज्जीवं।
उवओगो अण्णाणं अविरदि मिच्छं च जीवो दु॥८८॥

यह कहते हैं न इस ओर। इस ओर है, उसमें नहीं। बाजू बदल गयी है इसमें। जहाँ गाथा है, वहाँ नीचे नहीं।

मिथ्यात्व अरु अज्ञान आदि अजीव, पुद्गलकर्म हैं।
अज्ञान अरु अविरमण अरु मिथ्यात्व जीव, उपयोग हैं॥८८॥

एक गाथा की बात है। यहाँ तो दोनों साथ में ली है।

टीका : निश्चय से... वास्तव में **जो मिथ्यादर्शन...** अजीव है। दर्शनमोह की जड़ की पर्याय (अजीव है)। **मिथ्यादर्शन...** देखो! जड़ की पर्याय मिथ्यादर्शन। दर्शनमोह मिथ्यात्व परिणाम, वह जड़ की—परमाणु की पर्याय है। **मिथ्यादर्शन, अज्ञान...** ज्ञानावरणीय का उदय अज्ञान, वह जड़ के परिणाम है। **अविरति....** चारित्र का अभाव और अचारित्र का उदय, चारित्रमोहनीय का उदय जड़, वह अविरति जड़ है, पुद्गल है। ऐसे योगादि ले लेना। '**जोगो अण्णाणं**' जोग, अज्ञान आदि आया न? अज्ञान तो आ गया। योग। **इत्यादि अजीव हैं...** वह तो अजीव की—जड़ की—पुद्गल की पर्याय है।

वे तो, अमूर्तिक चैतन्यपरिणाम से... देखो! **अन्य मूर्तिक पुद्गलकर्म हैं;...** अमूर्तिक चैतन्यपरिणाम में विकारी लेना। देखो! विकारी परिणाम परन्तु है अमूर्तिक चैतन्य परिणाम है। समझ में आया? मिथ्यात्व, अज्ञान अमूर्तिक चैतन्यपरिणाम है। **अन्य मूर्तिक पुद्गलकर्म हैं;** आहाहा! **और जो मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अविरति आदि जीव हैं...** योगादि, कम्पन आदि जीव के परिणाम हैं। **वे, मूर्तिक पुद्गलकर्म से अन्य चैतन्य परिणाम के विकार हैं।** दोनों भिन्न हुए। एक तो दर्शनमोह की पर्याय, चारित्रमोह की पर्याय, योग-कम्पन की पर्याय, शरीर, नामकर्म, उदय वह पुद्गलकर्म मूर्त है, वह चैतन्य अमूर्त से भिन्न है; और चैतन्य के मिथ्यात्व अव्रतादि परिणाम जो है, वह मूर्त पुद्गल से भिन्न चेतन के विकार (परिणाम) हैं। इतना लिया। अमूर्तिक चैतन्यपरिणाम लिये। **चैतन्य परिणाम के विकार हैं।** है न? इसके है न, ऐसा कहते हैं। इसके सिद्ध करना है न? **चैतन्य परिणाम के विकार हैं।** कहो, समझ में आया? इस गाथा में मात्र दो बातें कही है, बस। एक जड़ की पर्याय (है)। मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय, योग—वह जड़ की पर्याय, वह चैतन्य से भिन्न है, और चैतन्य के मिथ्यात्व अव्रत-प्रमाद, वह पुद्गल की—जड़ की अवस्था से भिन्न है। समझ में आया? आहाहा!

अब पुनः प्रश्न करता है कि मिथ्यादर्शनादि चैतन्यपरिणाम का विकार कहाँ से हुआ? कहाँ से हुआ? तुमने तो अपनी पर्याय में सिद्ध किया, पर से भिन्न सिद्ध किया और फिर विकार कहते हो। आया कहाँ से विकार? कहाँ से किया?

श्रोता : कर्म में से तो आता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म की पर्याय जड़ में है, वह पर्याय उसमें है। और तुम कहते हो कि विकार चैतन्य के परिणाम हैं। मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अव्रत, कषाय, योग क्या है यह? कहाँ से हुआ? .....

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो इनकार किया। पर तो पर है। उसमें क्या है? ऐसा कि विकार जो राग-द्वेष मिथ्यात्व तो जीव में नहीं, गुण में नहीं है, द्रव्य में नहीं तो कहाँ से आया? कहाँ से आया? तो कर्म में से आया, ऐसा सिद्ध करना पड़े। ऐसा नहीं है। कर्म तो जड़ पर्याय है। जड़ में से आता है? जड़ की पर्याय यहाँ आती है? जड़ की पर्याय यहाँ घुस जाती है? जड़ की पर्याय तो समय-समय में उत्पाद-व्यय होकर वहाँ जड़ में ध्रुव पड़ा है। समय-समय में उत्पाद होता है, पूर्व की अवस्था का व्यय होता है, ध्रुवरूप परमाणु कर्म पड़े हैं। क्या उसमें से उत्पाद का यहाँ उत्पाद होता है? तो क्या है?

मुमुक्षु : उसके स्वभाव में भी नहीं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव में नहीं तो पर्याय में पर के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है, ऐसा सिद्ध करते हैं। देखो!

मिथ्यादर्शनादि चैतन्यपरिणाम का विकार कहाँ से हुआ? 'मिथ्यादर्शनादिश्चैतन्य-परिणामस्य विकारः कुत इति चेत्-' प्रश्न है न?

उवओगस्स अणाई परिणामा तिण्णि मोहजुत्तस्स।
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदिभावो य णादव्वो॥८९॥

है मोहयुत उपयोग का परिणाम तीन अनादि का।
मिथ्यात्व अरु अज्ञान, अविरतभाव ये त्रय जानना॥८९॥

टीका - यद्यपि निश्चय से... वास्तव में **अपने निजरस से ही...** अपनी निज शक्ति के स्वभाव के सामर्थ्य से ही **सर्व वस्तुओं की अपने स्वभावभूत स्वरूप-परिणमन में सामर्थ्य है,...** पहले तो यह सिद्ध किया। पश्चात् विकार की बात की। समझ में आया? वास्तव में यद्यपि, ऐसा है न? वास्तव में **अपने निजरस से...** ही परमाणु हो या आत्मा हो, अपनी निज शक्ति-स्वभाव से ही सर्व वस्तुएँ। जितने अनन्त पदार्थ हैं, वे सब पदार्थ **अपने स्वभावभूत...** यहाँ विकार नहीं, देखो! **अपने स्वभावभूत स्वरूप-परिणमन में सामर्थ्य है,...** भगवान आत्मा तो अपने स्वभावभूत स्वरूप-परिणमन में समर्थ है। आनन्दरूप, शुद्धरूप परिणमन में सामर्थ्य है। वह स्वभाव है। योग्यता निमित्त के आधीन उत्पन्न करता है, यह कहेंगे। समझ में आया?

निश्चय से अपने निजरस से ही... निज शक्ति से, निजरस, स्वभाव। प्रत्येक का रस।

जड़ का रस जड़ का है। परमाणु का निजरस उसकी शक्ति है या नहीं ? छहों द्रव्य के निजरस अर्थात् निज स्वभाव की शक्ति के सामर्थ्य से **सर्व वस्तुओं की अपने स्वभावभूत...** सर्व पदार्थ में अपने स्वभावभूत **स्वरूप-परिणमन में सामर्थ्य है, तथापि...** ऐसा होने पर भी, भगवान आत्मा अपने स्वरूप परिणमन में उसका सामर्थ्य है। समझ में आया ? स्वभावभूत स्वरूप-परिणमन। आनन्द और ज्ञान और शान्ति और वीतरागता, ऐसा अपना स्वभावभूत स्वरूप। स्वभावभूत स्वरूप-परिणमन में सामर्थ्य है।

शुद्ध ध्रुव, आनन्द और ज्ञान, वीतरागता के रस से भरपूर, प्रभु! ऐसा स्वभावभूत परिणमन में स्वरूप सामर्थ्य है। स्वरूप परिणमन में सामर्थ्य है। वास्तव में तो ऐसा शुद्धरूप परिणमना इसकी सामर्थ्य है। समझ में आया ? स्वभाव तो ऐसा है। भगवान आत्मा अपने ज्ञान में अमृत आनन्द के स्वाद में, वीतरागरस के स्वभाव में स्वरूप-परिणमन में, अपने स्वभावभूत स्वरूप, जो त्रिकाली स्वभावभूत आनन्द ज्ञानादि स्वभावभूत स्वरूप, उसके परिणमन में सामर्थ्य है। ओहो! एक तो वस्तु कही, पश्चात् स्वभावभूत कहा, फिर परिणमन कहा। तीन बोल लिये। भगवान आत्मा, यह वस्तु हुई और स्वभावभूत स्वरूप, वह गुण हुआ, शक्ति हुई, स्वभाव हुआ। परिणमन में ही, (यह) पर्याय हुई।

सर्व वस्तुओं की... यहाँ तो सर्व लिया है परन्तु आत्मा को लेना है न ? आत्मा **वस्तुओं की अपने स्वभावभूत...** तो वस्तु तो वस्तु हुई, स्वभाववान। अब इसका स्वभाव। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वीतरागरस से भरपूर भगवान!—ऐसा स्वभावभूत स्वरूप, स्वभावभूत स्व-रूप। ऐसे परिणमन में सामर्थ्य है। समझ में आया ? ऐसा होने पर भी, पर्याय में क्यों भूल हुई ? यह बताते हैं। समझ में आया ?

भगवान आत्मा अपने स्वभावभूत। स्वभावभूत अर्थात् कायम रहनेवाला स्वभाव। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, वीतरागता, रस आदि। ऐसा स्वभावभूत, ऐसा जो स्वरूप, उसके परिणमन में सामर्थ्य है। उसकी ऐसी निर्मल पर्याय होने में उसका सामर्थ्यपना है। तथापि **(आत्मा का) अनादि से अन्य-वस्तुभूत मोह के साथ संयुक्तपना होने से...** देखो! भगवान आत्मा के साथ अनादि से अन्य वस्तुभूत। भगवान आत्मा से अन्य वस्तु। देखो! अन्य वस्तु। मोह, के साथ सयोग है, संयोग है। संयोग का लक्ष्य करने से... ऐसा कहते हैं।

अन्य-वस्तुभूत मोह के साथ संयुक्तपना होने से... स्वभाव-सामर्थ्य होने पर भी, पर्याय में अन्य वस्तुभूत... वह भी चीज़ है न वस्तुभूत ? वह भी वस्तु है न ? पदार्थ है। उस

वस्तुभूत मोह के साथ संयुक्तपना होने से,... संयोग होने से, **आत्मा के उपयोग का...** भगवान आत्मा के जानन-देखन उपयोग का, जानन-देखन व्यापार का **मिथ्यादर्शन, अज्ञान और अविरति के भेद से तीन प्रकार का परिणामविकार है।** लो। यह विकार आया, देखो! इसमें से अर्थ निकाला कि **मोह के साथ संयुक्तपना होने से...** परन्तु संयुक्तपने का अर्थ क्या? स्वभाव-सन्मुख लक्ष्य नहीं। मोह के संयोग पर लक्ष्य किया, ऐसा कहते हैं।

श्रोता : कर्म ने किया नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म-फर्म की (बात) कहाँ? वह तो कर्म की पर्याय कर्म में है। यह तो सिद्ध किया। उसमें से लोग यह निकालते हैं। देखो भाई! दूसरा कर्मसंयोग है तो विकार होता है। परन्तु संयोग है, इसलिए विकार होता है, परन्तु संयोग पर लक्ष्य जाता है तो विकार होता है, तब तो संयोग कहलाता है। समझ में आया?

श्रोता : पर्याय में तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा। उस पर लक्ष्य जाता है। उपयोग यहाँ नहीं जाकर वहाँ जाता है। वह कुछ देता है या लेता है-देता है, ऐसा प्रश्न नहीं। पर के साथ लेने-देने का प्रश्न नहीं है। अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्य भगवान स्वभावभूत, ऐसा परिणमन में सामर्थ्य होने पर भी, पर्याय में मोहकर्म के संयोग के साथ के कारण से, अपने उपयोग में मिथ्यादर्शन, अव्रत, अज्ञान के परिणमनरूप विकार होता है। आहाहा! उसमें से निकाला। मोहकर्म के बिना होता है? मोहकर्म के बिना विकार होता है? परन्तु मोहकर्म के विकार का अर्थ क्या? परसंग एव। आता है न यह? २७८। परसंग एव। देखो! वहाँ भी कहा है, परसंग से। परन्तु परसंग क्या? कि परसंग द्वारा या परसंग की ममता के कारण से? परसंग कब हुआ? कलश में आता है। यह टीका में भी ऐसा ही कहा है। आता है न? इसमें है न? देखो! २७८ है न? २७८। यह चर्चा बहुत चली। २७८। देखो!

जह फलिहमणी सुद्धो ण सयं परिणमदि रागमादीहिं।
रंगिज्जदि अण्णेहिं दु सो रत्तादीहिं दव्वेहिं॥२७८॥
एवं णाणी सुद्धो ण सयं परिणमदि रागमादिहिं।
राइज्जदि अण्णेहिं दु सो रागादीहिं दोसेहिं॥२७९॥

यहाँ से महासिद्धान्त लोगों ने उल्टा कर दिया।

ज्यो फटिकमणि है शुद्ध, आप न रक्तरूप जु परिणमे।
पर अन्य रक्त पदार्थ से, रक्तादिरूप जु परिणमे॥२७८॥

त्यों 'ज्ञानी' भी है शुद्ध, आप न रागरूप जु परिणमे।
पर अन्य जो रागादि दूषण, उनसे वो रागी बने॥२७९॥

ज्ञानी अर्थात् आत्मा। देखो! कलश में भी है, देखो! कलश है न? १७५। **निमित्त कभी भी नहीं होता, उसमें निमित्त परसंग ही (परद्रव्य का संग ही) है।** यहाँ बड़ा विवादा। बड़े प्रश्न उठे थे। देखो भाई! यह परसंग ही विकार बनाने को... परन्तु परसंग तूने किया तो होता है, नहीं तो परसंग क्या करे? पाठ में है न? **तस्मिन् निमित्तं परसङ्गः एव**

श्रोता : बनारसीदास ने बहुत सरस अर्थ किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सरस अर्थ किया है। परसंग अर्थात् पर की ममता, ऐसा अर्थ किया है। भाई बनारसीदास ने। ... किसने कहा? परसंग अर्थात् पर की ममता। '**परसङ्गः**' '**पर एव**' नहीं, पर संग से। पर से विकार होता है, ऐसा नहीं; परसंग से विकार होता है। पहले तो फेरफार था। .... आहाहा! समझ में आया?

आत्मा के उपयोग का, मिथ्यादर्शन, अज्ञान और अविरति के भेद से तीन प्रकार का... भेद से यहाँ तीन भेद लिये। योग आदि निकाल दिये। योग आदि साधारण है न? यह मूल बात है। **उपयोग का वह परिणामविकार,... मिथ्यादर्शन, अज्ञान और अविरति के भेद से तीन प्रकार का परिणामविकार है।** यही दृष्टान्त यहाँ दिया है। २७८। सब जगह लोग ऐसा अर्थ करते हैं। यह वहाँ भी किया था। (संवत) २००६ के वर्ष। चुनीभाई देसाई, देखो, भाई! परद्रव्य से आत्मा... हिम्मतभाई ने गुजराती हरिगीत बनाये हैं। अपने से रागरूप न परिणमे, परद्रव्य के कारण रागरूप परिणमे, ऐसा बोले थे। खबर है? अरे.. भगवान! पर में परद्रव्य की पर्याय क्या करे? परद्रव्य के साथ सम्बन्ध क्या है? तू सम्बन्ध करता है। वह कहीं सम्बन्ध देता है? लेने देने की तो जड़ की पर्याय है। उसे तो खबर भी नहीं। कौन मुझ पर लक्ष्य करता है और कौन नहीं करता, इसकी तो खबर नहीं। वह तो जड़ है। उस जड़ का लक्ष्य करके... यह तो पहले आ गया। अपने में अपने मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अविरति तीन प्रकार के परिणाम होते हैं। सामने जड़ की पर्याय के नहीं। जड़ की पर्याय जड़ में है। ओहोहो! कर्म का गजब, भाई! जहाँ हो वहाँ जैन में कर्म ऐसा घुस गया है।

श्रोता : कर्म बाधक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको कर्म बाधक है।

श्रोता : भावकर्म बाधक है या द्रव्यकर्म बाधक है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव विकारी परिणाम करता है, वह इसे बाधक है। जड़ बेचारा क्या (बाधक हो) ? 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई...' आता है ? चन्दप्रभ की स्तुति-भक्ति में आता है। 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई...'

मुमुक्षु : थोड़ा-थोड़ा टुकड़ा इकट्ठा करके...

पूज्य गुरुदेवश्री : 'अग्नि सहे घनघात लोह की संगति पाई।' ऐसा कहा है या नहीं ? 'अग्नि सहे घनघात लोह की संगति पाई।' अकेली अग्नि पर कोई घन नहीं मारते परन्तु अग्नि लोहे का संग करती है, लोहा अग्नि का संग करता है - ऐसा नहीं। अग्नि लोहे का संग करके अन्दर प्रवेश करती है तो घन पड़ते हैं। पण्डितजी ! आता है या नहीं ? ऐसा आता है। यह सब २०१३ के वर्ष में बहुत कहा था। बहुत लोग थे। क्या कहलाता है वह ? मधुवन। मधुवन में बहुत चला। बहुत लोग थे, बहुत पण्डित भी थे। रतनचन्द, बंसीधरजी, फूलचन्दजी थे, कैलाशचन्दजी थे। बहुत थे। उस समय कहा था। 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहे घनघात लोह की संगति पाई।' संगति करती है तो घन की मार सहन करनी पड़ती है।

भगवान आत्मा यह मोह का संग-संयोग करता है, ऐसा कहते हैं तो दुःख होता है। समझ में आया ? संयोग कुछ कराता है, ऐसा नहीं है। तब कहते हैं कि भाई ! हमारे तो बहुत धर्म करने का भाव है (परन्तु) दर्शनमोह मार्ग दे तो हो। बात मिथ्या है। तेरा भाव ऐसा होवे तो दर्शनमोह में ऐसी ताकत नहीं कि तुझे रोके। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ तो पहले यह कहा है कि अपने स्वभावस्वरूप परिणमन में सामर्थ्य है। कर्म उसे परिणमावे, वह तो है ही नहीं। भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानानन्द के स्वभाव से भरपूर, अनुभव करने में सामर्थ्य की शक्ति उसकी है। ऐसा होने पर भी अनादि मोह का संयोग, अन्य वस्तु-चीज़ के संग से तीन प्रकार का उपयोग हो जाता है। उपयोग हो जाता है, द्रव्य-गुण तो है, वह है। समझ में आया ?

आत्मा के उपयोग का, मिथ्यादर्शन, अज्ञान और अविरति के भेद से तीन प्रकार का परिणामविकार है। देखो ! परिणामविकार शब्द लिया है। वस्तु द्रव्य-गुण में कोई विकार है ही नहीं। चारित्रगुण, सम्यग्दर्शन गुण, आनन्दगुण वे तो सब शुद्ध.. शुद्ध... शुद्ध... हैं। कर्म

का संयोग करने से, पर का लक्ष्य करने से, उसके परिणाम में तीन प्रकार का विकार भासित होता है। वह **आत्मा के उपयोग का,...** भाषा देखो! समझे? **तीन प्रकार का परिणाम...** आत्मा के उपयोग के तीन प्रकार के परिणामविकार हैं।

उपयोग का वह परिणामविकार, स्फटिक की स्वच्छता के परिणामविकार की भाँति, पर के कारण... देखो! पर के कारण का स्पष्टीकरण है। **उत्पन्न होता दिखायी देता है।** यह तो स्फटिक के लिये कहा न? स्फटिक में जो लाल आदि रंग दिखते हैं, वे पर के निमित्त के संग की उपाधि से दिखते हैं, स्फटिक का मूल स्वभाव नहीं है। यही कहते हैं। **स्फटिक की स्वच्छता के परिणामविकार की भाँति, पर के कारण (-पर की उपाधि से) उत्पन्न होता दिखायी देता है। इसी बात को स्पष्ट करते हैं :-** देखो! अब सुलटा लेते हैं।

जैसे स्फटिक की स्वच्छता की स्वरूप-परिणमन में... ऐसा लिया न? उसमें लिया था न, अपने स्वभावभूत स्वरूप-परिणमन में सामर्थ्य। **स्फटिक की स्वच्छता की स्वरूप-परिणमन में (अपने उज्ज्वलतारूप स्वरूप में परिणमन करने से) सामर्थ्य होने पर भी,...** स्फटिक का तो स्वच्छ परिणमन होना, वही सामर्थ्य है। स्वभाव त्रिकाली सामर्थ्य वह है। उसके साथ पहले दृष्टान्त लिया न। सब वस्तु के स्वभावभूत। उसके साथ दृष्टान्त लिया।

कदाचित्... देखो! अब **कदाचित्...** सर्वदा नहीं। **(स्फटिक के) काले, हरे और पीले, तमाल, केल और सोने के...** तमाल अर्थात् काला, केला से हरा और सोना से पीला। यह तीन दृष्टान्त हैं। काला, हरा और पीला। **तमाल, केल और सोने के पात्ररूपी आधार का...** उसमें यदि स्फटिक रखे। तमाल में, केले में और सोने में रखे। **स्फटिक की स्वच्छता का काला, हरा और पीला ऐसे तीन प्रकार का परिणामविकार दिखायी देता है,...** लो। उसका स्वभाव तो शुद्ध परिणमन का है, परन्तु संग के कारण उसमें काला, हरा और पीला ऐसा रंग दिखाई देता है। वह स्फटिक की पर्याय है। स्फटिक उसरूप हुआ है। समझ में आया? लकड़ी रखो, देखो! ऐसे लकड़ी रखो। नीचे कोने में। उसमें कहीं झांई नहीं पड़ती। उसकी योग्यता नहीं है। स्फटिक में ऐसी योग्यता है। स्फटिक में ऐसी योग्यता है (कि) संग में जाता है तो उसमें काली, लाल झांई दिखाई देती है। लकड़ी रखो तो उसमें नहीं पड़ती। समझ में आया? स्फटिक यहाँ रखो तो झांई पड़ेगी। वह उसकी अपनी योग्यता से (पड़ती है)। इससे पड़े तो इसमें (लकड़ी में) पड़ना चाहिए। समझ में आया?

तीन प्रकार का परिणामविकार दिखायी देता है,... किसमें? स्फटिक में। **उसी**

प्रकार (आत्मा के) अनादि से मिथ्यादर्शन,... देखो! पुद्गल, हों! पुद्गल। **मिथ्यादर्शन, अज्ञान और अविरति जिसका स्वभाव है,...** जिसका स्वभाव है। **ऐसे अन्य-वस्तुभूत मोह का संयोग होने से,...** वास्तव में तो उसका स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। यहाँ स्वभावरूप परिणमन का सामर्थ्य है। यहाँ कर्म का ऐसा स्वभाव है। पर्याय में ऐसी योग्यता है। कर्म के निमित्त से अपने में ऐसा होता है। इसका तो स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। देखो!

अनादि से मिथ्यादर्शन, अज्ञान और अविरति जिसका स्वभाव है, ऐसे अन्य वस्तुभूत मोह का संयोग होने से... देखो! समझ में आया? **आत्मा के उपयोग का, मिथ्यादर्शन, अज्ञान और अविरति ऐसे तीन प्रकार का परिणामविकार समझना चाहिए।** इस प्रकार तीन प्रकार का विकार अपने में कर्म के संग से, संयोग से विकार देखने में आता है। वह पर से नहीं परनतु अपनी पर्याय में ऐसी योग्यता है तो परिणमन करता है। स्फटिक अपनी योग्यता से काला, हरारूप परिणमता है, पर के कारण नहीं। इसी प्रकार आत्मा अपने कारण से पर के संग में मिथ्यादर्शन आदि के परिणाम स्वयं से होते हैं। वह परिणामविकार इस प्रकार से हुआ है। क्यों हुआ? इस प्रकार से हुआ है। यह विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(२४) **श्री समयसार, गाथा - ९२, प्रवचन - १६८**
दिनांक - १९-०६-१९६९

यह कर्ता-कर्म अधिकार। गुजराती चलेगा। पहले हिन्दी चलना था। गुजराती आये। गुजराती आये। थोड़ा-थोड़ा समझना। गुजराती है, नहीं तो हिन्दी लिया था परन्तु यह मेहमान आये हैं। लेना हो तो लो, नहीं तो गुजराती चलेगा। आज गुजराती चलेगा। देखो! क्या कहते हैं।

जैसे शीत और उष्ण अवस्था पुद्गल की है। वह जड़ पुद्गल है न? उसकी शीत और उष्ण अवस्था। शीत-उष्ण। अपने तो उसे ही ठाढी-ऊनी समझते हैं। गुजराती में ठाढी -ऊनी कहते हैं। शीत और उष्ण जड़ की अवस्था है। वह पुद्गल के साथ शीत-उष्ण अवस्था अभिन्न अर्थात् एकमेक है। बराबर है? यह शीत-उष्ण लगती है, वह शीत-उष्ण जड़ है। आत्मा कहीं शीत-उष्ण नहीं होता। लोग कहते हैं न, मुझे गर्मी बहुत लग गयी, मुझे सर्दी लगी। आत्मा को सर्दी-गर्मी है नहीं, वह तो ज्ञानस्वरूप आत्मा है। सर्दी और गर्मी... यह तो अभी दृष्टान्त है, हों! वह जड़ की अवस्था, जड़-पुद्गल की मिट्टी की अवस्था है। ऐसी सर्दी और गर्मी पुद्गल से एकमेक है। वह शीत और उष्ण अवस्था आत्मा में ज्ञान कराने में वह निमित्त है। आत्मा अपना या उसका ज्ञान करे, वह अपना ज्ञान करे, उसमें वह शीत-उष्ण अवस्था निमित्त है। निमित्तपने का उसमें सामर्थ्य है, परन्तु उस शीत-उष्णरूप आत्मा हो, ऐसी आत्मा में शक्ति नहीं है। समझ में आया? उस शीत-उष्णरूप आत्मा होता (नहीं)। शीत-उष्ण के ज्ञानरूप आत्मा होता है। शीत-उष्ण के ज्ञानरूप आत्मा होता है परन्तु आत्मा ज्ञान छोड़कर शीत-उष्णरूप हो, ऐसा नहीं होता। यह तो दृष्टान्त है। अब इसका आत्मा में सिद्धान्त (उतारते हैं)।

जब अज्ञान के कारण आत्मा उन राग-द्वेष-सुख-दुःखादि का। अब देखो! जरा सूक्ष्म बात है, भाई! यह राग-द्वेष, सुख-दुःख की कल्पना जो होती है, पुण्य और पाप के भाव होते हैं, दया के, दान के, भक्ति के, हिंसा के, झूठ के, काम, क्रोध के - ऐसे जो राग-द्वेष के भाव और सुख-दुःख की कल्पना के भाव; मैं संयोग से सुखी हूँ, संयोग से दुःखी हूँ, ऐसी जो

अन्दर कल्पना है, वह सुख-दुःख की कल्पना और राग-द्वेष के परिणाम, वास्तव में वह पुद्गल की दशा है, सूक्ष्म है, भाई! वीतरागमार्ग ऐसा सूक्ष्म है। समझ में आया? क्योंकि आत्मा वीतरागस्वरूप है। वह पुण्य-पाप के, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम-क्रोध के व्यवहार भाव, वे सब जड़ के साथ वास्तव में तो (सम्बन्ध रखते हैं)। क्योंकि जड़ जैसे अज्ञान है, वैसे वे दया, दान, व्रत, भक्ति शुभाशुभभाव भी अ-ज्ञान (है अर्थात्) उनमें ज्ञान नहीं है। इसलिए वे राग-द्वेष और सुख-दुःख का भाव, वे पुद्गल के साथ - अचेतन के साथ सम्बन्ध धराते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह राग-द्वेष और पुण्य-पाप, सुख-दुःख के भाव, यह आत्मा ज्ञान करे तो आत्मा के ज्ञान में निमित्त हों, परन्तु आत्मा में राग-द्वेष और सुख-दुःखरूप आत्मा हो जाए, ऐसा उसका स्वभाव नहीं है। सूक्ष्म बात है। आहाहा! '**ववहारो अभूदत्थो**' व्यवहाररूप परिणमना, यह आत्मा में शक्यता नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा, वह राग-द्वेष, पुण्य-पाप के भाव और सुख-दुःख की कल्पना, माने कि मैं सुखी-दुःखी ऐसा भाव। वास्तव में उस भाव में भगवान ज्ञानस्वभाव का-ज्ञान का इसमें अभाव है। तब उस जड़भाव के साथ उसका तन्मयपना (है)। क्योंकि जड़ जैसे अज्ञान है, अचेतन है; वैसे वह राग-द्वेष अज्ञान और अचेतन होने से जड़ के साथ उन राग-द्वेष, सुख-दुःख की अभिन्नता-एकता है। वैदराजजी! आहाहा! अलग प्रकार है, भाई! कितनों ने तो जिन्दगी में सुना भी नहीं होगा। यह क्या?

यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव, त्रिलोकनाथ—जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान हुआ, जाना, ऐसे परमात्मा कहते हैं कि हम तो वीतराग और वीतराग विज्ञानघन हैं। तो तुम्हारा आत्मा भी वीतराग विज्ञानघन है, भाई! हमारी जाति का यह आत्मा है। ऐसा आत्मा पुण्य-पाप के और सुख-दुःख के भावरूप हो, ऐसा प्रभु आत्मा के स्वभाव में नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा शरीर और कर्मरूप तो नहीं होता। देवचन्दजी! थोड़ा-थोड़ा ध्यान रखना। गुजराती है। है तो सादी भाषा। आहाहा!

यहाँ कहते हैं जैसे भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने त्रिकाल ज्ञान से जाना, ऐसा फरमाते हैं कि भाई! यह आत्मा जैसे शीत-उष्ण अवस्थारूप नहीं होता क्योंकि शीत-उष्ण अवस्था स्पर्श की दशा है और स्पर्श, वह जड़ है। उस जड़ की स्पर्श की अवस्था जड़ के साथ सम्बन्ध धराती है। उस शीत और उष्ण का ज्ञान आत्मा में होता है। कि जिससे इस ज्ञान में शीत-उष्ण अवस्था निमित्त कहलाती है परन्तु आत्मा जैसे शीत-उष्णरूप होने को

शक्य नहीं है, शीत-उष्ण अवस्था... दृष्टान्त तो कैसा दिया, देखो न! ओहो! पुद्गल की जड़ अवस्था शीत-उष्ण की, उसरूप आत्मा होने के योग्य नहीं है। योग्य क्यों हो? अरूपी ज्ञान भगवान, वह शीत-उष्णरूप कैसे हो? आत्मा... शीत-उष्ण की अवस्थारूप होना अशक्य है। ऐसे... यह बात सूक्ष्म है। अब।

आत्मा की दशा में होते हुए ऐसा लोगों को लगता है, लगता है, हों! उसकी दशा में है नहीं। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध, हिंसा, झूठ ऐसे विकल्प, ऐसा जो राग-द्वेष का भाव, वह अचेतन है। उसमें आत्मा के ज्ञान और आनन्द का अभाव है। सूक्ष्म बात है, भाई! और सुख-दुःख की कल्पना माने कि पैसा है तो सुखी हूँ, निर्धन है तो दुःखी हूँ, रोग है तो दुःखी हूँ, अरोग है तो सुखी हूँ। ऐसी जो अज्ञानी की कल्पना, सुख-दुःख का भाव, भगवान ऐसा कहते हैं कि भाई! यह सुख-दुःख का भाव और राग-द्वेष का भाव, वह अचेतन पुद्गल के साथ सम्बन्ध रखता है। आहाहा!

जैसे शीत और उष्ण अवस्था पुद्गल के साथ सम्बन्ध रखती है, वैसे व्यवहार दया, दान, व्रत, रत्नत्रय के विकल्प, राग और द्वेष तथा सुख-दुःख की कल्पना भगवान आत्मा के साथ वे भाव सम्बन्ध नहीं रखते। आहाहा! वे भाव पुद्गल के साथ सम्बन्ध रखते हैं। सूक्ष्म है, भाई! क्यो? कि जैसे कर्म और शरीर पुद्गल है, अजीव है; वैसे पुण्य और पाप तथा सुख-दुःख के भाव आस्रवतत्त्व हैं। जैसे ये कर्म और पुद्गल अजीव हैं, यह पुण्य और पाप तथा सुख-दुःख की कल्पना, वह आस्रव है। इसलिए वह अचेतन है। इसलिए उस अचेतन अजीव के साथ सम्बन्ध धराता है। आहाहा! गजब काम, भाई!

भगवान आत्मा परमेश्वर त्रिलोकनाथ ऐसा फरमाते हैं। इन्द्रों की और नरेन्द्रों की सभा में परमात्मा की यह वाणी आयी है, भाई! तू आत्मा है न, प्रभु! यह आत्मा... आहाहा! इसने कभी सुना नहीं। यह क्या है ऐसा? भाई! भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा है। वह जैसे शीत-उष्ण अवस्थारूप होने को अशक्य है; दुर्लभ है—ऐसा नहीं, भाई! ऐसा नहीं कहा। अशक्य है—ऐसा कहा, देखो! आहाहा! जैसे आत्मा वस्तु-भगवान आत्मा ज्ञान का पिण्ड-पुंज प्रभु, ऐसा आत्मा शीत-उष्ण अवस्थारूप होने के अयोग्य है, अशक्य है। आहाहा! इसी प्रकार... यह तो दृष्टान्त है।

भगवान आत्मा चैतन्यपुँज प्रभु! वीतराग-विज्ञानघन आत्मा, वह पुण्य-पाप के और सुख-दुःख के भावरूप होना अशक्य है। आहाहा! गजब बात, भाई! परन्तु अज्ञान के कारण वह आत्मा उन राग-द्वेष सुखादि का.. राग-द्वेष के पुण्य-पाप के भाव और सुख-दुःख की

कल्पना का भाव, दोनों आये। कर्ता और भोक्ता दोनों ले लिया। मूल तो यह लिया है। ओहोहो! शैली वह भी..! सुख-दुःख का भोक्ता, यह दोनों आत्मा का स्वरूप भी नहीं है। राग-द्वेष, सुख-दुःखादि का और उसके अनुभव का। यह राग-द्वेष और सुख-दुःख के भाव तथा उनका अनुभव अर्थात् उनका ज्ञान आत्मा में हो, वह ज्ञान का और इस राग-द्वेष-सुख-दुःखादि का भाव का, दोनों की भिन्नता की जिसे खबर नहीं है। समझ में आया?

उसके अनुभव का परस्पर विशेष नहीं जानता हो तब... आहाहा! यह राग-द्वेष के भाव, पुण्य-पाप के भाव, दया-दान, व्रत,पूजा के भाव तथा सुख-दुःख के भाव, वे सब विकारी भाव हैं और विकारी भाव हैं; इसलिए उनमें अचेतनपना है। चैतन्य जागृत वीतराग विज्ञानघन उनमें नहीं आता। समझ में आया? परन्तु वह राग-द्वेष का भाव और सुख-दुःख के भाव एक ओर चीज़ रही। और उनका ज्ञान आत्मा में होता है। वह ज्ञान और यह भाव, दोनों की परस्पर में भिन्नता को न जाननेवाला, ऐसा अज्ञानी। आहाहा! अरे! अनादि से कहते हैं, भाई! दोनों की भिन्नता को न जानता अज्ञानी। **विशेष नहीं जानता हो, तब एकत्व के अध्यास के कारण,...** उसे एकपने का ऐसा अभ्यास है, अध्यास है, आदत हो गयी है। आहाहा!

अन्तर्मुख भगवान आत्मा, जैसा सर्वज्ञ परमेश्वर का आत्मा, वैसा यह आत्मा स्वभाव से है। ऐसा भगवान आत्मा अपने स्वभाव को और विकारीभाव को - जो अचेतन है, जो वास्तव में आत्मा का भाव-स्वभाव नहीं है। उसमें **एकत्व के अध्यास के कारण,...** यह राग-द्वेष, सुख-दुःख के भाव और उनका यहाँ ज्ञान (हुआ), दोनों मानो एक हों (ऐसे अध्यास के कारण लगता है)। समझ में आया? कहो, कनुभाई! ऐसा सूक्ष्म है। तुम्हारे जज में भी ऐसा नहीं आता होगा। आहाहा! कितनों ने तो सुना भी नहीं होगा। दया, दान, परिणाम वे जड़ के? वे पुद्गल के? भाई! किस अपेक्षा से बात है? कि वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। शुभ-अशुभभाव और सुख-दुःख का भाव, वह विकार है, विभाव है, विभाव है। वह स्वभाव नहीं। स्वभाव नहीं; इसलिए विभाव को अचेतन में गिनकर पुद्गल के साथ गिनने में आता है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा तो वीतराग विज्ञानघन होने के योग्य है। वीतराग विज्ञानघन होने के योग्य है। परन्तु भगवान आत्मा यह पुण्य-पाप के शुभ-अशुभभाव, सुख-दुःख के भावपने को प्राप्त करे, यह अशक्य है। आहाहा!

श्रोता : उपचरित असद्भूत व्यवहार से तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल झूठ। असद्भूत झूठा। व्यवहार झूठा। समझे? यह असद्भूत उपचार और अनुपचार के दो बोल हैं। यह और पहले गया। शुभ-अशुभभाव और सुख-

दु:ख का भाव असद्भूत, उपचार और अनुपचार, दो प्रकार का भाव। अनुपचार या उपयोगरूप से ख्याल में आता है इसलिए। ख्याल में उपयोगरूपी नहीं और ख्याल में आता नहीं, इसलिए उसे अनुपचार कहा, परन्तु हैं दोनों असद्भूत-झूठे। यह बात है। कठोर बात है, बापू! इसने कभी धर्म का वास्तविक स्वरूप क्या है, यह इसने सुना नहीं। माना है कि हम धर्म करते हैं... यह तो अनन्त काल से भ्रमणा में भगवान को भूल में डाला है। स्वयं भगवान है, उसे स्वयं भूल में डाला है। आहाहा! कहते हैं, बात तो बहुत ऊँची आयी है। कनुभाई! क्यों, वासुदेव!

कहते हैं, अहो! भगवान आत्मा अन्दर ज्ञान, राग-द्वेष के भाव का ज्ञान करे, सुख-दु:ख के भाव का ज्ञान करे, वह ज्ञान और राग-द्वेष, सुख-दु:ख के भाव दोनों की भिन्नता को नहीं जानता हुआ अनादि अज्ञानी, दोनों की एकता के अभ्यास में पड़ा हुआ... क्योंकि पर्याय पर दृष्टि है। स्वभाव चैतन्य है, ज्ञानानन्द वीतराग-विज्ञान है, ऐसी दृष्टि का जहाँ अभाव है। इसलिए बहिर्मुख भगवान आत्मा से बहिर्मुख होनेवाले सुख-दु:ख और राग-द्वेष के परिणाम का ज्ञान मेरा और वह चीज़ दूसरी, ऐसा इसने कभी भिन्नता का अभ्यास नहीं किया। समझ में आया? यह भिन्नता का अभ्यास नहीं होने के कारण एकता का अभ्यास है, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? आहाहा!

एकत्व के अध्यास के कारण, शीत-उष्ण की भाँति (अर्थात् जैसे शीत-उष्णरूप से आत्मा के द्वारा परिणमन करना अशक्य है उसी प्रकार)... देखो न! यह तो दृष्टान्त देखो! ओहोहो! भाई! इस शीत-उष्णरूप आत्मा हो, शीत-उष्ण अवस्था तो जड़ की है न, प्रभु! आत्मा तो अरूपी है न? यह अरूपी आत्मा, जैसे रूपी शीत-उष्ण अवस्थारूप नहीं होता, ऐसा भगवान स्वभाव आत्मा, वह राग-द्वेष और सुख-दु:ख की कल्पनारूप नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वजुभाई!

श्रोता : कथंचित् होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कथंचित् होता है अर्थात् क्या? बिल्कुल नहीं होता। यह तो सेठ स्पष्ट कराते हैं। समझ में आया? भगवान! तेरी बात तूने सुनी नहीं, प्रभु! परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा वीतरागदेव सौ इन्द्रों के समक्ष, गणधरों के समक्ष यह वाणी निकली थी। वह वाणी सन्तों ने शास्त्र में रची और कही जाती है, भाई!

अरे..! तेरी भूल तो देख, ऐसा कहते हैं। भगवान! तेरी भूल तो देख तू कि जैसे शीत-उष्ण अवस्थारूप अरूपी का परिणमना, होना रूपीरूप से अशक्य है। आहाहा! शीत-उष्ण रूपी अवस्था है। अरूपी का रूपीपने होना अशक्य है। इसी प्रकार भगवान ज्ञान-आनन्दस्वभाव

है। यहाँ भाव स्वभाव है। यह वीतराग-विज्ञान स्वभाव का इन राग-द्वेष और सुख-दुःख के भावरूप होना, परिणमना अशक्य है। समझ में आया? आहाहा!

अभी तो शरीर भिन्न और आत्मा भिन्न, यह बात जँचती नहीं। शरीर की क्रिया मैं करता हूँ... मैं करता हूँ... ऐसा जहाँ-तहाँ जँचता है। यह सब हिले-चले, उसे मैं करता हूँ। आहाहा! भाई! यह तो जड़ है न, प्रभु! यह तो मिट्टी है। यह मिट्टी हिले-चले, वह मिट्टी हिलती है; आत्मा उसे नहीं हिलाता। आहाहा! अभी तो एकदम युवा शरीर हो, तीन-तीन लड्डू खाता हो, धम-धम ऐसे... यह सब वाणी हम करते हैं, हम चलते हैं, भाई! बड़ी भूल में पड़ा है, प्रभु! यह सब जड़ की क्रिया जड़ से होती है, तुझसे नहीं। यह तो एक ओर स्थूल बात रह गयी। आहाहा!

भगवान! तेरी भूल तो इतनी बड़ी... तू बड़ा इतना कि केवली जितना। अरे..! अनन्त केवली को गर्भ में रखे इतना। और इतना हीन कि राग-द्वेष और सुख-दुःख की कल्पना, विकारी अवस्था जो वास्तव में पुद्गल के साथ अचेतन सम्बन्ध रखती है। आहाहा! दृष्टान्त तो देखो! अरूपी, रूपी की शीत-उष्ण अवस्थारूप भगवान अरूपी कैसे होगा? इसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान की मूर्ति है, वह अपने स्वभाव को छोड़कर, ऐसे राग-द्वेष और सुख-दुःखरूप कैसे परिणमेगा? होगा कैसे? उसमें होवे कैसे? इस प्रकार वर्ते कैसे? वह अशक्य है, कहते हैं। आहाहा! देवचन्दजी! आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! बात तो (ऐसी है)। ऐसा मार्ग वीतराग का, परन्तु सुनने को भी मिलता नहीं, विचारता नहीं। मैं पद.. मैं पद.. मैं पद के अभिमान में अनादि से चला जाता है। चार गति के डण्डे (खाते हुए) भवभ्रमण में पड़ा है। एक के बाद एक, एक के बाद एक, कहीं इसे सुख नहीं है। मूढ़ मानता है (कि मैं सुखी हूँ)। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, भाई! तेरी इतनी भूल है न कि, भगवान आत्मा शीत-उष्णरूप कैसे होगा? यह बराबर है। तो कहते हैं कि आत्मा-भगवान आत्मा राग-द्वेषरूप कैसे होगा? यह कठिन (पड़ता है)। क्योंकि आत्मा जैसे रूपीरूप अरूपी नहीं होता, वैसे वीतरागी विज्ञानघन आत्मा है, वह रागरूप कैसे होगा? ऐसा कहते हैं। आहाहा! ओहो! कितना व्यवहार का परिणमन है, ऐसा वीतरागी विज्ञानघन प्रभु व्यवहाररूप कैसे परिणमे? ऐसा कहते हैं। आहाहा! है इसमें? है या नहीं इसमें? इसमें है, उसका अर्थ होता है। और कितने ही ऐसा कहते हैं कि यह सोनगढ़वाले घर का अर्थ करते हैं। फिर ऐसा कितने ही कहते हैं।

श्रोता : घर का ही किया जाए न...

पूज्य गुरुदेवश्री : घर का अर्थात् आत्मा का। पर वे तो कल्पना का, ऐसा कहते हैं। वेदराजजी! अरे! प्रभु! शान्त हो, नाथ! तेरे घर की बात है, भाई! यह तो जन्म-मरण को मिटाने की बात है, भाई! अनन्त जन्म-मरण किये, उसमें कहीं सुख है नहीं। स्वर्ग के किये, मनुष्य के किये, पशु के किये। यह मनुष्यपना हारकर चला जाता है। ढोर में, पशु में अवतार (होता है)। यह कहीं अवतार है?

श्रोता : यह कहीं जीवपना कहलाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह जीव है? जिसे अवतरित होना पड़े, वह जीव कहलाये? आहाहा! कलंक है, कलंक है, ऐसा कहते हैं। योगसार में योगीन्द्रदेव कहते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा को जन्म, वह कलंक है। शर्मजनक जन्म टले, आता है न? यह भी आता है। जन्म लेना, वह कलंक है। भव, वह कलंक है।

यहाँ तो कहते हैं कि राग-द्वेष जो भव का भाव, सुख-दुःख जो भव का भाव, उसे मेरा मानना, प्रभु! महामिथ्यात्व कलंक है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा अजीव से भिन्न, वैसे वह सुख-दुःख और राग-द्वेष के परिणाम जो विकारी है, विभाव है, उनसे भी प्रभु भगवान भिन्न है। यदि भिन्न न हो तो कभी विभावरहित होकर सिद्ध नहीं हो सकेगा। समझ में आया?

कहते हैं, वह **जिस रूप... जैसे शीत-उष्णरूप आत्मा के द्वारा परिणमन करना अशक्य है...** आहाहा! जैसे भगवान आत्मा अरूपी पदार्थ वस्तु है, अस्ति-सत्ता अरूपी है, वह शीत-उष्ण रूपीरूप होने के अलायक—अशक्य है। उसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान का पुँज प्रभु वीतराग विज्ञानघन है, वह राग-द्वेष, सुख-दुःख आदि... **जिस रूप आत्मा के द्वारा परिणमन करना अशक्य है, ऐसे राग-द्वेष सुख-दुःखादिरूप अज्ञानात्मा के द्वारा परिणमन होता हुआ...** भाषा देखो! वस्तु स्वभाव नहीं। वह राग-द्वेष और पुण्य-पाप तथा सुख-दुःखरूप (परिणमित होना), वह सब अज्ञानपना है, अज्ञानपना है। उस अज्ञान आत्मा द्वारा आत्मा के ज्ञान को भूलकर ऐसे अज्ञानस्वरूप द्वारा परिणमित होता हुआ। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! वीतराग का मार्ग सूक्ष्म है। परमेश्वर वीतराग का मार्ग दुनिया के साथ कुछ मिलान खाये, ऐसा नहीं है। इतना अधिक कठिन। ओहोहो!

अभी तो यहाँ (अज्ञानी कहता है), दया, दान और व्रत के परिणाम धर्म हैं और कुछ धर्म करते हैं। भाई! उस शुभरागरूप स्वरूप का परिणमित होना अशक्यपना है, तथापि मिथ्यात्व और अज्ञानरूप से, रागादि सुख-दुःख जो कल्पना अज्ञान है, वह ज्ञान को भूलकर

अज्ञानरूप परिणमित होता है, ऐसा वह मानता है। **अज्ञानात्मा के द्वारा परिणमित होता हुआ...** वास्तव में तो... भाई! जैसे शीत-उष्णरूप नहीं होता। शीत-उष्णरूप जीव नहीं होता, माने कि मैं शीत-उष्ण हो गया, यह इसकी मान्यता है। समझ में आया? इसी प्रकार पुण्य और पाप, सुख-दुःख के भावरूप नहीं होता, स्पर्शरूप जीव नहीं होता, स्पर्शरूप शीत-उष्ण हुआ, ऐसी मान्यता करता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा पुण्य और पाप के भावरूप नहीं होता। समझ में आया? भारी सूक्ष्म, भाई! इसे बैठाने के लिये तो बहुत समय चाहिए। आहाहा!

अरे! ऐसी मनुष्यदेह में इस चीज़ को न समझा, (उसका) व्यर्थ अवतार है। चींटी, कौवे को जैसे मनुष्यपना नहीं और निरर्थक है, इसी प्रकार इसे भी इस तत्त्व की दृष्टि के भान बिना वह अवतार नहीं मिलता ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? बहुत अलौकिक गाथा है। परन्तु दृष्टान्त तो कैसा! कभी अरूपी शीत-उष्णरूप होगा? शीत-उष्ण तो जड़भाव है। वह आत्मा शीत-उष्णरूप होगा? ऐसा माने, (परन्तु) होता नहीं। समझ में आया? देखो, विशिष्टता देखो! उसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। वह व्यवहार, दया, दान, व्रत के परिणामरूप नहीं होता; मानता है कि मैं हुआ। समझ में आया? इतनी सूक्ष्मता है।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता है? करता कौन है? कर्ता के लिये तो यहाँ निषेध करते हैं। परिणमित होना, यह करना। करना, वह परिणमना, इसका अर्थ तो यह है यहाँ। यह कर्ता-कर्म का अधिकार है न? उसरूप-कर्तारूप परिणमना, उसमें है ही नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! अरे! कठिन है। भाई! मार्ग तो ऐसा है, बापू! कोई माने या न माने, समझे या न समझे परन्तु मार्ग तो यह है। इस मार्ग को समझे बिना इसके भव का अन्त आनेवाला नहीं है। आहाहा! कठिन तो शास्त्र के अभ्यासियों को पड़े ऐसा है। ऐई! वेदराजजी! आहाहा!

कहते हैं त्रिलोकनाथ सन्त और मुनि ऐसा कहते हैं।... आता है न? महाश्रमण, केवली, पंचास्तिकाय में आता है न? महाश्रमण ऐसे केवली ऐसा कहते हैं, भाई! तू एक वस्तु आत्मा है या नहीं? तुझमें कुछ है या नहीं? तू है तो तुझमें कुछ है या नहीं? या तुझमें है तो क्या है? ज्ञान, आनन्द और वीतरागता तुझमें है। समझ में आया? तू है या नहीं? कि है। तो है उसमें कुछ तेरा भाव-स्वभाव है या नहीं? है। जैसे त्रिकाल आत्मा है, वैसे उसका भाव-स्वभाव भी त्रिकाल है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वीतरागस्वभाव, शुद्धता आदि त्रिकाल भाव तुझमें है, भाई! वह पना छोड़कर पुण्य के भावपने, पाप के भावपने, सुख-दुःख के भावपने ऐसे भगवान आत्मा का होना तो अशक्य है। समझ में आया? आकाश में फूल होना अशक्य है। फूल होते हैं?

श्रोता : इतना अन्तर है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना अन्तर है। आहाहा! शीत-उष्ण अवस्था का दृष्टान्त तो देखो! ओहोहो! शान्ति से समझने की चीज़ है। यह तो कोई अपूर्व धर्म की बात है। ऐसी की ऐसी बाहर से प्रगट हो जाए, हो जाए, ऐसी चीज़ नहीं है। समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं, भाई! तू आत्मा है न ? जैसे यह जड़ है, यह है, ऐसे तू है या नहीं ? तो जैसे जड़ है तो वह जड़वाला जड़भाववाला जड़ है या नहीं ? तो तू है तो तेरे भाववाला तू है या नहीं ? तेरा भाव है, वह शाश्वत् भाववाला कौन ? वह तो ज्ञान, आनन्द, शान्ति, वीतरागता ऐसे स्वभाववाला तू त्रिकाली वीतराग विज्ञानघन है। ऐसे भावस्वभाववाला आत्मा, जैसे अरूपी होने से रूपीरूप शीत और उष्णरूप होना अशक्य है, असमर्थ है, उसमें ऐसी शक्ति नहीं है। इसी प्रकार पुण्य और पाप के विकारीभाव और सुख-दुःख की कल्पना इसरूप आत्मा का परिणमना अर्थात् होना अर्थात् करना। आत्मा पुण्य को करे, ऐसी आत्मा में अशक्यता है, ऐसा कहते हैं। भाई! यह कर्ता-कर्म... ...

भाई! आत्मा ज्ञानानन्द प्रभु! वह राग को करे, अशक्य है। आहाहा! जैसे आत्मा शीत-उष्ण अवस्थारूप होना अशक्य है, वैसे आत्मा वस्तु प्रभु! वह दया, दान के विकल्परूप करना, करना वह अशक्य है। ऐसे स्वभाव को दया, दान के विकल्प करना; करना कहो या परिणमना कहो। आहाहा! परिणमे, वह कर्ता—ऐसा कहा है न ? वह बात सिद्ध करते हैं। यह दुनिया की पंचायत इतनी सब, बाहर की, इसमें फिर यहाँ धर्म के नाम से आवे, यहाँ भी बड़ा विवाद और वाचालता... संसार में भी बड़ा विवाद और वाचालता निकले। लड़की बड़ी हुई है और ठिकाने डालना है। वहाँ तो स्वयं मर जाता है। लड़का बड़ा हुआ है, अब सगाई अच्छे घर में की है। अच्छी तरह से विवाह मेरी उपस्थिति में होवे तो ठीक, नहीं तो ठीक से होगा नहीं। वहाँ स्वयं मरकर पशु में चला जाता है। इसी प्रकार यहाँ जो विवाद और वाचालता में निवृत्त नहीं होता, उसी प्रकार आत्मा की समझ के लिये निवृत्त नहीं होता। अरे! राग आत्मा करे ? राग आत्मा करे ? कौन करे ? भाई! किस अपेक्षा से बात है, बापू! राग करता है तो अज्ञानभाव से अज्ञानी। समझ में आया ? परन्तु भावस्वभाव उसका (ऐसा है) कि राग का करना और राग का परिणमना, वह है नहीं। इस दिक्कत को निकाल, बापू! ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : राग तो करे ही, जड़ का तो भले न करे। शरीर का न करे। लो,

पक्षघात हो गया। अन्दर पड़ा। कहीं आँख भी हिला नहीं सकता। वह तो जड़ है, उसका हिलना या न चलना, वह आत्मा के अधिकार की बात नहीं है। आहाहा! देखो न! मैंने तो देखा न! मैं तो मेरी आँख से देखा। आँख मुर्दे की हो गयी थी। आहाहा! अन्दर आत्मा था? कुछ कर सकता था? ऐसी ही हो गयी। जड़ हो गयी। हिलती नहीं थी। घण्टे-डेढ़ घण्टे पश्चात् देह छूटना था। मैंने तो कहा, इसमें कुछ है नहीं। समाधान रखना, कहा शान्ति रखना। अब इसमें तो कुछ (है नहीं), ऐसे क्यों एकदम कहलाये। समाधान रखना, शान्ति रखना। इसमें कुछ है नहीं। सीरियस है। आहाहा! अरे... बापू!

यहाँ तो कहते हैं, तुझे यह राग और द्वेष तथा सुख-दुःखपने परिणमना ऐसा तुझे भ्रान्ति का रोग घुस गया है। आहाहा! रोग। 'आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजान; गुरु आज्ञा सम पथ्य नहीं, औषध विचार ध्यान।' भगवान! यह रोग तो बाहर के देह के हैं। नाथ! इनके साथ आत्मा को कुछ सम्बन्ध नहीं है। वह रोग जीव में नहीं था। वह तो जड़ का रोग है, मिट्टी का रोग है। आत्मा का रोग भगवान उसे कहते हैं कि पुण्य और पाप, सुख और दुःख की कल्पना का मैं कर्ता और उसरूप में परिणमता हूँ, यह मान्यता, उसे बड़ा रोग है। आहाहा!

यह बात वीतराग के अतिरिक्त कहीं है ही नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा के अतिरिक्त यह बात कहीं हो ही नहीं सकती। अभी ऐसी बात जैन सम्प्रदाय में बैठे हैं, उन्होंने नहीं, सुनी नहीं, समझते नहीं। समझ में आया? अन्य में तो है ही नहीं। ऐसी बात है, प्रभु! ऐसे देह रुक जाए। अन्दर भगवान पड़ा है। कुछ अँगुली हिला सके नहीं, आँख हिला सके नहीं। क्यों नहीं हिला सकता? देह का और राग का परिणमन जीव का है नहीं। यहाँ तो बात यह की है परन्तु यह जयसेनाचार्य की टीका में डाला है, भाई! देह और अभ्यन्तर दोनों का परिणमन जीव का नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

श्रोता : देह का और...

पूज्य गुरुदेवश्री : अभ्यन्तर, यह रागादि; बाह्य शरीर। बाह्य शरीर आदि और अभ्यन्तर रागादि। देह का परिणमन जीव का नहीं है। दोनों का कर्तृत्व जीव का नहीं है। दोनों का कर्ता जीव नहीं है। इसलिए दोनोंरूप परिणमता जीव नहीं है। आहाहा! भगवान तेरी बात ऐसी है, प्रभु! आहाहा! दुनिया के साथ मिलान नहीं खाता परन्तु कहीं सत्य दूसरा हो जाएगा? सत्य तो सत्य ही त्रिकाल रहेगा। आहाहा! कहते हैं, वह कहीं इसमें पढ़ा था। इसमें संस्कृत टीका नहीं, नहीं? अपने नहीं ली है। कहो, समझ में आया?

कहते हैं, इसमें पुनरुक्ति दोष नहीं लगता। यह तो विशेष स्पष्टता की विकासदशा है।

आत्मा अन्दर स्पष्ट होता है। आहाहा! मैं आत्मा, वस्तु, ज्ञान और आनन्द का घर अथवा चारित्र अर्थात् त्रिकाली वीतरागस्वरूप मेरा है। ऐसा आत्मा.. आहाहा! भाषा तो देखो एक शास्त्र की। जैसे शीत-उष्ण अवस्थारूप अरूपी नहीं होता, वैसे चारित्रवन्त अर्थात् वीतरागस्वरूप आत्मा अचारित्ररूप नहीं होता। आहाहा! इसी प्रकार सम्यग्दर्शनरूप भगवान आत्मा, त्रिकाल दर्शनरूप, हों! वह मिथ्याश्रद्धारूप नहीं होता। वह ज्ञानस्वरूप भगवान अज्ञानरूप नहीं परिणमता। वह आनन्दस्वरूप प्रभु इस दुःखरूप नहीं परिणमता, दुःख का कर्ता नहीं होता। आहाहा! गुजराती समझ में आती है या नहीं? समझ में आती है? थोड़ा-थोड़ा समझना, भाई! अब जवानों को तैयार होना चाहिए। आहाहा!

शरीर कब चला जाएगा, यह खबर है? जवान हो या वृद्ध किसे कहना? यह तो जड़ को कहते हैं। शरीर कब चला जाएगा। २५-२५ वर्ष की युवा अवस्था में चले जाते हैं, बापू! देखो न उन भाई का शरीर कैसा था? २२ वर्ष के योद्धा जैसा था। एक समय में पलटते देरी किसकी? अब वह तो जड़ है। आहाहा! मैं तो वैराग्य के लिये आया था, हों! चन्दुभाई! उनकी अन्तिम स्थिति कैसी है? झट चाहिए। आहाहा! यह? जाने दे जाए वहाँ। अपने शान्ताबेन है न? घीया। प्रभुभाई को हुआ था न। करोड़पति व्यक्ति। घीया राजकोट। प्रभुभाई की ५८ वर्ष की उम्र। कितने वर्ष हुए? दो-तीन वर्ष हुए होंगे। वे ३६ घण्टों से असाध्य थे। उसमें मुझे विचार हुआ कि लाओ न, जाऊँ। गये और थोड़ी देर बाद पन्द्रह मिनिट निकाले। फिर शान्ताबेन ऐसा बोले। घर से उनकी स्त्री। महाराज और हमारे धर्म का सम्बन्ध है। यह आये इसलिए जीवे और निरोग हो जाए, ऐसा नहीं है। यह आये और पन्द्रह मिनिट साध्य हो गयी। ३६ घण्टे बंध था। इसलिए उनकी योग्यता थी। ३६ घण्टों से बन्द था। बिल्कुल मौन। मुम्बई से पन्द्रह सौ-पन्द्रह सौ के दनैयावाले बड़े डॉक्टर को बुलाया। मांगलिक सुनाया तब कुछ नहीं। कौन जाने फिर कैसे हुआ एकदम। चन्दुभाई ने आवाज की। शांताबेन बोले, यह जीवन्त रहे और निरोग हो, ऐसा हमारे कोई सम्बन्ध नहीं। उसका अर्थ यह था, भाई! फिर जब देह छूटने का काल आया, तब बहिन बोली, शांताबेन घर से। वह तो करोड़पति बड़े व्यक्ति हैं। चला जा। तू नित्य है, तेरा नाश नहीं। आहाहा! समझ में आया? पति के आत्मा को कहती है, देखो, एक गृहस्थ करोड़पति। चला जा। तेरा नाश कहाँ है? तेरा नाश कहाँ है? तू तो अविनाशी है। समझ में आया?

अब, नित्य उसका जो आनन्दस्वभाव है, वह अनित्य ऐसे विभावरूप कैसे होगा? आहाहा! बात यही बात! अभी तो यहाँ लोगों को व्यवहार करना है और व्यवहार से निश्चय

होगा, ऐसा मानना है। आहाहा! अभी गुजरात के तीन पण्डित आकर इनका एकान्त है, ऐसा सिद्ध करके गये हैं। बस अरे! भगवान! बापू! तीन आये थे, दस दिन व्याख्या किये। बाबूलाल जमादार और... बाबूभाई होंगे। नियत नहीं। नियत और अनियत दोनों हैं। निमित्त अकिंचित्कर नहीं, निमित्त से होता है और व्यवहार निश्चय का साधन है। निश्चय साध्य है, व्यवहार उसका साधन है। ऐसा शास्त्र आगम है। अरे..! भाई! यह तो निमित्त के कथन। आहाहा! अरे! तुझे खबर नहीं भाई! यहाँ भगवान क्या कहते हैं? देखो न! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! विभावरूप होवे, वह तेरी महत्ता नहीं है। वह तो तेरी मिथ्यात्व की मान्यता है। समझ में आया? आहाहा! किसे कहना है इसमें? किसे मानना? तेरा तू मान, बापू! ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह तो जड़ मिट्टी है, यह तो सब धूल है। भगवान आत्मा अन्दर भिन्न चीज़ है। इसे और उन्हें कुछ नहीं होता। यह तो राख की मिट्टी है, भाई! दाल-भात, रोटी में से यह मुँह जमा। राख होकर श्मशान में उड़ जाएगा। वह कहाँ आत्मा था? वह तो मिट्टी धूल है। उसकी बात तो क्या करना? परन्तु अन्दर विकार होता है, वह धूल है। चैतन्य अमृत के सागर के साथ उस धूल का मिलान नहीं खाता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! थोड़ा-थोड़ा गुजराती समझ में आता है न? फिर से अपने लेंगे, अपने को कहाँ दिक्कत है। समझ में आया? और पुण्य-पापरूप मैं होऊँ, कर्ता (होकर) परिणमे, वह तेरा मिथ्यात्व का रोग है। आहाहा! समझ में आया? समझ में आता है?

कहते हैं, **जिस रूप आत्मा के द्वारा परिणमन करना अशक्य है ऐसे राग-द्वेष सुख-दुःखादिरूप...** सुख-दुःख, रति-अरित, **अज्ञानात्मा के द्वारा...** अज्ञान आत्मा द्वारा। भाषा देखो! ज्ञान आत्मा नहीं। यह राग-द्वेष, सुख-दुःख अज्ञानस्वरूप है। उस अज्ञानस्वरूप परिणमित, परिणमित मानता हुआ, परिणमित होना मानता हुआ - यह बात यहाँ बराबर है। जैसे शीत-उष्णरूप होता नहीं, मानता है। उसी प्रकार पुण्य-पाप के, हर्ष-शोक, दया-दान-व्रतरूप परिणमता नहीं, करता नहीं, मानता है कि मैं परिणमता हूँ और करता हूँ। यह मिथ्यात्व की मान्यता बड़ी भूल है। आहाहा! यह रोग है। वैदराजजी! यह वाणी है, भाई!

'आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजान; गुरु आज्ञा सम पथ्य नहीं, औषध विचार ध्यान'। ध्यान और स्थिरता वह इसकी औषधि है। आहाहा! पहले तू ज्ञान करना कि इस रागरूप परिणमना वह मेरे स्वरूप में है ही नहीं। आहाहा! व्यवहार का करना, वह मेरे स्वरूप में है ही नहीं। व्यवहार का परिणमना, वह मेरे लिये है नहीं। वह तो ७३ में पहले आ गया है। आहाहा! समझ में आया? कर्ता-कर्म का अधिकार एक बार शान्ति से महीने-डेढ़

महीने सुने तो खबर पड़े कि क्या है इसमें। आहाहा!

अज्ञानात्मा के द्वारा... अर्थात् स्वरूप को भूलकर भ्रमणा द्वारा **परिणमित होता हुआ...** मानो मैं रागरूप होता हूँ अथवा राग को करता हूँ, पुण्य को करता हूँ, व्यवहार को करता हूँ, ऐसा मानता हुआ **ज्ञान का अज्ञानत्व प्रगट करता हुआ,...** भगवान ज्ञानस्वरूप है। उसे पर्याय में भ्रान्ति द्वारा अज्ञानपना प्रगट करता है। मैं तो रागवाला हूँ, ऐसे मिथ्यात्व को प्रगट करता है। **ज्ञान का अज्ञानत्व...** चैतन्यबिम्ब परमात्मा स्वयं है उसका **अज्ञानत्व...** अर्थात् रागपना, विकारपना, मिथ्यापना **प्रगट करता हुआ,...** हुआ। आहाहा! **स्वयं अज्ञानमय होता हुआ,...** ऐसा आत्मा स्वयं अर्थात् अपने आप, अपने आप अज्ञानमय होता हुआ; अर्थात् कोई कर्म का उदय है, कर्म का जोर है, इसलिए यह होता है, ऐसा नहीं है। कहो समझ में आया?

स्वयं अज्ञानमय होता हुआ,... भाषा यहाँ ली है तन्मयन्ता। राग के साथ तन्मय हो गया। मान्यता से, हों! आहाहा! इसलिए कहा है न, श्रीमद् ने, दिगम्बर आचार्यों ने ऐसा माना है कि आत्मा का मोक्ष होता नहीं। मोक्ष समझ में आता है। भ्रान्ति थी कि मैं रागरूप हूँ और बन्धन हूँ। यह भ्रान्ति थी, भ्रम था। वह भ्रम विचार द्वारा समझ में आ गया, मुक्त ही हूँ। समझ में आया? सम्यग्दर्शन होने पर मुक्त हूँ, ऐसा भान हो जाता है। आहाहा! मिथ्यादर्शन में मिथ्यारूप परिणमना, ऐसा उसे भान होता है। भान होता है न? एक प्रकार का भान होता है। दूसरे पद में कहा। **जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो** राग को जानता हुआ। क्योंकि ज्ञान है, इसलिए राग को जानता हुआ, ऐसा लिया है। ऐसा **जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो** उसे जानता हुआ रागरूप परिणमता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उस समय इसका ज्ञानपना तो है, यह मानता नहीं। इसकी दृष्टि राग के ऊपर है। वास्तव में तो राग के काल में राग का ज्ञान है क्योंकि उसका स्वभाव ही ऐसा है। परन्तु उसे जानता है खबर नहीं, तथापि आचार्य ऐसा कहते हैं कि राग को जानता हुआ, अज्ञानी रागरूप परिणमता है। (समयसार की) दूसरी गाथा में है। समझ में आया? आहाहा!

स्वयं अज्ञानमय होता हुआ, 'यह मैं राग हूँ'... अर्थात् मैं व्यवहारी हूँ, मैं पुण्य के परिणमनवाला हूँ, पुण्य का कर्ता हूँ। देखो! इसका अर्थ किया। **(यह मैं राग करता हूँ)...** मैं विकल्प करता हूँ, यह पुण्य को मैं करता हूँ अथवा पुण्यरूप मैं परिणमता हूँ **इत्यादि विधि से रागादि कर्म का कर्ता प्रतिभासित होता है।** यहाँ जड़ की बात नहीं है। यह रागादि पुण्य-पाप के कार्य का कर्ता अज्ञानी अपने को भासित होता है। वस्तु भिन्न है, ऐसा भास नहीं होता।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(२५) **श्री समयसार, गाथा - १००, प्रवचन - १८१**
दिनांक - ०२-०७-१९६९

समयसार कर्ता-कर्म अधिकार। १००वीं गाथा। फिर से पहले से टीका (लेते हैं)। यह कर्ता-कर्म अधिकार है। कर्ता अर्थात् करनेवाला, परिणमनेवाला और कर्म अर्थात् कार्य अर्थात् पर्याय। यह कर्ता-कर्म पर के साथ कैसे है और पर के साथ कैसे नहीं, इसका स्पष्टीकरण १००वीं गाथा में थोड़ा सूक्ष्म है।

वास्तव में तो दाल, भात, सब्जी, मकान, बीमारी, पत्र लिखना इत्यादि यह जो घट क्रिया है, वह जड़ की क्रिया है। और क्रोधादिक परद्रव्य। और अन्दर जो कर्म जड़ हैं, चारित्रमोहनीय कर्म जड़, क्रोध, मान, माया, लोभ अर्थात् राग और द्वेष अर्थात् चारित्रमोह की परमाणु की जो पर्याय जड़ की है, **परद्रव्यस्वरूप कर्म है।** परद्रव्यस्वरूप, परद्रव्यस्वरूप परिणाम। परद्रव्यस्वरूप परिणाम। घट के परिणाम, वे परद्रव्यस्वरूप परिणाम हैं। घट की अवस्था, वह परद्रव्यस्वरूप परिणाम। कपड़े की अवस्था होना, वह परद्रव्यस्वरूप परिणाम है। इसी प्रकार दाल, भात, सब्जी, रोटी बनना, वह परद्रव्यस्वरूप परिणाम है। इसी प्रकार कर्म में चारित्रमोहनीय, दर्शनमोहनीय, ज्ञानावरणीय आदि प्रकृति का परिणमन (होना), वह परद्रव्यस्वरूप अवस्था है। वह परद्रव्यस्वरूप ही परिणाम है।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह परद्रव्यस्वरूप परिणाम। परिणाम वह परद्रव्यस्वरूप के साथ तन्मय हैं। वे परद्रव्यस्वरूप परिणाम। परद्रव्यस्वरूप परिणाम, ऐसा। उसका स्वरूप ही वह उसका परिणाम है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परद्रव्यस्वरूप परिणाम। घट का बनना, वह परद्रव्यस्वरूप परिणाम है। परद्रव्यस्वरूप परिणाम है। परद्रव्य के स्वरूप का वह परिणाम है, आत्मा का नहीं, पर का नहीं। समझ में आया? यह वाणी का परिणमन, वह परद्रव्यस्वरूप परिणाम है। परिणाम परद्रव्यस्वरूप ऐसा। यह परिणाम परद्रव्यस्वरूप (है)। पर्याय, वह परद्रव्यस्वरूप पर्याय है। समझ में आया? ऐसा सिद्ध किया है। इस समय वे परद्रव्यस्वरूप परिणाम (हुए हैं)।

उन्हें आत्मा व्याप्यव्यापकभाव से नहीं करता... घट की परद्रव्यस्वरूप अवस्था, वस्त्र की परद्रव्यस्वरूप अवस्था, दाल, भात होने की परद्रव्यस्वरूप अवस्था, कर्म होने की पुद्गलरूप परद्रव्यस्वरूप अवस्था, उसे आत्मा व्याप्य अर्थात् वह परिणाम और आत्मा परिणामी, वह कर्म और आत्मा कर्ता – ऐसा नहीं करता। **व्याप्यव्यापकभाव से नहीं करता...** समझ में आया?

क्योंकि यदि ऐसा करे... भगवान आत्मा अपने अतिरिक्त शरीर, वाणी, कर्म, घट, पट, वस्त्र, दाल, भात, मकान आदि वस्त्र, कागज की अवस्था बनना, अक्षर लिखना, यह सब परद्रव्य की पर्याय है। उसमें आत्मा परिणामी और वह उसका परिणाम, ऐसा यदि होवे तब तो **तन्मयता का प्रसंग आ जाए;...** आत्मा परद्रव्य परिणाम में एकरूप हो जाए। समझ में आया? यह तो अभी स्थूल है, सूक्ष्म अब आयेगा। आहाहा!

जो भगवान आत्मा अपनी भिन्न सत्ता रखनेवाला, वह पर भिन्न सत्ता रहनेवाला पदार्थ, उस समय का उसका जो परिणाम वह परद्रव्यस्वरूप परिणाम सिद्ध किया। इस समय में वह परद्रव्यस्वरूप परिणाम ही (होता है)। देखो! क्रमबद्ध भी सिद्ध हो गया। समझ में आया? कर्म का और घटपटादि बाह्या का, उसका जो आत्मा कर्ता बनकर यह परिणाम परद्रव्यस्वरूप परिणाम को करे अथवा उस परिणाम का कर्ता हो तो उस परिणाम में – परद्रव्य की अवस्था में आत्मा एकमेक हो जाएगा। आत्मा पर परिणाम में तन्मय एकरूप हो जाए तो स्वद्रव्य का नाश हो जाएगा। समझ में आया? ऐसा करे तो तन्मयता—तन्मय अर्थात् परद्रव्यरूप होने का दोष आता है, परद्रव्यरूप होने का दोष आता है। कहो, समझ में आया?

और... एक बात हुई। **निमित्त-नैमित्तिकभाव से भी (उनको) नहीं करता...** घड़े की अवस्था परद्रव्यस्वरूप परिणाम, कर्म की अवस्था परद्रव्यस्वरूप परिणाम, वाणी की अवस्था परद्रव्यस्वरूप परिणाम, शरीर हिलता-चलता है, वह परद्रव्यस्वरूप परिणाम है, उसे भगवान आत्मा निमित्त-नैमित्तिकभाव से भी नहीं करता। अर्थात् इस अवस्था के उस समय के परद्रव्यस्वरूप परिणाम में आत्मा निमित्तकर्ता हो, निमित्तकर्ता हो। परद्रव्य में व्याप्य-व्यापक (भाव से) कर्ता तो नहीं परन्तु निमित्तकर्ता हो अर्थात् निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से वह निमित्तकर्ता हो, उस परिणाम का, **तो नित्यकर्तृत्व का (सर्व अवस्थाओं में कर्तृत्व होने का) प्रसंग आ जाएगा।** ऐसा करे तो भगवान आत्मा को वह परिणाम हमेशा करने में नित्यपना उसमें आयेगा। परिणाम तो उसका, उसे करे नहीं। परन्तु इस परिणाम में निमित्तरूप से कर्ता

हो तो द्रव्य में कायम रागादि, पुण्यादि का कर्ता और पर परिणाम जहाँ-जहाँ हो, वहाँ-वहाँ निमित्तरूप कर्ता (होकर) द्रव्य को रहना पड़ेगा। समझ में आया?

निमित्त-नैमित्तिक भाव से भी आत्मा भगवान द्रव्यस्वरूप वस्तु, उस परद्रव्य के समय में होनेवाली अवस्था होती है। बस, उसमें तो कुछ फेरफार नहीं। व्याप्यव्यापक का तो निषेध कर दिया। उस समय में जो परद्रव्य परिणाम कर्म के, शरीर, वाणी आदि पदार्थ के परद्रव्यस्वरूप परिणाम, वे नैमित्तिक और आत्मा निमित्तकर्ता हो, निमित्त-नैमित्तिक कर्ता हो तो द्रव्य वस्तु कायम (रहती है तो) पर परिणाम जहाँ-जहाँ (होते) हैं, वहाँ-वहाँ आत्मा को रहना पड़ेगा। समझ में आया? नित्यकर्तृत्व का प्रसंग आयेगा। भगवान आत्मा परपरिणाम में कर्ता नहीं, परन्तु परपरिणाम में निमित्तकर्ता होवे तो कायम निमित्तरूप से कर्तारूप से उसकी स्थिति रहना चाहिए। समझ में आया? भगवानजीभाई! यह समझ में आता है? आहाहा! नित्यकर्ता। वह व्याप्य-व्यापक कर्ता, यह नित्यकर्ता हो जाए। परद्रव्य की पर्याय के परिणाम उस समय में होनेवाली पर्याय उस समय में उसमें होती है। बस, वह नैमित्तिक। परन्तु द्रव्य यदि निमित्त हो, वस्तु निमित्त हो, तो नित्य निमित्तकर्तापने की उपस्थिति उसमें रहनी पड़ेगी।

श्रोता : शाश्वत निमित्त होना ही पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : होना ही पड़ेगा। निमित्त अर्थात् वहाँ तो परिणाम होते हैं। उसमें कुछ फेरफार नहीं। परन्तु निमित्तरूप से उपस्थित रहना, द्रव्य को रहना पड़े - ऐसा नित्यकर्तृत्व का आत्मा में प्रसंग आता है। समझ में आया? इसलिए भगवान आत्मा परद्रव्य की नैमित्तिक पर्याय होनेवाली उसमें होती है, उसमें भगवान आत्मा निमित्तकर्ता भी नहीं है। समझ में आया? ठीक आवे बराबर, शामजीभाई! दिल्ली से। १००वीं गाथा की खबर नहीं थी न? १००वीं गाथा चलती है।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दिल्ली में कहाँ से खबर पड़े? पहली बार सुनते हो? ओहो..! यह दिगम्बर साधु होनेवाले थे। ये दूसरे आये। कल दीपचन्दजी थे वे दूसरे। आहाहा! गृहस्थ है। स्त्री है, पुत्र है, दिल्ली में मकान है। नग्न दिगम्बर मुनि होनेवाले थे। रुक गये। यह सुना कि वस्तु तो दूसरी है। बहुत शान्त है। समझ में आया? आहाहा!

भाई! यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा के अतिरिक्त पर आत्माएँ और पर परमाणु कर्म आदि, घट-पट आदि इत्यादि सब, उनकी जिस समय में नैमित्तिक अवस्था होनेवाली है, वह

होती है। उसमें आत्मा द्रव्य यदि निमित्तकर्ता होवे तो द्रव्य को कायम निमित्तकर्तारूप से ध्रुवरूप से कायम निमित्तकर्तापने रहना पड़ेगा, तो कभी भी कर्तापना छूटेगा नहीं। क्योंकि ध्रुवकर्ता हो गया, नित्यकर्ता हो गया। समझ में आया? तो ऐसा भी नहीं है। तब है क्या? यह दो लड़के यह सुनने को आये हैं। जीतू (संकलनकार) और ज्योति, जितेन्द्र और ज्योतिन्द्र कालेज में से आये हैं कि १००वीं गाथा चलती है। कहो, समझ में आया? आहाहा! अब तब है क्या?

देखो! **अनित्य (जो सर्व अवस्थाओं में व्याप्त नहीं...)** क्या? आत्मा में योग कम्पन होता है और रागादि विकल्प होते हैं, वह आत्मा में सर्व काल नहीं होते। आत्मा में योग का कम्पन और राग-द्वेषादि विकल्प आदि के भाव मलिन उपयोग, वह उपयोग और योग आत्मा की सर्व अवस्थाओं में रहनेवाली वस्तु नहीं है। समझ में आया? यह अनित्य। अन्त्यि क्यों (कहा)?—कि आत्मा में शाश्वत रहनेवाली अवस्था नहीं है। योग का कम्पन और दया, दान, विकल्प आदि या रागादि भाव। यह अनित्य जो सर्व अवस्थाओं में व्याप्त नहीं है। योग-उपयोग। उपयोग शब्द से यहाँ राग लेना। राग-द्वेष मलिन परिणाम लेना। योग शब्द से कम्पन। देखो! अन्दर है। वह निमित्तरूप से उसे.. क्या कहते हैं?

घड़ा बनता है तो वह बनेगा ही, पट बनता है तो बनेगा ही, हाथ चलता है तो चलेगा ही। वाणी होती है तो वह तो होगी ही, उसके नैमित्तिक में आत्मद्रव्य निमित्त नहीं है। अब, आत्मा में शाश्वत नहीं रहनेवाली कम्पन और विकारी दशा, वह परिणाम तो वहाँ होनेवाले हैं, वे तो होते ही हैं। उसमें योग और राग जो आत्मा की कदाचित् होनेवाली पर्याय है, उसे निमित्तकर्ता कहने में आता है। समझ में आया?

अनित्य योग और उपयोग ही... देखो! भाषा ऐसी है। राग और कम्पन ही, विकल्प और योग-कम्पन ही निमित्तरूप से (होते हैं)। वह पर्याय तो वहाँ नैमित्तिक ही है। तब यहाँ निमित्तरूप योग और विकार को परद्रव्यस्वरूप पर्याय का, परद्रव्यस्वरूप पर्याय का घट की पर्याय का कर्ता है। जैसे घड़े की पर्याय तो होती है, नैमित्तिक परन्तु कुम्हार का आत्मा - यह द्रव्य नहीं करता। परन्तु उसमें कम्पन और रागभाव है, उस पर्याय में-नैमित्तिक में निमित्तकर्ता पर्याय को कहा जाता है। समझ में आया? कहो, समझ में आता है या नहीं? ज्योति! लो ठीक, हमारे रामजीभाई होशियार कहते हैं। कहो, यह क्या समझ में आता है कुछ? आहाहा!

वस्तु का स्वरूप कि भगवान आत्मा अपने अतिरिक्त अन्य अनन्त पदार्थ की होनेवाली वर्तमान अवस्था, उसका कार्य और आत्मा कर्ता - ऐसा तो नहीं है परन्तु उस कार्यकाल में

जीवद्रव्य निमित्तरूप से नहीं होता। उस कार्यकाल में जीव की कदाचित् होनेवाली विकारी कम्पन और विकारी राग-द्वेषभाव, वह पर्याय पर की पर्याय के काल में, पर के कार्यकाल में उस योग और राग को-विकार को निमित्तकर्ता कहा जाता है। समझ में आया?

श्रोता : द्रव्य में और विकारी पर्याय में अन्तर पड़ेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह तो कदाचित् पर्याय होती है इसलिए। द्रव्य तो त्रिकाली शुद्ध है। यह तो विकारी पर्याय कम्पन और राग तो कभी होते हैं। वे त्रिकाली आत्मा में नहीं हैं। समझ में आया?

योग और उपयोग ही निमित्तरूप से उसके... उसके अर्थात्? परद्रव्यस्वरूप परिणाम। परद्रव्यस्वरूप परिणाम। घट परिणाम, दाल, भात के परिणाम, मिट्टी की अवस्था, लिखने की अवस्था, वह परिणाम परद्रव्यस्वरूप परिणाम के जीव के योग, राग-द्वेष और विकल्प जो है, वह परपरिणाम के निमित्तकर्ता कहने में आते हैं। समझ में आया? गजब! **(रागादिविकाररूप चैतन्यपरिणामरूप) अपने विकल्प को...** देखो! राग-द्वेष आदि पुण्य-पाप का भाव विकारयुक्त चैतन्य परिणाम जो भाव यह **अपने विकल्प को और (आत्मप्रदेशों के चलनरूप) अपने व्यापार को कदाचित् अज्ञान से करने के कारण...** अब कदाचित् तो यहाँ आया। पहला कदाचित् पर में था। समझ में आया? पर की परिणति में योग-उपयोग कदाचित् होते हैं, उन्हें निमित्तकर्ता कहने में आया? अब आत्मा, आत्मा भी योग-उपयोग को कदाचित् करता है, सदा नहीं करता। न्याय सुनो। आहाहा! समझ में आया?

रागादि, राग-द्वेष सहित चैतन्य परिणामरूप अपने विकल्प अर्थात् मलिन परिणाम को विकार को पुण्यादि, दया, दानादि परिणाम को और **(आत्मप्रदेशों के चलनरूप) अपने व्यापार को...** अपने व्यापार को **कदाचित् अज्ञान से करने के कारण...** देखो! आत्मा अभी तो अपने परिणाम की बात करते हैं। **कदाचित् अज्ञान...** योग और राग का कर्ता अज्ञानी आत्मा अज्ञानरूप से है। ज्ञानी योग और राग का कर्ता नहीं है, समकिती (कर्ता) नहीं है। समझ में आया?

कोई कहते हैं कि अपने विकल्प को, विकार को और आत्मप्रदेश को अपने व्यापार को, अपनी पर्याय को **कदाचित् अज्ञान से...** अपनी क्यों लेते हैं? कि यहाँ पर की पर्याय तो नहीं है, है तो अपनी। कम्पन आत्मा में होना और दया, दान, विकल्प आदि का विकार होना, उसे अज्ञानरूप से अज्ञानी कदाचित् करता है; ज्ञानी तो कर्ता नहीं है। सम्यग्दृष्टि तो राग और योग का कर्ता नहीं है। समझ में आया? आहाहा! प्रदेश का कम्पन और पुण्य-पाप का भाव-

रागादि भाव, उसका आत्मा अज्ञानरूप से कदाचित् कर्ता है, सदा ही कर्ता नहीं। क्योंकि राग और विकल्प है, वह तो मैल है, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हों। समझ में आया? क्या कहते हैं? देखो! भगवान की भक्ति में ऐसा होता है न? स्वाहा... स्वाहा... वाणी का स्वाहा और यह स्वाहा। वह तो जड़ की पर्याय है, वह जड़ की पर्याय है। इस समय जड़ की पर्याय नैमित्तिक स्वयं से स्वयं के जड़ से हुई है, आत्मा से नहीं। अब इस परिणाम में आत्मा तो निमित्तकर्ता नहीं। परन्तु इस परिणाम में अज्ञानी जो अपने कम्पन और राग का कर्ता है, क्योंकि कदाचित् अज्ञानी अज्ञानरूप से कर्ता है। उस अज्ञानी के योग और राग उसे अज्ञानकर्ता है। वे योग और राग इस परिणाम में निमित्तकर्ता कहने में आते हैं, अज्ञानी का।

श्रोता : कदाचित् कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कभी करता है न। अज्ञानपने हो तो करे न। ज्ञानपने हो, वह तो राग-द्वेष करता नहीं। दूसरी बार स्पष्ट आयेगा। थोड़ा सूक्ष्म है।

देखो! **अपने व्यापार को कदाचित् अज्ञान से...** जब ज्ञान होता है, अपना ज्ञान, सम्यग्दर्शन हुआ, तब तो राग और कम्पन का कर्ता नहीं। पर के कर्ता की तो यहाँ बात नहीं। पर के कर्ता की बात तो यहाँ है ही नहीं। यहाँ तो अज्ञानी आत्मा, जब तक अज्ञान है, अपने चैतन्य का भान ज्ञानानन्दस्वरूप सहजानन्दमूर्ति, ऐसा आत्मा ज्ञान पिण्ड प्रभु है, उसका भान नहीं और उसका अज्ञान है, तो अज्ञानकाल में पुण्य और योग, कम्पन और राग, योग और कषाय। दो का कर्ता अज्ञानी अज्ञानभाव में है। अब पर के साथ बाद में कहेंगे।

श्रोता : कदाचित्...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न अज्ञानभाव से। अज्ञान है तब तक। ज्ञान होगा तो राग और कषाय का कर्ता नहीं होगा। यह तो अभी अपने में बात है। पर के साथ की बात अब बाद में कहेंगे। आहाहा! समझ में आया?

(आत्मप्रदेशों के चलनरूप) अपने व्यापार को कदाचित् अज्ञान से... अपने स्वरूप का भान नहीं, तब तक **करने के कारण योग और उपयोग का तो आत्मा भी कर्ता...** है। पर के कर्ता की तो यहाँ बात ही नहीं ली है। अज्ञानी अपना राग और दया, दान, व्रत आदि शुभ-अशुभ विकल्प और कम्पन का अज्ञानी कर्ता है। अज्ञान है तब तक। समझ में आया? लो। क्या कहा, समझ में आया? कि परद्रव्यस्वरूप परिणाम को अज्ञानी के योग और उपयोग—विकार वह निमित्तरूप से कर्ता कहने में आते हैं। और अज्ञानी जब तक अज्ञान है, तब तक राग और योग का कर्ता होता है। अरे..! समझ में आया?

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चर्चा क्या चलती है ? यह तुम्हारे अभी देरी है इतना सब सूक्ष्म पकड़ने की। तुम व्यापारी व्यक्ति हो न ? बात चलती है, वह पकड़ में नहीं आती। यह तो सूक्ष्म बात है। यह कहीं ब्याज निकालो और रुपया कमाओ, ऐसी बात नहीं है। यहाँ तो अभी बहुत धीरे से समझने योग्य है।

यहाँ तो कहते हैं कि परद्रव्य के परिणाम जो होते हैं, वे तो होंगे ही। बस। उसका व्यापक-व्यापक (भाव से) कर्ता तो नहीं, कर्ता और कर्म तो नहीं, यह कर्ता और वह कार्य, ऐसा तो नहीं। एक बात। इस परद्रव्य परिणाम में आत्मा कर्ता है, ऐसा भी नहीं क्योंकि आत्मा तो त्रिकाली शुद्ध द्रव्य चिदानन्द ज्ञायकमूर्ति है। वह कर्ता होवे तो कायम ध्रुवरूप से उसे कर्ता रहना पड़ेगा, तब शुद्धता तो कभी होगी नहीं और वस्तु तो शुद्ध है। आहाहा! यह घटपटादि यह परपदार्थ की पर्याय, वाणी, लक्ष्मी आदि की पर्याय है, उसमें योग और उपयोग अर्थात् कम्पन और राग निमित्तकर्ता कहने में आता है परन्तु वह योग और उपयोग किसके ? - अज्ञानी के। क्योंकि अज्ञानी योग और उपयोग का कर्ता है। योग और राग का कर्ता अज्ञानी है, तो अज्ञानी के योग और उपयोग परद्रव्य के परिणाम में निमित्तकर्ता कहलाते हैं। आहाहा! समझ में आया ? अलौकिक बात है, भाई! वस्तु का स्वरूप, तत्त्व का स्वरूप ऐसा है। आहाहा! मुद्दे की बात है। मुद्दे की रकम। समझ में आया ? आहाहा!

कहते हैं, पहले कह गये। **अनित्य योग और उपयोग ही निमित्तरूप से उसके कर्ता हैं।** यह तो पहले कह गये। अब योग और उपयोग किसके ? ऐसा कहते हैं। पर की पर्याय होती है, वह तो होगी। लिखने की, पुस्तक बनाने की, वाणी बोलने की, हिलने-चलने की, भगवान की प्रतिमा पधराने की, स्वाहा ऐसे हाथ और वाणी होगी, वह तो उस समय में होगी। समझ में आया ? उस परिणाम में योग और उपयोग निमित्तकर्ता कहने में आते हैं। पर का कर्ता तो नहीं, यह तो निमित्तकर्ता, योग और राग निमित्तकर्ता कहने में आते हैं। अब योग और उपयोग किसका ?—अज्ञानी का। क्योंकि अज्ञानी योग और उपयोग का कर्ता है। अज्ञानी अज्ञानरूप से राग और कम्पन का कर्ता है। वह कम्पन और राग का कर्ता अज्ञानी अज्ञानरूप से है। वह योग और राग पर की पर्याय में निमित्तकर्ता कहने में आते हैं। अरे, गजब बात, भाई!

इसमें कहीं अपने को पुनरुक्ति दोष लगता है ? दोबारा कहें, उसमें क्या है ? वस्तु ऐसी मूल मर्म है, भाई! आहाहा! कहते हैं कि यह आत्मा जो वस्तु है, वस्तु है। वह तो शुद्ध चिदानन्द आनन्दकन्द ज्ञायकभावस्वरूप परमात्मा है। वह तो परपरिणाम के काल में निमित्तरूप

से भी आत्मा कर्ता नहीं है। अब निमित्तपने का अर्थ क्या ? नैमित्तिक अवस्था होती है, वह तो होगी। उसमें निमित्तकर्ता किसे कहते हैं ?—कि योग और उपयोग को, कम्पन और विकार को। कम्पन और विकार को पर की पर्याय में निमित्तकर्ता का आरोप उसमें आता है तो निमित्तकर्ता कहने में आता है। वास्तव में उसका कर्ता नहीं है। वास्तव में होवे तब तो पर व्याप्य-व्यापक हो जाए। समझ में आया ? परन्तु उसके परिणाम काल में, परद्रव्य की पर्याय के काल में आत्मा के कम्पन और विकार भाव, उस पर्याय काल में यह भाव निमित्तकर्ता कहने में आता है। अब वह निमित्तकर्ता कहने में आता है, वे योग और उपयोग किसके ?—कि अज्ञानी के। समझ में आया ? क्योंकि वह अज्ञानी उस राग और कम्पन का कर्ता है तो अज्ञानी का योग और उपयोग पर की पर्याय में निमित्तकर्ता कहने में आती है। समझ में आया ? ओहोहो !

क्योंकि ज्ञानी के तो योग और उपयोग है ही नहीं है। धर्मी सम्यग्दृष्टि है, उसे तो कम्पन भी उसका नहीं है और दया, दान, काम, क्रोध का राग भी उसका नहीं है। भक्ति के काल में, स्वाहा आदि परिणाम में या वन्दन ऐसे करे, वह तो परद्रव्य की पर्याय हुई। तो परद्रव्य की पर्याय में आत्मद्रव्य है, वह तो निमित्तकर्ता नहीं है। अब उसका निमित्तकर्ता—उसमें निमित्तपना किसे कहने में आता है ? कि योग और राग को। योग और कषाय को निमित्तकर्ता कहा जाता है। वे योग और कषाय किसके है ?—अज्ञानी के। ज्ञानी को तो है ही नहीं। आहाहा ! बात तो ऐसी है। आहाहा ! भगवान ! यह तो हित की बात है, प्रभु ! समझ में आया ? आहाहा ! कौन है ? कहाँ कैसे होता है ? आहाहा !

कहते हैं कि भगवान ! प्रभु ! तू यदि राग और कम्पन का कर्ता अज्ञानभाव से होता है तो परद्रव्य की पर्याय के काल में उस योग और राग को निमित्तकर्ता, निमित्तकर्ता (कहा जाता है)। वस्तु तो उसके कारण से होती है। उसे निमित्तकर्ता कहने में आता है। परन्तु यह निमित्तकर्ता किसे कहते हैं ? जो दया, दान, व्रत, शुभ-अशुभ विकल्प उठते हैं, उनका कर्ता होता है अथवा जिसकी बहिर्दृष्टि है, जिसकी विकल्प और राग, कम्पन पर दृष्टि है, ऐसा अज्ञानी राग और कम्पन का अज्ञानभाव से कर्ता होता है। तो वह राग और कम्पन पर की पर्याय में निमित्तकर्ता कहने में आते हैं। अब तो बहुत घुँटाया है। ऐई.. ! मलूकचन्दभाई ! आता है या नहीं यह ? सेठ व्यक्ति बराबर है ऐसा कहते हैं। वापस आता है या नहीं, यह बहुत ठीक से नहीं कहा। यह तो जरा न्याय से (समझने की बात है)। इसमें कहीं भाषा ऐसी कड़क नहीं है, कठिन नहीं है। समझ में आया ?

श्रोता : भाव गहरा है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव तो ऐसी चीज़ है। वस्तु की, तत्त्व की चीज़ ऐसी है। तत्त्व भगवान आत्मा तत्त्व, उसे पर की पर्याय में निमित्त मानना, निमित्तकर्ता मानना, वह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया ? परन्तु उस पर की पर्याय में योग और उपयोग को निमित्तकर्ता मानना, यह बराबर है। परन्तु किसको ? जो राग और कम्पन का कर्ता है, ऐसे अज्ञानी का योग और राग पर की पर्याय में निमित्तकर्ता कहने में आते हैं। ब्रह्मचारीजी ! बराबर है। आहाहा ! वस्तु ऐसी है। तत्त्व की वस्तुस्थिति ऐसी है, ऐसा कहते हैं। ओहोहो ! समझ में आया ? शान्तिभाई !

यहाँ तो कहते हैं कि राग, पुण्य-पाप का विकल्प और योग, इनसे भिन्न नहीं पड़ा हुआ ऐसा आत्मा, भिन्न नहीं पड़ा हुआ ऐसा आत्मा, वह अज्ञानी है। उस अज्ञानी का योग और राग या विकार विकल्प पर की पर्याय के काल में पर्याय नैमित्तिक तो होगी ही। इसलिए मैं निमित्त हुआ, मैं निमित्त हूँ.. निमित्त हूँ ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। होवे कैसे ? यह तो होता है तब रागादि योग का निमित्तकर्ता का आरोप दिया जाता है। परन्तु किसके ? अज्ञानी के योग और राग का कर्ता अज्ञानी है, अज्ञानी राग और योग का कर्ता है तो योग और राग कर्ता अज्ञानी में पर की पर्याय में निमित्तकर्ता का आरोप योग और राग में आता है।

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। व्यवहार अर्थात् द्रव्य तो कर्ता नहीं, निमित्तकर्ता। पर का कर्ता नहीं। पर का नहीं परन्तु निमित्तकर्ता का आरोप इसे आता है। अज्ञानी को इतना व्यवहार है। समझ में आया ? आहाहा ! उसका अर्थ यह हुआ कि सम्यग्दृष्टि को योग और विकार सम्यग्दृष्टि का नहीं है। क्योंकि योग और विकार तो दोष है। उससे तो दृष्टि मुक्त हुई है। सम्यग्दृष्टि योग और राग से मुक्त है। तो मुक्त हुआ है, तो शुद्ध चिदानन्द आत्मा है। ऐसे ज्ञानी को पर की पर्याय में निमित्तकर्ता का आरोप भी नहीं लगता। क्या ? ज्ञानी योग और राग का कर्ता नहीं है, ऐसा जो आत्मा, ऐसा आत्मा स्व-पर को ज्ञान ज्ञानी करता है, उसमें जो पर्याय होती है, वह ज्ञान में निमित्त होती है, ज्ञान में निमित्त होती है। आहाहा ! अवस्था बदल गयी। सुमनभाई गये ? गाथा बहुत समझने जैसी थी। सुमनभाई गये होंगे। समझ में आया ?

भाई ! भगवान पर्यायदृष्टिवाला, ऐसा यहाँ कहते हैं। जिसकी दृष्टि पर्याय पर, राग पर, कम्पन के ऊपर है, वह पर्यायदृष्टिवाला अज्ञानी पर की पर्याय के काल में पर की पर्याय नैमित्तिक का कर्ता तो नहीं, परन्तु उसके काल में निमित्तकर्ता अज्ञानी का राग और कम्पन कहने में आता है। क्यों ?—कि राग और कम्पन का कर्ता अज्ञानी है इस कारण से। इस कारण

पर की पर्याय में उसके राग और कम्पन को निमित्तकर्ता कहते हैं। ज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीव चौथे गुणस्थान से अपने अतिरिक्त परद्रव्य की पर्याय का कर्ता तो नहीं, द्रव्यरूप से कर्ता नहीं, परन्तु उसकी पर्यायरूप भी उसका कर्ता नहीं। क्योंकि सम्यग्दृष्टि की पर्याय तो निर्मल है। आहाहा! वह निर्मल पर्याय उसकी है, राग और कम्पन उसके नहीं, तो निर्मल पर्याय पर में निमित्तपना कर्ता है, ऐसा नहीं।

तब उल्टा क्या होता है?—कि सम्यग्दृष्टि की दृष्टि द्रव्य के ऊपर है और सम्यक् निर्मल पर्याय प्रगट हुई है, तो निर्मल पर्याय स्व और पर की प्रकाशक शक्ति प्रगट हुई है। तो जो परिणति उसमें है, वह ज्ञान में निमित्त पड़ती है। अपने ज्ञान में वह निमित्त पड़ती है। वह पर में निमित्त नहीं पड़ता, ज्ञानी के ज्ञान में वह वस्तु निमित्त पड़ती है। आहाहा! समझ में आया? कान्तिभाई! समझ में आया या नहीं? यह गाथा कभी सुनी नहीं थी? नहीं? अपने लेखन में आ गया है। यह प्रवचन जब हुआ, तब सब आ गया है। उसका हिन्दी प्रवचन चालू है? कर्ता-कर्म हो गया। गुजराती प्रवचन तो (संवत) १९९९ के वर्ष में हुए हैं। हिन्दी बहुत वर्ष के बाद हुआ। आज तो बहुत पुस्तकें आ गयी हैं। समझ में आया?

देखो न! सन्तों की स्पष्टीकरण करने की टीका कैसी है! अमृतचन्द्राचार्य.. आहाहा! भगवान! तू तो ज्ञान और आनन्दस्वरूप है न, प्रभु! और ज्ञान और आनन्द का जाननेवाला, वेदन करनेवाला, करनेवाला, होनेवाला वह परद्रव्य की पर्याय का तो कर्ता नहीं, परन्तु परद्रव्य की पर्याय में निमित्तकर्ता भी नहीं है। उसका द्रव्य तो निमित्तकर्ता नहीं परन्तु उसकी पर्याय भी निमित्तकर्ता नहीं है। आहाहा! भगवानजीभाई! यह तो बहुत बोल हैं। अपितु ज्ञेय परिणति है, वह ज्ञान में निमित्त होती है। अपना परिणमन अपने से है। ज्ञानी को अपने सम्यग्दर्शनपूर्वक स्व-परप्रकाशक परिणमन अपने से है। परन्तु वह परप्रकाशक अपना परिणाम अपने से हुआ, उसमें परपरिणति तो यहाँ निमित्त हुई। ज्ञान में निमित्त बनी। जैसे केवली को लोकालोक निमित्त है। केवलज्ञानी भगवान का केवलज्ञान तो स्वयं से हुआ है, कहीं लोकालोक से नहीं हुआ, परन्तु उस केवलज्ञान में लोकालोक निमित्त कहने में आता है। लोकालोक को केवलज्ञान निमित्त है, वह दूसरी चीज़ है। निमित्तकर्ता नहीं, निमित्त है। थोड़ी सूक्ष्म बात है। लोकालोक को केवलज्ञान निमित्त है और केवलज्ञान में लोकालोक निमित्त है। वह तो पृथक् चीज़ बतलाते हैं। निमित्तकर्ता है, वह नहीं है, वह दूसरी चीज़ है। गजब बात! गजब बात!

फिर से। ऐसे केवलज्ञान हुआ तो एक समय में तीन काल, तीन लोक के जानने की

व्यक्त प्रगट दशा हुई। उसमें लोकालोक निमित्त कहने में आता है। और लोकालोक को केवलज्ञान निमित्त कहलाता है। वह निमित्तकर्ता नहीं। तो अज्ञान हो जाता है। पर की पर्याय का निमित्तकर्ता अज्ञानी का योग और राग पर की पर्याय में निमित्तकर्ता कहने में आते हैं। क्योंकि अज्ञानी योग और राग का कर्ता होता है। आहाहा! समझ में आया? यह १००वीं गाथा तो ऐसी है, भाई! अलौकिक! कर्ता-कर्म का अन्दर पूरा रहस्य है। यद्यपि ७५-७६-७७-७८-७९ बहुत अलौकिक है। हो गयी है। यहाँ एकदम सूक्ष्म है।

भगवान! तू आत्मा है न, प्रभु! आत्मा है तो उसमें ज्ञान और आनन्द पड़ा है। उसमें कम्पन और राग कहाँ पड़ा है? ऐसा विकार का परिणाम चाहे तो शुभाशुभ हो या कम्पन हो, उससे भगवान भिन्न पड़ा, भगवान भिन्न पड़कर भेदज्ञान हुआ, ऐसा ज्ञानी का ज्ञान परिणाम पर में निमित्तकर्ता भी नहीं है। पर में पर के परिणाम तो होते ही हैं। उनका कार्य तो नहीं (करता) परन्तु उसका निमित्तकर्ता भी नहीं है। जबकि ज्ञानी के ज्ञान में, केवलज्ञान में लोकालोक निमित्त है। तो यहाँ थोड़ा ज्ञान है, पूरा ज्ञान नहीं है। तो इतने ज्ञान में जो परिणति सामने जड़ या आत्मा की होती है, पर आत्मा की, उसे यहाँ निमित्त कहने में आता है। यह ज्ञान की पर्याय उसमें निमित्त है, कर्ता नहीं। वापस निमित्त तो कहा, देखो! निमित्तकर्ता अलग चीज़ है, निमित्त दूसरी चीज़ है। आहाहा! ऐसा है। आहाहा! समझ में आया?

केवलज्ञान की पर्याय लोकालोक में निमित्त है, निमित्तकर्ता नहीं। इसी प्रकार लोकालोक ज्ञान में निमित्त है, परन्तु लोकालोक ज्ञान की पर्याय का कर्ता नहीं है। इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान में... यह पूर्ण की बात हुई। इसी प्रकार नीचे सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में स्व-परप्रकाशक अल्पज्ञान है। तो वह पर्याय परपरिणति में निमित्त कहो। वह तो बन्ध अधिकार में आता है न? भाई! इस अपेक्षा से बात है। जयसेनाचार्य की टीका में। २५१-२५२-२५३-२५४ आदि बन्ध अधिकार की गाथाओं में आता है कि ज्ञानी स्वरूप में स्थिर नहीं हो सकते। भान है परन्तु स्थिर नहीं हो सकते। अशक्य अनुष्ठान प्रमाद के कारण पर को मारुँ ऐसा विकल्प प्रमाद के कारण से आ जाता है, तो ज्ञानी ऐसा जानते हैं कि जिस समय में उसकी मृत्यु होनेवाली थी, उसमें मैं निमित्तमात्र हूँ। निमित्तकर्ता नहीं। गजब बात, भाई! समझ में आया? यह बन्ध अधिकार में है। जयसेनाचार्य की बन्ध अधिकार की टीका है न। २५२-२५२।

श्रोता : समयसार ?

पूज्य गुरुदेवश्री : समयसार। यहाँ तो अपने सब समयसार ही है न, जयसेनाचार्य की टीका। देखो!

'**किं च ज्ञानीना पुरुषेण स्वसंवित्तिलक्षणत्रिगुणत्रिगुप्तसमाधौ स्थातव्यं तावत्।**' अन्दर में स्थिर करना। '**तद्भावे**' अन्तर स्वरूप में ज्ञानी स्थिर न हो सके तो '**चाशक्यानुष्ठानेन प्रमादेन अस्य मरणं करोमि**' युद्ध करने भी समकिती जाता है न? ज्ञानी को विकल्प आया। युद्ध करने भी (जाए)। क्षायिक समकिती हो, राजकुमार हो, अरबों रुपयों के गहने पहनकर हाथी पर बैठा हो। तीर-बाण छूटते हों, तो कहते हैं कि अन्तर में स्थिरता नहीं है। '**चाशक्यानुष्ठानेन प्रमादेन अस्य मरणं करोमि, इति यदा विकल्पो भवति**' '**मरणं करोमि, इति यदा विकल्पो भवति**' भाई! मरण कर सकता है, यह प्रश्न नहीं। '**यदा विकल्पो भवति तदा मनसि चिंतयति अस्य शुभाशुभकर्मोदये सति**' वह तो इसके कर्म का उदय है। '**अहं निमित्तमात्रमेव जातः**' हम तो निमित्तमात्र हैं। कर्ता तो नहीं, पर का कारण नहीं, निमित्तकर्ता भी नहीं। निमित्त है, उसका ज्ञान कराया है। '**अहं निमित्तमात्रमेव जातः इति मत्वा मनसि रागद्वेषरूपोअहंकारो न कर्तव्य**' आहाहा! गजब बात, भाई! अलौकिक बात है, बापू! कहो, समझ में आया या नहीं? ऐई.! चुनीभाई! यह सब समझने जैसा है। यह व्यापारी को कठिन पड़े, ऐसा है। ऐसा होगा? यह धीरे... धीरे... धीरे... तो बात चलती है, बापू! धीमे-धीमे स्पष्टीकरण करते-करते (तो चलता है)। हमारे ... कहते हैं, इतना स्पष्टीकरण तो होता है। समझ में आवे, ख्याल में आवे कि यह कहते हैं, ऐसा तो ख्याल आवे। यह स्थिति है, वस्तु की स्थिति यह है। ऐसा तो ख्याल में आवे न। ओहोहो!

कहते हैं, दो जगह इसमें कहा। उसमें आयुष्य के कारण है, वे शुभाशुभकर्म। शुभाशुभ है न? दूसरे को सुख दे सकूँ, दुःख से दे सकूँ, सुख-दुःख तो नहीं दे सकता। उसके पुण्य के उदय से अनुकूल सामग्री मिलती है, पाप के उदय से प्रतिकूल मिलती है। मैं उसमें निमित्त हुआ। निमित्त; कर्ता नहीं। ऐसा ज्ञानी जानता है। योग और कषाय का कर्ता अज्ञानी है, तो वह कषाय और योग को पर की पर्याय में निमित्तकर्ता कहने में आता है। द्रव्य को नहीं, निर्मल पर्याय को नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अज्ञानी की विकार और कम्पन की बहिर ऊपर दृष्टि है, द्रव्यस्वभाव की दृष्टि का अभाव है तो वस्तु की दृष्टि के अभाव के कारण वस्तु में नहीं है, ऐसे कम्पन और विकार का कर्ता होता है। पर्यायदृष्टिवन्त, बहिर्दृष्टिवन्त, बहिरात्मा। बहिरात्मा का राग और योग कर्ता अज्ञानरूप से है, तो बहिरात्मा के राग और योग पर की पर्याय तो पर के काल में उपादान से होती है। उसे—अज्ञानी की पर्याय को निमित्तकर्ता कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? कहो, जीतू!

श्रोता : अज्ञानी अज्ञानभाव से राग और योग का कर्ता होता है इसलिए....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए उसे निमित्तकर्ता कहा जाता है। ऐसा तो गच्चा खाया। देखो! तेरे भाई ने हाँ की है। कहो, समझ में आया? यह दो भाई ने। भाईयों जैसा प्रेम है न? देखो! इसका उसको अच्छा लगे, उसका उसको अच्छा लगे। यह क्या कहते हैं, समझ में आया? आहाहा! यह याद आ गया एक।

एक कोली था। है न? कोली एक हमारे बोटाद के पास कोली की जाति थी। कोली तो शिकार करे और बहुत पाप करते थे। बाद में 'समढियाला' में एक नागरभाई थे। बहुत सज्जन व्यक्ति। उसने माँस छुड़ाया। मृत्यु के समय ऐसा हुआ। उसकी स्त्री मर गयी। अस्सी वर्ष की उम्र। वह मर गयी तो अर्थी में बाँधे। ठाठडी समझते हो? अर्थी। अर्थी बाँधते थे। वह वृद्ध कहे, घर में कोई रहा नहीं। हम दो रहे। हमने वहाँ वह गाँव देखा है। हे परमेश्वर! यहाँ आ, यहाँ। मुझे ले जा। देह छूट गयी। दुनिया को भ्रम पड़ जाता है। समझ में आया? बोटाद के पास गाँव है। 'ढिकवाली' नाम का गाँव है। वहाँ कोली था। दोनों वृद्ध थे। ८०-८० वर्ष की उम्र। वृद्धा मर गयी तो पकानेवाला कोई नहीं। अर्थी बाँधते थे तो उसे याद आया कि हे परमेश्वर! यहाँ आ। मुझे ले जा। ऐसा कहा, वहाँ समाप्त हो गया। यह तो बननेयोग्य बनता है। लोग मानते हैं कि यह परमेश्वर ले गया। धूल में भी परमेश्वर नहीं। आयुष्य की स्थिति ऐसी होनेवाली थी, इसलिए उसे ऐसा विकल्प आया और ऐसा हो गया। दुनिया को ऐसा कि... क्या करे। पालखी बाँधी। ओ..हो..! यह तो परमेश्वर लेने आये, लोग ऐसा माने न! धूल भी नहीं। निरोगी मनुष्य हो। बैठे और बोला हे परमेश्वर! यहाँ आ यहाँ। उसे ले जाता है, यहाँ मुझे पकाकर देनेवाला कौन है? मुझे भी ले जा। ऐई..! चम्पकभाई, यह नागरभाई कहते थे। अपने नागरभाई है न! नागरभाई ने इसे माँस और शराब छुड़ाया था। शराब पीता था, वह छुड़ाया। वह खाना नहीं। बेचारे के अन्त में ऐसे परिणाम हो गये। परमेश्वर कोई कर्ता-बर्ता नहीं है, हों! आहाहा! अज्ञानी को भ्रम (हो जाता है)।

इसी प्रकार पर की पर्याय में कर्ता आत्मा अज्ञानी भी नहीं है। ज्ञानी तो निमित्तपने कर्ता है नहीं, परन्तु अज्ञानी निमित्तपने के कर्ता का अर्थ उस पर्याय का कर्ता है ही नहीं। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! समझ में आया या नहीं? यह तो बहुत दो-चार बार घोंटकर बात चलती है। आहाहा! यह तो अपने बहुत बार चला है। यह लिखा गया है, यह कोई नया नहीं है। यह तो और जब आवे तब चले न? यह सोलहवीं बार चलता है।

श्रोता : इस बार थोड़ा अधिक स्पष्ट होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अधिक स्पष्ट होता है, यह तो अधिक होता जाता है न। समझ में आया?

श्रोता : नैमित्तिक तो होता ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो होता ही है। उसकी पर्याय नैमित्तिक हो, उसकी तो यह बात है। यह करे, व्याप्य उसका तो है ही नहीं। कर्म तो उसका नहीं। यह प्रश्न तो हो गया। पर की पर्याय का कर्म, आत्मा का तो वह पर्याय का कार्य है नहीं। यह तो प्रश्न खत्म हो गया। अब आत्मा जो त्रिकाली है, वह भी उसमें निमित्तकर्ता भी नहीं। तो ध्रुव हो जाए, ध्रुवकर्ता हो जाए तो ध्रुवपना मलिन हो जाए, ऐसा कभी नहीं होता। अब आत्मा के, अज्ञानी के विकार और योग को पर की पर्याय में निमित्त कहने में आया है। क्योंकि अज्ञानी योग और राग का कर्ता होता है। इस कारण से पर की पर्याय के काल में इसके योग और उपयोग को निमित्त कहने में आया है। क्योंकि इसका कर्ता है इसलिए। अपने परिणाम का कर्ता विकारी का होता है, इसलिए पर की पर्याय में निमित्तकर्ता कहने में आता है। समझ में आया?

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका कुछ नहीं। इसलिए तो यह प्रश्न रखा है। निमित्तकर्ता कहलाता है, इसका अर्थ कि उसका तो कुछ किया नहीं। निमित्तरूप से आरोप इसे दिया जाता है। क्योंकि स्वयं राग और योग का कर्ता बनता है, इसलिए (आरोप दिया जाता है)। समझ में आया? आहाहा! समझ में आया या नहीं? ऐई! जयन्तीभाई! रात्रि में पूछेंगे तो आयेगा या नहीं?

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पहले कहा, देखो न, कि अनित्यकर्ता है, यह तो पहले कह गये न!

अनित्य योग और उपयोग ही निमित्तरूप से उसके कर्ता हैं। पर की पर्याय का निमित्तरूप से कर्ता है। यह तो पहले कह गये। अब निमित्तरूप से कर्ता कौन है, उसकी बात सिद्ध करते हैं। कि जो **अपने विकल्प को और (आत्मप्रदेशों के चलनरूप) अपने व्यापार को कदाचित् अज्ञान से करने के कारण योग और उपयोग का तो आत्मा भी कर्ता...** है, ऐसा वापस सिद्ध करना है। परन्तु पर का कर्ता तो है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। देखो! **उपयोग तो आत्मा भी कर्ता भले हो, तथापि परद्रव्यस्वरूप...** कार्य, परद्रव्यस्वरूप परिणाम,

परद्रव्यस्वरूप अवस्था, परद्रव्यस्वरूप अंश का **कर्ता तो (निमित्तरूप से भी कदापि) नहीं है।** आत्मा तो निमित्तरूप से भी कदाचित् कर्ता नहीं है। समझ में आया? यह तो निमित्तपने का आरोप भी आत्मा को नहीं आता, ऐसा कहते हैं।

अज्ञानी के राग और कम्पन का कर्ता बहिर्बुद्धि होता है। अपना अस्तित्व राग और कम्पन से भिन्न है, उसका अस्तित्व का भान नहीं है, ऐसा अज्ञानी, उसके विकार और कम्पन पर की पर्याय के कार्यकाल में उसे निमित्तकर्ता कहने में आता है, क्योंकि उस राग और कम्पन का कर्ता होता है इसलिए। समझ में आया? देखो! यह टीका पूरी हुई। भावार्थ बाकी रहा। आहाहा!

यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। भगवान ने कहा, इसलिए ऐसा है - ऐसा नहीं। ऐसा वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया? यह तो कहे कि हम निमित्त तो हुए न? निमित्त तो हुए न? उसका अर्थ यह कि वह हम निमित्त हुए तो यह पर्याय होती है, ऐसा। हमारे भाई हैं न, वे कैसे? ढेबरभाई, हाँ, ढेबरभाई। यह बात यहाँ सुनने आवे। नेता है न? कार्यकर्ता है। महाराज कहते हैं कि कर्ता नहीं किन्तु अपन निमित्त तो होते हैं न? इसका अर्थ क्या? क्या तू निमित्त है, इसलिए वहाँ पर्याय होती है? ऐसा तुम्हारा कहना है? कहने का अर्थ क्या? वह तो पर्याय होती है, तब जाननेवाला साथ में निमित्त है, यह कहते हैं कि वह एक निमित्त है, ऐसा जानने में आता है। परन्तु हम निमित्त तो हैं न! निमित्त का अर्थ कि मैं वहाँ हूँ, इसलिए ऐसा हुआ। हम निमित्त हुए, इसलिए वहाँ ऐसा हुआ। समझ में आया? ऐसा नहीं है। भावार्थ आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)